हमारे

गाँवों की कहानी

लेखक

स्वर्गीय रामदास गौड, एम० ए०

सस्ता साहित्य मण्डल,
दिल्ली

प्रकाशक—
मार्तण्ड उपाध्याय,
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

अप्रैल, १९३८ २०००
मई १९३९ २०००

मूल्य
आठ आना

मुद्रक—
श्रीपतराय,
सरस्वती प्रेस,
बनारस कैण्ट।

प्रकाशक की ओर से

हमें इस बात की बहुत खुशी है कि 'मण्डल' से प्रकाशित होनेवाली नई 'लोक साहित्य माला' की शुरुआत हम स्वर्गीय श्री रामदास गौड की इस पुस्तक से कर रहे हैं।

इस पुस्तक के पीछे एक लम्बा इतिहास है। सन् १९२९-३० के दिनों में स्व० गौड़जी से 'मण्डल' ने 'ग्राम-सुधार और संगठन' के विषय पर एक ग्रन्थ लिखाया था। सन् १९३०-३१ में गौडजी ने उसे लिखकर अपने मित्र और 'मण्डल' के संचालक-मण्डल के प्रमुख सदस्य श्री महावीरप्रसाद पोद्दार को देखने के लिए कलकत्ते भेज दिया। ग्रन्थ बहुत बड़ा होगया था और उनकी तथा 'मण्डल' की यह राय हुई कि गौडजी इसको कुछ छोटा करदें और इसे देखने के लिए गुजरात विद्यापीठ के आचार्य श्री काका कालेलकर और महामात्र श्री नरहरि परीख के देखने को भेजदें। इसके मुताबिक गौडजी ने इस ग्रंथ को काका सा० को, जबकि वह काशी-विद्यापीठ के समावर्तन-संस्कार के निमित्त काशी गये थे, दे दिया। काका सा० और नरहरिभाई ने ग्रन्थ को देखा-न देखा कि सन् १९३२ का आन्दोलन शुरू होगया, गुजरात-विद्यापीठ पर सरकार का क़ब्जा होगया और काका सा० और नरहरिभाई जेल चले गये। सन् १९३३ में जब विद्यापीठ पर से प्रतिबंध उठा तब 'मण्डल' के मंत्री ने उस ग्रन्थ के बारे में वहाँ पूछताछ की। लेकिन मालूम हुआ कि ग्रन्थ कहीं खोगया है। इतने बड़े और इतनी मेहनत से लिखे गये ग्रंथ के खो जाने से हम सबको बड़ा दुःख हुआ।

लेकिन सन् १९३४ में जब मण्डल दिल्ली आ चुका था, तब उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री बलबीरसिंह हमें मिले और गौडजी की

इस पुस्तक के बारे में पूछने लगे कि वह प्रकाशित हुई है या नहीं ? तब हमने उसके खो जाने की सारी कहानी उनको सुनाई। इसपर उन्होंने कहा कि "इसकी एक नक़ल तो मेरे पास है, अगर आप चाहें तो मैं आपको दे दूँ।" हमें यह सुन आनन्द हुआ और आश्चर्य भी। पूछने पर उन्होंने बताया कि जब यह पुस्तक श्री महावीरप्रसाद पोद्दार के पास कलकत्ता गई थी तब वह उनके साथ शुद्ध खादी भण्डार में काम करते थे। वहाँ इस पुस्तक को उन्होंने पढा। और पढने पर उनको वह इतनी अच्छी लगी कि रात रात भर जागकर चुपके से इसकी नक़ल करली। इसका न तो पोद्दारजी को पता था और न गौडजी को ही।

श्री बलवीरसिंहजी ने ग्रन्थ मण्डल को देदिया। 'मण्डल' ने फिर गौडजी को भेजा कि इसको अगर कुछ घटादें और अद्यवत् (Up to date) बनादें तो इसे प्रकाशित किया जाय। लेकिन वह दूसरे ग्रंथों के लेखन आदि में इतने व्यस्त रहे कि इसका सम्पादन न कर सके और अंत में पिछले वर्ष भगवान् के घर जा रहे। उसके बाद यह ग्रंथ फिर गौडजी के मित्र श्री कृष्णचन्द्रजी (सबजज, काशी) की मारफत श्री पोद्दारजी के पास गया। उन्होंने इसे शुरू से अंत तक पढा और उन्होंने मण्डल को सलाह दी कि इसको अब जैसा-का-तैसा ही प्रकाशित करना चाहिए। इसी निश्चय के फल स्वरूप इस ग्रन्थ का यह पहला खण्ड आपके हाथ में है। और दूसरा खण्ड 'मण्डल' की 'सर्वोदय साहित्यमाला' (बडी माला) से शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

इस प्रकार श्री बलवीरसिंहजी के परिश्रम से गौडजी का यह ग्रन्थ बच गया इसके लिए वह हमारे और पाठकों के बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

यह इसका सारा इतिहास है। 'मण्डल' ने इस ग्रंथ पर स्व० गौडजी के परिवार को रॉयल्टी देना तय किया है। पहले तो यह ग्रंथ ही इतना

उपयोगी और उत्तम है कि प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक के लिए इसको अपने पास अपने मार्ग-दर्शन के लिए रखना बहुत जरूरी है। दूसरे जितना ही इसका अधिक प्रचार होगा उतनी ही स्व० गौडजी के परिवार वालों को आर्थिक सहायता होगी और होती रहेगी। इसलिए आशा है, प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक इसे अवश्य खरीदेगा और लाभ उठावेगा।

इस माला मे इसी आकार-प्रकार, छपाई और मूल्य वाला सर्वसाधारण के लिए ज्ञानवर्धक और चरित्र को ऊँचा उठानेवाला राष्ट्रीय साहित्य निकलेगा। इसकी पूरी योजना इस पुस्तक के अन्त म दी गई है। हम इस माला को सब तरह से सम्पूर्ण और उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं। लेकिन यह सब हिन्दी भाषा के उदार पाठकों, लेखकों और भारत के लोकनेताओं के प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन पर निर्भर करता है। आशा है, पाठकवर्ग ज्यादा-से ज्यादा तादाद मे इसको खरीदकर और इसका प्रचार करके तथा लेखकवर्ग इसके लिए पुस्तके लिखकर और लोकनेता इस दिशा मे हमारा मार्ग-दर्शन करके इस काम को पूर्ण करने मे हमारी सहायता करने की कृपा करेंगे।

आज इसका दूसरा संस्करण पाठकों की सेवा मे प्रस्तुत करते हमे हर्ष है और हम भविष्य मे उनसे और अधिक सहयोग की आकांक्षा रखते हैं।

—मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल

भूमिका

आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान् विशेषतः भारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में मुख्य धारणाओं के साथ अपने सभी विचारों को सुसंगत करने की कोशिश करते हैं। उनकी एक धारणा यह है कि पाश्चात्य इतिहास की तरह यहाँ का इतिहास भी विकासवाद के अनुरूप होना चाहिए। दूसरी धारणा यह है कि मानव सभ्यता का इतिहास इतना पुराना नहीं है जितना हिन्दू बताते हैं। तीसरी धारणा यह है कि आर्य लोग कहीं विदेश से भारत में किसी भूतकाल में आये थे। पहली धारणा में यह दुर्बलता है कि विकास-विज्ञान उत्तरोत्तर वर्धमान शास्त्र है। उसके आधार पर इतिहास की कोई स्थिर इमारत सभी देशों और कालों के लिए सुभीते से नहीं खड़ी की जा सकती। दूसरी धारणा भी पहली के ही आधार पर है और विज्ञान गत पचास बरसों के भीतर सृष्टि और सभ्यता के भूतकाल की सीमा को बराबर बढ़ाता आया है अतः इस धारणा में भी स्थिरता का अभाव है। तीसरी धारणा कुछ विशेष कल्पनाओं के आधार पर है जिन पर भी विद्वानों का मतभेद है। हमारा प्राचीन साहित्य हमारे निकट उसका तनिक भी समर्थन नहीं करता। सुतरां मैं तीसरी धारणा को निराधार मानता हूँ।

पाठकों के सामने भारतीय गाँवों के इतिहास के जो ये पृष्ठ मैं रख रहा हूँ, उनमें मैंने उपर्युक्त तीनों धारणाओं की जानबूझ कर उपेक्षा की है। साधारण पाठक भी इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहेंगे कि सतयुग पाँच हज़ार बरस पहले हुआ या बीस लाख बरस पहले। या यह कि सतयुग में यदि वह सृष्टिकाल के पास था, मनुष्य को कपड़े बनाने की कला आती

चाहिए या नहीं? अथवा यह कि यहाँ के गाँवों को आर्यों ने बाहर से आकर बसाया या वे भारत में पहले से ही बसे हुए थे। हमारे इतिहास का आधार हमारा साहित्य है और उसमें भी यह विषय सर्वसम्मत है कि वेदों से अधिक पुराना संसार में कोई साहित्य नहीं है। पुराने-से-पुराने साहित्य के आधार पर प्राचीनतम गाँवों का इतिहास अवलम्बित है, फिर चाहे उसे पाँच हजार बरस हुए हों, चाहे पाँच लाख। हमारे गाँवों की जब से आबादी है हम उसी समय से अपने वर्णन का आरम्भ करते हैं। फिर चाहे वे गाँव इस भूतल पर किसी देश के क्यों न हों वे गाँव हमारे ही थे किसी और जाति के नहीं।

इस कहानी के लिखने का उद्देश्य यह है कि हम अच्छी तरह देखें कि हमारी उन्नति कहाँतक हुई थी और आज हमारा पतन किस हद तक हुआ है। अपनी वर्त्तमान स्थिति को अच्छी तरह समझने के लिए भूतकाल की स्थिति का जानना आवश्यक है, क्योंकि वर्त्तमानकाल भूतकाल का पुत्र है। साथ ही भावी उन्नति और उत्थान के लिए ठीक मार्ग निश्चय करने में भूतकाल का इतिहास बड़ा सहायक होता है। आज हमारे गाँवों के लिए जीवन और मरण का प्रश्न खड़ा है। इसे हल करने के लिए भी हमें अपने पूर्वकाल का सिंहावलोकन करना आवश्यक है। ग्राम संगठन की समस्या देश के सामने है। उसकी पूर्त्ति में इस कहानी से सहायता मिल सकती है। इस कहानी की हमारे ग्राम संगठन के काम में कुछ भी उपयोगिता सिद्ध हुई तो मैंने, इस पोथी के संकलन में, जो कुछ परिश्रम किया है उसे सार्थक समझूँगा।

बड़ी पियरी, काशी

रामदास गौड़

हमारे गाँवों की कहानी

हमारे

गाँवों की कहानी

सतजुगी गाँव

१. गाँव किसे कहते हैं ?

तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृषीवला ।
क्षेत्रोपयोग-भू-मध्ये वसतिर्ग्रामसञ्ज्ञिका ॥

—मार्कण्डेय पुराण ।

गाँव किसे कहते हैं ? आज भारत देश मे कोई ऐसी बात पूछ बैठे तो लोग उसे पागल कहेंगे। बड़े से बड़े शहर मे रहनेवाला बड़ा आदमी भी जिसे किसी बात की कमी नहीं है, कम-से-कम हवा खाने के लिए गाँव की ओर जरूर जाता है। इसलिए कोई ऐसा नहीं है जो गाँव के लिए पूछे कि किसे कहते हैं। तो भी भारी-भारी पण्डितों ने यह बताया है कि गाँव किसे कहते है। गाँव उसी बस्ती का नाम है जिसमें मेहनत मजूरी करनेवाले, और सब जरूरत की वस्तुओ से रँज-पुञ्ज खेतिहर रहते हो और जिसके चारो ओर खेती करने के लायक धरती हो। ऊपर लिखे श्लोक के लिखनेवाले ने गाँव के रूप का एक नकशा खींचा है। भारत खेतो का देश है। अन्न और कपड़ा इन्हीं खेतों से मिलते हैं। संसार की अच्छी से अच्छी चीजे, भोग-विलास की सामग्री तक लगभग सभी इन्हीं खेतों की उपज है। इन्ही खेतो की बदौलत किसान सुखी और निश्चिन्त रह सकता है। इन खेतो

पर मेहनत मजूरी खूब जी लगाकर की जाती है तभी सब मनचाहा सामान मिल सकता है। इसलिए गाँव में मजूर और किसान इन दोनों का होना जरूरी है। मजूर जब अपने खेत में काम करता होता है, तब किसान कहलाता है। किसान जब मजूरी लेकर दूसरे का काम करता है तब मजूर कहलाता है। गाँव के रहनेवाले सभी मजूर और किसान हैं। एक कुम्हार जब औरों को बरतन बनाकर देता है, एक तेली जब औरों के लिए तेल पेलता है, एक कोरी जब औरों के लिए कपड़े बुनता है, और एक चमार जब औरों के लिए जूते बनाता है, तब वह मजूर का काम करता है। परन्तु जब कुम्हार, तेली, कोरी, चमार, बनिया, कायस्थ, क्षत्रिय, ब्राह्मण अपने लिए अपने खेती-बारी का काम करते है, तब सब के सब किसान है। गाँव में आपस के और नाते भी होते हैं, पर मजूर और किसान का आपस का नाता सबमें बराबर है। आदमी सभी बराबर हैं। सब अपना-अपना काम करते हैं।

आजकल भी हम गाँवों में देखते हैं तो थोड़ी-बहुत ऐसी ही बात पाई जाती है। पण्डितों ने जो गाँव का नकशा खींचा है वह बिलकुल मिट नहीं गया है। आज भी हम गाँवों में जाकर देखते हैं तो मजूरों और किसानों को पाते हैं। हाँ, उन्हें सुखी नहीं पाते। बहुत से हड्डी की ठठरी देख पड़ते हैं। बहुत-से रोगी आलसी और बेकार भी हैं। आधे से अधिक ऐसे हैं जिन्हें दिन-रात में एक बार भी भरपेट रूखी रोटी नहीं मिलती। खेतों में अनाज पैदा होता है, पर वह न जाने कहाँ चला जाता है। वे अन्न उपजाते हैं, पर औरों के लिए। वे चोटी का पसीना एड़ी तक बहाते हैं और काम के पीछे मर मिटते हैं; पर औरों के लिए। धूप, आँधी, पानी, ओले, पाला, बरफ सबका कष्ट झेलकर सेवा करते हैं पर उनकी सेवा करते हैं जो उन्हें लात मारते हैं, उपकार के बदले उलटे अपकार करते हैं। उनकी यह घोर

दरिद्रता—जिसको देखकर रोयें खड़े हो जाते हैं, जी दहल जाता है—उन अपकारियों पर कोई प्रभाव नहीं डालती। वे कहते हैं कि ये तो सदा के दरिद्री हैं, पशु हैं और हमारे सुख के लिए बनाये गए हैं। उनकी कल्पना में इन गाँवों के सुख के दिन आते ही नहीं। आजकल की पच्छाहीं कल-पुरजों की सभ्यता से जिनकी आँखें चौंधियाँ गई हैं, पच्छाँह की माया से जिनकी बुद्धि चकरा गई है, वे सोचते हैं कि मजूरों और किसानों की दशा पहले कभी अच्छी रही हो, ऐसा नहीं हो सकता और आज तो इनकी दशा सुधारने के लिए बड़े-बड़े कल कारखाने खुलने चाहिएँ। क्या इनके विचार ठीक हैं? क्या मजूर और किसान पहले अधिक सुखी नहीं थे? क्या पहले भी आज की तरह खेती में इनका गुजारा नहीं होता था? इन बातों पर विचार करने के लिए हमें प्राचीनकाल की सैर करनी चाहिए।

२. सतजुग का आरंभ

सतजुग की चर्चा हमने बहुत सुनी है, पर हम नहीं जानते कि सतजुग किसे कहते हैं। पण्डित लोग बताते हैं कि वह समय बहुत बहुत दिन हुए बीत गया। लाखों बरस की बात है। अनेक पढ़े-लिखे कहते हैं कि कई लाख नहीं तो कई हजार बरस तो जरूर बीत गए हैं। चाहे जितना समय बीता हो वे लोग जिसे वेद का युग कहते हैं उसीको सतजुग भी कहा जाता है। पण्डितों का यह भी कहना है कि भारत के लोग आर्य हैं, और आर्य का सीधा-साधा अर्थ किसान है।[१] आर्य किसान को कहते हैं। इस बात की गवाही वेदों में भी

[१] रमेशचन्द्र दत्त रचित अंग्रेजी के "प्राचीन भारत में सभ्यता का इतिहास", पृष्ठ ३५।

मिलती है।[1] राजा पृथु की कथा, सीताजी का जन्म अकाल पड़ जाने पर बड़े-बड़े ऋषियों की तपस्या, यज्ञ, पूजा आदि कथाओं से पुराण भरे पड़े हैं। कृष्ण और हलधर किसानों ही के नाम हैं। खेती गोपालन और व्यापार वैश्यों का खास काम बताया गया है। किसान बिना गऊ पाले खेती का काम चला नहीं सकता। और खेती में उपजा हुआ अन्न जब गाँव के खर्च से बचेगा तो उसे अपने गाँव से बाहर बेचना ही पड़ेगा। इसलिए जो काम वैश्य जाति का बताया गया है वह किसान का ही काम है। वेदों में 'विश्' आर्य प्रजा के लिए आया है। इसीसे वैश्य बना। इसलिए वैश्य भी किसान ही को कहते हैं।[2]

१ यवंवृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्त्रा।
अभि दस्यु बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥

ऋक् १।११७।२१

हे अश्विनी कुमारो! हल से जुते खेत में यवादि धान्य बुवाते हुए तथा मेघ बरसाते हुए खेत के नाश करनेवाले दस्यु को बकुर से (वज्र से) मारते हुए तुम दोनों ने आर्य वैश्य के लिए विस्तीर्ण सूर्य नाम की ज्योति बनाई है।

ओमासश्चर्षणी[1]धृतो विश्वे देवास आगत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥१॥

ऋक् १।३।७

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टय[1]। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥२॥

ऋक् १।४।६

(१) चर्षणि, (२) कृष्टि—ये दोनों शब्द मनुष्य वाचक हैं। हे देवताओ! धनादि देनेवाले आप लोग हवि देनेवाले यजमान के घर पर पधारो ॥१॥

हे शत्रु नाशक इन्द्र! तेरी कृपा से शत्रु भी हमें अच्छा बतलावें, फिर हम इन्द्र से प्राप्त सुख में रहें ॥२॥

२. पुरुष सूक्त के सिवाय संहिताओं में और कहीं 'वैश्य' शब्द नहीं

हमारी दुनिया सतजुग मे ही शुरू हुई है और खेती का शुरू भी सतजुग मे ही मानना पडेगा। इसलिए हम सहज मे ही समझ सकते हैं कि सतजुग मे खेती का काम बहुत होता रहा होगा। साधारण लोग खेती या मजूरी ही करते रहे होंगे। प्रोफेसर सन्तोषकुमार दास अपनी अंग्रेजी की "प्राचीन भारत का साम्पत्तिक इतिहास" नाम की पुस्तक मे पृष्ठ ६ पर लिखते हैं कि "धरती के चार विभाग होते थे। (१) वास्तु (२) कृषियोग्य भूमि (३) गोचर भूमि (४) जंगल। वास्तुभूमि का मालिक किसान होता था। वास्तव में जितने युद्ध हुआ करते थे गऊ या खेतों के हरण के लिए हुआ करते थे। जीत का भाग जीतने वालों में बँट जाता था।" लोग गाँव मे अपने परिवार के साथ रहते थे और खेतो के मालिक की हैसियत से खेती करते थे। बाप मर जाता था तब बेटो मे जायदाद बटती थी। गोचर भूमि और जंगल पर सबका अधिकार था। वेदो मे इन अधिकारो के दायभाग की भी चर्चा है। इस पोथी मे यह भी लिखा है कि "प्रोफ़ेसर कीथ (Keith) और दूसरे विद्वान् कहते हैं कि इस जुग में शहर होते ही न थे। शहर का होना सिद्ध करने के लिए जो मन्त्र कहा जाता है उसका अर्थ यह विद्वान् यह लगाते हैं कि शरदऋतु में बाढ़ आने पर इन मिट्टी के

आया। 'विश्' शब्द का बराबर प्रयोग है जिसका अर्थ 'साधारण प्रजा' लिया गया है। इसलिए यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'वैश्य' साधारण प्रजा के अधिकांश समुदाय का नाम होगा। यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि देश के भरण-पोषण के लिए सबसे अधिक संख्या किसानों ही की होनी चाहिए। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की आवश्यकतानुसार अत्यन्त कम शूद्रों अर्थात् मजूरों की संख्या लगभग किसानों अथवा वैश्यों के बराबर होगी।

पुरों में किसान लोग शरण लेते थे। यह 'पुर' एक प्रकार के बाँध का नाम है।"[1] जो हो, तो इसमें सन्देह नहीं मालूम होता कि शहर थे भी तो बहुत कम रहे होंगे। गाँवों की ही गिनती सबसे ज्यादा होगी।

मंत्रों से यह भी पता चलता है कि हल से खेत जोते जाते थे और जौ, गेहूँ, धान, मूंग आदि अनाज और गन्ने की पैदावार बहुतायत से होती थी।[2] लोग गाय, बैल, घोड़े, भेड़, बकरी रखते थे और चराने को ले जाया करते थे। समय-समय पर खेती के सम्बन्ध में नई उपज पर, फसल खड़ी होने पर, कटने पर, बोने के समय इत्यादि अवसरों पर किसान यज्ञ करता था और बड़ी अच्छी दक्षिणा देता था। ब्राह्मण के दाहिनी ओर गाय होती थी, जो यज्ञ के अन्त में उसे दी जाती थी। दक्षिणा नाम इसीसे पड़ा है। आजकल पुरोहित जो पद-पद पर गऊ-दान माँगता है वह इस पुराने रिवाज के अनुसार ही

१. शतमश्मन्मयीना पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे॥

ऋग्वेद म० ४ सू० म० २०

तथा प्रो० सन्तोषकुमार दास की पुस्तक पृष्ठ १०-११

इन्द्र ने दिवोदास नामक यजमान को पत्थर के बने हुए सौ 'पुरों' को दिया।

२. युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु॥

ऋग्वेद म० ८ सू० २२ म० ४

हे अश्विनी कुमारो! तुम्हारे रथ का एक चक्र द्युलोक की परिक्रमा करता है, दूसरा तुम दोनों के समीप से जाता है। हे उदकरक्षक कुमारो! तुम्हारी अच्छी बुद्धि हमारी तरफ धनादि देने के लिए उसी प्रकार आवे, जिस प्रकार नव-प्रसूता गौ दूध पिलाने के लिए बच्चे के पास जाती है।

है। किसान कितना धनवान होता था, इसका पता उसकी दक्षिणा से लगता है। किसान की आमदनी खेती से, पशुओं से और बागों और जंगलों की उपज से अधिक होती थी। पर केवल अनाज के ही कारोबार में लोग फँसे नहीं रहते थे। वेदों में सूत, रेशम, ऊन और छाल आदि के बने हुए बारीक और उत्तम कपड़ों का अनेक प्रसंगों में वर्णन हुआ है। इसलिए यह बात बिलकुल जाहिर है कि किसान लोगों में कताई और बुनाई का काम बहुत फैला हुआ था। बचे हुए समय में ये लोग कताई, बुनाई की कला के अभ्यास में लगे रहते थे।[1] ये ऊन का रंग उड़ा देते थे और कपड़ों को सुन्दर-सुन्दर

[1] नाहं तन्तुं विजानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः।
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा॥

म० ६। सू० ९। म० २

न मैं तन्तु को और न ओतु को ही जानता हूँ और न इन दोनों से बनने वाले कपड़े को जानता हूँ। किसका सुपुत्र इन वक्तव्य-व्याख्यातव्य ज्ञापनीय बातों को सूर्य से नीचे लोक में रहने वाला पुरुष बतला सकता है अर्थात् कोई नहीं। यदि कोई इन बातों का पता चला सकता है तो सिर्फ वैश्वानर ने ही। यह वैश्वानर की स्तुति है।

स इत्तन्तुं स विजानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन्॥

म० ६। सू० ९। म० ३

इस प्रकार तन्तु आदि का जानना अत्यन्त कठिन है परन्तु यदि कोई जानता है तो वह वैश्वानर ही जानता है—और वही व्याख्या करता है, जो कि सूर्य, अग्नि आदि रूपों में द्युलोक और भूलोकादि में स्थित है।

स मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।

रंगों में रंगते थे। सिले हुए कपड़े और अनेक प्रकार की पोशाक पहनते थे। दूध, घी, तेल मसाले और औषधियाँ काम में लाते थे; शहद इकट्ठा करते थे, शक्कर बनाते थे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि उनके यहाँ तेल और गन्ने पेलने के कोल्हू थे, खड्‌सार थी, करघे थे, चरखे थे। खेत की सिंचाई के लिए कुएँ थे जिनमें रहँट से पानी निकाला जाता था। नाले और नहरों से भी सिंचाई होती थी। कभी-कभी सूखा भी पड़ जाता था और लोग अकाल का

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी १।१०५।८

मुझे कूप की भीतें तकलीफ देती हैं जिस प्रकार सौतें एक पति को दु:ख देती हैं तथा जुलाहे को चूहे जो कि आ आकर के तन्तु काट जाते हैं, जिनपर माँड लगा रहता है। हे इन्द्र ! तेरे स्तोता मुझको आधियाँ बहुत ही सताती हैं।

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्॥

५।२९।१५

हे बलवत्तर ! इन्द्र ! हमने तेरी नवीन-नवीन स्तुति तैयार की है जिस प्रकार अच्छे अच्छे वस्त्रों से रथ तैयार किया जाता है, आप उन्हें स्वीकार कर हमें धनवान् बनाइए।

उचथ्ये वपुषि यः स्वराडुत वायो घृतस्नाः।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत्॥　　८।४६।२८

इस स्तुत्य शरीर में जो स्वाराट् (अन्न) विद्यमान है वह अश्व गधे, कुत्ते इन सबको अभीष्ट है वह अन्न हमें दे। और वह अन्न सामने टेरी रूप में विद्यमान है।

भी मुकाबला करते थे। उनके वर्तन तांबे, पीतल, फूल कांसे के होते थे। अमीरों के घर सोने और चांदी के वर्तन वरते जाते थे। वे गाडी, रथ और नाव भी रखते थे और जूते पहनते थे। अच्छे-अच्छे कच्चे, पक्के मकान बनाते थे चित्रकारी करते थे, मूर्तियाँ बनाते

गावो न यूथमुपयन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रय.।

८ । ४६ । ३०

मुझे गौएँ तथा वधिये बैल प्राप्त हो रहे हैं।

अधयच्चार थे गणे शतमुष्ट्रा अचिक्रदत्।
अघ श्वित्रेषु विंशतिशता।

८ । ४६ । ३१

जंगलों में झुण्ड रूप में चरने वाले ऊँट हमें प्राप्त हों। और श्वेत-रंग वाली गौओं के सौ बीसे प्राप्त हो। (इस प्रकार के इस मण्डल में बहुत मन्त्र हैं)।

आर्वापणाया पति शुचायाश्च शुचस्य च।
वासो वायोऽवीना मावासांसि मर्मृजत्॥

ऋक् १० । २६ । ६

अपने लिए पाली गई वकरी और वकरों का पालक सूर्य हमारे लिए भेड़ों की ऊन के वने हुए वस्त्र (जिनको धोवियो ने धोया है) प्रकाश और उष्णता से शुद्ध करता है।

त्वमग्ने प्रयत दक्षिण नर वर्मेव स्यूत परि पासि विश्वत.।
स्वादु क्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाज यजते सोपमा दिव.॥

ऋक् १ । ३१ । १५

हे अग्ने! तू प्रयतदक्षिण पुरुष की उस प्रकार रक्षा करता है जैसे ताने, वाने, तुरी, वेमा आदि से बनाया हुआ कवच उससे ढके हुए मनुष्य की रक्षा करता है। जो सुखकारी यजमान जीवयजन सहित यज्ञ

थे, बच्चों को पढ़ाते-लिखाते थे और अच्छे-अच्छे व्यंजन बना कर खाते थे। इन सब बातों से यह जाहिर होता है कि गाँव मे किसान ही रहते थे और वे खेती के सिवाय और भी काम किया करते थे। ब्राह्मण पुरोहिती करता था और खेती भी करता था। क्षत्रिय रक्षा

को करता है वह स्वर्ग की उपमा होता है। अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ग प्रत्येक को सुख देता है उस ही तरह वह भी ऋत्विगादिकों का सुख देने वाला कहलाने से स्वर्ग है।

सयद्दतोऽवनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्त्रि।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥

ऋक् १० । ९९ । ४

वह घोडा (इन्द्र) मेघों मे जाता है, पृथ्वी पर चलता है। और वह बिना पैर के जहाँ चलते हैं वहाँ, जहाँ रथ से नहीं चलते वहाँ तथा नदियों में भी चलता है।

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥

ऋक् १० । २५ । ४

हे सोम! हमारी स्तुतियाँ रहट की डोलचियों के समान इकट्ठी ही चलती हैं जिस प्रकार वे कूप में इकट्ठी जाती है। तुम भी हमारे लिए यज्ञ को उस प्रकार धारण करो जिस प्रकार तुम्हारे लिए अध्वर्यु चमस को धारण करता है।

वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ॥

ऋक् १० । ९३ । १३

जिनके धन के कारण हमारी स्तुति बार बार हिरण्यालंकार के समान चित्त को प्रसन्न कर रही है। जिस प्रकार पुरुषों की सेना संग्राम में और

करता था और खेती भी करता था। बनिया व्यापार भी करता और खेती भी करता था। मजूर मजूरी भी करता था और खेती भी। कुम्हार, तेली, भडभूँजे. चमार. कोरी, ठठेरा, लुहार बढई, धीवर, ग्वाले,

---

रहट की घटिका यन्त्रमाला कूप मे देखने पर चित्त को प्रसन्न करती है।

प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमसत्रकोश सिञ्चता नृपाणम्॥

१० । १०१ । ७

हे ऋत्विजो! तुम घोडों को घासदाना आदि खिला-पिलाकर मोटा ताजा रक्खो और फिर खेत वगैरा बोओ। और चयन नामक रथ को स्वास्तिवाहक बनाओ। बैलो के पीने के लिए चौबच्चे लकडी, पत्थर आदि के गहरे बनाओ तथा ऐसे हौज भी बनाओ जिनसे मनुष्य जल पी सके।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगान् वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया॥

ऋक् १० । १०१ । ४

मेधावी पुरुष हल जोड (त) ते हैं, जूआ का अलग-अलग बनाते हैं, जिसमे हमें सुख प्राप्त हो।

इस प्रकार इस मण्डल मे तथा अन्य मण्डलों मे भी इस प्रकार ऋग्वेद में वास्तु विद्या का विस्तृत वर्णन मिलता है।

यत्ते वास परिधान या नीवि कृणुषे त्वम्।
शिव ते तन्वे तत् कृण्म. सस्पर्शद्रूक्ष्णमस्तु ने॥

अथर्व० ८ । २ । १६

हे बालक! तेरा जो ओढने व पहिनने का वस्त्र है यह तेरे लिए सुखकारी हो—और हम उस वस्त्र को मुलायम बनाते हैं। इत्यादि।

इसी प्रकार १० । १०१ । ३ मे ऋग्वेद मे सातों अनाजो के बोने की भी वेद में आज्ञा मिलती है। इत्यादि॥

धुनिये, सुनार, धोबी, रङ्गरेज दर्जी माली आदि सभी कारबा के लोग गाँवों में रहते थे और अपने कारोबार के साथ-साथ खेत जरूर करते थे। श्रम-विभाग के अनुसार जातियाँ बन गई थीं। जातियाँ धीरे-धीरे वंशानुगत हो गई।

सतजुग मे गाँवो की इस व्यवस्था को देखकर यह कौन कह सकता है कि आजकल की तरह उस समय भी मजूर और किसान भूखो मरते थे। उस समय की चर्चा मे भुखमरों का और दुर्भिक्ष पीडितो का वर्णन नहीं है। अधिकाश मनुष्य अपने-अपने अधिकार पर बने रहते थे। दूसरों का हक छीनने की चाल कम थी। धर्म की बुद्धि अधिक थी। हरेक गाव अपने लिए स्वतंत्र था। पाप बुद्धि कम होने से चोर डाकू या और सत्वापहारियों का डर न था। यह सतजुग का आरम्भ था।

३. राजकर और लगान की रीति

सतयुग के आरम्भ मे बहुत काल तक किसी ऊपरी हुकूमत या शासन की जरूरत न पडी होगी, क्योंकि प्रजा मे अपने-अपने कर्तव्य पूरे करने का भाव था, और धर्म-बुद्धि थी। पराये धन का लोभ-लालच प्राय: तभी अधिक होता है, जब अपने पास किसी वस्तु की कमी होती है। मनुष्यो की बस्ती घनी न थी, सारी बस्ती पडी थी। इसलिए लोग जरूरत से ज्यादा धनी और सुखी थे। यह भी कहना अनुचित न होगा कि इन्द्रियो के सुख की सामग्री न ज्यादा तैयार हुई थी, और न उसका उनको ज्ञान था। अज्ञान के कारण भी लोभ उनको नहीं सताता था। ईसाइयों के सतजुग मे भी आदम ने जबतक ज्ञान के पेड का फल नहीं खाया था, तबतक उन्हे मालूम न था कि

मैं नगा हूँ. और नगा रहना बुरी बात है। ज्ञान का फल खाते ही उसे इञ्जीर के पेड को नगा करके अपना तन ढकना पडा। बाग मे ज्ञान और जीवन के पेड थे. जिनका फल खाना उसके लिए वर्जित था। शैतान की दम-पट्टी मे आकर उससे यह भारी भूल होगई। मालूम होता है कि ज्यो-ज्यो आबादी बढती गई त्यो-त्यो तैयार की हुई धरती मनुष्य के लिए घटती गई। लोभ रूपी शैतान ने आदमी को बहकाया। वह परमात्मा की आज्ञा को भूल गया।[१] उसे यह ज्ञान हुआ कि मेरे पास सम्पत्ति कम है, और पडोसी के पास ज्यादा। या अगर मेरे पास पडोसी से ज्यादा सम्पत्ति हो जाती तो मै अधिक सुखी हो जाता। लोभ ने दूसरे की चीज हर लेने की ओर उसके मन को झुकाया। धीरे-धीरे धर्म-भाव का लोप होने लगा स्वार्थ और पाप ने अपनी जड़ जमाई। कोई राजा या हाकिम न था जो बल के प्रयोग मे बाधा डालता।

"राखै सोई जेहि ते बनै, जेहि बल होइ सो लेइ।"

यही नियम चलने लगा "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली बात चरितार्थ होने लगी, किसी तरह का राज न होने से उस समय प्रजा एक दूसरे का उसी तरह नाश करने लगी थी, जैसे पानी मे बडी-बडी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियो को खाने लगती हैं। इस तरह बलवानो और निर्बलो का झगडा जब समाज मे उथल-पुथल मचाने

१. ईशावास्यमिद सर्व्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम्। यजु० ४०। १।

यह सब कुछ, जो कुछ कि चलायमान् ससार है, वह परमात्मा के रहने की जगह है, परमात्मा सब में व्यापक है। उसके प्रसाद की तरह जो कुछ तुम्हे मिले, उसका भोग करो, किसी और के धन का लालच मत करो।

लगा, उस समय जिन लोगों में थोड़ी धर्म-बुद्धि थी, वे समाज की इस गड़बड़ को मिटाने के लिए लड़नेवालों को समझाने-बुझाने लगे और यह कोशिश करने लगे कि गई हुई धर्म-बुद्धि लौट आवे। इसमें वे सफल न हुए। भले लोगों ने इन पशु-बल वालों से बचने के लिए, यह निश्चय किया कि जो लोग वचन के शूर हैं लबार हैं, सब पर जबर्दस्ती किया करते हैं, पराई स्त्री और पराये धन को हर लेते हैं उन सबका हम लोग त्याग करेंगे। असहयोग इस तरह सतजुग में ही आरम्भ हुआ था।

जान पड़ता है, कि असहयोग बहुत काल तक नहीं चला। जो ज़बर्दस्त थे, किसी का दबाव नहीं मानते थे, व्यभिचारी थे और दूसरों का धन हर लेते थे, उनकी गिनती शायद बहुत बढ़ गई थी और इतनी बढ़ गई थी[1] कि इनसे थोड़ी गिनतीवाले धर्मात्माओं के

---

१ अराजकाः प्रजाः पूर्वं, विनेशुरिति नः श्रुतम्।

—महाभारत, शान्तिपर्व।

वाक्शूरो दण्डपरुषो यश्च स्यात्पारजायिकः
यः परस्वमथादद्यात्त्याज्या नस्तादृशा इति।
तास्तथा समयं कृत्वा समये नावतस्थिरे॥

म० भा० शा० प०

बिभेमि कर्मणः पापाद्राज्यं हि भृशदुन्तरम्।
विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा।
तमब्रुवन्प्रजा मा भैः कर्तृनेनो गमिष्यति।
पशूनामधिपञ्चाशद्धिरण्यस्य तथैव च॥
धान्यस्य दशमं भागं दास्यामः कोषवर्द्धनम्।
यं च धर्मं चरिष्यन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः॥
चतुर्थं तस्य धर्मस्य त्वत्संस्थं वै भविष्यति।

त्याग का उनपर कोई असर न पड़ा। अच्छों ने मिलकर प्रजापति से शिकायत की। इस पर पितामह ब्रह्मा ने एक बहुत बड़े धर्मशास्त्र की रचना की जो क्रम से बहुत छोटे रूप में धर्म-भीरू मनुष्यों को मिला। इसका नाम दण्ड-नीति रक्खा गया। परन्तु इतने से काम न चला। दण्ड कौन दे? तब शासन करनेवाले की जरूरत हुई। लाचार हो लोग प्रजापति के पास गये, परन्तु प्रजापति अधिकार के लोभी न थे। उन्होंने लोगों को मनु के पास भेजा। मनु बोले राजा का काम बड़ा कठिन है और पाप से भरा है। जो लोग झूठ के व्यवहार में लगे रहते हैं उन पर, और खासकर झूठे मनुष्यों पर, शासन करने में मैं डरता हूँ। मनुष्य समाज के सामने यह बड़ी कठिनाई आ खड़ी हुई। उन्होंने मनु को प्रसन्न करने के लिए उन्हें ये वचन दिये—"आप पाप के लिए न डरिए। पाप करनेवाला उसके फल को भुगत लेगा। आपका कोष बढ़ाने के लिए हम पशु और सोने का पचासवाँ और अनाज का दसवाँ भाग देते रहेंगे। आपसे रक्षा पाकर हम लोग जो भले कर्म करेंगे उसका चौथाई फल आपको मिलेगा। उस पुण्य से सुखी होकर आप हमारी रक्षा उसी तरह कीजिए जैसे इन्द्र देवताओं की रक्षा करता है।"

जान पड़ता है भगवान मनु ने राज-भार लेने पर जो बन्दोबस्त किया उसका आधार यही इकरारनामा था। बन्दोबस्त करने के बदले और रक्षा कराई के वेतन में मनुष्यों को भूमि पर कर देना पड़ता है। मनु का धर्मराज था। जिन लोगों ने जगल काटकर मेहनत करके जितनी धरती को खेत बनाया था, उतनी धरती उनकी सम्पत्ति

तेन धर्मेण महता सुखं लब्धेन भावित।
पाह्यस्मान् सर्वतो राजन् देवानिव शतक्रतु।

होगई। बहुतों के पास जरूरत से ज्यादा धरती थी। बहुतों ने यह चाहा कि हमें धरती को बनाने की मेहनत न करनी पड़े और खेत मिल जाँय। बहुतों के पास इतने खेत थे कि वे सबको काम में नहीं ला सकते थे। इस तरह लेने और देनेवाले दोनों मौजूद होगये। खेत कुछ काल के लिए या सदा के लिए किराये पर दिये जाने लगे। इसी का नाम लगान पड़ा। राजा को महसूल जमीन के मालिक को देना पड़ता था। लगान धरती का मालिक लेता था। इस तरह धरती का मालिक खेतीवाले से जो लगान लेता था, वह इतना होता था कि अनाज का दसवाँ भाग राजा को देने के बाद भी उसे कुछ आय बच जाती थी। खेती करनेवाले को छठे भाग तक लगान में दे डालना पड़ता था। कुछ भी हो धरती राजा की नहीं थी। प्रजा की थी। राजा रक्षा करता था। जो भूमि-कर उसे मिलता था वह राजा की तनख्वाह थी। शुक्र नीति में भी ऐसा लिखा है।

जिन राजाओं ने धर्म के तत्त्व को ठीक तरह पर न समझा और अपने को धरती और प्रजा का मालिक समझकर मनमानी करने लगे, दीनों और दरिद्रों पर अन्याय करने लगे तब प्रजा का नाश होने लगा और उन राजाओं का अपने ही कर्तव्य से विनाश होगया। राजा वेन अपनी जबर्दस्तियों के कारण ऋषियों के हाथ मारा गया। राजा पृथु गद्दी पर बैठाया गया। प्रजा की उचित रक्षा करने और धरती से अन्न-धन निकालकर प्रजा को सुखी रखने में पृथु का राज ऐसा मशहूर होगया कि उसीसे सारी धरती का नाम पृथ्वी पड़ गया।

दण्ड-नीति को चलानेवाला राजा होने लगा। वह प्रजापति की ही जगह था। इसलिए ससार की प्रजा उसकी प्रजा होगई। वह भूप या भूपाल या नरपाल कहलाया क्योंकि वह धरती और किसान

को रक्षा करता था। उसे तनख्वाह में राज-कर मिलता था, जिसे वह प्रजा की धरोहर समझता था और रक्षा के काम में लगाता था। उसे अपने लिए बहुत थोड़े अंश की जरूरत होती थी। जमींदारी, चलतदारी, लगान, राजा, राज-प्रबन्ध सब कुछ नर्मी से चल पड़े।

: २ :

सतजुग के बाद के गाँव

१. त्रेता और द्वापर

सतजुग के बाद के समय को विद्वान लोग त्रेता और द्वापर युग कहते है। उसीको प्राय पच्छाहीं रीति से विचार करनेवाले ब्राह्मण युग कहते है। इस युग मे भी जितनी बातें सतयुग मे होती थी उतनी सभी बातें पाई जाती है। युग बदल गया बहुत काल बीत गया, लोग वेदो को भूल गये, उनका अर्थ समझना अत्यत कठिन हो गया। परन्तु लोग धातुओ का निकालना न भूले, सोने-चाँदी के सिक्के बनाना न भूले, अनाज उपजाना, पशु पालना, और व्यापार करना बराबर पहले की तरह जारी था। भगवान रामचन्द्रजी के राज मे, जिसे लिखनेवाले तो १०-११ हजार बरस तक का बतलाते है, पर जो अवश्य बहुत काल तक रहा होगा, कभी अकाल नही पडा था और जब एक ब्राह्मण का लडका जवान ही मर गया तो वह उसकी लाश भगवान रामचन्द्रजी के दरबार मे लाया और राजसिंहासन से विचार कराना चाहा कि लडका क्यो मरा। क्योंकि उस समय यही समझा जाता था कि अल्पमृत्यु, अकालमृत्यु और दुर्भिक्ष या प्रजा की दरिद्रता ये सब कष्ट जो प्रजा को कभी पहुँचते है, तो इसका दोषी या अपराधी राजा होता है। और यह बात तो बिलकुल साफ ही है कि जब सब तरह से रक्षा करना राजा का ही

काम था, तब प्रजा में रोग, दरिद्रता, अल्पमृत्यु तो तभी होगी जब उसकी रक्षा पूरे तौर पर न होगी और राजा अपने धर्म का पालन न करेगा और कर वसूल करता जायगा। इससे यह पता चलता है कि रामराज्य में प्रजा सब तरह से सुखी थी। अर्थात् किसान सुखी, समृद्ध और एक दूसरे की सहायता करनेवाले थे। सतजुग की तरह अब भी खेती में बहुत बड़ा और भारी हल काम में आता था। उसका फाल बहुत तेज और पैना होता था और मूठ चिकना होता था। एक-एक हल में चौबीस-चौबीस तक बैल जोते जाते थे। खेत की जैसी उत्तम प्रकार की सिंचाई होती थी उसी तरह खाद भी देना जरूरी था और भाँति-भाँति के अनाज उपजाये जाते थे। आज जितने अनाज उपजाये जाते हैं, प्राय सभी उस समय भी होते थे।[1]

[1]. लांगल पवीरवत् सुशीम सोमसत्सरु।
उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहन पीवरीं च प्रफर्व्यम्॥
अथर्व ३।१७।३

तेज फालवाला हल, सोम यज्ञ के साधन सब अन्नों का उत्पादक होने से सुखकर है। वह बैल, भेड़ आदि को गमन-समर्थ, मोटा-ताजा रथादिवाहन समर्थ बनावे।

शुनासीरे ह स्म मे जुषेथाम्।
यद्दिवि चक्रथु पयस्तेने मामुपसिञ्चतम्॥ अथर्व ३।१७।७

हे शुनासीर देवो! जो मेरे खेत में पैदा हुआ है उसे सेवन करो। और जो आकाश में जल है उससे इस खेत को सींचो।

"चतुर्गोदुम्बरो भवत्यौदुम्बर स्रुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इध्मा औदुम्बर्यां उपमन्थिन्यौ। दशग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति—व्रीहियवा·

रामायण से पता चलता है कि खेती बड़ी भारी कला समझी जाती थी क्योंकि उस समय वेदों के साथ-साथ शिक्षा का मुख्य विषय खेती और व्यापार था। श्रीरामचन्द्रजी भरतजी से पूछते हैं कि 'तुम किसानों और गोपालों के साथ अच्छा बर्ताव रखते हो या नहीं।" खेती इतने जोरों से होती थी कि अयोध्याजी किसानों से भरी हुई थी। धान की उपज बहुतायत से दिखाई गई है। राजा इस बात का गर्व करता है कि उसका राज्य अन्न-धन से भरा हुआ है। गाँवों के वर्णनों में यह कहा गया है कि वे चारों ओर जुती हुई धरती से घिरे हैं।[1]

हर गाँव में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र और हर पेशेवाले जिनकी जीवन में सबसे ज्यादा जरूरत पड़ती है, जैसे नाई धोबी दर्जी, कहार, चमार, बढ़ई लुहार सुनार, ग्वाले गड़रिये आदि होते थे। गाँव का सरदार या मुखिया भी कोई होता था, और पञ्चायतों से हर गाँव अपना स्वाधीन बन्दोबस्त किया करता था। रक्षा के

तिलमाषा अणुप्रियङ्गवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्चेति। बृहदारण्यकोपनिषत् अ० ६। ब्रा ३। म, १३

"दस तरह के ग्रामीण अन्न होते हैं—धान, (चावल) जौ, तिल, उड़द, अणु, (साँवा-कगनी, मसूर, खल्व, कुलथा, गेहूँ।"

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियंगवश्च मे ऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।१८।१२।

इस मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है।

१. अयोध्याकाड सर्ग ६८, बालकाड सर्ग ५, अयोध्याकाड, ३।१४ अयोध्याकाड सर्ग ६२।

लिए राजा को उसका उचित कर उगाहकर मुखिया दिया करता था. और उसके बदले राजा बाहरी वैरियो से गाँवो की रक्षा करता था. फिर चाहे वह वैरी मनुष्य हो, कृमि, कीट, पतग हो रोग दोष अकाश, सूखा, पानी की बाढ आग, टीडी आदि कुछ भी हो। राजा दसवे भाग से लेकर छठे भाग तक कर लेकर भी राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता था, तो उसे प्रजा का चौथाई पाप लगता था[१]।

किसान को त्रेता और द्वापर मे खेती की आजकल की सी साधारण विपत्तियाँ झेलनी पडती थी। चूहे, घूस, छछून्दरे बीज खा जाती थी चिडियाँ आदि अकुरो को नष्ट कर देते थे। अत्यन्त सूखा या बहुत पानी से फसलें बरबाद हो जाती थी। अच्छी फसलो के लिए उस समय भी भाँति-भाँति के उपाय करने पडते थे। परन्तु खेती को जब कभी हानि पहुँचने की सम्भावना होती थी राजा रक्षा का उपाय करने का जिम्मेदार था। और जब कभी दुर्भिक्ष पडता था राजा के ही पाप से पडता था। राजा रोमपाद के राज मे उन्हीं के पाप से काल पडा बताया जाता है।[२] राजा का कर्त्तव्य था कि दुर्भिक्ष निवारण के सारे उपाय जाने और करे।

१ आदायवलिषड्भाग यो राष्ट्र नाभिरक्षति।
प्रतिगृह्णाति तत्पाप चतुर्थांशेन भूमिप ॥ —महाभारत

२ बालकाड, सर्ग १ अयोध्याकाड, सर्ग १०० , बालकाड, सर्ग ९ । ७

"एतस्मिन्नेव कालेतु रोमपाद प्रतापवान् ॥
अगेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबल ।
तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा ।
अनावृष्टि सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा ॥ इत्यादि ।
व्यतिक्रमात्तुराजोचितधर्मविलोपनादिति तिलकव्याख्या ।

इस युग में भी गोशालायें बहुत उत्तम प्रकार से रक्खी जाती थीं। इस युग में घोष पल्लियाँ¹ अर्थात् ग्वालों के गाँव के गाँव थे और ग्वाले बहुत सुखी और धनी थे और दूध, मक्खन, घी आदि के लिए प्रसिद्ध थे। द्वापर के अन्त में नन्दगाँव गोकुल बरसाना और वृन्दावन तक गोपालों के गाँव थे और कंस जैसे अत्याचारी और लुटेरे के राज में भी मथुरा के पास इन गाँवों में दूध दही की नदी बहती थी। और नन्द और वृषभान जैसे बड़े अमीर ग्वाले रहते थे। इस समय में भी कुम्हार, लुहार, ग्वाले, ज्योतिषी बढ़ई, धीवर, नाई धोबी, बिनकार, सुराकार (कलवार) इषुकार (तीर बनानेवाले), चमड़ा सिझानेवाले घोड़े के रोजगारी, चित्रकार पत्थर गढ़नेवाले, मूर्ति बनानेवाले, रथ बनानेवाले, टोकरी बनानेवाले रस्सा बनानेवाले, रङ्गरेज, सुनार धातु निकालनेवाले नियारिये मछली बेचनेवाले, सुईकार, जौहरी, अस्त्रकार, नकली दाँत बनानेवाले दाँत के वैद्य, इतर बेचनेवाले, माली थवई जूता बनानेवाले धनुष बनानेवाले, औषध बनानेवाले और रासायनिक आदि की चर्चा इस समय के ग्रन्थों में आई है।²

१ तैत्तिरीय ब्राह्मण, काण्ड १। प्र० ४। अ० ९। म० २। से मालूम होता है कि गायें तीन बार चरने को भेजी जाती थीं और उनकी अच्छी सेवा होती थी। तथाहि—

"त्रिषु कालेषु पशव तृणभक्षणार्थं सञ्चरन्ति।
तत्तन्मध्यकालो तु रोमन्थं कुर्वन्तो वर्त्तन्ते। इति।" अर्थ स्पष्ट है।

२. शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १६ और ३०, रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग १००, बालकाण्ड, सर्ग ५। हम वेद के मन्त्रों का उदाहरण नहीं देते क्यों कि सारा अध्याय ही उदाहरणीय है। अतः पाठक किसी भी मन्त्र को

कपडे की बिनाई की कला भी अपनी हद को पहुँच चुकी थी। सोने और चाँदी के काम के कपडे, जरी के काम के पीताम्बर आदि भी बनते थे। जिनमे जगह-जगह पर रत्न और नगीने टके हुए थे। ब्राह्मण लोग कौशेय वस्त्र पहनते थे और तपस्वी छाल के बने कपडे पहनते थे। रँगाई भी अच्छी होती थी। रुई के मैल को उडाने के लिए इस युग मे एक यन्त्र काम मे आता था। ऊन के रेशम के बडे अच्छे-अच्छे प्रकार के महीन और रंगीन और चमकीले कपडे बनते और बरते जाते थे।[1]

उठाकर देख सकते हैं। तथा बालकाण्ड का सारा सर्ग ही यहाँ पठन योग्य है।

१ "कौशेयानि च वस्त्राणि यावत्तुष्यति वै द्विज" इत्यादि

अयोध्याकाड अ० ३२। श्लोक १६।

"भूषणानि महार्हाणि, वरवस्त्राणि यानि च"

अयोध्याकाण्ड ३०।४४

सुन्दर काण्ड का नवाँ सर्ग भी द्रष्टव्य है। पाठक देख सकते हैं।

"सा ह्र्षोत्फुल्लनयना पाण्डुरक्षौमवासिनीम्" इत्यादि

अयोध्याकाड ७।७

"जातरूपमयैर्मुख्यैरगदैः कुण्डलै शुभै।
सहेमसूत्रैर्मणिभी केयूरैर्वलयैरपि। इत्यादि

अयोध्याकाड ३२।५

"दान्तकाञ्चनचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनै।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्न महाधनै। इत्यादि

सुन्दरकाड १०।२

"रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।
ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा।

सुन्दरकाड ११।१५

ऐसा जान पड़ता है कि पेशेवालो की पंचायतें भी उस समय अवश्य थी। जो पंचायत का सभापति होता 'श्रेष्ठ' कहलाता था।[1]

खेती के काम में स्त्रियों का भी भाग था। खेती का काम इतना पवित्र समझा जाता था कि उसके लिए यज्ञ करने में स्त्री पुरुष दोनों शामिल होते थे।[2] जहाँ पुरुष अन्न उपजाता था वहाँ किसान की स्त्री अन्न के काम को पूरा करती थी। उसके स्वादिष्ट भोजन तैयार करती थी। अन्नपूर्णा देवी का आदर्श पालन करती थी।

भारत के जंगलों से लाखा आदि रंगने की सामग्री किसान लोग इकट्ठी करके काम मे लाते थे और इसका व्यापार इतना बढ़ा-चढ़ा

"ता रत्नवसनोपेता गोष्ठागारावतंसिकाम।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धा प्रमदामिव भूषिताम।

सुन्दरकांड ३। १८

१ अथर्व वेद, १।९।३, शतपथ ब्राह्मण, १३।७।१।१, ऐतरेय ब्राह्मण, १३।२९।३, ४।२५।८-९, ७।१८।८, छान्दोग्य उपनिषद, ५।२।६, कौषीतकी उपनिषद ४।२०, २।६, ४।१५, बृहदारण्यकोपनिषद १।४।१२

२ येनेन्द्राय समभर, पयास्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेद ।
तेन त्वमग्ने इहवर्धयेय सजाताना श्रैष्ठ्य आवेद्येनम्॥ अथर्व १।९।३
हे अग्ने! जिस मन्त्र से तू देवताओ को उत्तम अन्न प्राप्त कराता है उसी मन्त्र से इस पुरुष को 'श्रेष्ठ' पद का अधिकारी बना।

"श्रेष्ठो राजाधिपति समाज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेद सर्वमसानीति" छान्दोग्य अध्याय ५ खण्ड १० । मंत्र का अर्थ स्पष्ट है।

"श्रैष्ठ्य स्वाराज्यं पर्येति" ४।२०, "भूतानि श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते" २।६ "इद श्रैष्ठयाय यम्यते" ४।१५ कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषत्॥ अर्थ स्पष्ट है।

"श्रेयाम हिंसित्वेति" १।४।१२ बृहदारण्यकोपनिषत्।

था कि भारत से बाहर के देशो मे भी रंग की सामग्री बिकने को जाया करती थी।

गाँव मे अन्न पशु, आदि मे बदलकर और जरूरत की चीजे लेने की चाल तब भी थी जैसी कि आज अन्न मे बदल कर लेने की चाल बाकी है। बदलने की यह रीति उस समय इसलिए प्रचलित न थी कि उस समय सिक्को का चलन न था। सिक्को का तो उस समय सतजुग मे प्रचार चला आया था। हिरण्यपिण्ड निष्क, शतमान सुवर्ण इत्यादि सोने के सिक्के थे। कृष्णाल एक छोटा सिक्का था जिसमे एक रत्ती सोना होता था।[१] बात यह है कि उस समय गौए सस्ती थी और उनके पालने का खर्च बहुत नही था। गौओ की सतान सहज ही बढती थी और उत्तम से उत्तम पोषक भोजन घी, दूध दही कौड़ियो के मोल था। अनाज देश मे ही खर्च होता था। रेल की गाड़ियो मे लद-लदकर करॉची के बदरगाह से बाहर नही जाता था। इस तरह किसान लोग धनी और सुखी थे और व्यवहार-व्यापार मे इसी अदला-बदली से काम लेते थे। उस समय धन और सम्पत्ति का सच्चा अर्थ समझा जाता था। पर जो भारी-भारी व्यापारी या साहु महाजन थे वे सोने, चॉदी, मोती, मूंगे और रत्नो को इकट्ठा करते थे। राजा और राज कर्मचारी भी अमीर होते थे जिनके पास सोने चादी और रत्नो के सामान बहुत होते थे। परन्तु ऐसे लोग भारी सख्या मे न थे। भारी सख्या किसानो की ही थी।

[१] शतपथ ब्राह्मण ५।४।३, २४, २६, ५।५।१६ १२।७।२।१३, १३।२।३।२, तैत्तिरीय ब्राह्मण १।७।६२ और १२।७।७ और १७।६।२

सोना चाँदी, रत्न टक, वग, सीसा लोहा, ताँबा, रथ घोडे गाय पशु नाव, घर उपजाऊ खेत दास-दासी इत्यादि इस युग मे धन, सम्पत्ति की वस्तुये समझी जाती थी जहाँ कहीं ब्राह्मणों के दान पाने की चर्चा है वहाँ से पता लगता है कि उस समय धन कितना था और किस तरह बँट जाता था। राजा जनक ने साधारण दान मे एक-एक बार हजार-हजार गौएँ बीस-बीस हजार अशर्फिया विद्वान ब्राह्मणों को दी हैं। एक जगह वर्णन है कि एक भक्त ने ८० हजार सफेद घोडे, दस हजार हाथी और अस्सी हजार गहनो से सजी दासियाँ यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण को दी।[1]

इसी युग के सिलसिले मे महाभारत का समय भी आता है। यह द्वापर का अत और कलियुग के आरम्भ मे पडता है। महाभारत के समय मे हिन्दुस्तान के जो राज्य थे उन सबकी राज्य-व्यवस्थाओं मे खेती, व्यापार और उद्योग के बढाने की ओर सरकार की पूरी दृष्टि थी। इस विषय के लिए एक अलग राजविभाग था। सभा पर्व मे नारद ने और बातो के अलावा राजा युधिष्ठिर से यह भी पूछा है कि रोज़गार मे सब लोगो के अच्छी तरह से लग जाने पर लोगों का सुख बढ़ता है। इसलिए तेरे राज मे रोजगारवाले विभाग मे अच्छे लोग रक्खे गये हैं न ?” इस अवसर पर रोज़गार के अर्थ मे वार्ता शब्द आया है। वार्ता या वृत्ति मे वैश्यो या किसानो के सभी धन्धे समझे जाते हैं। श्रीमद्भागवद्गीता मे, जो महाभारत का ही एक अश

१ छान्दोग्योपनिषद ४।१७।७, ५।१३।१७ और १९, ७।२।४। शतपथ ब्राह्मण ·।४८, तैत्तरीय उपनिषद १।५।१२, बृहदारण्यकोपनिषद ३।३१।१, शतपथ ब्राह्मण २।६।३।९, ४।१।११, ८।३।४।६ तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१२।५, ११, १२

हैं. भगवान कृष्ण ने कहा है कि खेती, वनिज और गोपालन ये तीनो धन्धे स्वभाव से ही वैश्यो के लिए है। खेती मे वह सब कारबार शामिल हैं जो खेती की उपज से सम्बन्ध रखते हैं। और गोरक्षा मे पशुपालन का सारा कारबार शामिल है। इसी तरह वनिज मे सब तरह का लेनदेन और साहूकारी शामिल हैं इन सबका नाम उस समय वार्ता था और आजकल अर्थशास्त्र है।[1]

२. द्वापर का अन्त

महाभारत काल मे व्यावहार और उद्योग-धन्धो पर लिखते हुए श्री० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने अपूर्व ग्रथ 'महाभारत-मीमासा मे खेती और बागीचे के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है वह हिन्दी मे ही है इसलिए यहाँ हम उसे ज्यो का त्यो दे देते है —

"महाभारत काल में "आजकल की तरह लोगों का मुख्य धन्धा खेती ही था और आजकल इस धन्धे का जितना उत्कर्ष हो चुका है, कम से-कम उतना तो महाभारत काल में भी हो चुका था। आजकल जितने प्रकार के अनाज उत्पन्न किये जाते हैं वे सब उस समय भी उत्पन्न किये जाते थे। खेती की रीति आजकल की तरह थी। वर्षा के अभाव के समय बडे-बडे तालाब बनाकर लोगों को पानी देना सरकार का आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न

१. कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनै ।
वार्तायां सश्रिते नून लोकोयं सुखमेधते ॥

—महाभारत, सभापर्व

उस समय में विद्या के चार विभाग थे। त्रयी, दडनीति, वार्ता और आन्वीक्षिकी। त्रयी, वेद को कहते थे। दड नीति, धर्मशास्त्र था। और आन्वीक्षिकी, मोक्ष शास्त्र या वेदात था। वार्ता, अर्थशास्त्र था।

किया है कि 'तेरे राज्य में खेती वर्षा पर तो अवलम्बित नहीं है न? तूने अपने राज्य में योग्य स्थानों पर तालाब बनाये हैं न?' यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पानी दिये हुए खेतों की फसल विशेष महत्व की होती थी। उस जमाने में ऊख, नीलि (नील) और अन्य वनस्पतियों के रंगों की पैदावार भी सींचे हुए खेतों में की जाती थी। (बाहर के इतिहासों से अनुमान होता है कि उस समय अफ़ीम की उत्पत्ति और खेती नहीं होती रही होगी।) उस समय बड़े-बड़े पेड़ों के बग़ीचे लगाने की ओर विशेष प्रवृत्ति थी और खासकर ऐसे बग़ीचों में आम के पेड़ लगाये जाते थे। जान पड़ता है कि उस समय थोड़े अर्थात पाँच वर्षों के समय में आम्र वृक्ष में फल लगा लेने की कला मालूम थी। यह उदाहरण एक स्थान पर द्रोण पर्व में दिया गया है। 'फल लगे हुए पाँच वर्ष के आम के बागीचे को जैसे भग्न करें' इस उपमा से आजकल के छोटे छोटे क़लमी आम के बागीचों की कल्पना होती है। यह स्वाभाविक बात है कि महाभारत में खेती के सम्बन्ध में थोड़ा ही उल्लेख हुआ है। इसके आधार पर जो बातें मालूम हो सकती हैं वे ऊपर दी गई हैं। × × × किसानों को सरकार की ओर से बीज मिलता था, और चार महीनों की जीविका के लिए अनाज उसे मिलता था, जिसे आवश्यकता होती थी। किसानों को सरकार अथवा साहूकार से जो ऋण दिया जाता था उसका ब्याज फ़ी सैकड़े एक रुपये से अधिक नहीं होता था। खेती के बाद दूसरा महत्त्व का धंधा गोरक्षा का था। जंगलों में गाय चराने के खुले साधन रहने के कारण यह धंधा खूब चलता था। चारण लोगों को बैलों की बड़ी आवश्यकता होती थी, क्योंकि उस ज़माने में माल लाने

१ चूतारामो यथाभग्नः पचवर्ष फलोपग ।

जोताने का सब काम बैलों से होता था। गाय के दूध-दही की भी बड़ी आवश्यकता रहती थी। इसके सिवा गाय के सम्बन्ध में पूज्य बुद्धि रहने के कारण सब लोग उन्हें अपने घर में भी अवश्य पालते थे। जब विराट राजा के पास सहदेव तन्तिपाल नामक ग्वाला बनकर गया था, तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[१] उससे मालूम होता है कि महाभारत-काल में जानवरों के बारे में बहुत कुछ ज्ञान रहा होगा। अजाविक अर्थात् बकरों भेड़ों का भी बड़ा प्रतिपालन होता था। "जाबालि" शब्द "अजापाल" से बना। उस समय हाथी और घोड़ों के सम्बन्ध की विद्या को भी लोग अच्छी तरह जानते थे। जब नकुल विराट राजा के पास ग्रंथिक नाम का चाबुक-सवार बनकर गया था तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[२] उसने कहा 'मैं घोड़ों का लक्षण, उन्हें सिखलाना, बुरे घोड़ों का दोष दूर करना और रोगी घोड़ों की दवा करना जानता हूँ।" महाभारत में अश्वशास्त्र अर्थात शालिहोत्र का उल्लेख है। अश्व और गज के सम्बन्ध में महाभारत-काल में कोई ग्रंथ अवश्य रहा होगा। नारद का प्रश्न है कि "तू गजसूत्र, अश्वसूत्र, रथसूत्र इत्यादि का अभ्यास करता है न?" मालूम होता है कि प्राचीन काल में बैल, घोड़े और हाथी के सम्बन्ध में बहुत अभ्यास हो चुका था और उनकी रोगचिकित्सा का भी ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था।[३]

१ क्षिप्रं च गावो बहुला भवन्ति। न तासु रोगो भवतीह कश्चन॥

२ अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः।
दुष्टानां प्रतिपत्तिं च कृत्स्नं च विचिकित्सितम्॥

३ ...प्रस्नुतमद शुष्मी षष्टिवर्षो मतङ्गराट्॥४॥
म-भा सभापर्व, अ० १५१

महाभारत-मीमांसा में ऊपर की लिखी बातों से यह जाहिर है कि द्वापर के अंत और कलियुग के आरम्भवाले समय में गाँव के रहनेवाले किसान सुखी और धनी थे। उनकी दशा आजकल की सी न थी। उनके पास अन्न-धन की बहुतायत थी। वे अपना उपजाया खाते और अपना बनाया पहनते थे। बकरा, भेड़, आग और धरती बेचने की चीजें नहीं थीं।[१] जान पड़ता है कि उस समय तक खेतों के रेहन और बय करने की प्रथा नहीं चली थी। इस रीति का आरम्भ चन्द्रगुप्त के समय में जान पड़ता है। उस समय भी यह अधिकार सबको नहीं मिला था। मुसलमानों के समय में रेहन और बय करने की रीति जोरों से चल पड़ी और संवत् १८४४ में तो कम्पनी सरकार ने नियम बना दिया, कि कानूनगो के यहाँ रजिस्ट्री कराके जमींदार अपनी जमीन रेहन या बय करा सकता है।

साठवें वर्ष में हाथी का पूर्ण विकास अर्थात् यौवन होता है और उस समय उनके तीन स्थानों से मद टपकता है। कानों के पीछे गंडस्थलों से और गुह्य देश से। महाभारत के जमाने की यह जानकारी महत्वपूर्ण है। इससे विदित होता है कि उस समय हाथी के सम्बन्ध का ज्ञान कितना पूर्ण था।

१ अजोऽग्निर्वरुणो मेष सूर्य्योऽश्व पृथिवी विराट्।
धेनुर्यज्ञश्च सोमश्च न विक्रेया कथञ्चन। —महाभारत

: ३ :

कलजुग का प्रवेश

१. बौद्धकाल

कलजुग के आरम्भ के हजार-डेढ़ हज़ार बरस तक वही दशा समझनी चाहिये जो महाभारत के आधार पर मीमांसा मे दी गई है। आज से लगभग ढाई हजार बरस पहले भगवान बुद्ध का समय था। गॉव के सम्बन्ध मे बुद्धमत के ग्रथो मे से बहुत-सी बातें निकाली जा सकती है। उनसे यह पता चलता है कि भारत का समाज उस काल मे भी देहाती ही था। किसान लोग अपने अपने खेत के मालिक थे और गॉव के किसानो की एक जाति-सी बनी हुई थी। अनगायी हुई भारी-भारी रियासतें, जमीदारियॉ या ताल्लुके न थे। एक जातक मे लिखा है कि जब राजा विदेह ने ससार छोडकर सन्यास ले लिया तो उन्होंने सात योजनो की अपनी राजधानी मिथिला छोडी और सोलह हज़ार गॉव का अपना राज छोडा। इससे पता चलता है कि सोलह हज़ार गॉववाले राज्य के भीतर मिथिला नाम का एक ही शहर था। उस समय गॉवो के मुकाबले शहरो की सख्या इतनी थोडी थी कि अगर हम एक लाख गॉवो के पीछे सात शहरो का औसत मानलें और यह भी मान लें कि आज कल की तरह सारे भारत मे सात लाख से ज्यादा गॉव नही थे तो सारे भारत मे उस समय शहरो की कुल गिनती पचास से अधिक नही ठहरती।

शहर की लम्बाई-चौडाई भी इतनी ज्यादा वर्णन की गई है कि उसमे न केवल लम्बे-चौडे मुहल्ले शामिल होगे बल्कि आस-पास के गाँव भी जरूर मिल गये होगे। आज भी हमारे शहरो मे बड़े-बड़े गाँव और कस्बे मिल ही जाते है। जातको मे गाँवो के रहनेवालो की संख्या तीस परिवारो से लेकर एक हजार परिवारो तक थी और एक परिवार की गिनती मे दादा, दादी, मा, बाप, चाचा, चाची, बेटे बेटी, बहुएँ और पोते पोती नाती नतिनी, जितने रसोई के भीतर भोजन करते थे, सब शामिल थे। जिस तरह आज मिले-जुले परिवार गाँव मे रहते हैं उसी तरह पहले भी रहा करते थे और जैसे आज यह नही कहा जा सकता कि हम इतनी ही बडी बस्ती को गाँव कहेगे उसी तरह तब भी गाँव की कोई नपी तुली परिभाषा न थी।[1]

जब कभी कोई महत्व के सार्वजनिक काम पडते थे तो गाँव के सब लोग मिलकर उसमे उचित भाग लेने का निश्चय कर लेते थे। गाँव का एक मुखिया होता था जिसे 'भोजक' कहते थे। भोजक को कुछ कर और दंड मिल जाया करता था। गाँव के सब रहनेवाले मिल कर सलाह करते थे। उसमे भोजक भी शामिल होता था। एक जातक मे लिखा है कि बोधिसत्व और गाँववाले मिलकर रस्से और फावडे लेकर फिरे। गलियो और सडको मे जहाँ-कही पत्थर या रोडे थे रस्सो से निकालकर किनारे लगाते गये और जो बेमौके राह में पेड पडते थे, जिनसे रथो के और गाडियो के चलने मे रुकावट होती थी, उन्हे फरसो से काट डाला. ऊँची नीची, उबड-खाबड

१ जातक ३।३६५, ४।३३० विनयपिटक, कुल्ल ५, अध्याय ५।१२, जातक १।१०६,

जगहों को बराबर कर डाला। उन्होंने सड़कें ठीक कर डाली, पानी के तालाब बना डाले और एक बड़ा दालान तैयार कर डाला, परन्तु उसकी छत के लिए उनके पास सामान न था। वह एक देवी के पास था, जिससे मोल लेने को उनके पास धन न था। पर उनके काम में शरीक होने को वह राजी हो गई और उन्हें वह सब सामान मिल गया। इस कथा से यह प्रकट है कि उस समय के धार्मिक नेता भी गाँव का सुधार कराने के लिए गाँववालों के साथ मिलकर काम करने में शामिल हो जाते थे। साथ ही उस समय गाँव वालों के मन में ऐसा भाव भी था कि अपने खेत में मोटे से मोटा काम करने में किसी तरह की हेठी न थी, पर राजा के यहाँ जाकर बेगार करना नीच काम था।[1]

ग्राम जो जनपद एक अंश था, या सीमा पर होता था या शहर के पास होता था। उसके चारों ओर खेत और गोचर भूमि, वन और उपवन होता था। आज भी आनन्दवन, प्रमोदवन, सीतावन, वृन्दावन आदि वनों के नाम जहाँ-तहाँ बस्तियों में भी पाये जाते हैं। सारन, चम्पारन सहारनपुर आदि में अरण्य का पता लगता है। इन वनों और अरण्यों में जंगली जानवर और जंगली आदमी भी रहते थे और तपस्वी, सन्यासी अपनी कुटी बनाकर गाँव से दूर रहा करते थे। जंगल प्राय सबकी सम्पत्ति होती थी। परन्तु कोई-कोई जंगल जो राजधानी में जुड़े हुए होते थे राजा के अधिकार में समझे जाते थे। लोग जंगलों से लकड़ियों के रोक-टोक काट लाते थे और बेचते भी थे। गोचर भूमि में लोग अपने पशुओं को चरने के लिए छोड़ देते थे या कोई चरवाहा होता था जो थोड़ी मजूरी पर

[1] जातक १।१९९, १।३४३

सबके पशु चराया करता था और चौमासे भर जंगलों में रहता और पशुओं की रक्षा करता था।[1]

इस काल में गाँव के चारों तरफ कहीं-कहीं दीवारें भी होती थीं और गाँव के फाटक भी हुआ करते थे। खेतों में बाड़ लगी होती थी। जाल भी तने होते थे और खेतों के पहरेदार भी होते थे और हर गृहस्थ की जोत के चारों ओर नाली से सीमा बँधी होती थी। नालियाँ अक्सर साझे की हुआ करती थीं जिनसे दोनों ओर के खेत साझे में सींचे जाते थे। ये नालियाँ और गड्ढे, जिनमें पानी इकट्ठा किया जाता था, सभी रूप और आकार के होते थे। यह ठीक पता नहीं लगता कि किस प्रांत में, औसत जोत का कितना वर्गफल ठहरता था पर जातकों में यह पता चलता है कि एक-एक ब्राह्मण के पास हजार-हजार करीसों (बीघों) की खेती थी। एक ब्राह्मण काशी भारद्वाज—के यहाँ पाँच सौ हलों की खेती होती थी। और वह मजूरों से हल जुतवाता था।[2]

इस युग में लोग दुख भरे शहरों में रहना इस लोक और परलोक दोनों के लिए बुरा समझते थे। एक जगह लिखा है कि धूल भरे शहर में जो रहता है वह मोक्ष नहीं पा सकता, और दूसरी जगह लिखा है कि शहर में कभी पवित्र मंत्रों का उच्चारण न करना चाहिए[3]। सूत्रों में शहर के रहनेवाले के लिए कोई संस्कार, यज्ञ

१ जातक १।३१७।, ५।१०३, १।३८८, ३।१४९, ३।४०१, १।२४०, ४।३२६, १।१९४, १।३

२ जातक १।२३९, २।७६।१३५, ३।७, ४।३७०, १।२१५; १।१४३।१५४, २।११०, ४।२७७, ४।१६७, १।३३६, ५।४१२, २।३५७, १।२७७, ३।१६२, ३।२९३, ४।२७६, २।१६५।२००;

३ आपस्तंब धर्मसूत्र, १।३२।२१, बौध्यायनसूत्र, २।३।६,३३

या विधि नहीं दी हुई है। परतु किसानो के लिए पद-पद पर रीतियाँ और विधियाँ दी हुई हैं। हल जोतने के समय अशनि, सीता, अरदा, पर्जन्य, इन्द्र और भग के नाम से हवन कराया जाता था। बोने के समय, काटने के समय, दँवाने के समय और नये अन्न को लाने के समय यज्ञ कराये जाते थे। यह सब किसानो की क्रिया थी। बार-बार यह आदेश दिया गया है कि चौरस्ते पर, भिटे पर, वाल्मीको (बाँबियों) पर, गाँव से बाहर निकलकर यज्ञ या पूजा करनी चाहिए। यह गाँव के रहनेवाले गृहस्थो और विद्वानो के लिए भी आदेश है। शहर के रहनेवालो के लिए नही[१]। अग्रेजी के (Buddhist India) "बुद्ध कालीन भारत" नामक ग्रथ मे मालूम होता है कि बौद्ध साहित्य से उस समय के केवल बीस शहरो का पता लगता है जिनमे से ये छ: महानगर कहे गये हैं—श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, साकेत, कौशाम्बी और बनारस। कुशीनारा, को जहाँ बुद्ध भगवान् ने शरीर त्याग किया है, थेर आनन्द ने जगल का एक छोटा सा कस्बा लिखा है। पाटलिपुत्र अर्थात् आजकल के पटना का उस समय तक पता न था।

राजा को खेत की उपज मे से वार्षिक दसवाँ भाग तक कर मिलता था। वह इतने के लिए ही भू-पति समझा जाता था। जो कुछ पैदावार होती थी उसे गाँव का मुखिया भोजक या सरकारी कर्म-चारी महामात्य या तो खलियान के सामने नाप लेता था या खड़ी फसल को देखकर अटकल कर लिया जाता था। कभी-कभी सरकार इस कर को बढ़ाकर किसी-किसी कारण से आठवाँ या छठा अश तक भी कर देती थी। किसी-किसी का यह कर राजा छोड़ भी देता था या किसी समूह या गाँव को मुक्त भी कर देता

[१] गोभिल गृह्यसूत्र ४।४।२८,–३०. ३।५।३२–३५.

था। यह तो राजाओं की बात हुई जिनके कर उगाहने की चर्चा पोथियों में आई। परन्तु पंचायती राज जहाँ-जहाँ थे वहाँ-वहाँ कर उगाहने की कोई चर्चा नहीं है। एक-आध जगह पंचायती राज में चंदे की तरह कर उगाहने की चर्चा भले ही है। एक जगह लिखा है कि मल्लों के पंचायती राज में पंचों ने यह आज्ञा निकाली थी कि जब बुद्ध भगवान अपनी यात्रा में बस्ती के पास आवें तो हर आदमी को उनका स्वागत करने के लिए जाना चाहिए। जो न जायगा उसको पाँचसौ रुपये दण्ड के होंगे।[१] यद्यपि जंगल पर सार्वजनिक अधिकार था तथापि राजा को जब जरूरत पड़ती थी तब वह जंगल की जमीन को बेच सकता था और वह अपनी जायदाद में खेती करनेवाले मजूरों और किसानों से बेगार भी ले सकता था। कहीं-कहीं के किसान गाँववाले राजा के लिए हरिण के जंगल घेर रखते थे कि उन्हें समय-कुसमय शिकार हाँकने के लिए काम-धाम छुड़ाकर बुलाया न जाय।

उस समय मगध के राज में भूमि बेची नहीं जा सकती थी पर दान दी जा सकती थी। कोसल के राज में बेची भी जा सकती थी। जिस भूमि में बाड़ नहीं लगी होती थी उसमें सब लोग अपने पशु चरा सकते थे, लकड़ी काट सकते थे, फूल चुन सकते थे, फल तोड़ सकते थे। खेती के नियम कड़े थे, परन्तु अच्छे थे और विवेक से भरे थे। मिल्कियत सिद्ध करने के लिए दस्तावेज (कागज पत्र), गवाह और कब्जा प्रमाण माने जाते थे।[२]

१. विनय पिटक १।२४७

२. जातक ४।२८१, विनयपिटक २।१५८, आपस्तम्ब २।११।२८ (१) १।६।१८ (२०), गौतम १२।२८, १२।१४-१७; वशिष्ठ सूत्र १६।१९

यूनानी लेखकों से पता चलता है कि उस समय भी सियारी और उन्हारी की—रबी और ख़रीफ़ की—दो फसलें होती थीं और जिस तरह आजकल अनाज की खेती होती है उसी तरह तब भी होती थी। जो अनाज आज उपजते हैं वही तब भी उपजते थे। गन्ने की खेती होती थी और खँडसालें चलती थीं। इतनी शकर तैयार होती थी कि संसार के बाहर के सभी सभ्य देशों में यहाँ से शकर जाती थी।[1] सुन्दर और बारीक कपड़े कपास, ऊन, रेशम, छाल आदि सभी तरह के इस समय भी बनते थे और जंगल की औषधियाँ और तरह-तरह का माल अब भी उसी तरह काम में आता था। वाणिज्य व्यापार उसी तरह बढ़ा-चढ़ा था। जो बातें हम पिछले अध्याय में लिख आये हैं उन बातों का, विदेशियों के बयान से, इस काल में बहुत ऊँची अवस्था में होना पाया जाता है। बौद्ध मत का प्रचार भारत के बाहर के देशों में इसी समय में शुरु हुआ। आना-जाना बनिज-व्यापार पहले से ज्यादा बढ़ गया। यहाँ के बने कपड़े शकर, चित्रकारी मूर्तियाँ हाथी दाँत की बनी सुन्दर चीजें, मसाले आदि भाँति-भाँति की वस्तुयें भारत से बाहर बड़ी मात्रा में जाती थीं और यहाँ की सभ्यता और धन सम्पति की कहानी सुनाती थीं।

दुर्भिक्षों के बारे में जहाँ अपने यहाँ के ग्रन्थों में चर्चा आया करती है वहाँ मेगस्थनीज जैसे विदेशी कहते हैं कि भारतवर्ष में अकाल कभी पड़ता ही नहीं। इससे यह अटकल लगायी जा सकती है कि अकाल पड़ते थे ज़रूर, परन्तु बहुत जल्दी-जल्दी नहीं पड़ते थे

[1] स्ट्राबो १५वीं—६९३, मेगेस्थनीज खण्ड ९। स्ट्राबो १५वीं ६९० से ६९२ तक।

और जहाँ-कहीं पड़ते थे वहीं उनका प्रभाव रहता था। वह सारे भारत मे फैल नहीं जाते थे।

२. बौद्धकाल का अन्त

जो काल बुद्धावतार पर समाप्त होता है जातकों मे उस काल के सम्बन्ध मे एक बड़े महत्व की बात लिखी पाई जाती है। इस समय प्राय: सभी कारीगरी और कलाओं की पचायतें सगठित थीं। 'मूगपक्ख' जातक (४।४११) मे इस तरह की अट्ठारह पचायतो की चर्चा है जिनमे से बढ़इयो, लुहारो, खाल सिझानेवालो और चित्रकारो की पचायतो का विशेष उल्लेख है। परन्तु 'प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास' (पृ० १०१) मे लिखा है—"डाक्टर मजूमदार ने इस काल के जातकों और धर्मग्रंथों से पता लगाया है कि इन नौ प्रकार के पेशेवालों की पंचायतें सगठित थीं—(१) काठ के काम करनेवाले, जिनमें नाव बनानेवाले शामिल थे (२) धातु के काम करनेवाले, जिन में सोना-चाँदी साफ़ करनेवाले शामिल थे (३) माली (४) चित्रकार (५) बनजारे[1] (६) साहूकारी करनेवाले (७) खेती करनेवाले (८) व्यापार करनेवाले (९) पशु-पालन करनेवाले"।[2] एक जातक में (२।१८) लिखा है कि एक जगह लकडी के काम का भारी केंद्र था जिसमे एक हजार परिवार रहते थे। इनकी दो बराबर-बराबर पचायतें थीं और हर पचायत का सरपच जेट्ठक कहलाता था (जेट्ठक का अर्थ है बडा भाई)। इन पचायतो मे तीन विशेषतायें थीं। (१) सरपच एक जेट्ठक होता था (२) पेशा अपने कुल का

१ जातक ६। ४२७, जातक न० ४१५, जातक २। २६५

२. गौतम के सूत्र ११।२१

चलता था और (३) धन्धा अपनी जगह मे बँध जाता था, (या यो कहना चाहिए कि खास-खास धन्धो के लिए खास-खास जगहे प्रसिद्ध हो जाती थी ।) जातको से मालूम होता है (२।१२।५२ और ३।२८१) कि पचायत का सरपच राज-दर्बार मे रहनेवाला एक बडा मन्त्री होता था । जेट्ठक के सिवाय सरपच को 'पमुक्ख' (प्रमुख या सभापति)" भी कहते थे ।

बनारस के राज की यह विशेपता मालूम होती है कि उस समय पचायत के सरपच काशिराज के वडे कृपापात्र होते थे । एक सरपच तो सारे राज्य का कोपाध्यक्ष ही था ।[१] ऐसा अनुमान होता है कि उस समय जो थोडे से वडे-वड़े शहर थे उनके आसपास के गाँवो मे कारीगरी और कलाओ के काम बढे-चढ़े थे । रोजगार इतना बढ़ गया था कि शहर के पास के गाँवो मे किसान लोग खेती के सिवाय हाथ की कलाओ मे भी दक्ष हो गये थे । हम जातको मे बारम्बार ऐसे गाँवो का वर्णन पाते हैं जैसे लुहारो के गाँव जिनमे एक हज़ार घर लुहारो के ही थे । इसी तरह ऐसे गाँव भी थे जिनमे पाँच-पाँच सौ घर बढइयो के थे । इसी प्रकार कुम्हारो के भी गाँव के गाँव बसे हुए थे । इसी तरह व्याधगाम, निषाधगाम इत्यादि पेशेवरो के नाम से भी गाँव बसे थे ।[२] इन गाँवो के पेशेवाले शहर मे रहनेवाले पेशे वालो से भिन्न थे । वे किसान भी थे और लुहारी भी करते थे । बढई भी थे और खेती भी करते थे । खेती के काम मे उनका सारा समय नही लगता था । वे खेती का सारा काम अपने अपने हाथो से करते

[१] जातक ३।३८७ , जातक २।१२।५२

[२] जातक ३।२८१—६ , जातक २।१८।४०५, जातक ३।३७६।५०८, जातक ६।७१, ३।४९,,

थे तो भी उन्हें पेशे का काम करने के लिए काफी समय मिल जाता था और जिनका पेशे का कारबार बहुत बढ़ा हुआ था वे मजूरों से काम लेते थे। जान पड़ता है कि उस समय बेकारी की बीमारी न थी।

ये पचायतें कानून बनाती थीं, मुकदमे फैसले करती थीं और जो कुछ फैसला होता था, उसको व्यवहार में लाना भी उन्हीं का काम था। विनयपिटक में लिखा है कि किसी चोर स्त्री को तबतक सन्यासिनी बनाये जाने का अधिकार नहीं है जबतक पचायतों की ओर से आज्ञा न मिल जाय। जो लोग पचायत में शामिल होते थे उनके घरेलू झगड़े भी, स्त्री-पुरुष का वैमनस्य भी, पचायत के सामने आता था और पचायत निबटारा करती थी।[१]

किसी लेख से ऐसा नहीं मालूम होता कि उस काल में खेती का काम कोई नीच काम समझा जाता हो। खेती करनेवाला अपने समाज में खेती करने के कारण अपमानित नहीं समझा जाता था। इसमें तो सदेह नहीं है कि खेती, व्यापार और पशुपालन वैश्यों का ही काम था और जो ब्राह्मण पुरोहिती का काम करते थे या जो पढ़ाने का काम करते वे खेती नहीं करते थे। पर ऐसे ब्राह्मण भी थे, जो न तो पुरोहिती का काम जानते थे और न विद्या ही पढ़े होते थे। ऐसे ब्राह्मणों के लिए सबसे उत्तम काम खेती थी, मध्यम काम बनियई थी। सेवा का काम सबसे नीच काम था और भीख तो वही माँगता था जो गया-गुजरा अपाहिज था। क्षत्रिय का काम भी राजदरबार या सेना और पुलिस का था। परन्तु जिन्हें इस तरह का काम न मिलता था वे लाचार होकर वैश्य या शूद्र का काम करते

१ विनयपिटक ४।२२६, गौतम ११।२१,

लग जाते थे। राजा ययाति की कथा सतजुग की है। यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने कई बेटों को राज के काम से अनधिकारी बना दिया। उनके वंशवाले लाचार होकर वैश्य और शूद्र का काम करने लगे। नन्द और वृषभानु आदि गोपालक ऐसे ही अधिकारहीन किये हुए यादव थे। परन्तु वैश्य द्विजाति थे और द्विजातियों के सभी अधिकार इन्हें प्राप्त थे और जो ब्राह्मण या क्षत्रिय जन्म से यह (वैश्यों का) काम करने लगते थे उन्हें कोई नीच नहीं समझता था। उनका सम्मान भी ब्राह्मण और क्षत्रिय की तरह ही होता था।[1] यद्यपि वे ब्राह्मणत्व और क्षत्रित्व से गिरे हुए समझे जाते थे तो भी वैश्यों का काम उठा लेने में कोई उन्हें ताने नहीं देता था और किसी तरह का अपमान नहीं होता था। जातकों और सूत्रों में ऐसे ब्राह्मणों की चर्चा बहुत आई है जो खेती करते हैं, गौएँ चराते हैं, बकरी का रोज़गार करते हैं, बनिये का काम करते हैं, शिकार खेलते हैं, बढ़ई और लुहार का काम करते हैं, जुलाहे का काम करते हैं, बाण चलाते हैं, बनजारों की रक्षा करते हैं, रथ हाँकते हैं और सँपेरे का काम करते हैं।[2] इस तरह के ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वंशवाले उस समय के वैश्य और शूद्र वंशवालों से ऐसे मिलजुल गये और रोटी-बेटी का ऐसा घना सम्बन्ध हो गया कि आज इन पेशेवालों में से यह भेद करना मुश्किल हो गया है कि कौन ब्राह्मण है, कौन क्षत्रिय है और कौन वैश्य। यह भेद तो उन्हीं में देखा जाता है जो हाल के ही पतित हैं। अनगिनतियों ब्राह्मण और क्षत्रिय आज किसान का काम करते हैं और अपने को किसान कहने और मानने में उन्हें

[1] सुत्तनिपात ३।९, मज्झिम निकाय २।१८०, जातक ४।३६२

[2] जातक २।१६५, ३।२९३, ४।१६७-२७६।, ३।४०१, ४।१५; ५।२२-४७१, २।२०० ६।१७० ४।२०७, ४५७, ५।१२७,

उचित गर्व है, वे उसे पतन नही मानते। उस काल मे भी यही भाव सबसे ऊपर था। कहीं-कही ब्राह्मण किसान बडा पवित्र आत्मा और भक्त समझा जाता था। एड़ी से चोटी तक बोधिसत्व गिना जाता था।[१] "उत्तम खेती, मध्यम बान, निषिध सेवा भीख निदान" यह आजकल की प्रसिद्ध कहावत उस समय भी ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए राह दिखानेवाली थी।

उस काल मे मजूर और शूद्र दो तरह के थे। एक तो किसान आप ही मजूरी करते थे, दूसरे वह मजूर भी थे जिनके पास खेत न थे। जो मजूरी या नौकरी के सिवाय जीविका का और कोई उपाय न रखते थे, वे लकडी काटते थे, पानी भरते थे, हल जोतते थे और सेवा के सब तरह के काम करते थे। बडे-बड़े खेतिहर अपने यहाँ मजूर रखकर खेती का काम कराते थे। मजूरी सब तरह की दी जाती थी। भोजन, कपड़ा और रुपये सबकी चाल थी। इन दो प्रकारो के सिवाय मजूरो का एक तीसरा प्रकार भी था। कैदी ऋणी और प्राणदण्ड के बदले काम करनेवाले और अपने आप अपने को बेच देनेवाले या न्यायालय से दड पाकर काम करनेवाले दास या दासी अपनी मीयाद भर या जीवन भर गुलामी करते थे। परन्तु ऐसे लोगो की गिनती भारतवर्ष मे बहुत न थी। साधारण मजूरों की अपेक्षा इन दासो के साथ बर्ताव भी अच्छा ही होता था। इनका लाड-प्यार होता था। इन्हे लिखना-पढना और हाथ की कारीगरी भी सीखने का मौका दिया जाता था। कभी-कभी किसी के द्वारा इनके साथ कडाई का बर्ताव भी होता होगा, ऐसा प्रतीत होता है। दास जब तक मुक्त नही हो जाता था, तब तक धर्म सघ मे वह सम्मि-

[१] जातक ३।१६२

नित नहीं होने पाता था। शायद इसलिए कि इससे उसके मालिक के काम में हर्ज होता। इन दासो और दासियों को अपने जीवन से असंतोष नहीं था क्योंकि इनके भाग जाने की चर्चा कहीं नहीं पाई जाती।[1] नित्य की मजूरी करनेवाला किसीका गुलाम तो नहीं था तो भी कभी-कभी ऐसे मौके आजाते थे कि उसका जीवन गुलामो की अपेक्षा अधिक कठिन हो जाता था।[2]

उन दिनों रहन-सहन का ख़र्च कैसा था यह कहना तो मुश्किल है। परन्तु जातको से यह पता लगता है कि एक धेले के तेल या घी से आदमी का काम भरपूर चल सकता था। आठ कहपान में एक अच्छा गधा ख़रीदा जा सकता था। चौवीस मुद्राओ में एक जोडी बैल मिल जाते थे। अर्द्धमासक आजकल के धेले या पैसे के बराबर समझा जाय और कहपान या कार्शपण अठन्नी के बराबर माना जाय और उपर्युक्त मुद्रायें एक-एक रुपये के बराबर मानी जायें तो उस समय का ख़र्च आजकल की अपेक्षा बहुत सस्ता समझा जायगा। परन्तु यह बात अनुमान के आधार पर है। सिक्के का वास्तविक मूल्य कब कितना समझा जाना चाहिए यह अर्थशास्त्र का एक जटिल प्रश्न है। इसपर यहाँ विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

[1] जातक १।४५१, मज्झिम निकाय १।१२५, जातक १।४०२ विनयपिटक १।७६, जातक ५।३१३, ६।५४७

[2] जातक १।४२२, ३।४४४

: ४ :

चाणक्य के समय के गाँव

इतिहास लिखनेवालों के निकट बुद्धकाल का अन्त उस समय समझा जाता है जब चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा और शासन की असली बागडोर चाणक्य के हाथ में आई। इस प्रकाड पण्डित ने 'अर्थशास्त्र' नाम की एक पुस्तक लिखी। इस पोथी में उस काल के बारे में पता लगता है जिसमें मौर्य्य वश का राज हुआ था और जो विक्रम के एकसौ तीस बरस पहले समाप्त होता है 'अर्थशास्त्र' में मालूम होता है कि गाँवों के कई तरह के विभाग किये गये थे। प्रथम कोटि मध्यम कोटि और सबसे नीची कोटि के सिवाय ऐसे भी गाँव थे जिन्हे अन्न, पशु, सोना, जगल की पैदावार आदि किसी रूप में कोई कर नहीं देना पडता था। ऐसे गाँव भी थे जहाँ से कर के बदले बेगार मिलती थी और ऐसे भी थे जिनसे कर के बदले दूध, दही घी मक्खन आदि मिलते थे।[1] कुछ बातों में तो सभी गाँव समान थे। हर गाँव में बडे-बूढो की एक पचायत होती थी। इस पचायत का जो कोई सरपच होता था वही सरकार की ओर से गाँव का मुखिया माना जाता था। जमीन्दारी का कोई रिवाज़ नहीं था। हर किसान अपने खेत का मालिक था। गाँव में घर सब एक साथ लगे होते थे बीच में गलियाँ होती थी। बस्ती के चारो ओर बहुत दूर तक फैली

१ अर्थशास्त्र (पण्डित प्राणनाथ विद्यालङ्कार का उल्था) पृष्ठ १२९, ३९-४१।

हुई नाज की, विशेष रूप से, धान की खेती होती थी। हर गाँव में मिली हुई पशुओं के चरने के लिए गोचर भूमि होती थी जिसका बन्दोवस्त राजा को करना पड़ता था। गृहस्थो के अपने-अपने पशु अलग होते थे, पर गोचर भूमि सबकी एक ही होती थी। इसी गोचर भूमि मे वे खुले हुए मैदान भी होते थे, जिनमे बनजारे और घूमनेवाली जगली जातियाँ आकर ठहर जाती थी और आये दिन डेरे डाला करती थी।[१] गाँवों की हदें बँधी हुई थी। हर गाँव मे चौपाल और दालानें पचायतो के काम के लिए बनी होती थी और गाँव का भीतरी अर्थशास्त्र बिलकुल स्वतत्र होता था। गाँव के भीतरी बन्दोबस्त में किसी बाहरी का हाथ बिलकुल नहीं होता था। गाँववाले सब बातो का निबटारा आप कर लेते थे। घूमनेवाली जातियाँ या चरवाहो की बस्तियाँ न तो बहुत काल के लिए टिकाऊ होती थी और न गाँवो की तरह सुसगठित थी। गोचर भूमि और गोरक्षा उस समय मे ऐसे महत्व की बात समझी जाती थी कि खेती के अध्यक्ष की तरह राज दरबार मे गोशाला के अध्यक्ष अलग और गोचर भूमियों के अध्यक्ष अलग होते थे।[२] गोशाला के अध्यक्ष को केवल गाय भैंस की ही खबर नहीं लेनी होती थी, बल्कि भेड, बकरियाँ, गधे सुअर, खच्चर और कुत्तो के लिए भी बन्दोवस्त करना पडता था।

गाँव बसाने के सम्बन्ध मे कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे जो नियम दिये हुए हैं उनसे बहुत कुछ पता चलता है। यहाँ हम पण्डित प्राणनाथजी के अनुवाद मे (पृ० ३६-४१) नीचे जो अवतरण देते हैं उससे उस समय के गाँव की राज्य-व्यवस्था का पता लगता है —

[१] मेगेस्थनीज (अंग्रेजी १, ४७)

[२] अर्थशास्त्र पृ० ११५-१६, १२८

"परदेश या स्वदेश के निवासियों के द्वारा शून्य या नवीन जनपद को बसाया जाय। प्रत्येक ग्राम सौ परिवार से पाँच सौ परिवार तक का हो। उसमें शून्य कृषकों की संख्या अधिक हो और उनकी सीमा एक कोस से दो कोस तक विस्तृत हो। वह इस प्रकार स्थापित किये जाँय कि एक दूसरे की रक्षा कर सकें। नदी, पहाड़, जंगल, पेड़, गुहा, नहर, तालाब, सेंभल, पीतल तथा वड आदि से उनकी सीमा नियत की जाय। आठसौ ग्रामों के मध्य में स्थानीय, चारसौ ग्रामों के मध्य में द्रोणमुख, दोसौ ग्रामों के मध्य में खार्वटिक तथा दस ग्रामों के मध्य में सग्रहण नामक दुर्ग बनाये जायँ। राष्ट्र-सीमाओं पर अन्तपाल के दुर्ग खडे किये जायँ और प्रत्येक जनपद-द्वार उसके द्वारा सुरक्षित रक्खा जाय। वागुरिक, शबर, पुलिन्द, चडाल तथा जगली लोग शेष सम्पूर्ण सीमा की देख-रेख करें।

ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रियों को अभिरूप फलदायक ब्रह्मदेय[1] दिया जाय और उनको राज्यदड तथा राज्य कर से मुक्त किया जाय। अध्यक्ष, संख्यायक, गोप, स्थानीक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्वदमक, जंघारिक आदि राज-सेवकों को भूमि दी जाय परन्तु उनको यह अधिकार न हो कि वह उसको बेच सकें या थाती (गिरवी) रख सकें। राजस्व देनेवालों को ऐसे खेत दिये जायँ जो कि एक पुरुष के लिए पर्याप्त हों। खेतिहरों को नई भूमि न दी जायँ। जो खेती न करे, उनसे खेत छीन कर अन्यों के सिपुर्द किये जायँ। ग्राम भृतक या बनिये ही उनपर खेती

१ ब्रह्मदेय वह दान है जोकि ब्राह्मणों को स्थिर रूप से सदा के लिए देदिया जाय। ताम्र पात्र तथा बहुत से शिलालेख खोदने से मिले हैं जिनमें पुराने राजाओं ने भिन्न-भिन्न भूमि भागों को ब्रह्मदेय के रूप में ब्राह्मणों को दिया था। (प्राणनाथ विद्यालकार)

जो खेत जोते वे सरकारी हर्जाना (अपहीन) भरे। जो सुगमता ामन्व दें उनको धान्य, पशु तथा हिरण्य से सहायता पहुँचाई जाय। ही ख़याल रखा जाय कि अनुग्रह[1] तथा परिहार[2] से कोश की हो और जिससे कोश के नुक़सान की संभावना हो उसको न किया । क्योंकि अल्प कोशवाला राजा नागरिकों तथा ग्रामीणों को ही ता है। नये बन्दोबस्त या अन्य आकस्मिक समय में ही विशेष- र व्यक्तियों को राजस्व से मुक्त किया जाय और जिनका राज्यकर- वा परिहार का समय समाप्त हो गया है उनपर पिता के तुल्य ग्रह रखा जाय।"

मौर्य्यकाल मे भी देश का सबसे बड़ा कारबार खेती का था। पर सरकार का बहुत बडा ध्यान था। सब तरह के अनाज तो ोते ही थे साथ ही गन्ने की खेती बहुत जोरो से होती थी। गुड़ ं. मिश्री सभी कुछ तैयार होता था। अगूर मे भी एक प्रकार का ा तैयार किया जाता था जिसे मधु कहते थे। खॉड तैयार करने लिए गॉव-गॉव मे खॅडसाले थी।[3] शकर का रोज़गार बढ़ा-चढ़ा । मेगस्थनीज लिखता है :—

"भारतवर्ष मे बड़े लम्बे-चौडे अत्यन्त उपजाऊ मैदान है जो

१ अनुग्रह—उत्तम काम करने के बदले में कारीगरों—किसानों को जो धन आदि इनाम में दें उसको 'कौटिल्य' ने 'अनुग्रह' शब्द से त किया है। (प्रा० वि०)

२. परिहार—राज्य कर से मुक्त करना। पुत्रोत्पत्ति, वर्षगाँठ आदि मे राजा लोग ऐसा करते थे, कौटिल्य ने इन सब समयों को आदि ागतथ' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

३ अर्थशास्त्र पृ० ८५, ८६.

खेतों से हरे भरे दीखते हैं और जिनकी सिंचाई के लिए नदियों जाल-सा बिछा दीखता है 'जौ, गेहूँ, चावल आदि के सि ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकार की दालें और मनुष्य और चौप के भोजन के योग्य नाना प्रकार के पौधे होते हैं 'जाड़ों में गर्मियों में दो बार बरसात होती है और साल में दो फ़सलें होती विविध प्रकार के स्वाद और मिठास के कन्द, मूल और फल होते जिनसे मनुष्यों का बहुतायत से पोषण हो सकता है । से-बुरे युद्ध में भी किसानों की कोई हानि नहीं होती; फ़सल पशुओं को, खेतों को या पेड़ लतादि को कोई नुक़सान नहीं पहुँचत भारत के किसान बड़े मिहनती होते हैं, बड़े चतुर होते हैं, किफ़ायत रहते हैं और ईमानदार होते हैं। सरकारी प्रबन्ध ऐसा अच्छा है कि खे का व्यापार बड़ी अच्छी दशा में है। जन, धन की पूरी रक्षा है, न्याय क़ानून बड़े अच्छे हैं''[1]

मेगस्थनीज़ के लेख से मालूम होता है कि सिचाई का प्रबन्ध ब हीं उत्तम था। नहरों का भी एक विभाग था, अर्थशास्त्र से भी इ बात का पूरा समर्थन होता है कि सिंचाई का सरकारी प्रबन्ध थ और जिन लोगो को सरकार की तरफ से जल मिलता था उस लिए कर देना पड़ता था। खेती के लिए एक सरकारी अफसर अल था वह सीताध्यक्ष कहलाता था। उसके लिए अर्थशास्त्र पृष्ट १०४ लिखा है—

"सीताध्यक्ष (कृषि का अध्यक्ष या प्रबन्ध कर्ता) कृषि-विज्ञान गुल्मशास्त्र (झाड़ियों की विद्या), वृक्ष-विद्या तथा आयुर्वेद में पारिंगत

१. 'प्राचीन भारत का इतिहास' नामक ग्रंथ में पृ० १३९ पर क अवतरण।

प्राप्त कर, या उन लोगों से मैत्री कर, जो कि इन विद्याओं में पण्डित हैं, धान्य, फूल-फल, शाक, कन्द, मूल, पालक, सन, जूट, कपास, बीज आदि समय पर इकट्ठा करे। बहुत हलों से जोती हुई भूमि पर दास, कर्मकर, अपराधी आदमियों से बीज डलवाये और हल, कृषि सम्बन्धी उपकरण तथा बैल उनको अपनी ओर से दे तथा काम हो जाने के बाद लौटा ले। तरखान (कर्मार) खटीक (कुट्टाक), तेली, रस्सी बँटनेवाले, बहेरिये लोगों से उनको सहायता पहुँचाये। यदि काम ठीक न हो तो उनसे हरजाना वसूल किया जाय।"

कताई और बुनाई का काम भी मौर्यकाल में कोई छोटे पैमाने पर नहीं होता था। जिस तरह खेती के विभाग के लिए सरकारी अफसर सीताध्यक्ष होता था उसी तरह कताई-बुनाई के काम पर एक सरकारी अफसर सूत्राध्यक्ष नियुक्त होता था। वह कारीगरों से सूत, कपड़ा और रस्सी का काम भी करवाता था। उसका काम था कि अनाथिनों, विधवाओं, विकलाँग लड़कियों, राज्य दण्डितों, बूढ़ी राजदासियों और मन्दिर के काम से छुटी देवदासियों और साधारणतया सभी लड़कियों से ऊन, रेशे, रुई, जूट सन आदि के सूत कतवाये और सूत की चिकनाहट, मुटाई और उत्तम, मध्यम निकृष्ट दशा देखकर उनका मिहनताना नियत करे। इस तरह सूत की कताई के लिए, उसकी ठीक जाँच के लिए और ठीक-ठीक मजूरी देने के लिए बड़े विस्तार से नियम बने हुए थे।[१] और इसके सम्बन्ध में अपराधियों के लिए बड़े कड़े-कड़े दण्ड भी थे, जैसे जो मेहनताना लेकर काम न करें उनका अँगूठा काट दिया जाय। यही दण्ड उनको भी मिले जो कि माल खा गई हों, लेकर भाग गई हों या चुरा ले गई

[१] कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० १०२, १२३

हो। जान पडता है कि कनाई के ये नियम राजधानी के पास के गाँव के हैं जिनका सरकारी विभाग मे कपास, रुई और मजूरी पाने का बन्दोबस्त था और यह कानून उन लोगों के लिए था जो उस सरकारी विभाग के लिए कातने को बाध्य किये जा सकते थे। परन्तु औरो को कातने की मनाई न थी। शहर मे दूसरे गाँव मे रहनेवाले लोग, बूढ़े, जवान, बच्चे सभी कातते होंगे। क्योंकि पहले तो पहनने के लिए कपडे सारी आबादी को चाहिए और दूसरे भारत के बाहर से कपडे के आने की कही चर्चा नही है। इसलिए कताई-बुनाई का काम अवश्य ही गाँव मे घर-घर होता था। सरकारी तौर से इस कला का प्रबन्ध यह प्रकट करता है कि कताई और बुनाई का रोजगार खेती-बारी की तरह भारी महत्त्व रखता था। उस समय यह भी कानून था कि किसी के पास खेत हो, और वह खेती न करता हो तो उससे खेत लेकर खेती करनेवाले को दे दिये जायँ। इससे कोई बेकार खेत न रख सकता था।

कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्तव्यो की तालिका से[1] पता लगता है कि उस समय खेती के कारबार के साथ ही साथ खण्डसाल के सिवाय जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं, तिलहनो से तेल निकालने का काम बहुत जोरो से होता था। रग का कारबार भी बहुत चढा-बढा था। यूनानी लेखको से पता चलता है[2] कि लाख आदि कीडो से पैदा होनेवाले रग भी उस समय निकाले जाते थे और कपडे रगने के सिवाय लोग अपनी दाढियाँ भी विविध रगो मे रंगते थे। कुम्हार लोग बडे उत्तम-उत्तम प्रकार के बासन बनाते थे। बँसफोर बाँस

१ कौटिल्य अर्थ शास्त्र (प० प्राणनाथ) पृ० ८४ से ८८ तक

२ नियारकोस (अग्रेजी) खंड ९ व १०।

और बेंत और छाल के सब तरह के सामान तैयार करते थे। नदी किनारे के गाँव मे धीमर मछलियाँ मारते थे और समुद्र के किनारे मोती और शख खोज लाते थे। सूखी मछलियाँ और सूखे मांस के व्यापार की चर्चा से यह भी पता लगता है कि ये चीजें बिकने के लिए बहुत दूर-दूर भेजी जाती होंगी। उस समय आटा भी गाँव मे पिस कर शहर मे बडे भारी परिणाम मे बिकने को आता होगा।

पञ्चायतों का सगठन उस समय इतने महत्व का था कि उसके लिए सघ वृत्त नाम का एक अधिकरण ही अर्थशास्त्र मे अलग रखा गया है। इस अधिकरण के पढ़ने से[1] यह जान पडता है कि उस समय सघो के अधिकार बहुत बढे हुए थे। छोटी-छोटी पचायतो को एकत्र करके लोगो ने सघ बना रखे थे। लिखा है कि काम्बोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय, तथा श्रेणी आदि सघ खेती, पशु-पालन और वनिज मे सन्तुष्ट रहते थे और शस्त्र की जीविका भी करते थे, अर्थात सिपाही का काम भी करते थे। लिच्छविक, वृज्जिक, मद्रक कुक्कुर, कुरु, पाचाल आदि के सघ भी थे। इनके बारे मे यह लिखा है कि ये लोग राजा शब्द से सन्तुष्ट रहते थे। आगे चलकर भेद-नीति का वर्णन किया है, जिससे पता चलता है कि काम्बोज सुराष्ट्र आदि बड़ी चतुर जति के थे। लिच्छविक आदि नाम पर मोहित होजाते थे। राजा स्वभावत इन पचायतो को निर्बल रखने मे अपना अधिक कल्याण समझता था। इसीलिए फोड-फॉस लगाये रहता था। भेद-नीति का विस्तार करके लिखा है कि जब वह आपस मे जुदा हो जायें तो उनको तितर-बितर कर दे। या सबको एक ही देश मे बसाकर उन्हे

[1] अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३५५ से ३६१ तक

पाँच-पाँच या दस-दस परिवार (कुल) को जोतने-बोने के लिए जमीन देते। राजा शब्द से सन्तुष्ट होनेवालों का राजपुत्रों के अनुरूप शासन बनावें।

राजा को जब आवश्यकता होती थी या जब इसमें वह देश का कल्याण देखता था तो वह नए गाँव बसाता था और नई गोचर-भूमि छुड़वाता था। किसी-किसी गाँव को शुद्ध शूद्र गाँव बना देता था और किसी में केवल ब्राह्मणों को बसाकर उनसे खेती कराता था। इस सम्बन्ध में हम एक लम्बा अवतरण दे आये हैं। इस पर साधारणतया यह अनुमान किया जाता है कि शूद्रों को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर वैश्य बनाने और ब्राह्मणों को धीरे-धीरे नीचे उतारकर खेतिहर बनाने में राजा का भी हाथ था। आज जो भारी संख्या में ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र भी खेती में लगे हुए हैं, उनका जहाँ प्रधान कारण भारतवर्ष में एकमात्र खेती के व्यवसाय का प्रधान होना है, वहाँ एक गौण कारण यह भी है कि समय-समय पर राजा वैश्य के सिवाय और वर्णों को भी खेती के काम में लगा देने में सहायक होता था।

मजूरों और गुलामों की दशा भी बड़ी अच्छी थी। अर्थशास्त्र में यह नियम दिया गया है कि जिस मजूर से कोई मजूरी पहले से तय न की जाय उसे "मजूरी काम तथा समय के अनुसार दी जाय। खेतीहरों में हरवाहे, गउओं का काम करनेवालों में ग्वाले और अपना माल खरीदनेवाले बनियों में दूकान पर बैठनेवालों में मेहनताना तय न होने पर आमदनी का दसवाँ भाग ग्रहण करें।" मजूरी के नियम ऐसे सुन्दर और नीतियुक्त बनाये गये थे कि काम करनेवाला और करानेवाला दोनों में से किसी का हक नहीं मारा जाता था। दासों

के नियम भी बड़े अच्छे थे। इनमें मनुष्यता की रक्षा थी। लिखा है—,[1]

"उदर दास को छोड़कर, आर्य जाति के नाबालिग शूद्र को बेचनेवाले सम्बन्धी को १२ पण, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण को बेचने वाले स्वकुटुम्बी को क्रमशः २४, ३६, ४८ पण दंड दिया जाय। यदि यही काम करनेवाला कोई दूर का रिश्तेदार या दुश्मन हो तो उसको बेचनेवाला तथा श्रोता को पूर्व, मध्यम तथा उत्तम साहस दंड के साथ-साथ मृत्यु दंड तक दिया जा सकता है। म्लेच्छ लोग प्रजा बेच सकते हैं तथा गिरों रख सकते हैं। आर्य्य लोग दास नहीं बनाये जा सकते हैं। पारिवारिक, राज्य दंड तथा उत्पत्ति के साधन विषयक विपत्ति के आपड़ने पर किसी भी आर्य्य जाति के व्यक्ति को गिरों रखा जा सकता है। निष्क्रय का धन मिलते ही सहायता देने में समर्थ बालक को शीघ्र ही छुड़ा लिया जाय। एक बार जिसने अपने आपको गिरों रखा है या जिसको सम्बन्धियों ने दो बार गिरों रखा है, राज्यापराध करने पर या शत्रु के देश में भागने पर वह आजीवन दास बनाया जा सकता है। धन को चुरानेवाले तथा किसी आर्य को दास बनानेवाले व्यक्तियों को आधा दंड दिया जाय। राज्यापराधी, मृतप्राय तथा बीमार को भूल से गिरों रखनेवाला अपना धन लौटा ले सकता है। जो कोई गिरो में रक्खे व्यक्ति से मुर्दा या पाखाना पेशाब उठवाये, या उसको जूठा खिलाये, या कपड़ा पहनने को न देकर नंगा रक्खे, या पीटे या तकलीफ दे या स्त्री का सतीत्व हरण करे उसका (गिरों रखने के बदले दिया गया) धन ज़ब्त कर लिया जाय। दायी, दासी, अर्धसीरी तथा नौकरानी सदा के लिए स्वतन्त्र कर दी जाय और उच्चकुल के मनुष्य को उसके घर से भाग जाने दिया जाय।"

[1] कौटिल्य अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० १६८ से १७१ तक

मजूरो के भी सघ थे। और देश मे पूँजीवाले लोग भी जम[illegible] थे। खेतिहर और वनिये मिलकर अपने व्यापार सघ वनाते थे और मजूर लोग मिलकर अपने-अपने मजूर-सघ स्थापित किये हुए थे। जहाँ दोनो के सम्बन्ध के नियम दिये गये हैं वहाँ मजूरो की पचा[illegible] (सघ भृताह) के लिए भी नियम है। इन सब वातो से पता लगता है कि उस समय मिलजुलकर सघ शक्ति से काम लेने की चा[illegible] वहुत काल से दृढ हो चुकी थी।

सिक्को का चलन भी उस समय वहुत निश्चित था। सोने और चॉदी दोनो के सिक्के चलते थे। तांबे के सिक्के भी थे। रुपया प[illegible] कहलाता था। अठन्नी, चौअनन्नी, दुअन्नी भी चलती थीं। तांबे क[illegible] अधन्ने पैसे, धेले आदि भी चलते थे, जिन्हे माषक, अर्द्ध माष[illegible] काकिणी और अर्द्ध काकिणी कहते थे।' इन सिक्को के सिवा[illegible] व्यापारी लोग एक दूसरे पर हुडी भी चलाते थे। और इसमे त[illegible] तनिक भी सदेह नही है कि गॉव मे अदला-वदली का नियम पहल[illegible] की तरह जारी था। गॉव के लोग इतने सुखी थे कि चौपालो मे औ[illegible] पचायतो के दालानो मे अक्सर नाटक हुआ करते थे। नाचने औ[illegible] गानेवाले आकर गॉववालो का मनोरजन किया करते थे। अर्थशा[illegible] कार ने इस वात को वहुत वुरा वतलाया है क्योकि इससे गाँववा[illegible] के घरेलू और खेत के काम धधो मे वडा हर्ज पडता था।

प्रोफेसर सतोपकुमार दास लिखते है कि इस काल मे गॉव[illegible] रहनेवालो को आजकल के हिसाव से अमीर तो नही कहा

१. डाक्टर शमशास्त्री की राय में (अग्रेजी अर्थशास्त्र पृ० ९[illegible] 'रूप्य रूप' और कर्शपण एक ही चीज है। यहाँ पर रुपये के लिए पण श[illegible] का प्रयोग हुआ।

सकता, परन्तु इसमे सन्देह नही कि उनकी जितनी सीधी सादी जरूरतें थी, सब सहज मे पूरी होती थी। मेगेस्थनीज लिखता है कि लोग बहुत सीधी चाल-ढाल के थे। स्वभाव से सयमी थे। और गहने-पाते काम मे तो जरूर लाते थे परन्तु उनका पहिरावा बहुत सादा था। एक सूती धोती, कन्धे पर चद्दर, सफेद चमड़े के जूते एक भले मानस के काफी सामान थे। निर्धन और दरिद्र भी होते थे, परन्तु उनकी गिनती अत्यन्त कम थी। और वे थोड़े से निर्धन भी सरकारी आश्रय मे रहते थे। अर्थशास्त्र के अनुसार "राजा का कर्तव्य था कि बूढे, अपाहिज, पीडित और लाचार का पालन करे। और निर्धन, गर्भवती और उनके बच्चो के पालन पोषण का उचित प्रबन्ध करे।[१]"

दैवी विपत्तियों के उपायवाले प्रकरण में आग, पानी, दुर्भिक्ष, चूहा, शेर, साँप तथा राक्षस इन आधिदैवी जोखिमो से जनपद को बचाने के उपाय बताये हैं। पानी, व्याधि, दुर्भिक्ष और चूहों से रक्षा के सम्बन्ध मे जो-जो उपाय बताये हैं उन्हे हम यहाँ उद्धृत करते हैं–

पानी—नदी के किनारे के गाँववाले वर्षा की रातों में किनारे से दूर रहकर सोवें। लकड़ी और बाँस की नावें सदा अपने पास रक्खें। तूंबा, मशक, नाव, तमेड़ तथा बेटे के द्वारा डूबते हुए लोगों को बचावें। जो लोग डूबते हुए मनुष्य को बचाने के लिए न दौड़ें उनपर १२ पण जुर्माना किया जाय बशर्ते कि उनके पास नाव आदि तैरने का साधन न हो। पर्वों में नदी की पूजा की जाय। माया वेद तथा योगविद्या को जाननेवाले वृष्टि के विरुद्ध उपाय करें। वृष्टि के रुकने पर इन्द्र, गंगा पर्वत तथा महाकच्छ की पूजा की जाय।

१. अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३९ से ४१ तक।

व्याधि—चौदहवें अधिकरण (औपनिषदिक) में विधान किये गये तरीक़ों के द्वारा बीमारी के भय को कम किया जाय। यही बात वैद्य लोग दवाइयों से और सिद्ध तथा तपस्वी लोग शान्तिमय साधन तथा प्रायश्चित्तों के द्वारा करें। फैलनेवाली बीमारी (मरक) के सम्बन्ध में भी यही तरीके काम में लाये जायँ। तीर्थों में नहाना, महाकच्छ का बढ़ाना, गौओं का स्मशान में दुहना, मुर्दे का धड़ जलाना तथा देवताओं के उपलक्ष में रात भर जागना आदि काम किये जायँ। पशुओं की बीमारी के फैलने पर परिवार के देवताओं की पूजा तथा पशुओं के ऊपर से धूप बत्ती उतारी जाय।

दुर्भिक्ष—दुर्भिक्ष के समय में राजा अनाज तथा बीज कम क़ीमत पर बाँटे। लोगों को इधर-उधर देश में भेज दे। नये नये कठिन कामों को शुरू करे और लोगों को भोजनाच्छादन दे। मित्र राष्ट्रों का सहारा लेकर अमीरों पर टैक्स बढ़ावे तथा उनका इकट्ठा किया हुआ धन निकाल ले। जिस देश में फ़सल अच्छी हो उसमें अपनी प्रजा को लेकर चला जावे। नदी के किनारे धान, शाक, मूल तथा फलों की खेती करावे। मृग, पशु, पक्षी, शिकारी जन्तु तथा मछलियों का शिकार शुरू करे।

चूहा—चूहों के उत्पात होने पर बिल्ली तथा नेवलों को छोड़े। जो लोग पकड़कर चूहों को मारें उनपर, १२ पण जर्माना किया जाय। जो लोग जंगली जानवरों के न होते हुए भी बिना कारण ही कुत्तों को छोड़ रखें उन पर भी पूर्ववत् दण्ड का विधान किया जाय। थूहड़ के दूध में धान को सानकर खेत में छोड़े। ऐन्द्रजालिक तरीक़ों को काम में लावे तथा चूहों के सम्बन्ध में राज्यकर लगावे। सिद्ध तथा तपस्वी लोग शान्तिमय उपायों को करें। पर्वों में मूषक-पूजा की जाय।

टिड्डीदल पक्षी, कीडे आदि के उत्पातों का उपाय भी इसी प्रकार किया जाय।"

परन्तु उसी समय के लेखक मेगेस्थनीज का कहना है कि भारतवर्ष में अकाल पडने की वात कही सुनी भी नहीं जाती। इससे प्रकट है कि चद्रगुप्त के राज का बदोवस्त ऐसा अच्छा था कि उस समय भारतवर्ष मे लोग अकाल की पीडा नही जानते थे। इस सम्बन्ध मे चाणक्य का प्रबन्ध बडाई के योग्य था।

: ५ :

प्राचीन काल का अन्त

१ चाणक्य के बाद के पाँचसौ वर्ष

अब तक गाँव के बारे मे जो कुछ लिखा गया है वह अधिकतर उत्तर भारत के सम्बन्ध मे है। चाणक्य के काल के अन्त मे दक्षिण भारत के आँध्रो और कुशानो का समय आता है जो विक्रम से डेढ-सौ वर्ष पहले आरम्भ होता है और साढे तीन सौ वर्ष पीछे खतम होता है। कुशानो का राज उत्तर मे था और आन्ध्रो का दक्षिण मे था। जो सिलसिला मौर्य्यकाल तक खेती और व्यापार की उन्नति का चला आया था उसके टूट जाने का अभी तक कोई कारण नही हुआ था। भारत की बहुत भारी आबादी पहले की तरह गाँवो मे रहती थी। गॉव घोषो और पल्लियों मे विभक्त थे। गाँव का मुखिया आँध्रो के राज्य मे सरकारी तौर से रखा जाता था वह झगडो का निवटारा भी करता था और राजा के लिए कर भी उगाहता था। अधिकारी लोग जो मालगुजारी मुकर्रर कर देते थे वह रकम जब-तक राजा को मिलती जाती थी तबतक गॉव की बातो मे राजा दखल नही देता था। धर्मशास्त्र भी यही कहता है कि गाँव सभी तरह से स्वतन्त्र हैं।[1] और महाभारत मे कुल की रीति[2] भी प्रमाण

१ पारस्कर गृह्यसूत्र १--८१३

२ महाभारत आदि पर्व ११३--९

मानी गई है। उस समय भी एक ही परिवार मे बँधे रहने की रीति सबसे अच्छी समझी जाती थी। और अलग होकर रहना निर्बलता का चिन्ह था। इस काल मे राजा अपने को पृथ्वी का ऐसा स्वामी समझता था कि जब उसे जरूरत होती थी प्रजा की राय लिये बिना ही भूमि ले लेता था या किसी को दे देता था। तो भी किसान के जीवन की दो बातें उलट-पुलट करने की उसे मनाही थी, (१) उसका घर और (२) उसका खेत।

किसान या वैश्य काम खेती के सिवाय पशुपालन भी करता था। दान देना पढना, लिखना, व्यापार करना और लेन-देन करना भी उसका कर्तव्य था। उसे बीज बोना भी आना चाहिए था और अच्छे और बुरे खेतो की परख भी होनी चाहिए थी।[1] उस समय जरूरत पड़ने पर किसान या वैश्य को सरकार से बोने को बीज भी मिलते थे और बदले मे उपज का चौथाई हिस्सा सरकार लेती थी। सिंचाई के लिए जल का प्रबन्ध भी सरकारी था और जरूरत पर तकावी बँटती थी।[2]

बुनाई का काम इस काल मे अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। सूत, अन्न और रेशम के उत्तम से उत्तम कपडे बनते थे। ऊन के कपडों मे एक तरह का कपडा चूहो की ऊन से बनाया जाता था जो विशेष रूप से गर्म रहता था। चीनी रेशम के सिवाय तीस प्रकार के

१ "पशूना रक्षण दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथ कुसीदञ्च वैश्यस्य कृपिमेव च मनुः १। ६०
बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्र दोपगुणस्य च।
मानयोग च जानीयात्तुलायोगाश्च सर्वश. मनु. ९। ३३०

२. महाभारत, शांति पर्व, अ० ८८ श्लो० २६-३०, अ० ८९ श्लोक २३-२४, सभा पर्व अ० ५ श्लो० ६६-७९।

देसी रेशम बरते जाते थे। द्राविड कवियों ने कुछ कपडों की उपमा "दूध की वाष्प और साँप के केंचुल" तक में दी है और बारीकी का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि उनकी बुनावट इतनी बारीक है कि आँखों को सूत के धागे अलग-अलग दिखाई नही पडते।

इस काल मे भी पेशो और कलाओ के सघ या पञ्चायतें बनी हुई थी। प्राचीन लिपियों से जुलाहों, कुम्हारों, तेलियो ठठेरों, उदयात्रिको, चित्रकारों और मूर्तिकारों की पञ्चायतें अलग-अलग बनी हुई थी। जो विद्वान् महाभारत की रचना का काल इसी काल के भीतर समझते हैं वे इस अवसर पर महाभारत का भी प्रमाण देकर कहते हैं कि इस समय पञ्चायतो का बडा भारी महत्त्व था। महाभारत मे लिखा है कि इन पञ्चायतों से राज की शक्ति को प्रधान रूप से सहारा मिलता था।[१] सरपञ्चो मे फूट डालना या बगावत के लिए उभारना, वैरी की हानि करने की मानी हुई रीति थी।[२] जब गन्धर्वों से दुर्योधन हार जाता है तब अपनी राजधानी को लौटना नही चाहता। कहता है कि मै पञ्चायत के मुखियों को कैसे मुँह दिखाऊँगा[३]। उस समय पञ्चायत की रीतियों और नीतियाँ धर्मशास्त्र की तरह मानी जाती थी।[४] अपनी पञ्चायत के

१. आश्रमवासिक पर्व, ७। ७-९

२ शांति पर्व ५९। ४९, १९१। ६४

३ ब्राह्मणा. श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीन वृत्तय।
कि मां वक्ष्यति किम् चापि प्रतिवक्ष्यामि नानहम्।
वनपर्व २४८। १६

४ जातिजानपदान्धर्मान्श्रेणी धर्माश्च धर्मवित्
समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ मनुः ८। ४१

सामने वचन देकर जो तोडता था उसे राजा देश निकाले का दण्ड देता था। और पचायत के विरुद्ध पाप करनेवाले के लिए कोई प्रायश्चित्त न था। ऐसे कडे नियमो के होते कला और कारीगरो मे ऊँची से ऊँची दशा को पहुँचना जरूरी था। इन्ही पेशेवालो की धीरे-धीरे जातियाँ बन गई और उस समय की पञ्चायतें आज भी जातियो की पञ्चायतें बनी हुई हैं। मनुस्मृति मे लिखा है कि राजा को चाहिए कि वैश्यो और शूद्रो से उनके कर्तव्यो का पालन करावे। अगर ये दोनो जातियाँ अपने-अपने कर्तव्यो का पालन न करेगी तो ससार की व्यवस्था ही नष्ट हो जायगी।[1] उस समय वर्ण धर्म की रक्षा बडे महत्व की बात समझी जाती थी। नासिक की गुफा के शिला-लेख मे राजा गौतमीपुत्र वालश्री बडे गर्व के साथ कहता है कि हम ने चारो वर्ण के एक-दूसरे मे मिलकर गडबड करने मे रुकावट डाली है। इस प्रथा को बन्द कर दिया है।

इस काल मे दासो के पास कोई सम्पत्ति न होती थी। वह मजूरी के रूप मे ही कर देता था। शूद्रो का यही कर्तव्य था कि वे विशेष रूप से किसानो की सेवा करें।[2] बाकी दशा दासो की वही थी जो पिछले अध्याय मे लिख आये हैं। एक बात इस काल की बडे मार्के की है कि किसान लोग शूद्रो से अर्थात् मजूरो से लगभग मिलते जारहे थे। मजूर बढ़ते-बढ़ते चरवाहे से गोपालक बन जाता था। बनिये की नौकरी करते-करते आप बनिज करने लग जाता था। थोड़े दिनो का किसान का मजूर इनाम मे या मजूरी मे माफी खेत

१ वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्य क्षोभयेतामिदं जगत्। मनु ८। ४१८

२ महाभारत १२। ६०। ३७, १। १००। १

पाजाता था। इस तरह मजूरों की जाति का आदम बनिया, ग्वाला या खेतिहर हो जाता था। महाभारत में लिखा है कि छः गायों को चरानेवाला एक गाय का सारा दूध पाने का अधिकारी है और सौ गायें चराता हो तो नित्य के दूध के सिवाय बरस के अन्त में एक जोड़ी गाय बैल की मिलती थी। किसान के मजूर को मजूरी में उपज का सातवाँ भाग मिलता था। इस तरह मजूर जाति के लोग भी किसान बनते गये। ब्राह्मण और क्षत्रिय वैश्य तक उतर सकते थे। परन्तु शूद्र नही हो सकते थे। इस तरह तीनो वर्णों के लोग धीरे धीरे किसान होते गये और किसानो की गिनती बढ़ती गई।[१]

मनुस्मृति मे राजा को अनाज के ऊपर छठा भाग, पेड, माँस, मधु, घी, कन्दमूल औषधि, मसाले, फल और फूल पर भी छठा भाग, पशु पर पाँचवाँ भाग कर राजा को मिलता था।[२] महाभारत मे साफ लिखा है कि कर जरूर लगाये जाने चाहिए। इसका कारण यह है

१. महाभारत १२।६०।२४, २।५।५४, २।६१।२०

२ पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययो ।
धान्यानामष्टमो भाग· षष्ठो द्वादश एव वा ॥ ७।१३०
आददीताथ षड्भाग द्रुमासमधुसर्पिषाम् ।
गन्धौषधिरसाना च पुष्पमूलफलस्य च। ७।१३१
पत्रशाकतृणाना च चर्मणा वैदलस्य च।
मृण्मयाना च भाण्डाना सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ ७।१३२
आददीताथ षड्भाग प्रणष्टाधिगतान्नृप· ।
दशम द्वादशं वापि सता धर्ममनुस्मरन् ८।३३
धान्येऽष्टम विंशं शुल्क विंशं कार्षापणावरम् ।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारव· शिल्पिनस्तथा मनु १०।१२०

कि प्रजा की रक्षा की जाती है और रक्षा में खर्च लगता है। परन्तु कर बहुत हलका लगाना चाहिए। सभी किसानों से और गाँव के सभी लोगों से कर रुपये पैसे के रूप में नहीं लिया जाता था। किसान अनाज के रूप में देता था, व्यापारी अपने व्यापार की वस्तु के रूप में देता था और मजूर और कारीगर अपने काम के रूप में देते थे। केवल शहर के लोग रुपये पैसे के रूप में देते थे। जो चीजें जीवन के लिए अत्यन्त जरूरी थीं उनपर कर नहीं लगता था।

धन पैदा करने के सात साधन बताये गये हैं। उनमें साहूकारी भी है परिश्रम भी है और वनिज भी है। साहूकारी और वनिज तो धन के साधन हैं ही, परन्तु परिश्रम जो अलग साधन दिखाया गया है उसमें खेती-बारी और कारीगरी मुख्य है।[१] सीधी-सादी मजूरी से तो आज कोई धनी नहीं हो सकता। परन्तु मनुस्मृति में केवल परिश्रम का उल्लेख करने से हम यह कह सकते हैं कि शायद उस समय मजूरी बहुत अच्छी मिलती थी और चीजें सस्ती थीं इसलिए मजूर भी धनवान हो सकता था।

जगद्व्यापी व्यापार वाणिज्य की उत्तम अवस्था बताता है। उस समय की अद्भुत और अपूर्व कारीगरी और कला बहुत ऊँची उन्नति की साक्षी है। सभी घरों मे सोना, चाँदी, रत्न, गहने और रेशमी कपडो के होने की चर्चा है।'

९. गुप्तकाल

इसके बाद गुप्तों का समय आता है। गुप्तों के समय मे भारतवर्ष के बाहर भी भारतीय लोग जाकर बसे। बगाल से पूरब बर्मा मे जाकर भारतीयों ने बस्तियाँ बसाई और खेतीबारी करने लगे। इससे पहले के काल मे भी पता चलता है कि भारत के दक्खिन के हिन्द महासागर में पच्छिम से पूरब तक फैले हुए अनेक टापुओं में बडे-बडे जहाजो पर भारत के व्यापारी आया-जाया करते थे और बहुत से लोग जाकर वहीं बस भी गये थे और अपनी सस्कृति का प्रचार भी वहाँ कर रक्खा था। परन्तु जहाँ-जहाँ भारतीय गये और बसे, वहाँ उनका मुख्य कारबार खेती का ही था। और अपनी मातृभूमि में तो सतजुग से गाँव मे रहना और खेती बारी करना उनकी विशेषता थी। युग और राज के बदलने से कभी तो राजा का अधिकार कम हो जाता था और कभी बढ़ जाता था। गाँव मे उपज के बढ़ जाने से उसे दूर-दूर पहुँचाने के लिए व्यापार का सिलसिला बढ़ाया गया था और धीरे-धीरे व्यापारियो के केन्द्र बनते

१ "तैजसाना मणीना च सर्वस्याश्ममयस्य च।
भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभि ॥ मनु ५।१११
निर्लेप काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्ध्यति।
अब्जमश्ममयं चैव राजतचानुपस्कृतम् ॥ मनु ५।११२

गये। यही केन्द्र नगर थे और इन्ही नगरो में प्रजा की और प्रजा की सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए राजधानियाँ बन गई थीं। ये शहर धीरे-धीरे बहुत बढ गये और बलवान राजाओ ने छोटे-छोटे राजाओं को अपने वस मे करके अपने अधिकार दूर-दूर तक फैला लिये। इस तरह के राजाओ मे मौर्य्यकाल के राजा बढे-चढ़े थे। गुप्तकाल के राजा उनसे भी ज्यादा बढे-चढ़े निकले। पर उन्होने एक बडा महत्व का काम भी किया। बाहरी विदेशी जातियो ने भारत पर हमले किये थे और भारत पर अधिकार कर लिया था। अनेक लडाइयाँ हुईं। गुप्तो ने उन्हे परास्त किया और भारत को भारतीयो के हाथ मे रक्खा। गुप्तो के समय मे व्यापार बहुत बढ़ गया और शहरो को बडा लाभ हुआ तो भी भारत की बहुत भारी आबादी गाँवो मे ही रहती थी और खेती-बारी ही उनका खास धन्धा था। वे लोग कुओ से, नहरो से, तालाबो से और गढ्ढो से पानी लेकर सिचाई करते थे। उस समय जल सचय के लिए 'निपान' अर्थात भारी-भारी जलाशय हुआ करते थे। यह नियम था कि प्रजा जब कोई नया धन्धा उठावे या नई जमीन जोते, बोवे या नहर, तालाब कुएँ खोदे और यह सब कुछ अपने काम के लिए करे तो जबतक खर्च का दूना लाभ न होने लगे तबतक राजा उनसे कुछ न माँगे। राजा इस तरह किसान से कर वसूल करे कि किसान नष्ट न होने पावें। जैसे माली फूल चुन लेता है परन्तु पेड की पूरी रक्षा करता है उसी तरह राजा भी बरते। राजा उस कोयलेवाले की तरह न बरते जो कोयला लेने के लिए पेड को जला डालता है।[1]

१ शुक्रनीतिसार ४।४।८१-११२ १२४-१२७ ४।५।१४१ और २४२-४, २२२-२३

जगल से उदुम्बर, अश्वत्थ, इमली, चदन, वट, कदम्ब, अशोक, बकुल, आम, पुन्नाग, चम्पक, सरल, अनार, नीम, ताल, तमाल, लिकुच, नारियल, केला आदि के फल मिलते थे। खदिर, सागवान, साल, अर्जुन, शमी आदि बड़े-बड़े पेड़ों की भी चर्चा है। रमनो और जगलों के अध्यक्ष भी हुआ करते थे जिन्हें फल-फूल के जमने और विकसने का पूरा हाल मालूम होता था। वे पेड़ों का लगाना और पौधों का पालन पोषण करना खूब जानते थे और औषधियों का अच्छा ज्ञान रखते थे।[1]

कलाओं का भी अच्छा विकास हुआ था। शुक्राचार्य्य ने तो चौसठ कलाओं का वर्णन किया है परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि शुक्रनीतिकार के समय में ही ये चौसठों कलाये चली थीं। उन्होंने केवल सूची तैयार की थी जिससे यह पता लगता है कि बहुत से ऐसे काम भी उस समय होते थे जिन्हें लोग आजकल बिल-कुल नई बात समझते हैं। अर्क खींचना औषधियाँ तैयार करना, धातुओं का विश्लेषण, धातुओं का मिश्रण, नमक का धन्धा, पानी को पम्प करना, चमड़े को सिझाना इत्यादि काम आज से कम से कम डेढ़ हज़ार बरस से पहले हुआ करते थे। हम इस जगह कताई बुनाई की तो चर्चा ही नहीं करते, जो न केवल देशव्यापक काम था बल्कि जिसमें सारे ससार में भारतवर्ष की विशेषता थी। शुक्राचार्य ने ऊन और रेशम के कपड़ों का केवल जिक्र ही नहीं किया है बल्कि इनके धोने और साफ़ करने की विधियाँ भी बताई हैं और याज्ञ-वल्क्य ने तो रुई से बने हुए कागज़ की भी चर्चा की है।[2]

१ शुक्रनीतिसार ४। ५। ९५–१०२, ११५–१२२, २। ३२०–३२४

२ शुक्रनीतिसार ४। ३। १। १८०

सरकार की ओर से बडा कड़ा दड मिलता था। "क्योंकि यदि ऐसो को दड न दिया गया तो यह फूट की बीमारी महामारी की तरह महा भयानक रीति से फैल जायगी।"[१] याज्ञवल्क्य सहिता मे लिखा है कि जो कोई पचायत की चोरी करे या वचन तोडे तो उसे देश निकाल दिया जाय और उसकी सारी जायदाद ज़ब्त कर ली जाय।[२] पचायतो के पास पचायती जायदाद हुआ करती थी, और पचायत के सगठन के नियम विस्तार से बने हुए थे। परन्तु नियमो के बनाने मे यह बात बराबर ध्यान मे रक्खी जाती थी कि उस समय के कानून से और धर्मशास्त्र के नियमो मे किसी तरह विरोध न पडे। पचायतो की नियमावली का नाम 'समय' था और पचायत के काम करनेवाले 'कार्य्य चिन्तक' कहलाते थे। पचायत मे जो लोग ईमानदार और पवित्र आचरण के समझे जाते थे वही कार्यचिन्तक बनाये जाते थे। और वही पचायत के नाम से सरकारी दरबारो में भी काम करते थे। सरकार मे उनकी बडी इज्ज़त की जाती थी। पचायत के सदस्यो पर भी उनका अधिकार था। उनके फैसले जो न माने उन्हे वे दड दे सकते थे। परन्तु वे भी पचायत के नियमो से इतने बँधे होते थे कि जब वे आप चूक जाते थे या उनमे और सदस्यो में जब झगडा पड जाता था तब राजा ठीक निर्णय करता था।[३] परन्तु पचायत को पूरा अधिकार था कि यदि कार्य-

१ नारदस्मृति १०।६

२ याज्ञवल्क्य संहिता २।१८७—

३ नारद स्मृति १०।१, म म मित्रमिश्र विरचित वीरमित्रोदय (जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित) पृ० ४२८

याज्ञवल्क्य ने तो मुखिया को भी दड दिलाया है—

चिन्तको से कोई भारी अपराध हो जाय या वे फूट डालनेवाले ठहर जायँ या वे पचायत का धन नष्ट करे तो उन्हे निकाल बाहर करें और राजा को केवल इस बात की सूचना दे दे। और अगर कोई कार्य चिन्तक इतना प्रभाववाला निकले कि पचायत उसे निकाल न सके तो मामला राजा तक आता था और राजा दोनो पक्षो की बातें सुनकर निश्चय करता और उचित दण्ड देता था।

पचायत के होने और उसकी रीति पर काम होने का एक पुराना उदाहरण इन्दौर मे मिले हुए स्कन्दगुप्त के एक ताम्रपत्र मे मिलता है।[1] इस लिपि मे एक जायदाद के दान किये जाने की बात है कि उसके व्याज से सूर्य देवता की पूजा के लिए मन्दिर मे नित्य एक प्रदीप जला करे। सूर्य देवता के मन्दिर मे इस काम के लिए एक ब्राह्मण जो जायदाद दान मे लिख देता है. उस जायदाद पर तेलियो की उस पञ्चायत का कब्जा सदा के लिए कर दिया जिसका सरपच इन्द्रपुर का रहनेवाला जीवन्त है, और इस जायदाद पर उस पञ्चायत का कब्जा उस समय तक रहेगा जब तक कि. इस बस्ती से चले जाने पर भी उसने पूरा एका बना रहे।

और समयो की तरह इस समय भी यही बात प्रचलित थी

साहसी भेदकारी च गणद्रव्यविनाशक।
उच्छेद्य सर्व एवैते विख्याप्यैव नृपे भृगु॥
गण द्रव्य हरेद्यस्तु सविद लघयेच्च य।
सर्वस्वहरण कृत्वा त राष्ट्राद्विप्रवासयेत्॥

याज्ञवल्क्य स्मृति॥ २।१८७

[1] फ्लीट (अंग्रेजी में) गुप्त लिपियाँ न० १६ (सम्वत् ५२१ विक्रमीय)

कि बेटा प्राय अपने बाप का पेशा करता था। इसीसे पेशवरों की भी जाति बन गई थी। जो अपने बाप दादों का पेशा छोड़ देता था उसे राजा दण्ड भी दे सकता था। परन्तु यह अकारण छोड देने वाले की बात थी। बाप दादे के पेशे को छोड देने के लिए प्रबल कारण होने पर पेशा बदलने मे हर्ज भी नहीं समझा जाता था। मन्दसोर के शिलालेख मे जो कुमारगुप्त और बन्धुवर्म्मन का लिखा है,[1] यह उल्लेख है कि रेशम बुननेवालों की एक पचायत पहले लाट पर ठहरी थी, फिर दशपुर मे वहाँ के राजा के गुणों पर मुग्ध होकर चली गई। वहाँ जाकर कुछ लोगों ने धनुर्वेद्या सीखी, कुछ धार्मिक जीवन बिताने लगे, कुछ ज्योतिषी हो गये, कुछ कवि होगये, कुछ सन्यासी हो गये और बाकी बाप दादों की तरह रेशम बुनते रहे। इस पचायत ने सम्वत् ४९२ (विक्रमी सम्वत्) मे दशपुर मे सूर्य का एक बहुत सुन्दर बडा मन्दिर बनाया। और छत्तीस बरस बाद जब वह मरम्मत के योग्य हुआ तब उसी पचायत ने सम्वत् ५२८ वि० मे उसकी पूरी मरम्मत कराई। इस उदाहरण मे दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि पचायत मे बँधकर भी लोगों को इतनी आजादी थी कि वे अपने मनमाने काम कर सकते थे, अपनी योग्यता बढा सकते थे और अपना पारिवारिक पेशा छोड सकते थे। दूसरी बात यह मालूम होती है कि जातियों या पेशों की पचायतों का सगठन बराबर पीढी दर पीढी चलता रहता था और काम करता रहता था। मजूरों का भी ऐसा ही सङ्गठन था और दासों और मजूरों की दशा भी वैसी ही थी जैसी पहले वर्णन की गई है। किसानों की सुख समृद्धि गुप्त काल मे भी घटी नहीं थी।

१ फ्लीट (अग्रेजी में) गुप्त लिपियाँ न० १८

पूर्व माध्यमिक काल

१. हर्षकाल और पीछे

गुप्तकाल के बाद ही हर्ष का समय आता है। गुप्त सम्राटो का [illegible]ा भारी साम्राज्य मध्य एशिया के जगली लुटेरो की चढ़ाई से तहस-नहस हो गया। जिस तरह गुप्त साम्राज्य बरबाद हुआ उसी तरह भारतवर्ष के भारी व्यापार को भी धक्का पहुँचा। परन्तु गॉव और गॉव के खेती आदि व्यापार इन धक्को से भी नष्ट नही होते थे। यही सारी मुसीबतो मे बेड़ा पार लगाते थे। हर्ष के समय मे भी खेती-बारी के सम्बन्ध के सारे काम बराबर ज्यो के त्यो होते रहे। इस समय पच्छॉह के देशो मे क्या किसानी के काम मे, और क्या व्यापार मे, और क्या सामुद्रिक यात्राओ मे जाटो का बलोबाला था। भारतवर्ष मे जैसे सदा से होता आया, जन समुदाय गॉवो मे ही रहता था और सबसे बड़ा कारबार खेती का था। गॉव-गॉव टकसालें चलती थीं, चरखे और करघे चलते थे, गाव मे सभी जाति और पेशे के मनुष्य रहते थे सब तरह की कारीगरी और कला पहले की तरह बराबर समुन्नत अवस्था मे थी। कश्मीर अपने चावलो और केशर के लिए प्रसिद्ध हो गया था। मगध भी अपने चावलो के लिए मशहूर था। ह्युन्नत्साग ने लिखा है कि बहुत भारी अमीर लोग मगध के ही चावल खाते थे।[1] लिखा है कि मथुरा से १००

[1] बील—ह्युएनत्साग, (अग्रेजी) जिल्द २, पृ० ८२

मील पच्छिम पार्यात्र नाम के स्थान मे इस तरह का चावल होता था जो साठ दिनो मे ही पकता था (इसे साठी का चावल कहते हैं और बरसात मे अब भी साठ दिन मे ही पकता है) ह्युएनत्साग ने लिखा है कि लोगो का साधारण भोजन घी, दूध, मक्खन, मलाई, खाँड, मिश्री, रोटियाँ, तेल आदि था। और जो मास खाते थे वे हरिण का मास और ताजी मछलियाँ खाते थे। फलों मे, इसने लिखा है कि इतने है कि नाम नही गिने जा सकते। आम्र, कपित्थ, आमलकी, मधूक, भद्रआमला, टिंडक, उदुम्बर, मोचा, पन्य नारियल, खजूर, लुकाट, नासपाती, बेर, अनन्नास, अगूर इत्यादि-इत्यादि अनेक नाम गिनाये हैं। लिखा है कि कश्मीर फल-फूल के लिए मशहूर था। शिक्षा के विषय मे लिखा है कि सात और सात बरस से अधिक के लड़को को पाँच विद्याये सिखाई जाती थीं जिनमे से दूसरी विद्या शिल्पस्थान विद्या थी, जिसमे कलाओ और यन्त्रो का वर्णन है। कपड़ो के बारे मे ह्युएनत्साग ने भारत के कारीगरो की बडी प्रशंसा की है। सूती, रेशमी, छालटी, कम्बल और कराल इन पाच प्रकार के वस्त्रो का वर्णन किया है। इनमे से कम्बल से अभिप्राय है बहुत बारीक ऊनी कपडे से जो बकरी के बहुत बारीक रोयें से बनते थे। कराल एक जगली जानवर के बारीक रोयें के बने कपडे होते थे। ऐसे कपडे अमीरो की फरमाइश पर ही बनते थे। बरोच और महाकच्छ की रूई सदा की तरह हर्ष के समय मे भी मशहूर थी उसके बारीक कपडे भी मशहूर थे। बुनाई की कला किस ऊँचे दर्जे को पहुँच चुकी थी इस बात का थोडा सा अन्दाजा बाण द्वारा वर्णित राज्यश्री के विवाह प्रकरण से हो सकता है। लिखा है कि "महल क्षौम, बादर, दुकूल, लाला तन्तुज, अंशुक और नैत्र से सुशोभित

१. बील—ह्यूएनत्साग, (अंग्रेजी) जिल्द २, पृ० २३२

ो सॉप के केंचुल की तरह चमकते थे और अकठोर केले के पेड़
ीतर के छिलके की तरह कोमल थे और इतने हलके थे कि सॉस
ड़ जा सकते थे। छूने से ही उनका पता लगता था। चारों ओर हज़ा
न्द्रधनुष की तरह चमक रहे थे।[1] क्षौम छाल के कपडों को कहते
ादर रुई के कपडों को कहते हैं, लाला तन्तुज उस कौशेय वस्त्र
हते हैं जिसके तन्तु कीडे की लाला या राल से बनते है। नेत्र वि
न विशेष की जड़ के रेशों से बने वस्त्र को कहते हैं और दुकूल ग
ीन रेशमी कपडे होते थे और अंशुक वह रेशमी कपड़े थे जि
ग किरणों की तरह बारीक और चमकीले होते थे। कपडा अ
कार के रेशों और तन्तुओं से बनता था। आज जिनका हमे
ी नहीं है और वह भी इतना बारीक बनता था कि छूने से ही प
गता था कि कपडा है। उस बारीकी को मिल के कपडे क्या पहुँचें
नने की कला इस हद को पहुँच चुकी थी तो साथ ही कातने
ला भी उसी हद तक पहुँच चुकी थी कि सूत के तार मुश्किल
़ पड़ते थे।

बृहस्पति संहिता से पता चलता है कि गॉववाले मिलकर पचा
नाते थे. या जब कारीगर अपनी पञ्चायत स्थापित करते थे
ह पञ्चायतनामा लिख लेते थे, जिसमें कोई खटके की बात न
ौर सब लोग अपने कर्तव्यों में बंधे रहे। जब कभी चोरों लु
ा बेकायदा सेनाओं का डर होता तो उसे सार्वजनिक विपत्ति सम

[1] हर्षचरित, चौथा उच्छ्वास, राज्यश्री के विवाह प्रकरण से।
"क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च
निर्मोकनिभैरकठोररम्भागर्भकोमलैर्निश्वासहार्यैः स्पर्शानुमेयैर्वासोभि
र्वतः स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिव सञ्छादित।

जाता था और उस जोखिम का मुकाबला सब मिलकर करते थे
जब कोई आम फायदे का काम किया जाता था, धर्मशाला, बावः
कुए, मन्दिर, बाग बगीचे आदि सबके लाभ के लिए बनवाने होते
या कोई सार्वजनिक यज्ञ करना होता था तब पञ्चायत या गाँव
सभा ही इन कामो को सम्पन्न करती थी।[२] पञ्चायत की स्थाप
के आरम्भ मे पहले परस्पर विश्वास दृढ़ करके किसी पवित्र वि
या लिखा-पढ़ी, या मध्यस्थ से निश्चय कराकर पञ्चायत का क
आरम्भ किया जाता था। पञ्चायत का काम करनेवाले उसके श्रे
और दो या तीन या पाँच और सहायक होते थे।[३] जो लोग इ
तरह कार्यचिन्तक चुने जाते थे वे वेद के धर्म को और अपने कर्त
को जानते थे, अच्छे कुल के होते थे और सब तरह के कारोब
जानते थे। पञ्चायतो के सम्बन्ध मे प्राय वही नियम अब
बरते जाते थे। जिनकी चर्चा हम पहले कर आये हैं। उनको य
दुहराना व्यर्थ होगा। इस काल मे कारीगरो की ऐसी कम्पनियाँ
बनी हुई थीं जिनमे पूँजी के बदले सदस्यो के कारीगरी के व
लगे हुए थे। बेगारी की चाल उस समय न थी। ज़रूरत प
पर सरकार या पञ्चायत काम भी लेती थी और पूरी मज
देती थी।

ह्युएनत्साग ने भारतवर्ष को बहुत समृद्ध और सुखी पाया।
पर सब तरह के लोगों मे धरती का ठीक-ठीक रीति से बँटवारा
खेती से थोडे खर्च मे बहुत-सा अनाज पैदा होता था और देश

१ बृहस्पति स्मृति १७।५ ६

२ बृहस्पति संहिता १७।११-१२

३ बृहस्पति संहिता १७।७ १७।१७ १७।९

पची हुई पैदावार व्यापारी लोग देश के बाहर ले जाते थे और बदले में सोना, रत्न और उत्तम-उत्तम वस्तुये लाते थे। संसार के सभी सभ्य भागों से व्यापार बड़े सुभीते से जारी था। सोने-चाँदी की अटूट धारा व्यापार के द्वारा भारत में [illegible] चली आती थी। इसी धन की प्रसिद्धि से मुसलमान कासिम ने सिन्धु देश पर चढ़ाई की और उसे अपने अधीन कर लिया। मुसलिम अधिकार का यही आरम्भ था और विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी में इसी धन के लोभ से महमूद गजनवी के आक्रमण पर आक्रमण हुए और उसने लूट-लूट कर खजाने भरे। उसके बाद शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने तो विदेशी लुटेरों के लिए खैबर का मार्ग खोल दिया और भारत में मुसलिम साम्राज्य की नींव डाली। सैकड़ो [illegible] बाद भारत की इसी धन की प्रसिद्धि ने कोलम्बस को अमेरिका [illegible] और पाताल का पता लगवाया, और वास्कोडिगामा से [illegible] पार कराया और खैबर की राह से लाखों तातारियों [illegible] और मुगलों से भारत पर आक्रमण कराया।

२ मुसलिम चढ़ाई के आरम्भ तक

पडोस मे घोर युद्ध हो रहा है। युद्ध करनेवाले खेती को कोई हानि न पहुँचाते थे। व्यापारी अपना माल लादकर देश-विदेश मे बेचने को लेजाता था। युद्ध करनेवाले सैनिक उनको नही छूते थे। सिन्ध के सिवाय और कही भी अहिन्दू राज न था। कन्नौज, मालखेड और मुगेर ये तीन बडे बडे साम्राज्य थे, पर ये अपने-अपने स्थान के साम्राज्य थे। ऐसा भी न था कि राजपूतो पर मराठो या मराठो पर बगालियो का राज हो। जहाँ कही भारत के और किसी प्रान्त का दूसरे प्रान्त पर अगर कोई आधिपत्य भी था तो वह इतना गौण था कि विदेशी राज-सा प्रतीत न होता था। किसानो की रक्षा और शान्त जीवन ने उन्हे राज के मामलो से इतना निश्चिन्त कर दिया था कि उनकी खेती-बारी अगर आज एक राजा के अधीन है और कल दूसरे राज्य में चली जाती है तो इस हेर-फेर से उनके कारबार में कोई बाधा नही पड़ती थी। उनके भूमिकर और ग्राम-स्वराज्य में कोई अन्तर नही पडता था। इस कारण देश मे क्रान्ति भी होजाय और राज्य कितना ही बदल जाय वे इस बात से बिलकुल बेपरवाह रहने लगे। उनकी बान पड़ गई कि कोई भी राज हो उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे। अलबेरूनी ने लिखा है कि राजा ज्यादा से ज्यादा छठा भाग कर लेता था। खेतो से, मजूरों से, कारीगरों से, व्यापारियो से सबसे उनकी आमदनी पर कर लिया जाता था। केवल ब्राह्मणो से कर नही लिया जाता था।

विक्रम की तेरहवी शताब्दी के पूर्वार्ध तक यहाँ के गाँवो का जैसा सस्थान था, प० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने कुछ अधिक विस्तार से दिया है। हम उसे ज्यो का त्यो उद्धृत करते है —

१ मध्यकालीन भारतीय सस्कृति पृ० १५३—१५५।

"शासन की सुविधा के लिए देश भिन्न-भिन्न भागों में बँटा हुआ
मुख्य-विभाग भुक्ति (प्रांत), विषय (जिला) और ग्राम थे।
मुख्य संस्था ग्राम संस्था थी। बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में
संस्थाओं का प्रचार था। ग्राम के लिए वहाँ की पंचायत ही सब
कार्य करती थी। केंद्रीय सरकार का उसीसे संबंध रहता था। ये
संस्थायें एक छोटा सा प्रजातन्त्र थीं, इनमें प्रजा का अधिकार था।
सरकार के अधीन होते हुए भी ये एक प्रकार से स्वतंत्र थीं।

प्राचीन तामिल इतिहास से उस समय की शासन-पद्धति का
त परिचय मिलता है, परन्तु हम स्थानाभाव से संक्षिप्त वर्णन ही
शासन कार्य में राजा को सहायता देने के लिए पाँच समितियाँ
थीं। इनके अतिरिक्त जिलों में तीन सभायें होती थीं। ब्राह्मण
में सब ब्राह्मण सम्मिलित होते थे। व्यपारियों की सभा व्यापा-
का प्रबंध करती थी। चोल राजराज (प्रथम) के शिलालेख
६० गाँवों में ग्राम-सभाओं के होने का पता लगता है। इन सभाओं
धिवेशन के लिए बड़े-बड़े भवन होते थे, जैसे तंजोर आदि में बने
हैं। साधारण गाँवों में बड़े-बड़े वटवृक्षों के नीचे सभाओं के अधिवेशन
थे। ग्राम-सभाओं के दो रूप—विचार-सभा और शासन-सभा—
थे। संपूर्ण सभा के सभ्य कई समितियों में विभक्त कर दिये
थे। कृषि और उद्यान सिंचाई, व्यापार, मंदिर, दान आदि के
भिन्न भिन्न समितियाँ थीं। एक समय एक तालाब में पानी
म आने के कारण ग्राम को हानि पहुँचने की सम्भावना होने पर
र सभा ने तालाब-समिति को इसका सुधार करने के लिए बिना सूद
या दिया और कहा कि इसका सूद मंदिर-समिति को दिया जाय।
कोई किसान कुछ वर्ष तक कर न देता था, तो उससे भूमि छीन

ली जाती थी। ऐसी ज़मीन फिर नीलाम कर दी जाती थी। भूमि बेचने या ख़रीदने पर ग्राम-सभा उसका पूरा विवरण तथा दस्तावेज़ अपने पास रखती थी। सारा हिसाब किताब ताड़पत्रादि पर लिखा जाता था। सिंचाई की तरफ़ विशेष ध्यान दिया जाता था। जल का कोई भी स्रोत व्यर्थ नहीं जाने पाता था। नहरों, तालाबों और कुओं की मरम्मत समय-समय पर होती थी। आय व्यय के रजिस्टरों का निरीक्षण करने के लिए राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त किए जाते थे।

"चोल राजा परातक के समय के शिलालेख से ग्राम-संस्थाओं की निर्माण-पद्धति पर बहुत प्रकाश पड़ता है। उसमें ग्राम-सभा के सभ्यों की योग्यता अयोग्यता सम्बन्धी नियम, सभाओं के अधिवेशन के नियम, सभ्यों के सार्वजनिक चुनाव के नियम, उपसमितियों का निर्माण, आय व्यय के परीक्षकों की नियुक्ति आदि पर विचार किया गया है। चुनाव सार्वजनिक होता था, इसकी विधि यह होती थी कि लोग ठीकरियों पर उम्मीदवार का नाम लिखकर घड़े में डाल देते थे, सबके सामने वह घड़ा खोलकर उम्मीदवार के मत गिने जाते थे और अधिक मत से कोई उम्मीदवार चुना जाता था।

"इन संस्थाओं का भारत की जनता पर जो सबसे अधिक व्यापक प्रभाव पड़ा वह यह था कि वह ऊपर के राजकीय कार्यों से उदासीन रहने लगी। राज्य में चाहे कितने बड़े बड़े परिवर्तन हो जायँ, परन्तु पंचायतों के वैसे ही रहने से साधारण जनता में कोई परिवर्तन नहीं दीखता था जन साधारण को परतन्त्रता का कटु अनुभव कभी नहीं होता था। इतने विशाल देश के भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए यह कठिन भी है कि वे गाँवों तक की सब बातों की तरफ़ ध्यान रख सकें।

भारतवर्ष में इतने परिवर्तन हुए, परन्तु किसी ने पंचायतों को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया।"

मुगल बादशाह अपने पतनकाल में जब भूमिकर अत्यधिक और बेदर्दी, कड़ाई और पशुता से वसूल करने लगे और ब्रिटिश सरकार ने भी वही नीति बराबर जारी रखी तो वही पचायतें अन्याचार और हृदयहीनता के साथ सहयोग न कर सकी और अन्तत टूट गई। पटवारी जमीदार, तहसीलदार उसके शहने, सिपाही सभी मनमानी करने लगे। प्रजा की सुननेवाला कोई न रह गया। अदालतें, वकील, मुख्तार, पेशकार, मुशी, मुहर्रिर, दलाल सबके सब किसान को बेतरह चूसने लगे और वह बेचारा बरबाद हो गया।

:७:

परमाध्यमिक काल

१. मुग़लों से पहले

तारीख़ फीरोज़शाही में वरनी ने अलाउद्दीन ख़िलजी के राज म इन भावो का विवरण दिया है, जिन पर कि उस समय के अनाज, तेल, घी, नमक आदि बादशाही हुक्म से बिकते थे। उसने जो भाव दिये हैं उनको आजकल के सयुक्तप्रान्त के माने हुए तौल मे नीचे दिया जाता है।

गेहूँ	एक पैसे में	दो सेर
जौ	,,	साढे तीन सेर
धान	,,	तीन सेर
खड़ी माश	,,	तीन सेर
चने की दाल	,,	तीन सेर
मोठ	,,	एक पसेरी
खांड	,,	साढे चार छटाक
गुड़	,,	अठारह छटाँक
मक्खन	,,	साढे चौदह छटाँक
तिल्ली का तेल	,,	साढे सत्रह छटाँक
नमक	,,	नौ सेर

यह भाव बादशाह के हुक्म से दिल्ली के लिए मुकर्रिर हो गये थे। कोई एक धेला भी नही घटा सकता था। यह इतना सस्ता है

कि जल्दी विश्वास नहीं होता, पर उस समय खाने-पीने की सब चीजें इतनी सस्ती थी कि इस भाव से लोग सन्तुष्ट थे। यह भाव उस समय सस्ते नहीं समझे जाते थे। यह इतने ऊँचे भाव थे कि सूखे के समय मे भी दिल्ली मे गल्ला भरा रहता था। भाव महँगा करने के लिए गल्ले की बिक्री रोक लेना या नाज को जमाकर रखना घोर अपराध था जिसके लिए बडा दण्ड मिलता था। किसानो को अपना लगान देने के लिए अनाज का एक भाग दे देना पड़ता था। अपने खर्च से ज्यादा बचा हुआ अनाज जहाँ पैदा होता था वही किसानों को बेच देना पडता था। कपडे, खाँड, शकर चीनी, घी और तेल सबके भाव बाजारो से ठहरा दिये जाते थे। सब व्यौपारियो को चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, ठहराये हुए भाव पर लेना-देना पडता था। व्यापारी लोग उसी बाजार मे अत्यन्त सस्ता खरीद कर उसके आस-पास अत्यन्त महगा नहीं बेच सकते थे। इस तरह बादशाहत के अन्दर सब बाजार कायदे कानून के अन्दर जकडे हुए थे। शहन-ए-मण्डी जिस किसी को कायदे के खिलाफ चलते हुए देखता था कोडे लगाता था। दुधार गाय तीन-चार रुपये मे और बकरी दस-बारह या चौदह पैसो में मिल जाती थी। कोई दुकान पर जो कम तौलता था तो वजन मे जो कमी होती थी, उसके चूतडो का मांस काटकर पूरी की जाती थी। जो दुकानदार जरा भी गडबड करता पाया जाता था लात मारकर बाजार से निकाल दिया जाता था। इसका फल यह होता था कि बनिये कुछ ज्यादा ही तौलते थे। बरनी ने इसके चार कारण बताये हैं। (१) बाजार के कायदो की सख्त पाबन्दी (२) रोकडो का कडाई से उगाहा जाना। (३) लोगो मे सिक्कों का [illegible] प्रचार (४) कर्मचारियों की निष्पक्षता और ईमानदारी।

फीरोजशाह के समय मे कर और भी घटा दिया गया। जिन खेतो की सरकारी नहरो मे सिचाई होती थी उनमे पैदावार का दहियक अर्थात पैदावार का दसवाँ भाग लिया जाता था। खाने पहनने की चीजें इतनी सस्ती थी कि अकाल के दिनो मे भी लोग सहज मे विपत्ति काट देते थे। महसूलो और लगानो की कमी मे खेती और व्यापार को बहुत लाभ हुआ। शम्स सिराज अफीफ ने नीचे लिखे भाव दिये हैं—

गेहूँ	एक पैसे मे	पौने दो मन
जौ	”	साढे तीन ”
और अनाज	”	” ” ”
दाल	”	” ” ”
घी	”	पौने तीन छटाक
चीनी	”	ढाई ”

कहते हैं कि उस समय विना खेती के धरती का एक टुकडा नही बचा था।

मध्यभारत मे बहमनी राज्यो के समय मे दशा कुछ बुरी न थी। इतिहास से पता चलता है कि जैसा प्राचीन काल से बराबर चला आता था उस समय गाँव-गाँव अपना स्वतन्त्र शासन रखते थे, हरेक गाँव मे पचायत रहा करती थी जिसका सरपच उत्तर भारत मे मुखिया या चौधरी कहलाता था और दक्षिण भारत मे अयगर कहलाता था। मुखिया या अयगरो को या तो पचायत की ओर से खेत मिल जाता था या फसल पर किसान लोग उपज का कुछ अश दे देते थे। यह अयगर या मुखिया पचायत की ओर से छोटे-छोटे मुकद्दमे फैसल करते थे, मालगुजारी उगाहते थे। अमन और शान्ति

रखते थे। इन्ही लोगो के द्वारा राजा और किसान के बीच सम्बन्ध बना रहता था। जान पडता है कि यही मुखिया या अयगर काल पाकर जमीदार बन गये। उस समय लगान जरूर बढ़ गया था परन्तु जितना बढ़ा हुआ था उस हिसाब से वसूल किया जाना सिद्ध नही होता। लगान के सिवाय पचासों तरह के और महसूल मुसलमान बादशाहो ने लगा दिये थे जिनका व्यवहार शहरो से अधिक था। चाहे इन सब उपायो से राज्य की आय बहुत बढ़ जाती रही हो परन्तु पूरा महसूल वसूल होकर शाही खज़ाने तक पहुँचने मे सन्देह है। यह बात सचाई से कही जा सकती है कि आमदनी के इन उपायों मे मुसलमान बादशाह भी किसान की भलाई का बराबर खयाल रखा करता था, तो भी किसान से अब बेगार ली जाने लगी। चराई और विवाह का महसूल भी लिया जाने लगा। आज-कल के मोटरावन, हथियावन, नचावन आदि भाँति-भाँति के 'आवनो' का अभी किसीने सपना भी नही देखा था। लोगो को चुगी के रूप मे नाज, फल, तरकारी, तेलहन और जानवरो पर भी महसूल देना पडता था। शहर में आने का रास्ता एक ही था और फाटक पर पहरा रहता था। इसलिए शहरवाले महसूल से बच नही सकते थे।

शुरू शुरू से जब मुसलमानो ने भारत पर चढाई की तो यहा से बहुत-सा धन लूट ले गये। पहले के मुसलमान बादशाहो में विजय की लालसा इतनी रहती थी कि वे बन्दोबस्त की ओर ध्यान नही देते थे। देश के भीतर अमन-चैन लाने का काम बलबन ने किया। उसने ठगो और लुटेरो से देश की रक्षा की और उनका दमन किया। मुसलमानो के राज मे कही-कही किसानो की दशा बिगड

गई थी परन्तु अब किसान शान्ति मे खेती करते थे और व्यापारी अपना माल एक देश से दूसरे देश मे बिना लुटे ले जाने लगे। फीरोज़शाह के समय मे जब घोर काल पडा तो दिल्ली मे अनाज तीन पैसे सेर तक[1] चढ़ गया। अलाउद्दीन के समय मे शाही भण्डारों और खत्तो मे अनाज रक्खा जाता था और अकाल के समय में सस्ता बिकता था। परन्तु उसके बाद उसके बनाये कानून टूट गये और चीजें मनमाने भाव पर बिकने लगी। मुहम्मद तुगलक के समय मे नक़ली सिक्को ने बहुत नुकसान पहुँचाया। कोई दस बरस तक घोर अकाल रहा। दो बरस मे सत्तर लाख रुपये तकावी के लिए किसानो को बाँटे गये। बादशाह ने शाही खत्तो से नाज निकलवा-कर बँटवाया और फकीहो और काजियो को हुक्म हुआ कि मुहताजो की फेहरिस्त बनावें। मुहर्रिरो के साथ काज़ी और अमीर गाँव-गाँव घूमकर अकाल-पीड़ितो को आदमी पीछे तीन पाव अनाज बाँटते थे। बडी-बड़ी ख़ानकाहे मदद बाँट रही थीं और कुतुबुद्दीन की ख़ानकाह मे जिसमे चार सौ साठ आदमी नौकर थे हजारो आदमी नित्य खिलाये जाते थे। हाथ की कारीगरी को बहुत बढावा मिला। चार सौ रेशम बुननेवाले सरकारी कारख़ाने मे काम करते थे और सब तरह की चीजें तैयार की जाती थी। वासफ के लिखने से मालूम होता है कि विक्रम की चौदहवी शताब्दी मे गुजरात एक बडा अमीर प्रात था जिसकी आबादी घनी थी। इसमे सात हज़ार

[1] आजकल अच्छी फसलो पर जो भाव होता है उससे उस समय के घोर अकाल का भाव तिगुना-चौगुना सस्ता था। अनाज की भी आज कमी नहीं है, पैसा तो उस समय की अपेक्षा बहुत सस्ता है। परन्तु क़िसान के पास पैसे कहाँ हैं?

गाँव और कस्बे थे और लोग धन सम्पत्ति मे रँजे-पुँजे थे। खेती से पैदावार बडी अच्छी होती थी। अगूरो की दो फसल हुआ करती थीं। धरती इतनी उपजाऊ थी कि कपास की शाखायें झाड़ की तरह फैल जाया करती थीं और एक बार के लगाने मे वही पौधे कई साल तक बराबर कपास की ढोडियाँ दिया करते थे। मारकोपोलो ने तो लिखा है कि कपास की खेती सारे भारत मे फैली हुई थी और कपास के पेड छ-छ हाथ ऊँचे होते थे, और बीस-बीस बरस तक कपास होती थी। मिर्चे, अदरक और नील बहुतायत से होती थीं। लाल और नीले चमडे की चटाइयाँ बनती थी जिसमे कि चाँदी और सोने के काम के पक्षी और पशुओ के चित्र कढ़े हुए होते थे। मारकोपोलो ने यहाँ के निवासियो को सुखी और समृद्ध पाया। व्यापार मे कुशल और कारीगरी मे दक्ष देखा।

चौदहवीं शताब्दी मे बगाल को इब्नबतूता ने बहुत सुखी और समृद्ध देश लिखा है। उसके समय मे वहाँ चीजे अत्यन्त सस्ती थीं और बहुत थोडी आमदनी का आदमी बडे ऐश आराम से गुजर करता था। इस समय के लगभग सारे भारत में सम्पत्ति और समृद्धि बढी हुई थी। दिल्ली और आसपास के प्रांतो की आमदनी सात करोड के लगभग थी और अकेले दुआबे की आमदनी पचासी लाख थी। चीजे इतनी सस्ती थी कि आदमी दो चार पैसे लेकर एक जगह मे दूसरी जगह की यात्रा कर सकता था। दिल्ली से फीरोजाबाद तक जाने के लिए गाडी मे एक आदमी की जगह के लिए दो आने देने पडते थे। एक खच्चर किराये पर कराने के लिए तीन आने देने पडते थे। छ आने मे किराये का एक घोडा मिल जाता था और एक अठन्नी देने पर एक पालकी मिल जाती थी।

काम के लिए कुली बहुत आसानी से मिल जाते थे और वे अच्छी कमाई भी कर लेते थे। सबके पास सोने और चाँदी की बहुतायत थी, हर औरत गहनों से लदी हुई थी, और कोई घर ऐसा न था जिनमें बड़े अच्छे बिछौने, गद्दे, मसहरियाँ और कोच न होते।

परन्तु १४ वीं शताब्दी से देश की दशा बिगड़ने लगी। व्यापार और खेती दोनों की दशा कुछ उतार पर हुई। चौदहवीं शताब्दी के अन्त में महवान नामक यात्री, जो चीनी च्वागहो के साथ आया था, लिखता है कि बंगाल में चावल की दो फसलें होती हैं और गेहूँ, तिल, तरह-तरह की दालें, ज्वार, बाजरा, अदरक, सरसों, प्याज, भंग, बैंगन और भाँति-भाँति की साग-सब्जी बंगाल में बहुतायत से होती है। केला और बहुत से फल बहुतायत से होते हैं। इस देश में चाय नहीं होती और मेहमानों को चाय के बदले पान दिया जाता है। नारियल, चावल, ताड़ आदि से शराब बनती है और बाज़ार में बिकती है। इस देश में पाँच-छः तरह के बहुत बारीक सूती कपड़े बुने जाते हैं। रेशमी रूमाल और टोपियाँ जिन पर सोने का काम होता है। चित्रकारी किये हुए सामान, खुदे हुए बरतन, कटोरे, इस्पात के सामान जैसे तलवार, बंदूक, छुरी कैंचियाँ सभी तरह की चीजें इस देश में तैयार होती हैं। एक तरह का सफेद कागज़ भी एक पेड़ की छाल से बनता है जो हरिन की खाल की तरह चिकना और चमकदार होता है।

१ धन की बहुतायत थी। सिक्कों की बहुतायत न थी। चाँदी सोने के गहने बनते थे। यह बहुमूल्य धातुयें उचित रीति पर कला के काम में आती थीं। आज इस दरिद्र देश में जब आदमी दानों को तरस रहा है, गहने कहाँ पावे। परन्तु गहनों का जहाँ थोड़ा बहुत रिवाज है वहाँ उसी प्राचीन कला की छाया समझनी चाहिए।

अकबर का राज्यकाल पिछले दो हजार बरसो के भीतर सब तरह से बहुत अच्छा समय समझा जाता है। यह समय आज से केवल साढे तीन सौ बरस पहले हुआ है। हम इस काल से अपने काल का मुकाबला कर सकते हैं। हम गेहूँ के भाव को प्रमाण मान ले तो आज कल उसे पन्द्रह-सोलह गुना बढ़ा हुआ पाते हैं। दूध का भाव ग्यारह गुना बढा हुआ है। घी सोलह गुना ज्यादा मँहगा है। परन्तु मजूरी का भाव कितना बढ़ा? पहले एक रुपया रोज मे बीस मजूर या बीस कुली मिल जाते थे। आज शहरो में ज्यादा से ज्यादा बडा रेट दस रुपये मे बीस कुली है। इस तरह चीजो का भाव जितना ऊँचा चढ गया है उतनी ऊँची मजूरी नही चढ़ी। होशियार से होशियार बढ़ई सवा रुपये रोज मे मिलता है। उस समय ग्यारह पैसे रोज मे मिलता था। बढई की मजूरी साढे सात गुनी से ज्यादा नही बढी। यह नतीजा निकालने मे किसी अर्थशास्त्री को सकोच नही हो सकता कि उस समय से इस समय मँहगी सोलह गुनी बढ़ गई है और मजूरी उसके मुकाबले मे बहुत कम बढी है। इससे मजूरो की दशा उस समय के मुकाबले मे बहुत गिरी हुई है। लगान उस काल मे अधिकाश पैदावार का ही एक अश लिया जाता था। किसान प्राय रुपये नहीं देता था इसलिए जब जितनी पैदावार हुई उतने का निश्चित अश ही देना पडा। आज तो ऐसा नही है। आज देने की रकम बन्दोबस्त के समय से अन्धाधुन्ध बढ जाती है, फिर चाहे सूखा पडे या चाहे टिड्डी लग जायें या बाढ बहा लेजाय, पर किसान को सरकारी लगान उतना ही देना पडता है। किसी खेत मे, जहाँ बीस मन अनाज होता था वहाँ दो मन लगान मे दे दिया जाता था। उसी खेत मे जब केवल दस मन होता तो लगान भी मन ही मन भर दिया जाता था और इतने

ही मे किसान का देना चुकता समझा जाता था। आज अगर किसी खेत के लगान के बीस रुपए देने हैं तो वह रकम देनी ही पड़ेगी, चाहे पैदावार कितनी ही कम हो। इस तरह उस समय के मुकाबले इस समय किसान की हालत बिलकुल रद्दी है।

तीसरी बडी बात यह है कि बादशाहों की ओर से जो कुछ लगान मुकर्रर होता था, वह सबका सब वसूल नहीं हो सकता था। आज लगान जिस कड़ाई से वसूल किया जाता उससे भी किसान की बिलकुल बरबादी है।

२. मुग़लों का समय

अकबर के समय मे खेती और किसानो की दशा वैसे ही अच्छी थी जैसी कि पठान बादशाहो के समय मे थी। अलाउद्दीन के समय मे खाने-पीने, पहिनने की चीज़ो के जो भाव मुकर्रर कर दिये गये थे, उनकी पाबन्दी बडी कड़ाई से होती थी। परन्तु अकबर के समय मे वह कड़ाई नही थी, तो भी सभी चीज़ें बहुत सस्ती थीं। इससे पता चलता है कि उस समय के लोग बहुत सुखी और धनवान थे। उसके समय मे जो सिक्का चलता था और जिस मन के तौल का प्रमाण माना जाता था उसका वर्णन आईने अकबरी मे मौजूद है। आजकल जो सिक्के चलते हैं और जो तौल का प्रमाण है वह तब से बहुत भिन्न है। हिसाब लगाकर हमने नीचे आजकल के हिसाब से उस समय के हिसाब दिये हैं—

गेहूँ	एक पैसे में	तेईस छटा
जौ	,,	पैंतीस ,
उत्तम से उत्तम चावल	,,	ढाई ,

अत्यन्त मामूली चावल	,,	चौदह	,,
मूंग की दाल	,,	साढे पंद्रह	,,
माश की दाल	,,	सत्रह	,,
मोठ की दाल	,,	तेईस	,,
चना	,,	साढे सोलह	,,
ज्वार	,,	अट्ठाइस	,,
सफेद चीनी	,,	सवा दो	,,
शकर	,,	पांच	,,
घी	,,	पौने तीन	,,
तिल का तेल	,,	साढे तीन	,,
नमक	,,	सत्तर	,,
दूध	,,	ग्यारह	,,

इस तरह गेहूँ रुपये मे सवा दो मन से ज्यादा मिलता था और मामूली चावल डेढ मन के लगभग मिलता था। सबसे उत्तम प्रकार का चावल दस सेर का था। घी रुपये मे साढे दस सेर पडता था। दूध का भाव एक रुपये मे नौ पसेरी था। और सब तरह की चीजें भी इसी तरह के भाव पर मिलती थीं। मामूली भेड रुपये डेढ रुपये मे मिल जाती थी। भेड का मास एक रुपये मे अठारह सेर मिलता था। मजूरी भी बहुत सस्ती थी। रुपया रोज मे बीस मजूर काम कर सकते थे। बडा ही होशियार बढ़ई ग्यारह पैसे रोज मे काम करता था। एक मर्द के लिए एक महीना भर के अनाज का खर्च साढे तीन आने से ज्यादा नही था। उस समय का अमीर से अमीर आदमी अपने भोजन मे आठ आने महीने से ज्यादा खर्च नही कर सकता था। शहर के रहनेवाले पांच आदमियो के एक अमीर परिवार का

सारा खर्च तीन रुपये महीने से ज्यादा नही होता था। यह शहर के रहनेवालो का खर्च हुआ। देहात के रहनेवालो को तो पैसे खर्च करने का कोई काम न था। खेत की पैदावार से ही जब शहरवाले जीते थे, तब देहातो के क्या कहने हैं।

कताई और बुनाई का काम पहले की तरह सारे भारत मे फैला हुआ था और अब इन कामो मे मुसलमान भी पूरा हिस्सा ले रहे थे। राजधानी आगरे मे और फतहपुर-सीकरी मे बारीक कपडो के सिवाय शतरजी, कालीनें और बहुत अच्छे-अच्छे फर्श और पर्दों के कपडे भी बुने जाते थे। गुजरात मे पाटन और खान देश मे बुरहानपुर और ढाके मे सुनारगाँव सूती कपडो के लिए मशहूर थे। इन कपड़ो का नाम ही ढाका, पाटन, बुरहानपुरी और महमूदी आदि मशहूर था। सब तरह के सूती माल का खास बाज़ार बनारस था। पटने मे भी कपास, खद्दर, खाँड, अफीम आदि का बड़ा भारी व्यापार था। फैज़ाबाद जिले का टाँडा रुई के माल का बहुत बड़ा बाज़ार था। गाँव के उद्योग-धन्धे जैसे युगो से चले आते थे अकबर के समय में भी उसी तरह से बराबर हो रहे थे। उसमे किसी तरह की कमी नही आई थी। गाँव और किसान और उसके जान माल की रक्षा कुछ तो किसान आप ही कर लेता था, कुछ पञ्चायत के प्रबन्ध से होता था और कुछ सरकारी बन्दोबस्त भी था। कोई ऐसा कारण समझ मे नही आता कि हम किसान को आज के मुकाबले उस समय कम सुरक्षित समझें। आज भी लुटेरो से किसान उसी तरह सुरक्षित है जैसे उस समय था। परन्तु अकबर सहृदय शासक था और आज का शासन निष्प्राण हृदयहीन यत्र है, जो निस्सहाय किसान को चूसकर उसका सारा तेल निकाल लेता

ार उसे रक्तहीन छोड़ देता है। किसान की क्या रक्षा हुई? इस
त्र मे उसकी रक्षा करनेवाला कौन है?

जहाँगीर और शाहजहाँ तो अकबर के पद चिन्ह पर चलते थे।
नके समय मे गावो की दशा, भारत की आर्थिक और सामाजिक
ा वैसी ही रही जैसी अकबर के समय मे। औरंगजेब के समय
अवनति का कुछ आरम्भ हुआ। उसके बाद के बादशाहो ने तो
टिया ही डुबोई।

३ औरंगजेब काल और ब्रिटिशों का चूसनेवाला रोजगार

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक वोल्ट्स नामक कर्मचारी ने लिखा
कि सवत १६४७ मे मलवार के समुद्रतट पर अंग्रेजी बेडे ने
न्दुस्तानी जहाजो की अन्धाधुन्ध लूट की और अपार धन इकट्ठा
र लिया। वगाल मे जाव चानाक नाम के अफसर के अधीन, जो
क हुगली मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सवसे वडा कारखानेदार था,
अंग्रेज सेना के भाग्य ने वहुत से पलटे खाये। वम्बई मे कम्पनी के
वर्नर सर जान चाइल्ड ने अपने नासमझी के व्यवहार से सम्वत
७४३ के आषाढ के महीने तक युद्ध जारी रखा। यह व्यवहार
म्पनी के लिए घातक ठहरा क्योकि इसमे कम्पनी के साठ लाख से
अधिक रुपये का नुकसान हुआ। उनके साथ जो रिआयतें की गई थी
छिन गई और भारतीयो और मुगलो के बीच मे उनकी साख
ठ गई। सूरत के सूबेदार सैदी याकूब ने वम्बई पर दखल कर लिया,
कम्पनी के कारखानेदारो को कैद कर लिया और उनकी गर्दनो मे
जंजीर बँधवाकर सड़को पर फिराया।

३	लिसबन		११७३३५३
४	अमेरिका (सयुक्तराज्य)	७५०९६)	४०६२१३२
५	लंका		१०३९४४
६	सुमात्रा		८५०८९
७	कारोमण्डल का किनारा	११५३९०)	(विशेपत माल) ४०१७९२
८	खलीज, फारस और अरब		८४५७८८
९	पेगू		८२७५४
१०	पूलोपिनेंग पूर्ववर्ती देश		८१६३१७
११	बटेविया		९१५९९६
१२	चीन	१८२१२७)	३७९४६९

नोट—चीन को २८८४६१६) की रूई भेजी गई ।

ऊपर लिखी सारिणी में जो बाहरी व्यापार का प्रमाण मिलता है वह इतना तो स्पष्ट कर देता है कि भारत के गाँवो मे कताई-बुनाई का काम बडे जोरो से चल रहा था। दक्षिण भारत मे भी इस काम मे किसी तरह की ढिलाई न थी। दक्षिण भारत के बने कपडे मछली-पट्टम के बन्दरगाह से बाहर के देशो मे जाया करते थे। दक्षिण मे बुरहानपुर मे कपडो के शाही कारखाने थे और मछलीपट्टम मे और उसके आसपास के अनगिनत गाँवो मे भाँति भाँति की छीटें तैयार होती थी और ससार मे भारत का नाम फैलाती थी। गोलकुण्डा के राज में खान से हीरे, जवाहिर की खुदाई होती थी और गाँव-गाँव मे इस तरह के कारबार थे। राजधानी हैदराबाद के पास के दो गाँव निर्मल और इन्दूर मे लोहे का कारबार इस दर्जे को पहुँचा हुआ था।

कि निर्मली और इन्द्री तलवारें, बरछे और खंजर यहीं से सारे भारत में जाते थे। और दमिश्क की मशहूर तलवार के लिए यहीं से लोहा जाता था और शमशीर हिन्द का नाम मशहूर करता था। हीरे और सोने के लिए गोलकुण्डा का राज संसार में प्रसिद्ध था। और मछलीपट्टम के बन्दरगाह से भारत के जहाज संसार के समुद्रों में आते जाते थे। खेती उसी तरह वहाँ भी उपजाऊ थी जैसी कि उत्तर भारत में। और जगलों की पैदावार उसी तरह धन-धान्य देनेवाली थी। सारे भारत में जहाँतक किसानों का सम्बंध है निरन्तर शान्ति का साम्राज्य था। किसानों का इतना आदर था कि कड़ाई करनेवाले हाकिमों की जब लोग शिकायत करते थे तो वह बहुत करके बरखास्त कर दिये जाते थे। शाहजहाँ ने दाराशिकोह को राजगद्दी पाने के लिए अपनी बीमारी में ही उपदेश किया कि किसानों को और सेना को खुश रखना। औरंगजेब ने अपने लड़कों को रैयत को खुश करने के लिए बारम्बार उपदेश किया है। इन बादशाहों का जैसा उपदेश था वैसा ही अपना आचरण भी था। औरंगजेब की बादशाहत के जमाने में प्रजा को कुछ कष्ट होने लगा। प्रजा पर जुल्म होने लगा। औरंगजेब अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक कट्टर था। हिन्दुओं पर उसकी कड़ी निगाह थी। उसने सारी हिन्दू प्रजा पर जजिया लगाया और मुसलमानों का पक्षपात किया। साधारणतया कई प्रकार के महसूल जो हिन्दुओं को देने पड़ते थे मुसलमानों को नहीं देने पड़ते थे। अनेक अपराधों में मुसलमान छोड़ दिया जाता था क्योंकि काफ़िर हिन्दुओं के विरुद्ध अपराध करने में मुसलमान पापी नहीं समझा जाता था। किसान शान्ति के साथ मेहनत करता था परन्तु लड़ाई के कारण शत्रु या दलवान इसी तरह इसे

लूट लेता था या उसके धन का अपहरण कर लेता था। सम्वत १७१५ और १७१६ के लगभग इन्ही कारणो मे अनाज मँहगा बिकने लगा था। नाके-नाके पर, घाटो पर, पहाडी गुजरगाहो पर और सरहदो पर जो माल गुजरता था उस पर राहदारी का माल का दशमांश महसूल देना पडता था। यह कहलाता था राहदारी का महसूल। परन्तु महसूल लेनेवाले लोग जुल्म करते थे और कडाई करते थे और कई गुना अधिक वसूल कर लेते थे। इससे किसानो के ऊपर सारा बोझ आ पडता था। औरगजेब ने पीछे इस तरह के महसूल उठा दिये तब कही जाकर भाव सुधरे और अनाज ठीक तरह से बिकने लगा।

इन सब बातों के होते हुए भी मुगलो के साम्राज्य के अन्त मे भी गल्ले का भाव प्राय अकबर के समय के ही लगभग रहा।

: ८ :

कम्पनी का कठोर राज्य

ईस्ट इण्डिया कम्पनी सवत् १६५७ मे ७० हजार पौंड की पूँजी के साथ भारत मे रोजगार करने के लिए कायम हुई थी। उस समय इंगलैण्ड की सरकार ने उसे एक हुक्मनामा देकर भारत के साथ रोजगार करने का इजारा दे दिया था। कम्पनी के सिवाय इंग्लैण्ड का कोई वाशिन्दा भारत के साथ रोजगार नही कर सकता था। कम्पनी का यह हुक्मनामा हर बीसवें बरस बदला जाता था। भारत मे अशान्ति और बदइन्तजामी होने से कम्पनी भारत की मालिक बन गई, किन्तु इंग्लैण्ड मे उसका वही पहला ही पद बना रहा। उसके हुक्मनामे का हर बीसवे वर्ष बदला जाना जारी रहा।

विक्रम की अठारहवी शताब्दी तक भारत के लोग जैसे अनाज उपजाते थे वैसे ही हाथ की कलाओ मे भी कुशल थे। भारत के करघो से बने हुए कपडे एशिया और यूरोप के बाजारो को भरे हुए थे। परन्तु देश की इस कोमल कला को आर्थिक कूटनीति और लूट की भारी भुजाओ ने दबा लिया। युगो के ठोस उद्योग और रोजगार को कुचल डाला। देश को विदेशी कपडो के सबसे बडे मोहताज की दशा को पहुँचा दिया। इस प्रलयकारी फेरफार से भारत का दर्जा सबसे बडे बेचनेवाले से, सबसे बडा खरीदनेवाला हो गया। बात यह थी कि पार्लमेण्ट और ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने व्यापार मे हर तरह अपना स्वार्थ देखा। पहले तो उन्होंने भारतवर्ष मे कार-

खाने खोले, और उन कारखानो मे यहाँ के दस्तकारो को काम करने के लिए मजबूर किया। धीरे-धीरे उन्होने जहाँतक बन पडा, देश के भारतीय कारखानो को हथिया लिया अथवा बन्द करा दिया। परन्तु जब विलायत मे वहाँ के कारीगरो ने बहुत हल्ला मचाया, तब बाधक कर लगाये गये।

विक्रम की उन्नीसवी सदी के प्रारम्भिक काल मे, विलायत की दस्तकारियो को बढाने के लिए उन्होने हिन्दुस्तानी माल को विलायत जाने से रोकनेवाले कानून बनाये। उनकी यह निश्चित नीति रही कि भारत विलायत की दस्तकारियो की उन्नति का एक साधन बन जाय और वहाँ के कारखानो तथा करघो के लिये कच्चा माल तैय्यार करनेवाला एक देश ही रह जाय।

इस नीति का पालन सख्ती से किया गया और इसमे उन्हे सफलता प्राप्त हुई। भारत मे रहनेवाले गोरे अधिकारियो को कम्पनी के कारखानो मे काम करने के लिए, भारतीय दस्तकारो को लाचार करने की आज्ञा दी गई। भारतीय जुलाहो के गाँवो तथा उनकी जातियो के ऊपर, कम्पनी के व्यापारिक रेजिडेण्टो को बहुत बढ़े-चढ़े अधिकार दिये गये। अधिक महसूल लगाकर भारत के सूती और रेशमी कपडो का विलायत जाना रोका गया। अग्रेजी चीजे बिना महसूल दिये ही, या कुछ नाम भरके महसूल पर भारत मे आने दी गईं।

इतिहासवेत्ता विलसन के शब्दो मे, ब्रिटिश दस्तकार ने राजनीतिक हथियारो से अपने मुकाबलेवाले हिन्दुस्तानी कारीगर को दबाया। क्योकि दोनो को बराबर सुभीते होते तो ब्रिटिश कारीगर हिन्दुस्तानी का सामना न कर सकता। फल यह हुआ कि यहाँ के

लाखों दस्तकारों की रोज़ी मारी गई और यहाँ की सम्पत्ति के उप-जाने का एक द्वार ही बन्द हो गया।

इस देश के ब्रिटिश कालीन इतिहास मे इस दु:खद घटना का वर्णन इसलिए जरूरी है कि हम समझें कि हम इतने दरिद्र क्यो हैं। और हमे खेती का ही अकेला सहारा क्यो रह गया है। यूरोप मे भाप के बल मे चलनेवाले करघों के चल पडने से हमारे कारीगर बरबाद हो गये और जब हमारे यहाँ कल कारखाने चले तो इंग्लिस्तान अन्याय और डाह से काम लेने लगा। उसने हमारी सूत की कारीगर पर कर बैठा दिया। इसका फल यह हुआ कि हमारे कारीगर जापानी और चीनी दस्तकारों के मुकाबले के भी नही रहे। तबसे यह कर हमारी भाप से चलनेवाली नई कलो का गला घोटता रहा है। जिन लाखो करोडो दस्तकारो की रोजी मारी गई, वे बेचारे अपने-अपने गाँवो मे मजूरी और खेती आदि धधो पर टूट पडे जिसे जो रोजगार पेट पालने को मिला कर लिया। बेचारे लाचार होकर भगी डोम तक का काम करने लगे। जमीन बढी नही, खेतिहर बढ गये। पैदावार घट गई, खानेवाले बढ गये। इक्के-दुक्के काम करनेवाले ज्यादा रोटी के लालच मे विदेशो मे काम करने चले गये, गाँव उजड गये। ससार के अनेक निर्जन टापू गुलामो से बस गये।

इगलिस्तान मे सवत् १८५५ तक भूमिकर लगान के सैकडा पीछे ५ और २० के बीच मे था। उस समय के प्रधान मन्त्री पिट ने उसको सदा के लिए ठहरा दिया। यहाँ सवत १८५० और १८७६ के बीच मे वगाल भूमिकर लगान का सैकडा पीछे ९० और उत्तरी भारत मे सैकडा पीछे ८० रक्खा गया। यह सच है कि इतना भारी भूमिकर लगाने मे अग्रेजी सरकार ने अपने पहले के मुसलमान बादशाहो की ही नकल की थी। परन्तु इन दोनो मे यह अन्तर था कि मुसलमान शासक जितना माँगते थे उतना कभी वसूल नही कर पाये। परन्तु अग्रेज सरकार जो कुछ माँगती रही है उसे कडाई के साथ वसूल भी करती आई है। वगाल के अन्तिम मुसलमान हाकिम ने अपने राज के आखिरी साल सवत् १८२१ मे सवा करोड से कम ही रुपये मालगुजारी वसूल की थी। वगाल से अग्रेजी सरकार तीस वर्ष के अन्दर ही ४ करोड २ लाख रुपये साल की मालगुजारी वसूल करने लगी। सवत् १८५६ मे अवध के नवाब ने इलाहाबाद और कुछ और जिले अग्रेजी सरकार को दिये, जिनसे वह २ करोड २॥ लाख रुपये वार्षिक मालगुजारी माँगता था। तीन वर्ष के भीतर अग्रेजी सरकार ने इनकी मालगुजारी वढाकर २ करोड ४७॥ लाख रुपये से भी अधिक करदी। मद्रास मे पहले पहल ईस्ट इडिया कम्पनी ने भूमिकर नियत किया। वम्बई मे सवत् १८७४ मे मराठो से जीती हुई भूमि की मालगुजारी १ करोड २० लाख रुपये थी। कुछ ही वर्षों के अग्रेजी शासन के पीछे वह वढाकर सवा दो करोड रुपये कर दी गई और तब मे वह लगातार वढती ही जा रही है। पादरी हैवरन ने समस्त भारत मे यात्रा करने और सव अग्रेजी तथा देशी राज्यो का निरीक्षण करने के पीछे सवत् १८८३ मे लिखा था कि "कोई

अपने मेहनत मजदूरी और औजारों, चौपायों इत्यादि में लगे हुए धन पर लाभ के सिवा कुछ भी नहीं बचता। हर तीसवें बरस नया बन्दोबस्त होता है। किसान जान भी नही पाता कि उसका लगान किस कारण से बढाया जा रहा है। उसके सामने बस दो रास्ते रह जाते हैं, या तो वह बढे हुए लगान को मान ले या अपने बाप दादों के खेत को छोडकर भूखो मरे। लगान की यह आये दिन की घट बढ खेती को बढने नही देती। किसानो को कुछ बचत भी नहीं होने देती और उन्हे दरिद्र और कर्जदार बनाये रखती है।

भारत मे भूमिकर केवल भारी और डावाँडोल ही नही है, बल्कि जिन सिद्धान्तो पर लगान बढ़ाया जाता है वे जग से निराले हैं। और देशो की सरकार जनता का धन बढाने मे सहायता देती है, अपनी प्रजा को धनी और रॅजी-पुॅजी देखना चाहती है और फिर उसकी आय का बहुत थोडा अश उसकी रक्षा के लिए मॉगती है। भारत की सरकार कर लगाकर धन के इकट्ठा होने मे बाधा डालती है। किसानों की आय को रोकती है और लगभग हर नये बन्दोबस्त के समय अपनी मालगुजारी बढाकर किसानो को सदा ही दरिद्र रखती है। इग्लैण्ड, फ्रास, जर्मनी, सयुक्तराज्य आदि देशो मे सरकार अपनी प्रजा की आय बढाती है, उसकी वस्तुओ की खपत के लिए नये-नये बाजार ढूढती है भरसक बाजारो के ऊपर अधिकार जमाने की चढा ऊपरी मे महासमर तक हो जाते हैं, उनकी आय के लिए नवीन द्वार खोलती है उनकी भलाई के लिए मर मिटती है, और उनके बढते हुए ऐश्वर्य के साथ आप भी ऐश्वर्यवाली बनती है। भारत मे अग्रेजी सरकार ने न तो नई दस्तकारियो के चलाने मे सहायता दी, और न उसकी पुरानी दस्तकारियो को ही नया जीवन दिया है.

उलटे वह हर बन्दोबस्त के समय भूमि की पैदावार से मनमानी आमदनी करने के लिए उलट-फेर किया करती है। मद्रास और बम्बई में लोग हर नये बन्दोबस्त को अपने और सरकार के बीच एक युद्ध समझते हैं, जिसमें सरकार और प्रजा के बीच परस्पर स्वार्थों की छीना झपटी होती रहती है। और इस लड़ाई का निर्णय करने के लिये कानून में कोई ठीक विधान या सीमा नहीं है। माल के हाकिमों का फैसला आखिरी होता है जिसकी कहीं अपील नहीं है। सरकार की आय और प्रजा की दरिद्रता नित्य बढ़ती ही चली जाती है।

धरती से जल खींचकर सूर्य्य मेघ बनाता तो है परन्तु वह मेघ अपने लिए नहीं बनाता। वर्षा के रूप में हजार गुना अधिक फैला कर उसी धरती को लौटा देता है।' कवि ने अपने यहाँ कर या लगान लेने की नीति का इसी तरह हजारों गुना अधिक बखान किया है। परन्तु भारतभूमि से खींचा गया कर रूपी जल आज विदेशों में ही बरसता और विदेशों को ही उपजाऊ बनाता है। हर देश उचित रीति से यही चाहता है कि उसके देश से वसूल किया गया टैक्स या कर वहीं खर्च किया जाय। अंग्रेजों के आने से पहले भारत के बुरे से बुरे हाकिमों के समय में भी यही बात थी। पठान और मुगल बादशाह जो अपार धन सेना में खर्च करते थे पर उससे तो यहीं के बाजार में बड़े-बड़े घरानों का और लाखों परिवारों का पालन

होता था। वे जो बड़े-बड़े सुन्दर महल बनाने में या सुख और भोग-विलास की चीज़ों में या दिखावटी ठाट-बाट में धन लगाते थे, वह धन इसी देश के कारीगरों और दस्तकारों के हाथ में जाता था और उनका हौसला बढ़ाता था। सरदार, सूबेदार, सेनापति, दीवान, काज़ी और उनके छोटे हाकिम भी अपने मालिकों की देखादेखी वैसा ही बरताव करते थे, और अनेकों मस्जिद, मन्दिर, सड़कें, नहरें और तालाब उनकी उदारता के गवाह हैं। वे धन को बेहिसाब उड़ाते भी थे तो वह उड़कर भी भारत के ही वायुमण्डल में फैल जाता था, कहीं बाहर न जाता था। बुद्धिमान और मूर्ख दोनों तरह के शासकों के समय में भी कर के रूप में वसूल किया हुआ धन लौट कर प्रजा के ही व्यापार और दस्तकारियों को बढ़ाता था। पर भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य का आरम्भ होते ही दशा बदल गई। कम्पनी भारत को एक बड़ी जागीर या बड़ा खेत समझती थी, जिसका लाभ यहाँ से जाकर यूरोप में जमा होता था। भारत की सरकार में मोटी तनख्वाहोंवाले और आमदनी के जितने ओहदे थे, कम्पनी अपने देशवालों को ही देने लगी। भारत की आय से व्यापार की वस्तुयें मोल लेती थी और फिर उन्हें अपने निजी लाभ के लिए योरप में ले जाकर बेचती थी। व्यापार में लगी हुई अपनी पूँजी का भारी व्याज वह भारत से कड़ाई के साथ वसूल करती थी। साराश यह कि भारत में भारी कर से जो कुछ वसूल किया जा सकता था, उसमें से बहुत ज़रूरी बन्दोबस्ती खर्चों के पीछे जो कुछ बचता था, वह किसी न किसी तरह योरप पहुँचाया जाता था।

: ६ :

विक्टोरिया के राज से वर्त्तमान काल तक

१. भारत का रक्त चूसा जाना

जब सम्वत् १८९४ मे अग्रेजी राजगद्दी पर विक्टोरिया बैठी उस समय कम्पनी ने भारत की जितनी हानि करनी थी कर ली थी। भारत के रेशमी रूमाल यूरोप मे अब भी बिक रहे थे और यहाँ के तैयार रेशमी माल पर अब भी वहाँ कडा महसूल लगता था। पार्लमेण्ट ने कमीशन बैठाकर इस बात की जाँच की कि ब्रिटिश करघों के लिए भारत मे रुई कैसे उपजाई जा सकती है यह न पूछा कि भारतीय करघो की बढती कैसे करायी जाय। लगातार [illegible] बरसों के लगभग भारत के गोरे प्रभुओं की नीति यही रही है कि ब्रिटिश कारखानो की बढती भारत के द्वारा कैसे की जाय। भारत के कारीगरो की भलाई का कोई ख्याल नही रहा। भारत की रुई [illegible] जो जहाजो मे भर भर कर विलायत भेजी जाती थी वह [illegible] अपने का [illegible] होती गई।

कर दिया। सम्वत १९२१ में यही लगान की आधी मालगुजारी का हिसाब दक्षिण भारत पर भी लगा दिया गया। ससार के किसी सभ्य देश मे खेती के मुनाफे के ऊपर आधो आध आय कर का लगाना आज तक सुना नही गया। पर इतने पर भी सन्तोष होता, तो भी बडी बात।

सम्वत् १९१५ मे कम्पनी का राज समाप्त हो गया। पार्लमेण्ट के अधिकार मे आजाने पर भी भारत को लेने के देने ही पडे। पार्लमेण्ट ने कम्पनी के हाथो से भारत की जागीर को खरीद कर अपने हाथ मे कर लिया और इसी जागीर के मत्थे ऋण लेकर कम्पनी का देना चुका दिया। कम्पनी ने जो टोटा उठाया था, वह भी भारत के मत्थे मढा गया। साल-साल भारत ही के मत्थे सूद भी चढने लगा। लडाई चाहे ससार में अंग्रेजो को कही भी लडनी पडी तो किसी न किसी तरह वादरायण सम्वन्ध जोडकर उसका खर्च भी भारत की ही जागीर पर लादा गया। रेलें निकली तो मुनाफा विलायत गया, और टोटा भारतीय जागीर को सहना पडा। इस तरह पार्लमेण्ट के राज ने भारत की जागीर को और भी अधिक निठुराई से चूसना शुरू किया। भूमि और नमक इन दोनो के ऊपर कडे से कडा महसूल लगने लगा।

सम्वत १९३२ मे स्वर्गीय लार्ड सैलिसबरी भारत मन्त्री थे। उन्होने उसी साल अपनी एक रिपोर्ट में इस प्रकार लिखा था—

"भारतीय राजस्व-पद्धति के बदलने की जहाँ तक गुँजाइश है, वहाँ तक इस बात की भारी जरूरत है, कि किसान को जितना देना पडता है उससे कुछ कम ही, कुछ देश के राजस्व के नाते व, दिया करे। नीति की ही दृष्टि से यह कोई किफ़ायत की नीति नहीं है कि राजस्व

की प्राय: सारी मात्रा उन देहातों में ही निकाली जाय, जहाँ पूंजी अत्यन्त महँगी है, और उन शहर के हिस्सों को छोड़ दिया जाय, जहाँ धन बेकार पड़ा हुआ है, और ऐशोआराम में बर्बाद होता है। भारत के सम्बन्ध में तो यही हानि पहुँचाई जाती है, क्योंकि वहाँ से माल-गुज़ारी का इतना बड़ा अंश बदले में बिना कुछ मिले हुए देश के बाहर चला जाता है। जब भारतवर्ष का लोहू बहाना ही है, तब नश्तर उन हिस्सों में लगाना चाहिए, जिनमें लोहू जमा हो, कम से कम काफ़ी हो। उन अंगों में नहीं लगाना चाहिए, जो लोहू के बिना दुबले और कमज़ोर हो चुके हैं।"

लार्ड सेलिसबरी की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वही पुरानी कहानी बार-बार दोहराई जाती रही। हर बीसवें और तीसवें बरस बन्दोबस्त होता रहता है, और हर नये बन्दोबस्त पर मालगुजारी बढ़ती ही रहती है। कहने को तो लगान की आधी ही मालगुजारी ली जाती है परन्तु असल में तो बम्बई और मद्रास में इससे तो बढ़ी ही रहती है। मालगुजारी में और कई तरह के महसूल भी जोड़ दिये गये हैं, जिनको बढ़ाने में सरकार को तनिक भी संकोच नहीं होता। संसार में कौन ऐसा देश है जिसमें धन भी इस निठुराई से चुसाई हो तब भी उसकी खेती बर्बाद न हो जाय। भारत के किसान थोड़े में गुजर करनेवाले होते हैं परन्तु तो भी वे दरिद्र हो गये हैं, खोखले हो गये हैं, और सदा दुर्भिक्ष और अकाल की भयानक सूरत उनके द्वार पर खड़ी रहती है। श्री रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं —

वह धन भी जोड़ लिया जाय जो यहाँ के विलायती अफ़सर हर साल अपने वेतन से बचाकर इंगलिस्तान भेजा करते हैं, तो यह रक़म तीस करोड़ से कहीं अधिक हो जाती है। संसार का सबसे धनी देश संसार के सबसे दरिद्र देश से यह धन चूसने की बेहयाई करता है। आदमी पीछे १२६०) साल कमानेवाले उन लोगों से आदमी पीछे ७) माँगते हैं, जो लोग आदमी पीछे ३०) साल कमाते हैं। यह सिर पीछे ७॥) रुपया जो भारत के लोगों से अंग्रेज़ लोग लेते हैं, भारत को दरिद्र कर देता है। और इस तरह भारत में अंग्रेज़ों के व्यापार को भी हानि पहुँचती है। इस देने से अंग्रेज़ी व्यापार और व्यवसाय को कोई लाभ नहीं पहुँचता, परन्तु तो भी भारत के शरीर से लगातार लोहू की अटूट धारा बहती चली जाती है।"

यह बात विलकुल सच है। सम्वत् १९५७ मे भारत मे माल-गुज़ारी की सारी आमदनी सवा छब्बीस करोड रुपये हुई थी। कर के देने के नाम से साढ़े पच्चीस करोड उसी साल विलायत भेजे गये थे। यह तो साफ ज़ाहिर है, कि धरती की लगभग सारी आमदनी एक न एक ढग से विलायत चली जाती है। विलायती अफसर अपनी तनख्वाह की बचत जो भेजते हैं, वह इससे अलग है। प्रजा से जो कर लिये जाते हैं, वह यदि देश मे ही खर्च किये जाते, जैसा कि ससार के सब देशो में होता है, तो वह रकम प्रजा मे ही फैलती। पेशे, व्यवसाय और खेती को बढ़ाती और किसी न किसी रूप मे प्रजा का ही धन बढाती। देश के बाहर निकल जाने पर एक कौडी भी देश के काम में नही आती।

रानी विक्टोरिया का राज ६४ वर्ष के लगभग चला। इतने समय में भारतवर्ष पर अँग्रेजो का फौलादी पजा बराबर जकडता

गया। महसूल बढ़ने गये। करों का भार अन्त में देश की दरिद्र प्रजा के ही सिर पड़ता गया। नमक का महसूल दरिद्रों को अत्यन्त खला, परन्तु उसे बढ़ाने में हृदय-हीन विदेशी सरकार को कभी तरस न आया। विदेशी माल ने बाजार को भर दिया। देश के आदमियों की दस्तकारी और कारीगरी का काम छिन गया। खेती से बची हुई घड़ियों में किसान खद्दर सम्बन्धी काम किया करते थे। वह सारा काम छिन गया। साल में ६ महीने से लेकर २ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहने लगे। पछाहीं रोजगार की कठिन चढ़ा ऊपरी ने यहाँ के एक रोजगार के बाद दूसरे रोजगार को चौपट कर दिया। कच्ची धातुओं से पक्की धातु बनाना खानों की खुदाई लोहे आदि की ढलाई के काम बन्द हो गये। नमक बनानेवाली एक जाति नोनिया थी, जिनका काम नमक और शोरा तैयार करना था। यह जाति तो बिलकुल बे-रोजगार हो गई। नोनिये कभी-कभी कुआँ खोदने का काम करते हैं। अधिकांश लोग मोटी मजूरी करने लगे।

२. पैसे की माया

पैसों के भाव की कमी-बेशी करके विक्टोरिया के राज के पिछले २५ वर्षों में भारत की विदेशी सरकार ने शकुनी का कुटिल और निर्दय खेल खेला। भारत की दरिद्र और मोहग्रस्त जनता इस कुटिलाई को कैसे समझ सकती थी। समझती भी तो कर क्या सकती थी: सरकार बारम्बार नया बन्दोबस्त करके मालगुजारी बराबर बढ़ाती गई और किसानों को लाचार होकर ज्यादा-ज्यादा पैसा देना पड़ने लगा। पहले उसको थोड़ा पैसा जुटाने के लिए बहुत अनाज देना पड़ता था, यह उसे खलता था। सरकार ने पैसे का अधिक प्रचार करके एक निशाने से दो शिकार मारे। एक तो अपनी-अपनी आमदनी बढ़ाई, और दूसरे किसानों में जो असंतोष फैलता उसपर परदा डाला। किसान पैसे की माया में फँसे गये। अँग्रेजों ने पैसे को कुछ थोड़ा सस्ता कर दिया। किसानों ने देखा कि पैसा बहुत सस्ता हो रहा है, अनाज दे-दे लगे पैसे जुटाने। जब पैसे इकठे होने लगे तब महीन और चमक दमकवाले कपड़े, खिलौने लम्प, लालटेन तसवीरें, इत्र, सुगन्ध फुलेल और भाँति-भाँति की विदेशों की बनी शौकीनी चीजें उन्हीं पैसों के बलपर खरीदने लगे और दरिद्र किसान शौकीन रईसों की नकल करने में अपनी बड़ाई मानने लगे। जो शहर के बच्चे रूखी रोटी और नमक कलेवा करते थे, और नंगे पाँव लंगोटी बाँधे पढ़ने या काम करने जाने में संकोच नहीं करते थे, वही माँग काढ़ने, बाल सँवारने, फैशन बनाने और रईसों की-सी लम्बी ढीली धोती बाँधने लगे। यह सब शौकीनी की चीजें विलायती चल गई जो अनाज से नहीं मिलती थी। इनके लिए पैसों की बहुत

जरूरत पड़ी। फिर शादी, ब्याह, मुंडन छेदन की तरह गिरस्ती में आये दिन हौसले बढ़ने लगे चढ़ा ऊपरी होने लगी। बेकार खर्चा बढ़ गया। अब हरेक को पैसे की लत लग गई। अनाज देकर अब सौदा मिलना मुश्किल हो गया। सुई. डोरा, नमक, हल्दी. सूत. रुई सब तरह की जरूरी चीजें. जो अनाज देकर मिलती थी. पैसे पर मिलने लगीं।

मुसलमानों के राज में किसान जो चाहता था मालगुजारी में दे सकता था. चाहे अनाज दे चाहे रुपया। विदेशी सरकार ने देखा कि अनाज लेने में झंझट है. और जब पैदावार मारी जायगी तब तो घाटे में रहेंगे। इसलिए मालगुजारी में अनाज लेने की रीति उठा दी गई। फिर भी जमींदार असामियों से अक्सर लगान में अनाज का अंश ले लिया करते थे। सरकार की नीति ने यह भी चलने न पाया। जब जमींदारों से मालगुजारी के रुपये लिये जाने लगे तो उन्हें भी अनाज के बदले रुपया लेने में सुभीता पड़ा। माल-गुजारी और लगान की दरें ठहराई गईं। और ठहराई हुई दर [illegible] सिक्कों में वसूल की जाने लगी। अब जमींदार या राजा का मतलब अनाज की पैदावार पर नहीं रहा। खेत से अनाज उपजे चाहे न उपजे पर राजा और जमींदार अपना महसूल बिना लिये नहीं रहते। किसान चाहे भूखों मर जाय पर उसे लगान तो [illegible] देनी होती थी। इससे पैसेवालों की और भी बन आई थी।

पास चली गई। इस तरह देश में ज़मींदार और साहूकार तो बसे और किसान उजड़ गये। कलकत्ता, बम्बई, करांची, हैदराबाद मद्रास लाहौर, अहमदाबाद इन्दौर आदि बड़े-बड़े शहरों में उजड़े हुए किसान कुलीगीरी करने लगे, और लाखों इसी तरह के बे-खेत और बे-घर के मर्द औरत गिरिमिट की गुलामी करने के लिए मिरिच के देश, ट्रिनीडाट, फीजी आदि विदेशी टापुओं में चले गये। किसानों की सिधाई और भोलेपन के कारण आरकाटियों को उनके बहकाने में बड़ी आसानी हुई। आरकाटी गाँव में आया और किसान का बड़ा हितैषी बनकर रहने लगा। दुखी किसानों के जिनके खेत साहूकारों की ठगी के कारण चले गये थे, उसने बहकाना शुरू किया तुम हमारे साथ कलकत्ते चलो, हम तुम्हें ३) रु० रोज की मजदूरी दिला देंगे, मजे में खाना और बचाना, और रुपये जमा करके अपने खेत छुड़ा लेना। कुछ दिनों में तो तुम ज़मींदारी खरीद लोगे। यहाँ क्यों अपनी मिट्टी खराब करते हो? कलकत्ते जाने को खर्च नहीं है, तो किराया हम दिलवा देंगे। नौकरी चाकरी खर्च-वर्च हम सब कुछ दिलवा देंगे, मौज काटो।" आरकाटी ने पैसों का जो जाल बिछाया उसमें रोटियों को तरसनेवाला किसान फँस गया। कलकत्ते जाकर गिरमिट लिखाकर सदा के लिए गुलाम बन गया। इन बेचारे किसानों में से अपने जीवन में हजारों में से कोई एक मुश्किल से जीते जी फिर अपनी मातृ-भूमि के दर्शनों के लिए लौट सका।

वे लौटे क्यों नहीं? इसीलिए कि वे पैसे के मायाजाल में बेतरह फँस गये। पच्छाहीं सभ्यतावाले देशों में पैसा रुपया बहुत सस्ता है। खाने-पीने पहिरने की चीजें बहुत महँगी हैं। और कोई बाहरी लूटनेवाला नहीं है, क्योंकि वहाँ के लोग आप ही कल-बल से जगत

को लूटते रहते हैं। इसीसे वे धनवान हैं। वे तीन-तीन रुपये रोज मजूरी भी देते हैं। हमारे दरिद्र किसान उनके यहाँ मजूरी करने लगे तो उन्हीं-की तरह खाने-पीने भी लगे। अपने देश में जैसा खाते थे उसमें मान ना कि चारों आने भी खर्च हो जाते थे तो भी चार आने रोज की मजूरी करनेवाला कारीगर घाटे में नहीं रहता था क्योंकि उसका अपने घर का घर होता था, खेत-बाड़ी भी होती ही थी। परन्तु वहाँ के तीन रुपये यहाँ के चार आने से ज्यादा कीमत नहीं रखते क्योंकि वहाँ पैसा सस्ता है और सब चीजें महँगी हैं। वहाँ के मजदूरों को बुरी लतें भी लग जाती हैं। तीन रुपये में दो ढाई रुपये रोज तो खर्च ही हो जाते हैं बचता बहुत कम है।

करते थे और मजूरी भी करते थे। जो उनमे अच्छे थे और भूखो नही मरते थे, वे भी पैसो के मायाजाल मे फँसकर बरबाद हुए। ये लोग अपने को ऊँची जाति के समझते थे। इनकी मोटी समझ मे भी जो ज्यादा खर्च करे वही बडा इज्जतदार समझा जाता। इसीलिए यह अपने को समाज मे ज्यादा इज्जतदार सिद्ध करते रहे। इसमे उन्हे रुपयो की जरूरत पड़ा करती थी। राली ब्रदर्स के एजेण्ट फसल तैयार होने के पहले से ही घूमा करते थे। राली ब्रदर्स विलायत का एक भारी व्यापारी है, जो लाखो मन अनाज भारत मे खीच ले जाता है। इसके कारिन्दे रुपया लेकर गाँव-गाँव घूमते हैं; खडी फसल कूत करके खरीद लेते हैं। या नाज का भाव पहले से ठहरा कर किसान को पहले से रुपया दे देते हैं, और सस्ता अनाज और रुपये का सूद किसान से वसूल कर लेते है। पैसो की माया मे पडकर किसान अपने खाने के लिए काफी अनाज तक नही रखते। यह देखकर कि रुपया ज्यादा मिलेगा, भूखों मरकर भी अन्न बेच डालते हैं। यह खूब जानते हैं कि पैसो से पेट नही भरता, फिर भी पैसो पर लट्टू हो रहे हैं।

हमारे देश मे पैसो की माया मे फँसकर बे-जरूरी चीजो की खेती अगर न की जाती और पहले की तरह अनाज और कपास का ही अधिकार खेतो पर रहता तो भी हमारी दरिद्रता इतनी अधिक न होती। हमारे किसान पैसो की माया मे फँसकर विदेशी सरकार से दादनी लेने लगे, और खेतो मे जहाँ अमृत उपजाते थे, जहर बोने और उपजाने लगे। पोस्ते की खेती करके अफीम बेचने लगे। तम्बाकू की खेती करके देश मे जहर फैलाने का उपाय करने लगे। तम्बाकू और अफीम ने किसानो को मोह मे फँसाकर कही का न रक्खा। ताडी से, शराब से, गाँजा, भग, चरस आदि जितनी नशीली

चीज है, सब से विदेशी सरकार को आमदनी होने लगी। इसलिए इन सब चीजों का प्रचार किया गया, और किसान लोग पैसे की माया में फँसकर उस महापातक के काम में भी पैसा-पूजकों की मदद करने लगे। पैसे की माया ने किसान को बरबाद कर डाला।

पैसे की माया अपार है। पैसा अंग्रेजों का देवता है असुरों का परमात्मा है। उसकी माया में जिसे देखो वही फँसा हुआ है। किसान का तो सारा रोजगार पैसे ने छीन लिया है। बारीक, चिकना चमकीला सस्ता मलमल देखकर किसान लट्टू हो गया। मोटा खद्दर उसके बदन में चुभने लगा। कारखाने ने ज्यादा पैसे देकर कपास की फसल खरीद ली। उसने भी खुशी से बेच दिया। सोचा कि "इन्हीं पैसों से महीन मलमल खरीद लूँगा। ओटने धुनने कातने बुनने की मेहनत से बच जाऊँगा। और इन्हीं कपड़ों से महीन कपड़ा भी मिल जायगा। सब घर की औरतें बारीक सूत नहीं कातती। इस तरह जो पैसा विलायत से अनाज और कपास के लिए किसान को दिया था वही पैसा बारीक कपड़ा पहनाकर फिर लौटा लिया।

अब खेत की ज़मीन बढ़ानी पड़ी। वह कहाँ से आये? गाँवों की गोचर भूमि जो गउ-बैलों के लिए छूटी रहती थी वह खेती के काम मे आने लगी। बेचारी गउओं को उनकी मिल्कियत से निकाल बाहर किया गया। पैसों की माया ने उनकी रोजी छीनकर भी उन्हें कुशल से न रहने दिया। उनकी जान के लिए बड़ी-बड़ी कीमत लगने लगी। जीती गऊ का कम दाम मिलने लगा, पर उसकी लाश पर ज्यादा पैसे मिलने लगे। जीती गऊ का दाम १०) था, तो उसके चमड़े का दाम १३) मिलने लगा। और मारी हुई का मास और उसकी हड्डी का दाम अलग खड़ा होने लगा। पैसे की माया मे फँसकर किसान ने अपना तन बेच दिया, घर-द्वार बेच दिया, अब उसने अपनी गऊ माता को भी बेचकर नरक का रास्ता साफ कर लिया। गोरी सेना को खिलाने के लिए हजारो गायें इसी तरह खरीद ख़रीद कर काटी जाने लगी। पैसे की माया ने न गोचर-भूमि रहने दी और न गोचर-भूमि के भोगनेवालो को जीता छोड़ा। दही, दूध, घी पहले ख़ास खाने की चीज़ें थी। यह आज अमीरो को भी जितना चाहिए उतना नसीब नही। पैसे की माया हमारे सामने की परसी थाली छीन ले गई। बच्चो के मुँह से दूध की प्याली हटा ले गई। और नकली घी, रेशम, चीनी आटा आदि सभी चीज़ें उसने फैलाईं। उसने हमें हड्डी, चरबी, मास खिला और चबवा कर छोड़ा। एड़ी से चोटी तक हमें हिंसा का अवतार ही नही बल्कि भूखा, नगा राक्षस बना डाला।

हिसाब करनेवालो ने पता लगाया है, कि इन्ही पैसो की माया में फँस कर आज किसान के सिर पर सात आठ अरब रुपयो का कर्ज़ा है। जब तक किसान इस भयानक कर्ज़े के बोझ से पिस

रहा है तबतक गाँव का सुधार क्या होगा। जबतक ग्यारह करोड़ किसान साल में नौ से तीन महीने तक बेरोजगार रहेंगे, जबतक हमारा अन्न दूसरे खाते रहेंगे, और हम मुंह ताकते रहेंगे, जबतक हम अपने तन ढकने के लिए मचेस्टर के मुहताज रहेंगे, जबतक गोरों का पेट भरने के लिए हमारा जीवन बरबाद होता रहेगा, जब तक हम ठंडे रहेंगे और हमारे हृदयों में अपने को पश्चात्य सभ्यता की गुलामी और पैसों की मायाजाल से छुटकारा पाने के लिए आग न लग जायगी तबतक गाँवों का सुधार न होगा।

सरकार ने छीन लिये और देहातो के कोने-कोने तक अपना अख्तियार फैलाने के लिए गाँववालों को कचहरी के अर्थात मूडने वालो के मातहत कर दिया।

इसी तरह मिलो और कारखानो मे जहाँ मजूरो और मालिक का सम्बन्ध है, वहाँ भी पैसे की माया अजब खेल खिला रही है। पैसा सस्ता हो जाने से सारी चीजें महँगी तो हो गई, पर मजूरी उसी हिसाब से नही बढी। हम यह बात और जगह दिखा आये हैं। पैसे की माया के कूटनेवाले बेलन के नीचे दरिद्र मजूर और किसान ककड और पत्थर के टुकडो की तरह पिस गये। और पैसे के पुजारियो की ठडी सडक बन गई।

अभी कुछ ही बरस हुए कि ब्रिटिश सरकार की ओर से पचायतें बनने के लिए कानून बना, परन्तु इन पचायतो मे वह बात कहाँ है, जो पुरानी पचायतो मे थी। पचायतो के प्रकरण मे हम देखेंगे, कि पहले कैसी पचायतें होती थी, आज ब्रिटिश सरकार ने जो पचायतें बनाई है वे कैसी है, और जैसी पचायतो मे हमारे देश का कल्याण हो सकता है, वैसी पचायतें कैसे कायम हो सकती हैं।

३. आज कैसी दशा है ?

महारानी विक्टोरिया के राज मे भारत की जितनी दुर्दशा हो चुकी थी, वह यूरोप के महासमर तक बराबर बढती ही गई थी, और युद्ध के बाद तो वह इस हद तक पहुँच गई कि, भारत के अत्यन्त शान्त, अत्यन्त सहनशील, और अहिंसा के भक्त, भिक्षा माँगने तक के विनयी भारतवासी अत्याचारो से इतने व्याकुल हो गये कि उन्होने

स्वतन्त्रता का शान्त निरस्त्र युद्ध आरम्भ कर दिया। विदेशी सरकार मुद्दत से इस बात को जानती थी, कि जितने भारी अत्याचारों को भारतवासी चुपचाप सह रहे हैं उनको संसार की सभ्यता के इतिहास में किसी भी देश ने बर्दाश्त नहीं किया है। इसी अपडर से सम्वत १९१४ के असफल भारतीय युद्ध के कुछ बरसों बाद ही सारे ब्रिटिश भारत के हथियार कानून बनाकर अपने कब्जे में कर लिये। एक तरह से सारे देश को निहत्था कर दिया, और पासपोर्ट के कानून से भारत के अन्दर बाहर से आना या भारत से बाहर को जाना अपने कब्जे में कर रक्खा है।

सामने रक्खा जाय और उन्हे उनके कष्टों की गम्भीरता का पूरा ज्ञान करा दिया जाय तो शायद उसका फल अत्यन्त भयङ्कर हो, जिसका अनुमान करना बड़ा कठिन है। भूल और अज्ञान ऐसे मौको पर बहुत बड़ी चीज़ है, उसमे लाभ भी है, और हानि भी। भूल और अज्ञान की बेहोशी मे भारतवर्ष को नश्तर पर नश्तर लगते जाते हैं, खून का चूसा जाना लार्ड सैलिसबरी की राय के विरुद्ध अन्धाधुन्ध जारी है। इस बेहोशी को कायम रखने के लिए भारत के रहनेवाले सौ में चौरानवे आदमियो को सब तरह की शिक्षा से विदेशी सरकार ने अलग रक्खा है, और कहा यह जाता है कि खास तालीम पहले कभी दी ही नही जाती थी। पहले के किसान खेती के काम मे जितने होशियार थे उसकी गवाही मे पुराने विदेशी लेखक लाख-लाख मुँह से सराहना करते थे। परन्तु गिरमिट की गुलामी ने हमारे यहाँ से कुछ तो खेती की कला मे कुशल मजूरो और किसानो को विदेशो मे भेज दिया, और अधिकाश भारी लगान कर्ज आदि के बोझ से लदकर उजड गये। नये ढग की मुकदमेबाजी में फँस-फँस कर मर-खप गये, और महामारी हैज़ा आदि दुर्भिक्ष के रोग उन्हे उठा ले गये। अकाल बारम्बार पडने लगे, और इतनी जल्दी-जल्दी पडे कि भारतवर्ष मे आज अकाल सदा के लिए ठहर गया है। इन सब बातों ने भारत के किसानो की खेती की कला को चौपट कर दिया। जब बेटे को सिखाने का समय आया, बाप चल बसा। भाई-भाई मे मुकदमेबाजी हुई, बँटवारे मे चार-चार पक्के बीघे खेत लेकर अलग हो गये। अब हर भाई को अपना-अपना हल-बैल अलग रखना पड़ा। उधर मुकदमेबाजी ने घर की सम्पत्ति को स्वाहा कर दिया, इधर साहूकार के दिये हुए ऋण ने ब्याज और सूद पर

सामने रक्खा जाय और उन्हे उनके कष्टो की गम्भीरता का पूरा ज्ञान करा दिया जाय तो शायद उसका फल अत्यन्त भयङ्कर हो, जिसका अनुमान करना वडा कठिन है। भूल और अज्ञान ऐसे मौको पर वहुत वडी चीज़ है, उससे लाभ भी है, और हानि भी। भूल और अज्ञान की वेहोशी मे भारतवर्ष को नश्तर पर नश्तर लगते जाते है, खून का चूसा जाना लार्ड सैलिसवरी की राय के विरुद्ध अन्धाधुन्ध जारी है। इस वेहोशी को कायम रखने के लिए भारत के रहनेवाले सौ मे चौरानवे आदमियो को सव तरह की शिक्षा से विदेशी सरकार ने अलग रक्खा है, और कहा यह जाता है कि आम तालीम पहले कभी दी ही नही जाती थी। पहले के किसान खेती के काम मे जितने होशियार थे उसकी गवाही मे पुराने विदेशी लेखक लाख-लाख मुँह से सराहना करते थे। परन्तु गिरमिट की गुलामी ने हमारे यहाँ से कुछ तो खेती की कला मे कुशल मजूरो और किसानो को विदेशो मे भेज दिया, और अधिकाश भारी लगान कर्ज़ आदि के वोझ से लदकर उजड़ गये। नये ढग की मुकदमेवाज़ी में फँस-फँस कर मर-खप गये, और महामारी हैज़ा आदि दुर्भिक्ष के रोग उन्हे उठा ले गये। अकाल वारम्वार पड़ने लगे, और इतनी जल्दी-जल्दी पडे कि भारतवर्ष मे आज अकाल सदा के लिए ठहर गया है। इन सव वातो ने भारत के किसानो की खेती की कला को चौपट कर दिया। जव वेटे को सिखाने का समय आया, वाप चल वसा। भाई-भाई मे मुकदमेवाजी हुई, वॅटवारे में चार-चार पक्के वीघे खेत लेकर अलग हो गये। अव हर भाई को अपना-अपना हल-वैल अलग रखना पडा। उधर मुकदमेवाज़ी ने घर की सम्पत्ति को स्वाहा कर दिया, इधर साहूकार के दिये हुए ऋण ने व्याज और सूद पर

गढ़ मिला कर सुरसा की तरह अपना मुँह बढाया, और अन्त मे रहे सहे वह चार बीघे मय हल-बैल के निकल गया। घर-घर किसानो के यहाँ यही कहानी आज तक दोहराई जा रही है। गाँवो का उजडना आज तक जारी है।

आज भारतवर्ष मे बच्चो की मौतें जितनी ज्यादा होती हैं, ससार मे कही नही होती। दरिद्रता के कारण माँ-बाप न तो बच्चो को दूध दे सकते है और न उनके पालनपोषण की ओर ध्यान देते है। बच्चो के होने समय न तो किसी तरह की सहायता पा सकते हैं। और न सफाई रख सकते है। सफाई और तन्दुरुस्ती भी कुछ अश तक धन के सहारे ही होती है। इसीलिए दरिद्रता और दुर्भिक्ष ने पहले रास्ता साफ करके रोगो के खेमे खडे किये, और जब मौत का पडाव बन गया यमराज ने आकर डेरे डाले। आज भारतवासियो की औसत उम्र २८ बरस की हो गई है। जितने आदमी भारतवर्ष मे मरते हैं उतने ससार मे और कहीं नही मरते। और देशो की हुकूमते अपनी आबादी बढाने की चिन्ता मे रहती है, सुख, समृद्धि बढाती रहती है, और इन बातो के लिए जरूरत पडती है, तो खून की नदियाँ बह जाती है। यहाँ की हुकूमत भी खून की नदियाँ बहाती हैं, परन्तु खून होता है भारतवासियो का, और नदिया बह कर विलायत के सुख-समृद्धि का सीचती है और बढाती है। इस किले के महा-प्रभुओं को यह मशा नही है कि कैदियो की ठठरियो मे जो खून बने वह उनके पास रह जाय। मचेस्टरवालो को तो शायद इस बात से खुशी होगी कि भारत मे मौते ज्यादा होती है और कफन की बिक्री अच्छी होती है।

हाथ-पैर के मजबूत और खेती के काम मे कुशल किसान जब

देश मे एक वार उजड जाते हैं, तो देश के सम्भालने मे युगो का समय लग जाता है। भारतवर्ष की उजडी खेती को फिर पहले की तरह अच्छी दशा मे लाने के लिए अव मे मैकडो वरस लगेगे शर्त यह है कि सुधार के काम मे भारत के लोग प्राणपण लग जायँ। विदेशी सरकार हमारी उन्नति के लिए अपने को वहुत चिन्तित प्रकट करती है परन्तु यह दम्भ मात्र है। उसे वस्तुत चिन्ता यह रहती है कि पैदावार घटकर हमारी आमदनी को न घटा दे।

आज भारववर्ष मे वेकारी का डका वज रहा है। यह वात जग ज़ाहिर है कि खेती मे कहीं भी वारहो मास के लिए किसान या मजूर को काम नही मिल सकता। वगाल के फरीदपुर जिले को भारतवर्ष मे आदर्श समृद्ध जिला वताते हुए जैक नामक एक सिवि-लियन लिखता है कि यहाँ का किसान तीन महीने की कडी मेहनत के वाद नौ महीने विलकुल वेकारी मे विताता है।[१] 'अगर वह धान के सिवा पटसन भी उपजाता है तो जुलाई और अगस्त के महीनो मे उसे छ हफ्ते का काम और रहता है।"[१] इस तरह कम मे कम साढे सात महीने वगाल के किसान वेकार रहते है। श्री कैलव्हर्ट का[२] कहना है कि पजाव के किसान ३६५ दिनो मे अधिक से अधिक १५० दिन पूरी मेहनत करते हैं। वाकी सात महीने वेकार रहते है। सयुक्तप्रान्त के लिए श्री इडाई का वयान है कि दो वार वोवाई, दो फसलो की कटाई, वरसात मे कभी-कभी निराई और जाडो मे तीन वार सिंचाई—किसान के लिए कडी मेहनत का काम इतना ही है—

१ J C Jack The Economic life of a Bengal District, Oxford, 1916, pp 39

२ Calvert's Wealth Welfare of the Punjab PP. 245

बाकी साल भर किसान बिलकुल बेकार रहता है। बिहार और उड़ीसा के लिए श्री टाल्लेंट्स और मध्यप्रान्त के लिए श्री राउटन भी ऐसा ही कहते है। श्री गिलबर्ट स्लेटर का कहना है कि मद्रास प्रान्त मे जहाँ एक फसल होती है वहाँ किसान को केवल पाँच महीने काम पडता है और जहाँ दो फसल होती हैं वहाँ कुल ८ महीने, इस तरह कम से कम चार महीने किसान को दक्षिण देश मे बेकार रहना पडता है।[1] इस तरह भारतवर्ष भर मे कम से कम चार महीने से लेकर नौ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहता है। श्री ग्रेग ने भारत के पक्ष को अत्यन्त दबाकर औसत बेकारी कम से कम तीन महीने रक्खी है। अपने ही पक्ष मे अटकल की ऐसी कडाई वर्तमान लेखक अन्याय समझता है। यह औसत साढे छ महीने होता है परन्तु समीक्षा की कडाई और हिसाब के सुभीते के लिए हम इसे छ महीना रखते है।

भारतवर्ष की खेती पर निर्भर करनेवाली आबादी सैकडा पीछे ७२ के लगभग है। इसमे भी जो लोग खेतो पर मेहनत का काम करते हैं उनकी गिनती लगभग पौने ग्यारह करोड है। हम बिना किसी अत्युक्ति के यह कह सकते हैं कि यही पौने ग्यारह करोड आदमी औसत छ महीने बिलकुल बेकार रहते है। कई अकाल के दिनो मे विदेशी सरकार सहायता के रूप मे भारत के मुक्खडो से कसकर काम लेती है और दो आने रोज मजूरी देती है। हिसाब के सुभीते के लिए हम पौने ग्यारह करोड की जगह दस ही करोड लें

[1] Prof Gilbert Slater Some South Indian Villages Oxford University Press, London p 16, and Census Reports pp 270, 271 and 274, For Bihar & Orissa, U P, and C P respectively

और केवल एकसौ अस्सी दिनों की मजूरी दो आने रोज के हिसाब से रक्खें तो आदमी पीछे साढे बाईस रुपये होते हैं। छः महीने में दस करोड़ आदमियों की मजूरी के इस हिसाब से सवा दो अरब रुपये होते हैं, या सवा करोड रुपया रोजाना होता है। इन पौने ग्यारह करोड मनुष्य रूपी मशीनों को बेकार रखकर विदेशी सरकार सवा करोड रुपये रोज़ और सवा दो अरब रुपये सालाने का घाटा कराती है। अगर इसे बेकारी का टैक्स समझा जाय, तो भारतवर्ष को इस भयानक बेकारी के पीछे सिर पीछे सात रुपये के लगभग खोना पड़ता है। जिस आदमी की आमदनी साल में छत्तीस रुपये हों, वह क्या सात रुपये या अपनी आमदनी का पचमांश खो देना सह सकेगा?

सम्वत् १९७८ की मालगुजारी की रकम जो सरकार ने वसूल की सवा अरब से कुछ अधिक थी। भारत की सारी आमदनी सम्वत् १९८१ की एक अरब अड़तीस करोड़ के ऊपर थी। भारत सरकार का कुल खर्च जो उस साल हुआ, एक अरब साढे बत्तीस करोड से कम था। यही मदें विदेशी सरकार की आमदनी और खर्च की मदों में सबसे बडी हैं। बेकारी के कारण भारतवर्ष को जितना हर साल खोना पडता है, वह इनमें बड़ी-से-बडी मद का पौने दो गुने से ज्यादा है। यह तो किसानों की मजूरी की रकम का हिसाब रक्खा गया, परन्तु यही मजूर लोग काम करके जो माल तैयार करते वह उनकी मजूरी से कई गुना ज्यादा कीमत का होता। तैयार माल की कीमत अगर मजदूरी की दूनी भी लगाई जाय तो पौने सात अरब सालाना का घाटा होता है। हर साल पौने सात अरब का घाटा उठानेवाले किसान अगर कुल आठ ही अरब के क़र्जदार हों तो यह कर्जा कुछ ज्यादा नहीं है। परन्तु जैसे संसार के

किसी सभ्य देश के किसान अपनी जिंदगी के आधे दिन न तो इस तरह बेकार खोते हैं और न कई करोड़ की संख्या में पेट पर पत्थर बाँधकर सो रहते हैं, और न इस तरह भयानक रूप से ऋणासुर के दाँतों के बीच पिस रहे हैं।

इस भयङ्कर बेकारी का भयानक परिणाम भी देखने में आ रहा है। खाली दिमाग में शैतान काम करता है। जिन लोगों को कोई काम नहीं है वे ज्यादातर हुक्का पीते हैं और तमाखू फूँक डालते हैं। तमाखू का जहर हमारे समाज के अंग के रोयें रोयें में फैल गया है। तमाखू आदर-सत्कार की चीज बन गई है। जो तमाखू खून को खराब कर देता है, हृदय और आँतों को बिगाड़ देता है आँख की रोशनी को खराब कर देता है अच्छे खासे मर्द को नामर्द बना देता है क्षय रोग पैदा करता है और आदमी के जीवन को घटा देता है उसी जहर की खेती कमाई करने के लिए नहीं तो अपना नाश करने के लिए किसान करता ही है। परन्तु वह इस तरह पर केवल अपने तन-मन को ही नहीं खराब करता बल्कि अपने देश के धन का भी नाश करता है। अगर हम मान लें कि भारत के पचीस करोड़ प्राणियों में केवल आठ करोड़ प्राणी धेले की तमाखू रोज खाते पीते, सूँघते और फूँकते हैं तो इस जहर के पीछे नया छ

की तमाखू हमारे देश में खप जाती है। सन १६२० ई० में सरकार को शराब से बीस करोड़ से ज्यादा आमदनी हुई। अफीम में सन १९१९-२० में सरकार को ढाई करोड़ से अधिक आमदनी हुई। गाँजा, भाँग, चरस, चाय काफी आदि नशे की चीजें भी बेकार किसान को तबाह कर रही हैं।

यह भुक्खड़ जिन्हें आधा पेट खाना भी नहीं नसीब होता नशा किसलिए सेवन करते हैं। भूखा आदमी पापी पेट को भरने के लिए लाचार होकर ऐसे काम भी कर डालता है, जिनके करने में उसे शर्म आती है। जब वह होश में रहता है तब भीतरवाला ऐसे कामों के करने में रुकावट डालता है, परन्तु शरीर का बाहरी काम कैसे चले। भुक्खड़ भीतरवाले की आवाज सुनना नहीं चाहता, इसलिए नशे में अपने को बेहोश कर देता है। भूखे बाल-बच्चे कष्ट से तड़फ रहे हैं, कमानेवाला बाप उनके मुँह में अन्न नहीं रख सकता। जी तोड़कर मेहनत करता है, परन्तु मजूरी काफी नहीं मिलती। घोर अकाल के समय में भी भारत में काफी अन्न मौजूद रहता है, परन्तु दरिद्र भुक्खड़ के पास पैसे कहाँ हैं, कि मोल ले सके। वह बेचारा चिन्ताओं से व्याकुल हो जाता है, तड़पते बाल बच्चे देखे नहीं जा सकते, नशा उसे बेहोश कर देता है। इसीलिए वह किसी न किसी ढंग से अपने को बेहोश कर लेता है। पाप करने के लिए जिस तरह आदमी नशा पीता है, पाप कराने के लिए भी उसी तरह दूसरों को नशा पिलाता है। विदेशी सरकार अपने स्वार्थ-साधन के लिए इस विशाल किले के कैदियों को बेहोश रखने के लिए भाँति भाँति से नशा पिलाती है। हमारे किसान नशे के पीछे भी बेतरह बरबाद हो रहे हैं।

गायों से ज्यादा सीधा कोई पशु नहीं है, परन्तु चारा थोड़ा हो.

और गायें अधिक हों, तो भी आपस में लड़ जायँगी। दरिद्रता की जैसी विकट दशा में हमारा देश है वह तो प्रकट ही है। खाने को थोड़ा मिलता है, और बेकारी हद से ज्यादा है, तो उसका नतीजा झगड़ा-फसाद के सिवा कुछ नहीं हो सकता। यही बात है कि कोई गाँव ऐसा नहीं है। और किसी गाँव में एक घर भी ऐसा नहीं है, जिसमें झगड़ा फसाद का बाजार गर्म न हो, और जहाँ आये दिन लोगों में लट्ठबाजी न होती हो, और फौजदारी या दीवानी तक जाने की नौबत न आती हो। गाँव का पटवारी और चौकीदार और थाने के दारोगा, सिपाही हमेशा इसी फिक्र में रहते हैं कि कोई झगड़ा खड़ा हो और उनकी जेबें गर्म हों। झगड़े में झगड़नेवालों का नुकसान ही नुकसान रहता है। और अपनी शान में ही कोरे रह जाते हैं, और सरकारी लोमड़ियाँ शिकार का वारा-न्यारा करती हैं। गाँव-वालों से कचहरी की दलाली का रोजगार दरिद्रों की इसी कफन खसोटी ने पैदा कर दिया है। जहाँ गाँवों का मुखिया बिना एक कौड़ी खर्च कराये सच्चा और शुद्ध न्याय कर देता था, वहाँ आज गाँव के दलाल उकसा-उकसा कर चिड़िया लड़ाते हैं, और भुक्खड़ों तक को अदालत के दरवाजे पर पहुँचाकर उनका सर्वस्व हर लेने में कोई कोर कसर नहीं रखते।

४ गाँव का सरकारी प्रबन्ध और लगान-नीति

गाँव के प्रबन्ध के लिए सरकार की ओर से प्रत्येक गाँव में मुख्यतः दो मुलाजिम रहते हैं एक पटवारी और दूसरा चौकीदार। पटवारी को जमीन की नाप-जोख खेतों का लगान और जमीन के बँटवारे आदि का रेकार्ड रखना पड़ता है। पटवारी इसलिए रक्खा

जाता है कि उसमें गाँव का पूरा हाल हुकूमत को मिले। चौकीदार पुलिस की ओर से रहता है कि किसी तरह का उपद्रव हो तो वह उसकी खबर ऊपरी अफसरों को दे। विदेशी सरकार की वर्तमान लगान-नीति को समझने के लिए टाइम्स की इण्डियन इयर बुक' में जो लेख है उसका सार यह है —'

सरकार की ज़मीन के लगान सम्बन्धी नीति यही है कि ज़मीन की मालिक सरकार है और ज़मीन का लगान एक तरह से उसे मिलने वाला किराया है। सरकार इस बात को अनुभव करती है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से इस व्याख्या पर आपत्ति की जा सकती है, पर वह कहती है कि सरकार और किसान के बीच अभी जो सम्बन्ध है उसको स्पष्ट करने के लिए यही शब्द उपयुक्त है। किसान अपनी ज़मीन की हैसियत के अनुसार सरकार को लगान देता है। लगान पर समय समय पर पुनः विचार करने के लिए जो सरकारी कार्रवाई होती है, उसे सेटलमेण्ट या बन्दोबस्त कहा जाता है। भारत में दो तरह के बन्दोबस्त हैं, स्थायी और अस्थायी। स्थायी बन्दोबस्त में तो लगान हमेशा के लिए स्थिर कर दिया जाता है। वो किसान से नहीं बल्कि ज़मींदार से वसूल किया जाता है। लार्ड कार्नवालिस ने सन् १७९५ में स्थायी बन्दोबस्त कर दिया। बम्बई और मद्रास के प्रान्तों के कुछ हिस्सों में भी स्थायी लगान निश्चित कर दिया गया था। शेष सारे देश में स्थायी बन्दोबस्त की प्रथा जारी है। सरकार के सरवे विभाग द्वारा की गई सरवे के आधार पर तीस तीस वर्ष में प्रत्येक ज़िले की ज़मीन की पूरी जाँच होती है। प्रत्येक गाँव की ज़मीन नापी जाती है। नक्शे बनते हैं। हरेक किसान के खेत को उसमें पृथक

१ 'विजयी बारडोली' : प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

कृषक बताया जाता है, और उनके अधिकारों का रजिस्टर रक्खा जाता है, जिसमें ज़मीनों का लेन देन आदि लिख लिया जाता है। इस पुस्तक को 'वाजिबुल अर्ज़' (रेकर्ड ऑव राइट्स) भी कहते हैं। यह सब जाँचकर उसके अनुसार लगान क़ायम करने का काम भारत सरकार की सिविल सर्विस के ख़ास तौर पर नियुक्त सदस्यों द्वारा होता है, जिन्हें सेटलमेण्ट अफसर कहा जाता है। मि० स्ट्रेची अपनी पुस्तक (इण्डिया के नवीन संस्करण १९११) में सेटलमेण्ट अफसर के कामों का नीचे लिखे अनुसार दिग्दर्शन कराते हैं—

सेटलमेण्ट अफसर का काम

की सम्भावना हो। मतलब यह कि वह किसी बात में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। जो कुछ भी बात हो, उसी को वह ठीक ठीक लिख ले।"

दो प्रणालियाँ

अस्थायी बन्दोबस्त में भी लगान दो प्रणालियों से वसूल किया जाता है, एक रैयतवारी और दूसरी ज़मींदारी। जहाँ तक लगान से सम्बन्ध है, दोनों में स्थूल रूप से यह भेद है कि रैयतवारी प्रणाली से जिन प्रदेशों में लगान वसूल किया जाता है, वहाँ काश्तकार सीधा सरकार को लगान देता है, जहाँ ज़मींदारी प्रणाली है, वहाँ ज़मींदार अपने इलाक़े का लगान खुद वसूल करके देता है। अवश्य ही इसमें उसे भी कुछ हिस्सा मिलता है।

रैयतवारी प्रणाली भी दो तरह की होती है। एक तो वही जिसमें किसान खुद सरकार को लगान देता है, और दूसरी वह जिसमें गाँव या जाति का मुखिया गाँव से लगान वसूल करके देता है। सरकार के प्रति जिम्मेदार तो मुखिया ही होता है इस तरह की रीति उत्तर भारत में अधिक है और पहिले प्रकार की रैयतवारी प्रणाली मद्रास, बम्बई, बर्मा और आसाम में प्रचलित है।

पहले की अपेक्षा आजकल की लगान नीति सब प्रकार की ज़मीनों पर, किसानों के लिए अधिक अनुकूल है। पहले तो आगामी सेटलमेण्ट की अवधि में ज़मीन की जो औसत कूती जाती थी, उसीपर लगान लगा दिया जाता था। अब तो लगान कूतते समय ज़मीन की जो उपज प्रत्यक्ष पाई जाती है, उसी के आधार पर लगान का निश्चय किया जाता है। इसलिए किसान अगर अपनी मेहनत से ज़मीन की पैदावार को कुछ बढ़ा लेता है, तो उसका सारा फायदा उसीको मिलता है। हाँ, नये बन्दोबस्त में इस ज़मीन को किस वर्ग में रक्खा

जाय, इसपर पुनः विचार करके, यदि किसान का लाभ नहर, रेल जैसी सार्वजनिक लाभ की वस्तु के कारण अथवा बाज़ार भावों में वृद्धि होने के कारण बढ़ गया हो, तो उस जमीन को नये वर्ग में डाला जा सकता है। पर सरकार ने इस सिद्धान्त को अब मान लिया है कि किसी ख़ास तरीक़े पर कोई किसान अगर अपनी जमीन की उपज बढ़ा लेता है, तो उसपर लगान न बढ़ाया जाय। इस विषय में उसने कुछ नियम भी बना लिये हैं।

लगान की तादाद

भारत में ज़मीन पर जो लगान लिया जाता है उसकी एक निश्चित दर नहीं है। वह स्थायी बन्दोबस्तवाले सूबों में एक प्रकार का है तो अस्थायी बन्दोबस्तवाले सूबों में दूसरे प्रकार का। फिर ज़मींदारी तथा रैयतवारी प्रदेशों में और भी अलग-अलग। रैयतवारी में भी वह ज़मीन की क़िस्म उसके अधिकार आदि के अनुसार न्यूनाधिक है। बंगाल में लगभग १६०००००००) रुपये ज़मींदार लोग अपनी रैयत से वसूल करते हैं, परन्तु चूंकि वहाँ स्थायी बन्दोबस्त हो गया है इसलिए सरकार उसमें से केवल ४०००००००) रुपये लेती है। अस्थायी बन्दोबस्तवाले प्रदेशों में ज़मींदारों से, अधिक-से-अधिक लगान का ५० फ़ी सैकड़ा सरकार वसूल करती है। कहीं-कहीं तो इसे फ़ी सैकड़ा ३५ बल्कि २५ ही पड़ता है। पर यह निश्चित है कि यह फ़ी सैकड़ा ५० से कभी अधिक नहीं होता। रैयतवारी प्रणाली में सरकार का हिस्सा कितना होता है यह ठीक ठीक बताना ज़रा कठिन है। पर ज़मीन की पैदावार का अधिक-से-अधिक पाँचवाँ हिस्सा सरकार का भाग समझा लिया जाय। इससे कम तो कई प्रकार के मिलेंगे, पर इससे अधिक तो कहीं नहीं है।

कार्यवाहियाँ होती हैं उनको अधिक सरल और सस्ती बनाने की नीति है।

(४) ज़मीन सम्बन्धी स्थानीय कर बहुत ज़्यादा और भारी नहीं है।

(५) जैसा कि कहा जा रहा है, ज़मीन से इतना कर वसूल नहीं किया जा रहा है कि उसके कारण लोग दरिद्र और कंगाल हो रहे हों। इसी तरह अकालों का कारण भी लगान नीति नहीं है। तथापि सरकार ने आगे के कार्य की सुविधा के लिए कुछ सिद्धान्त कायम कर लिये हैं।

(अ) अगर लगान से इज़ाफ़ा करना है तो वह क्रमशः और धीरे धीरे किया जाय।

(ब) लगान वसूल करने में कुछ उदारता से काम लिया जाय। मौसिम तथा किसानों की दशा को ध्यान में रखते हुए, कभी-कभी लगान वसूल करने की तारीख़ बढ़ा दी जाय और लगान माफ भी कर दिया जाय।

(स) स्थानीय कठिनाई के समय लगान बड़े पैमाने पर घटाया भी जा सकता है।"

प्रतिशत था, परन्तु बाकी सब गाँवों में ७१ से लेकर ६४ प्रतिशत तक कर लगाया गया था।' जो बातें इस सम्बन्ध में सरकार के ही बताये हुए अकों के आधार पर हम पहले लिखा आये हैं उनके ऊपर इस अवतरण से कैसी सफेदी हो जाती है। ज्यादा टीका-टिप्पणी की ज़रूरत नहीं है। साराश यह कि इस सफेदी के होते हुए भी अत्यन्त कठोर और किसी प्रकार न मिटनेवाला सत्य यह है कि ससार में कोई देश न तो भारत-सा दरिद्र है, और न ऐसे भारी भूमि-कर की चक्की में पिस रहा है। इस भारी कर के बोझ को सहना भी हमारे देश के लिए लाभकर होता, अगर यह धन हमारे देश के भीतर ही ख़र्च किया जाता। एक तो भारी कर का अत्याचार था ही, दूसरे उससे भी कहीं भारी अत्याचार यह है, कि देश का धन बाहर चला जाता है। इसपर बड़े भोलेपन से यह जवाब दिया जाता है कि आख़िर हुकूमत का ख़र्च और सेना का ख़र्च कैसे चले? दरिद्र किसान इस जवाब से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। "अगर आप किफायत से ख़र्च नहीं कर सकते, तो आपमें बन्दोबस्त की योग्यता नहीं है। आपने हमसे कब पूछा कि हम इतना ख़र्चीला बन्दोबस्त करें या न करें। हमें आपकी सेवा नहीं चाहिए। आपके लुटाऊ कलेक्टर और कमिश्नर नहीं चाहिए। हमें तो चाहिए रोटियाँ, जिनके लिए हम तरस रहे हैं।"

१ "An Economic Survey" Young India, 1929 page 389 para 6

: १० :

किसानों की बरबादी

१. क्या थे क्या हो गये ?

हम जब अपने पहले की सुख-समृद्धि के इतिहास से आज की अपनी दशा का मुकाबला करते हैं, तो चकरा जाते हैं कि हम क्या थे आज क्या हो गए। हम सुख से रहते आए। मेहमानों से जी खोलकर मिलते रहे। मेहमान आते थे तो हम अपना परम सौभाग्य मानते थे। उनके साथ हमारे घरों से कल्याण आता था। लक्ष्मी आती थी। परन्तु जबसे ये विदेशी व्यापारी मेहमान आए तभी से हमारा दुर्भाग्य शुरू हो गया। पहले भी विदेशियों से सम्बन्ध था। परन्तु वे सचमुच व्यापारी थे। लुटेरे न थे। ये ऐसे मेहमान आये जिनकी निगाह सदा हमारे माल पर रही और आज भी, जब हम बरबाद हो गए हैं, उनकी लूट-खसोट घटने का नाम नहीं लेती।

२. लुटेरों की मेहमानी

से किसान फूले नहीं समाता था। देशवासियों में सादगी, सन्तोष तथा आजादी दिखाई देती थी। किन्तु जबसे हम शिकारियों के जाल में उलझ गए, तबसे हमारा धन और माल जहाजों में लद-लदकर यहाँ से जाने लगा। पहले यहाँ की अनमोल कारीगरी की चीजें ही जाती थीं परन्तु अब कच्चा माल ढो-ढो कर जाने लगा। आज तो विदेशियों का बस चले तो वे भारत भूमि की आँतें तक निकाल-कर रेल में लादकर ले जायँ। और यही हो भी रहा है। सोना, चाँदी और मैंगनीज आदि धातुओं की खानों से जो माल निकलता है, वह कहाँ जाता है? अन्न, रूई, तेलहन यहाँ तक कि हड्डियाँ तक बिनवा बिनवा कर कहाँ जाती हैं? साथ ही मजेदार बात यह है, कि हमें बतलाया जाता है, कि अंग्रेजों को यह सब लूटने का परिश्रम हमारे ही लाभ के लिए करना पड़ता है। पाँच करोड़ की रूई जाती है और साठ करोड़ का कपड़ा आता है। बीच के पचपन करोड़ कहाँ चले जाते हैं? इस लूट से तो नादिरशाह की लूट अच्छी थी। उस लूट को हम लूट तो कह सकते हैं। यह कप्पडशाह की लूट तो लूट भी नहीं कहलाती। वह तो यही कहता है कि भारतवासियों के शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए उन्हें सस्ते कपड़े देने और उन्हें भाँति-भाँति के लाभ पहुँचाने के लिए ही वह यहाँ आया है। यही तो उसका जादू है। और सबसे बढ़कर अचरज की बात तो यह है कि भारत के किसान उसकी लूट में शामिल होते हैं और उसमें अपना लाभ समझते हैं।

३. उनका जादू

विदेशियों ने कहा कि तुम्हें खेती करना नहीं आता। तुम्हारे हल और औज़ार बहुत पुराने हैं, तुम्हारा खेती का ढंग पुराना है—जंगली

है। अब तुम्हें विलायती ढंग के लोहे के हल काम में लाना चाहिए। हमारा कृषि विभाग उसका प्रयोग करके दिखायेगा। हमारे अनेक सीधे-सादे किसान इस भ्रम में पड़कर, कि साहब जो कहते हैं ठीक होगा उनके कहे पर चले परन्तु नतीजा उलटा ही हुआ। साहब कहते हैं कि किसानों के खेत विस्तार में बहुत छोटे-छोटे हैं। इस तरह के खेतों में वैज्ञानिक ढंग से खेती नहीं हो सकती। भाफ के इंजन से चलनेवाले औजार इनसे काम नहीं दे सकते। इसलिए छोटे-छोटे किसानों को उजाड़ कर जमीन के बहुत बड़े टुकड़ों में खेती करनी चाहिए। ठीक है घर-घर में छोटे-छोटे चूल्हे रखने से हरेक घर की स्त्रियों को रोटी-पानी में फँसना पड़ता है और उनका बहुत समय नष्ट होता है। यदि इनके स्थान में बड़े-बड़े भटियारखाने खोल दिये जायें तो अनेक स्त्रियों को फुरसत मिल जाय उनका समय बचे और आर्थिक दृष्टि से भी लाभ हो। अंक शास्त्र से भी यह लाभ सिद्ध किया जा सकता है इसलिए छोटे-छोटे चूल्हों को नष्ट करके रोटी-पानी के झंझट से भी पीछा क्यों न छुड़ा लिया जाय? भारतवासी जंगली हैं।

कम्पनियों को लाभ हो। उपाय तो बहुत बढ़िया है। इसकी बदौलत छोटे-छोटे किसान जमीन छोड़कर मजे के मजूर बन सकते हैं। यह सब अर्थशास्त्र है। न गृहशास्त्र न नीतिशास्त्र, केवल अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र !!!

अर्थशास्त्र की दृष्टि से पशुपालन भी हानिकर है, इसलिए पशुओं को बेच देना चाहिए। कोई गाहक न मिले तो उन्हें कसाईखाने में भेज दीजिए। वहाँ उनकी हड्डियाँ और चमड़े आदि की अच्छी क़ीमत खड़ी हो जायगी। इसके बाद ले आइए पम्प और तेल के इञ्जन और छोड़िये पुर चलाकर खेत सींचने का झंझट ! कम्पनी-वाले खुद आकर इञ्जन चालू कर जायँगे इसका वे मेहनताना भी आपसे न माँगेंगे। आपको केवल किरासिन तेल लाना होगा और कुछ नहीं। बस फिर जितनी जी चाहे उतनी सिंचाई कीजिए। किसान इस तरह की बातें सुनकर अचम्भे में पड़ जाता है, और इञ्जन लाने का विचार करने लगता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। वह सोचता है कि जो सबकी गति होगी वही मेरी भी होगी।

४. हर बात में उन्होंने अपना फ़ायदा सोचा

पहले खेत में जो पैदावार होती उसीमें सरकार का भाग रहता था। यदि फसल पैदा होती थी, तो सरकार लगान लेती थी और फसल न होती थी तो न लेती थी। बाद को इसमें झंझट दिखाई दी, इसलिए नगद मालगुजारी या लगान लेना स्थिर हुआ। किस जमीन का कितना लगान होना चाहिए यह निश्चित करना सरकार का काम है, इसमें किसान की सम्मति लेना जरूरी न रहा। वह इन बातों को क्या जाने ? प्राचीन काल में भारत के राजा और बादशाह पैदावार

का छठा भाग बतौर मालगुजारी के लेते थे, परन्तु अँग्रेज बहादुर ने इसे खूब बढ़ाया। किसान की मजूरी और लागत निकल आये तो गनीमत बाकी सभी मालगुज़ारी में चला जाता है। स्वर्गीय दत्त महोदय ने सरकारी प्रमाणों से ही साबित कर दिया है, कि सरकार फी सैकडा पचास से अधिक मालगुजारी लेती है और दिन पर दिन इसमें भी इजाफा होता जा रहा है। किसान के सिर का बोझ इस तरह धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है। मालगुजारी तै करनेवाले अफ़सरों के ख़िलाफ़ कोई शिकायत सरकार में सुनी ही नहीं जाती। किसान अगर खेत का सुधार कर खेती की बढ़ती करता है कुआँ खुदवाता है और पैदावार बढ़ाता है, तो उसके कारण भी मालगुजारी बढ़ जाती है। ऐसी दशा में किसान को खेती की दशा सुधारने की इच्छा कैसे हो सकती है? इस तरीके के कारण किसान की माली हालत दिन-पर-दिन खराब होती गई और कोई सहारा न रहने के कारण अकाल में डटे रहने की ताकत घट गई। इसका नतीजा यह हुआ कि वह कर्जदार हो गया। जिसकी प्रतिष्ठा जितनी कम और अवस्था जितनी लाचार होती है, उसको ब्याज भी उतना ही अधिक देना पड़ता है। इस कारण से किसानों की देनदारी धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। इस समय उनके सिरपर कर्ज का बोझ इतना ज्यादा हो गया है कि वे उससे दबे जा रहे हैं और उनके छुटकारे का प्रश्न बहुत ही कठिन बन गया है।

किसानों को इस देनदारी से छुटकारा दिलाने के लिए दक्खिन भारत में एक कानून बनाया गया है उसका नाम है "दक्खिन के किसानों को आराम पहुँचानेवाला कानून"। इस कानून के मुताबिक पहले महाराष्ट्र में और फिर गुजरात में काम किया गया। इस

कानून से सरकार की लगान नीति की सख्ती से किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। इसका नतीजा सिर्फ यही हुआ है कि संकट के समय किसानों को उधार देनेवाला भी अब कोई नहीं रहा। सरकार खुद किसानों को रुपया उधार देती है और तकावियाँ बाँटती है। इसकी किस्ते, नियम और व्याज आदि बाते इस तरह गढ़ी गई हैं, कि किसान पानी से निकलकर आग मे जा गिरा है। किसान को अपने पिता का प्रेत कर्म करना हो या कन्या का विवाह करना हो तो उसे तकावी नहीं मिल सकती। वह सिर्फ खेती के काम के लिए ही मिल सकती है। उसे वसूल करनेवाले भी माल महकमे के अफसर ही होते हैं। पत्र-पुष्प से उनकी भली भाँति पूजा करनी होती है, एक ओर तकावी लेते समय किसान लूटा जाता है और दूसरी ओर उसे चुकाते समय कठिन से कठिन कायदों की पावन्दी करनी पडती है। इससे किसान निराश हो जाता है। एक ओर महाजन ने रुपया देना बन्द कर दिया दूसरी ओर सरकार सख्ती करने लगी। किसान को किसीका भी सहारा न रहा। उसे खेती या गृहस्ती के खर्चे के लिए वक्त बेवक्त कुछ-न-कुछ रुपयो की जरूरत पडती ही है, लेकिन अब वे कहाँ से लाये? किसानो की इस बेबसी से एक तीसरे ही दल ने लाभ उठाया। यह दल काबुली पठानो का था। हाथ में छुरा लेकर यह दल कार्यक्षेत्र मे उतरा। काबुलियो के ब्याज ने महाजन और सरकार को भी भुला दिया। रुपये दो या हड्डियाँ तुडवाओ। यही काबुलियो का नियम था। महाजन किसान को एकदम चूसता न था। वह आँखे दिखाता था, नरम-गरम होता था, किन्तु किसान को जिन्दा रहने देता था। एक तो पुश्त दर पुश्त से लेनदेन, दूसरे हिन्दू समाज, इसलिए वह

अधिक लगानी कर भी न सकता था। किन्तु काबुली को क्या? महाजनों का लेन-देन बन्द होने पर इस समय देहात में काबुली जो लूट मचा रहे हैं उससे किसानों की हालत का पता अच्छी तरह चल सकता है। किसान खेत छोड़कर कहाँ जाय और क्या करे? किसानों को आराम पहुँचानेवाले सरकारी कानून ने ही यह हालत पैदा की है। डाक्टर भण्डारकर जैसे सरकार के खैरख्वाह ने भी एक बार व्यवस्थापिका परिषद में काबुलियों की इन ज्यादतियों का वर्णन कर प्रजा के प्रति सरकार के उपेक्षा भाव की निन्दा की थी। एक ओर मालगुजारी का बोझ दिन-पर दिन बढ़ता जा रहा है क्योंकि बिना उसके गोरे हाकिमों की बड़ी-बड़ी तनख्वाहें और भारतवासियों को कब्जे में रखने और विदेशों पर चढ़ाई करने के लिए रक्खी हुई फौज का खर्च चलाना कठिन है और दूसरी ओर किसानों की तरफदारी और लाभदायक कहे जानेवाले कानूनों का भयङ्कर परिणाम दोनों के बीच में बेचारे किसान पिसे जा रहे हैं।

अपने माल का पूरा दाम भी नहीं मिलता। मजबूर होकर सब मिट्टी के मोल बेच देना पड़ता है। चैत में जिस समय गेहूँ पैदा होता है, उस समय उसे चार रुपये मन बेच देना पड़ता है, किन्तु बरसात में खाने या कातिक में बोने के लिए जब उसे उसकी जरूरत पड़ती है, तब वही छ रुपये मन खरीदना पड़ता है। नक़द रुपये तो उसके पास रहते ही नहीं, इसलिए उसे यह भी उधार लेना पड़ता है। इन रुपयों का व्याज जोड़ने पर उसे पहले के भाव से दूना या इससे भी अधिक देना पड़ता है। इस तरह माली मुसीबत के कारण किसान को दूनी चोट सहनी पड़ती है। जिस समय किसानों को सरकारी किस्त चुकानी होती है, उस समय किसी हाट में जाकर देखने से, किसान किस प्रकार अपना अन्न मिट्टी मोल बेचते हैं, इसका पता चल सकता है। सरकार की क़िस्त महाजन या काबुली से भी भयङ्कर होती है। काबुली तो अन्त में मनुष्य ठहरा, किस्त मनुष्य थोड़े ही है जो मान जायगी। क़िस्त माने मशीन। मशीन चलाने के लिए आकाश ढूढ कर या पाताल फोड़कर कहीं न कहीं से तेल लाना ही होता है। क़िस्त की बदौलत किसान के यहाँ साक्षात यमराज आ पहुँचते हैं। जिस समय उनका आगमन होता है उस समय किसान को अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु बेच देनी पड़ती है। पशुओं का चारा-नी बेच देना पड़ता है, जी जिलाने के लिये रक्खा हुआ अन्न तक बेच देना पड़ता है और वह भी मिट्टी के मोल। बाजार भाव तो व्यापार के अनुसार घटता बढ़ता है। उससे फायदा उठाने के लिए वक्त का इन्तजार करना पड़ता है, किन्तु किस्त के समय में घटा-बढ़ी न हो सकने के कारण किसान को तत्काल अपनी चीजें बेच देनी पड़ती है। किसान को इन सब दुःखों से बचाने के लिए सरकार ने सहयोग समितियों की

स्थापना की। जिन किसानों की पचायतें तोड़कर उनका आपसी मेल-जोल नष्ट किया गया था, उन्हीं में इन समितियों द्वारा आपसी मेल-जोल की कोशिश की गई। लेकिन इस उपाय का परिणाम भी शून्य में ही आया। जिन गाँवों में ऐसी समितियाँ कायम की गईं, उन गाँवों को इनसे लाभ होना तो दूर रहा, उलटे किसान इन नई किस्म के सरकारी अफसरों के नीचे इस तरह दब गये कि जिन गाँवों में ये समितियाँ अभी तक कायम हैं उनमें कोई दूसरा आन्दोलन चल ही नहीं सकता। अनुभव ने बतलाया है कि जिन गाँवों में सहयोग समितियाँ हैं उन गाँवों में खादी के आन्दोलन की जड़ नहीं जमने पाती। जम भी कैसे सकती है? किसान उस सहयोग समिति के नीचे कुछ-न-कुछ दबे ही रहते हैं। ऊपर से सुपरवाइजर और आर्गनाइजर उन्हें लाल पीली आँखें दिखलाया करते हैं। ऐसी अवस्था में बेचारा किसान क्या कर सकता है? सहयोग समितियों से क्या-क्या लाभ हुए इसका वर्णन हम यहाँ करना नहीं चाहते। इस सम्बन्ध में सिर्फ इतना ही कहना काफी है कि उनका ब्याज, उनमें होनेवाली क्रूरता उनकी किस्तें, उनकी सख्त निगरानी और उनकी गोलमाल से जहाँ जहाँ वे कायम हैं वहाँ लोग बेतरह ऊब उठे हैं।

५ मालगुज़ारी की तहसील

सरकार ने कानून बनाकर, सरकारी मालगुजारी साल में दो किस्तों में लेना तय किया है किन्तु देहात में मालगुजारी वसूल करनेवाले हाकिम या पटवारी उसे एक ही बार में—एक मुश्त वसूल करने की कोशिश करते हैं। वे किसान पर निजी तौर से दबाव डालकर उसे समझाते हैं कि भविष्य में शायद रुपये

रहे, सरकार का लगान तो आखिर देना ही होगा, सब एकसाथ ही क्यों नहीं दे देते ?" सरकार ने कानून बनाया कि फसल चार आने से कम हो तो लगान उस साल मुल्तवी रखकर अगले साल लिया जाय। किन्तु पटवारी और सर्कल इन्स्पेक्टरों की यह हालत है कि पैदावार कम होने पर भी वे अधिक ही लिख मारते हैं। इस सम्बन्ध में न तो वे किसानों से पूछते हैं न कोई जाँच ही करते हैं। कानून आलमारियों की किताबों में ही रह जाते है। ऊँचे अधिकारियों को छोटे कर्मचारियों की बात माननी ही पडती है। न मानें तो देहात मे सरकार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाय। गुजरात के खेडा जिले में यही हुआ था। पहले सरकार को छोटे कर्मचारियों की बात रखनी पडी थी, किन्तु बाद को आन्दोलन के कारण उसे अपना विचार बदलना पड़ा।

छोटे कर्मचारी अक्सर रिश्वतखोर होते हैं। किसान को जब कोई काम पड़ता है तो उनकी पूजा अवश्य करनी पड़ती है। सरकारी कानून है किसी मिसिल की नकल जरूरी हो, तो एक आना देने से मिल सकती है, किन्तु चाहे जिस किसान से पूछिये, कि एक आना देनेपर क्या कभी समय पर काम हुआ है ? नाम बदलवाना हो, तो पहले पटवारी साहब को एक रुपया दक्षिणा देनी होगी। पटवारी की लड़की या तहसीलदार के लडके का व्याह होने पर किसान क्या-क्या सौगात नजराना देते हैं, सो सुनिए। सरकारी नौकरों को तरकारी, दूध और घी में कितने पैसे खर्च करने पडते है ? उनके सफर के लिए सवारी का इन्तजाम कौन करता है ? घोड़े की लगाम टूट गई तो मोची हाजिर है, तम्बू के लिए खूँटों की जरूरत हुई तो बढई बसूला लिये खडा है, घोडे के लिए घास की जरूरत हुई तो किसान

की लोंक (दानों समेत अन्न के पौधों के गट्ठे) मौजूद है शीतल जल के लिए घडा या सुराही चाहिए तो कुम्हार लिये खडा है हजामत या चप्पी करवानी हुई तो नाई हाजिर है, किसी दूसरे गाँव को चिट्ठी या खबर भेजना है तो बेगार के लिए चमार या भंगी मौजूद है, दूध की जरूरत हुई तो अहीर खडा है। घी दूसरों को रुपये सेर नहीं मिलता, किन्तु हुजूर को रुपये का दो सेर देना होगा क्योंकि उनसे किसी दिन काम पड सकता है। इस तरह छोटे-बड़े सभी हुजूर मौज करते हैं, तब मुखिया और पटवारी ही क्यों बाकी रह जायँ? मुखिया का खेत निराना है, सभी मजूरी पेशा लोगों को दो-दो दिन मुफ्त काम करने का हुक्म निकाल दिया गया। खेत जोतना है तो किसी के हल बैल पकड़ मँगाये गये, काटने का वक्त हुआ तो मजूर बेगार में पकड़ लाये गये, और घोडी के लिए चारे की आवश्यकता हुई तो किसी कुरमी काछी को रोज हरियाली का गट्ठर पहुँचाने की फरमाइश की गई। यह एक प्रकार का कर है। जिस तरह देसी रियासतें सरकार को कर देती हैं, उसी तरह किसानों से यह कर लिया जाता है। सरकार उन्हें जमीन पर रहने देती है, यह क्या कोई मामूली मेहरबानी है? सरकार की यह हुकूमत की रीति बड़े से लेकर छोटे कर्मचारियों तक छन-छन कर चलती है। हरेक काम के लिए बड़े से लेकर छोटे कर्मचारी तक का अहसान सिरपर चढाना पडता है। इसका देशवासियों की माली हालत के सिवा चाल-चलन पर भी असर पड़ता है। जब इंग्लैण्ड और भारत के आपसी सम्बन्धों का इतिहास लिखा जायगा तब इंग्लैण्ड क्या-क्या लूट ले गया यह लिखा जायगा। किन्तु जो गाव के गाँव नष्ट होगये हैं लोगों की नीति छिन्न-भिन्न होगई है जनता भी डरपोक बन गई

है, लोग झूठ बोलना सीख गये हैं, लोग मारनेखाँ को पूजने लग गये हैं, यह थोड़े ही लिखा जायगा। देश के ही मनुष्य शिक्षा प्राप्त कर कुल्हाड़ी के बेंट की तरह देशवासियों पर जो चोटें कर रहे हैं, वह थोड़े ही लिखा जायगा। इस देश की सभ्यता का नाश कर अंग्रेजी शासन-पद्धति ने जो बुराइयाँ की हैं, और देशवासियों को जिसतरह लोभी, डरपोक और नालायक बना दिया है, उससे लूट और कत्ल लाख दरजे अच्छे थे। तैमूर की लूट, नादिरशाह की कत्ल और अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाई सभी इससे अच्छे थे।

८. पशुओं की जायदाद छिन गई

अब हम लोग जरा पशुओं पर दृष्टिपात करें। मनुष्य तो प्रलोभन में पड़ गये किन्तु पशुओं ने कौनसा अपराध किया था? जिस प्रकार गेहूँ के साथ घुन पिस जाता है और सूखी चीजों के साथ हरी चीजें भी जल जाती हैं, वही अवस्था इनकी भी हुई। पशुओं को चरने के लिए भारत में गोचरों की कमी नहीं थी, किन्तु ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के किरानी और डिरेक्टरों से लेकर आजतक जहाँ रुपयों के लिए हाय-हत्या मची हुई है उसपर भूखे राज्य के पास गोचर कैसे रह सकते है? गोचरों की जमीन लाट की लाट बेच दी गई, नीलाम करदी गई। धनवान व्यापारी और जमींदार पतंग की तरह इन लाटों पर टूट पड़े। बेचनेवाले साहबों की मेमों को सोने की जंजीरें पहनाई गईं और लाल हाथ किये गये। इन लाटों की जोताई साधारण बैलों से कैसे हो सकती थी? हजारों बीघा जमीन कितने दिनों में जोती जाती? घास की जड़ें भी खूब गहराई तक जमी हुई थी। बस विलायत से स्टीम प्लाऊ—इञ्जन से चलनेवाला

हल—मँगाया और बात की बात मे जमीन जोतकर बराबर करदी गई जिन लोगो के पशु इन जमीनो मे चरकर आशीर्वाद दिया करते थे, जिन गांवो के निकट ये गोचर थे, और दूर-दूर के अहीर गडरिये जो इन गोचरो से लाभ उठाकर भारतभूमि को सुजला सफला कहते थे, वे इस पैशाचिक हल को देखकर दंग रह गये। इस हल को चलाने के लिए एक गोरा साहब आया था। उसके साथ मे अनेक काले लोग भी थे, किन्तु वे सब साहब की टोपी पहनकर नकली साहब बन गये थे। इन सबको देखकर देहातियो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

खैर किसी तरह ये लाट जोते गये घास की जडे उखाड फेंकी गई और उनके स्थान मे कपास बोई गई। इस कपास के बोनेवाले मालामाल होगये और सरकार को भी काफी आमदनी हुई। पहले तो नीलाम मे लाभ हुआ, फिर मालगुजारी मे बढती हुई। किन्तु दूसरी ओर लाटवाले और आसपास के ग्रामवासियो मे झगडा होने लगा। जो लोग वहाँ पशु चराने जाते, उन्ही से लडाई होती। लाटवालो ने देहातियो को दबाने के लिए पठानो को नौकर रक्खा। इसके फलस्वरूप वहाँ दंगे और हत्यायें हुई। किन्तु इनका कौन हिसाब? हत्याओ की ओर कौन देखता है? जिन लोगो के पुश्तैनी चर छिन गये, उनमे से कुछ लोगो ने लूटमार का पेशा इख्तियार करके मौके-बे-मौके लाटवालो को तंग करना शुरू किया। जिन साहबो ने यह आग लगाई थी वे शाही महलो मे बैठे हुए चैन की वंशी बजा रहे थे और देशवासियो की इस प्रकार दुर्गति हो रही थी। यह तो हुई मनुष्यो की बात। वे पशु कहाँ गये जिनके लिए प्रकृति ने यह भोजन सुरक्षित रक्खा था? चारे की कमी के कारण किसान ने

उनका ज्यादा तादाद मे रखना उचित न समझा। उसे मजबूर होकर दो बैल और एक आध भैंस रखनी पडी। शेष सभी पशु उसने बेच दिये। दुबले पशु कसाईखाने और अच्छे पशु ब्रेजिल चले गये। किसान को रुपये काफी मिले, पर वे दो ही दिन मे काफ़ूर होगये। इस प्रकार पशु भी चले गये और रुपये भी न रहे। रह गये केवल एक दूसरे को आँखें दिखाते हुए ग्रामीण और लाटवाले। इस योजना का सुन्दर नाम रक्खा गया—डेवेलपमेण्ट स्कीम अर्थात खेती की उन्नति करनेवाली योजना। इसने सारे गोचरो और पडी हुई जमीन को खेत बना डाला। इस अमरीकन तरीके को प्रचलित करने के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया। भारत के पशु मर मिटे, किन्तु इस योजना से भारतमन्त्री को आनन्द हुआ। भारत की उन्नति हुई। यह सब आजकल के अर्थशास्त्रो के फेर मे पडकर हुआ।

सरकार पाँच-पाँच वर्ष मे पशुओ की गिनती के अक प्रकाशित करती है। उन्हे देखने से इस बात का पता चल सकता है, कि भारत में पशुओ की सख्या दिनो दिन किस प्रकार घटती जा रही है। किसी किसान के यहाँ बैल ही नहीं होते। वह माँग-जाँच कर या भाडे पर लाकर काम चलाता है। किसी के पास एक ही बैल होता है वह दूसरे को साझीदार बनाकर काम चलाता है, किन्तु इनमे खेत बोने का काम ठीक समय पर नहीं हो पाता। किसी किसान के यहाँ बैलो की अच्छी जोडी होती है तो उसका मूल्य दो ढाई सौ रुपये आँका जाता है। सब किसान ढाई सौ की जोड़ी कैसे ले सकते हैं? बैलो की अच्छी जोडी रखना आजकल हाथी बाँधना समझा जाता है। अच्छी नस्ल के पशु घटते जा रहे हैं। कुछ दिनो मे उनका पता भी न रहेगा। जिस प्रकार कई किस्म के भारतीय घोड़ो का निशान

संसार से मिट गया है, उसी तरह, यह हुकूमत चलती रही तो, बैलों की भी अच्छी नस्लें लोप हो जायँगी। केवल गुजरात का उदाहरण लीजिए। वहाँ अब सिन्धी लोग बैल बेचने जाते हैं। जो गुजरात किसी समय एक उद्यान रूप था, जिस गुजरात में गोचरों की कोई कमी न थी, जिस गुजरात के बैल बढ़िया माने जाते थे, उसी गुजरात के लोगों को अब सिन्धियों से बैल खरीदने पड़ते हैं।

आजकल एक गाय रखना भी भारी पड़ता है। पहले किसी ब्राह्मण का घर बिना गाय का न रहता था किन्तु अब महँगे दाम की घास और दाना खिलाकर गाय रखना नहीं बन सकता। पशुओं को खिलाने में भी अर्थशास्त्र देखा जाता है। अहीर गायें पालकर क्या करें? उन्हें क्या खिलाएँ? उन्हें बेच देने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं दिखाई देता। बेचने से अच्छी रकम मिलती है। मांस का भी मूल्य मिलता है, चमड़े का भी मूल्य मिलता है, हड्डियों का भी मूल्य मिलता है, खुर और सींगों का भी मूल्य मिलता है। पशु को जिंदा रखने में जितना लाभ है, उसको मार डालने में उससे कहीं अधिक लाभ है। इस प्रकार घर में अर्थशास्त्र दाखिल हुआ। सरकार ने इसके लिए कसाई खाने खुलवा दिये। अकेले बम्बई का ही उदाहरण लीजिए। कोई कह सकता है, कि वहाँ कसाईखाने में प्रति वर्ष कितने पशुओं की हत्या की जाती है? सरकार की ओर से इसका विवरण प्रकाशित होता है। पाठक उसे देख सकते हैं। बतलाइए अब घी और दूध कहाँ से लाया जाय? कैसे खाया जाय? खाइए घी के स्थान में वेजीटेबिल प्रोडक्ट (वनस्पति घी) और दूध के स्थान में नेस्लन आदि का जमाया हुआ दूध। भारत के बच्चे बिना दूध के तरस रहे हैं, किन्तु किससे शिकायत की जाय? गोचरों को नीलाम

करने का साहबों से या उन्हें खेत बनाकर मालदार बननेवाले देश वासियो से ? गोचरों की कौन कहे, गुजरात के मातर तालुके मे तुलसी के वन थे। वहाँ की तुलसी प्रति वर्ष गोकुल-मथुरा और काशी के देवताओं पर चढाई जाती थी, किन्तु वे गोड-गोड कर बराबर कर दिये गये और तुलसी के स्थान मे वहाँ कपास के पौधे लहराने लगे। यह कपास मन्चेस्टर और टोकियो गई। वहाँ से उसके रुपये आये। उन रुपयों से हमने विलायती कपडा खरीदा और जो बचा उससे साबुन, तेल, फुलेल और मौज शौक की हजारो चीजे ली। दूध की क्या आवश्यकता है ? भारत के सुकुमार तपड़ते हैं तो उन्हे तडपने दीजिए।

७. जंगल भी लुट गये

मनुष्य और पशुओं की अवस्था देख चुके। चलो, अब जरा वृक्षों के पास चले। बताओ भाई तुम्हारे क्या हाल हैं ? वृक्ष माने प्रकृति का बनाया हुआ बॅगला। उसमे न जाने कितने जीव जन्तु विश्राम करते हैं। किन्तु जरा सोचिए कि प्रतिवर्ष इस प्रकार के कितने वृक्ष कटते हैं। माना कि मिल और जिनो के लिए लकडी की आवश्यकता पडती है, किन्तु क्या इनके लिए नए वृक्ष भी रोपे जाते हैं ? अँग्रेजी मे एक कहावत है कि "वृक्ष रोपने से स्वर्ग मिलता है।' जरा इस सूत्र के अर्थ पर विचार कीजिए। बडे शहरों मे रहनेवाले लोग देहातों से लकडियाँ और कोयला माँगते हैं। खैर कोई हर्ज नहीं, किन्तु क्या शहरातियों को कभी यह बात भी सूझती है कि वर्ष मे कम से कम एक वृक्ष तो कहीं लगवा दें ? सम्भव है कि सूझती हो पर वे वृक्ष कहाँ लगाये ? तिमंज़िले पर, जहाँ रहते हैं वहाँ ? उनके पास तो बिस्वा भर भी जमीन

मेण्ट स्कीमें बनती जायँगी। इसे गनीमत ही समझना चाहिए कि कुछ जंगल रिजर्व रक्खे जाते हैं, किन्तु यह भी केवल इसलिए किया जाता है कि लकड़ी की माँग होने के कारण सरकार को इन जंगलों से लाभ होता है जिस दिन सरकार को मालूम हो जायगा, कि इसमें कोई लाभ नहीं है बल्कि जमीन के प्लाट बनाकर देने में ज्यादा लाभ है, उसी दिन ये भी साफ हो जायँगे।

यह सब रोना रोने का तात्पर्य यह है कि हमारा देश अनाथ हो गया है। लोग अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार अपना-अपना ढोल बजा रहे हैं। बेचारा किसान इन सबों के बीच में मृत्युशैय्या पर पड़ा है।

एक ज़रूरी बात कहनी रह गई। भारत का माल विदेश चले जाने के कारण भूमि की उपजाने की ताक़त भी बहुत घट गई है। साधारण नियम यह है कि ज़मीन से जितना लिया जाय, दूसरे प्रकार से उनमें उतना ही डाला जाय। भारत से प्रति वर्ष अंडी, सरसों, तेलहन, चमड़ा, हड्डियाँ और गेहूँ आदि कीमती वस्तुएँ लाखों टन विलायत जाता है, परन्तु उनके बदले ज़मीन में क्या पड़ता है? अनेक स्थानों में तो किसानों को लकड़ियाँ नहीं मिलती इसलिए वे गोबर के कंडे बनाकर जलाते हैं। ऐसा करने से सोने-चाँदी जैसी यह खाद भी नष्ट हो जाता है। इन्हीं सब कारणों से ज़मीन की उपजाने की ताकत दिन-दिन घटती जाती है। एक तो किसान की माली हालत ख़राब, दूसरे उसके बैल अधमरे, तीसरे उसकी पैदावार का एक आना भी घर में न रहने पाये, ऐसी अवस्था में किस प्रकार क्या डालकर वह ज़मीन की उपजाने की ताकत कायम रख सकता है? सरकार का कृषि-विभाग कहता है, कि उसे विदेशियों से कृत्रिम खाद ख़रीदनी चाहिए जिससे कि और भी पैसे विदेशियों के हाथ लगें।

: ११ :

दरिद्रता के कडुए फल

१. दरिद्रता की हद

अभी सवत १९८९ मे ही एक समाचार छपा था कि पार्लमेण्ट का कोई मजूर सदस्य भूख मे व्याकुल होकर सभा-भवन मे ही बैठे-बैठे बेहोश होगया। यह मजूर सदस्य बडा दरिद्र था। क्योकि इसकी सालाना आमदनी कुल ४०० पौण्ड अर्थात ५३३३) रुपये थे। पार्लमेण्ट के प्रमुखो ने तरस खाकर ५० पौण्ड अर्थात ६६७) रुपये और बढा दिये, क्योकि शायद इस गरीब सदस्य को पाँच-छ प्राणियो के बडे परिवार का खर्च उठाना पडता था।[१] ब्रिटिश पार्लमेण्ट की निगाहो मे यह मजूर सदस्य जिसकी आमदनी ४४४) मासिक थी, बहुत दरिद्र था और उसकी आमदनी खर्च के लिए काफी न थी। यहाँ के लोगो की आमदनी ससार के सभी देशो मे अत्यन्त कम है। सिर पीछे ३७) रुपये सालना से कम नहीं है। अगर १४-१५ रुपये रोज कमानेवाला पार्लमेण्ट की नजरो मे गरीब है तो ६-७ पैसे रोज कमानेवाला क्या होगा? उसे किस कोटि मे रक्खेंगे? दरिद्रता की भी एक हद होती है। हमारी समझ मे जिस आदमी को जीवन की रक्षा के लिए खाना, कपडा और रहने की जगह भर

[१] यह समाचार कई पत्रो मे छपा था, परन्तु न तो मैने इसका कोई खण्डन देखा और न उसके अधिक वृत्तान्त मिले।

मुश्किल से मिले, वह बिना ऋण लिये कभी अपने यहाँ आये हुए मेहमान को खिला न सके, या किसी भगत को भिक्षा न दे सके वह 'दरिद्र' है। परन्तु यह दरिद्रता की हद आजकल की नहीं है। यह ब्रिटिश राज मे इस दर्जे पर पहुँच गई है कि हम पहले जमाने मे दरिद्रता की जो परिभाषा करते थे वह भारत के आजकल के मध्यवर्ग पर लगती है। जिनकी आमदनी साल मे पाँच छ सौ रुपये से कम नही है, या यो कहिए कि जो लोग सालभर मे लगभग उतना कमा सकते हैं, जितना कि पार्लमेण्ट का दरिद्र मजूर सदस्य हर महीने पाता है। जिन लोगो की आमदनी साल मे ५००) से कम है उनके लिए 'दरिद्र' से भी अधिक दरिद्रता की हद बतानेवाला शब्द होना चाहिए। हमारी समझ में वह शब्द 'कगाल' है

हर आदमी यह अधिकार लेकर दुनिया मे पैदा होता है, कि वह अपने शरीर को भला-चङ्गा रक्खे और अपने परिवार को और समाज को, देश को और साथ ही अपने को मन, वचन, कर्म मे अधिक-से अधिक लाभ पहुँचावे और अधिक-से-अधिक सुख दे, और इन बातो को पूरा करने के लिए उसे पूरी-पूरी योग्यता और स्वतन्त्रता का अवसर मिले। समाज मे इन जन्म-सिद्ध अधिकारो-को काम में लाने के लिए उसका रहन-सहन एक निश्चित ऊँचाई और अच्छाई का होना चाहिए। हमारे देश का रहन-सहन अनादि काल से बहुत सादा चला आया है। हमारे मजूर और किसान मोटर और विमान रखनेवाले कभी न थे, परन्तु ब्रिटिश राज्य से पहले इस दर्जे की दरिद्रता भी न थी। किसान लोग खाने-पीने से खुश थे।

अमेरिका का एक प्रामाणिक लेखक 'दरिद्रता' की परिभाषा यो

करता है:—"दरिद्रता जीवन की वह दशा है जिसमें आदमी, अपने कम आमदनी के या बेसमझी के खर्चे के कारण ऐसे रहन-सहन से गुजर नहीं कर सकता जिसमें कि अपने समाज की हद के अनुसार वह आप और उसके परिवारवाले उपयोगी काम कर सकें। और वह आप शरीर से और मन से पूरा-पूरा उपयोगी बन सके।" वही लेखक कहता है कि "कंगाल होना जीवन की वह अवस्था है जिसमें आदमी पूरा-पूरा या थोड़ा बहुत अपने खाने-कपड़े के लिए ऐसे किसी आदमी का मोहताज हो जो स्वभाव से या क़ानून से उसका सहायक न समझा जाता हो।"[१]

हमारी समझ में श्री गिलिन की ये परिभाषायें बिलकुल साफ़ हैं। अगर उन्होंने कम आमदनी या बेसमझी के खर्चे की शर्त न लगाई होती तो 'दरिद्रता' की उनकी परिभाषा हमारे गुलाम देश के लिए भारतीय धन कुबेरों पर भी लग सकती थी। स्वर्गीय गोखले ने कहा था कि भारतवर्ष में ब्रिटिश राज ने तरक्की के रास्ते को ऐसा बन्द कर रक्खा है कि यहाँ के ऊँचे से ऊँचे आदमी को झुक जाने को लाचार कर देता है। यहाँ कोई आदमी पूरी उपयोगिता को पहुँच ही नहीं सकता परन्तु गिलिन की परिभाषा हमारे यहाँ के ऊपरी श्रेणी के लोगों को छोड़कर बाकी सारे देश पर लग जाती है। इस तरह भारतवर्ष की साढ़े नन्यानवे प्रति सैकड़ा आबादी दरिद्र है। जिनको अपनी मेहनत मजूरी से आधे पेट या दूसरे तीसरे दिन भी भोजन मिल जाता है, उन दरिद्रों में भी इज्जत का खयाल इस दर्जे का है कि वे किसी के सामने हाथ पसारने से मर जाना ज्यादा पसन्द करते हैं।

वे अपनी आँखों के सामने अपने प्यारों का भूख से तड़पना देखते हुए भी भिक्षा माँगने का अधम काम कबूल नहीं करते। इतना होते हुए भी बत्तीस करोड की दरिद्र आबादी में तीस लाख से कुछ ही ज्यादा भिखमंगों, अवारों, वेश्याओं आदि लाचार निर्लज्जों का होना कोई अचरज की बात नहीं है।

दरिद्रता के इस स्थूल रूप पर विचार करने के बाद हम आगे क्रम से इस बात पर विचार करेंगे कि इस घोर अनुपम दरिद्रता के क्या-क्या बुरे असर राष्ट्र पर पड चुके हैं, हम किन-किन कडुवे फलों का अनुभव कर चुके हैं।

२. आबादी पर प्रभाव

दरिद्रता का सबसे बुरा असर आबादी पर पड़ता है।

१. भूख के सताये हट्टे-कट्टे काम करनेवाले गाँवों से भागकर, नजदीक और दूर के शहरों में चले गये और कुली का काम करने लगे, चाय के बागों में गुलामी करने लगे या दूर-दूर विदेशों में चले गये, और वहीं मर खप गये। इस तरह जो खेती के काम में कुशल थे गाँवों से निकल गये, और जो काम में कुशल नहीं थे रह गये, जिससे खेती का काम दिन-ब-दिन बिगडता गया। गरीबी के कारण बालकों को शिक्षा न मिल सकी, और गाँवों में पढाने का बन्दोबस्त न हो सका।

२ कुछ तो शिक्षा न मिलने से और कुछ पूरी सफाई और तन्दुरुस्ती का बन्दोबस्त न हो सकने से, जिसमें धन बिना काम नहीं चल सकता था, अनेक तरह के रोग फैल गये, जिनसे आये दिन अनगिनत आदमी मरते जाते हैं, और आबादी घटती जाती है।

३ दरिद्रता के कारण अकाल पड जाता है, और लोग भूखो मर जाते हैं। अन्न के न होने से लोग नही मरते। अडोस-पडोस के बाजारो में गाडियो अन्न आता है, और बराबर बिकता रहता है, परन्तु अकाल से पीडित मुकखडो के पास खरीदने को दाम नही होता, इसीलिए भूखो मर जाते हैं। ऐसे मरते हैं, फिर भी किसानो को कोई काम ही नही मिलता, जिससे वे पैसे कमा सकें। जिस साल अच्छी फसल होती है उस साल तीन महीने से लेकर छ महीने तक उन्हें काम रहता है, और खेत मजूरी देता है। जिस साल फसल नही होती, उस साल बारह मास की बेकारी है। मजूरी कौन दे? असल मे अन्न का अकाल नही है। मजूरी के थोडे अकाल मे तो किसान सारा जीवन बिताता है, पूरा अकाल तो उस समय होता है, जब फसल भी जवाब दे देती है।

४ दरिद्रता के कारण आपस के लडाई झगडे होते हैं, परिवारो मे अलग गुजारी हो जाती है, और अलग होनेवाले अपना अपना खर्च न सँभाल सकने के कारण उजड जाते हैं खेती-बारी छूट जाती है, इस तरह गाँव की आबादी घटती जाती है।

३. आदमियों पर प्रभाव

दरिद्रता सब दोषो की जड है, जिसके पास धन है वही कुलीन समझा जाता है, वही धर्मात्मा माना जाता है, वही विद्वान और गुण-ग्राहक होता है उसीकी बात सब लोग चाव से सुनते हैं, लोग उसके दर्शनो को जाते हैं। दरिद्र को कोई नही पूछता।

दरिद्रता के कारण—

१ [illegible] के साथ लोगों मे किसान मिलता-जुलता नहीं [illegible] छोटापन आ जाता है।

२ धूर्तों के बहकाने में जल्दी आ जाता है। जितनी चाहिए उतनी सफाई नहीं रख सकता।

३ खाने को न वक्त से पाता है और न उचित मात्रा में पाता है इससे दुबला और कमजोर हो जाता है। उसकी चाल सुस्त हो जाती है, भरपूर मेहनत नहीं कर सकता, थोड़े में काम में थक जाया करता है, भाँति-भाँति के रोगों का शिकार होता है, उसका जीवन कम हो जाता है।

४ उसका हौसला दिन-ब-दिन पस्त होता जाता है और रहन-सहन का परिमाण घटता जाता है।

५ बाल-बच्चों के सांसारिक बोझ से जल्दी छुटकारा पाने के लिए थोड़ी ही उम्र में व्याह कर देता है और पास की नातेदारियों में ही व्याह करके वंश को और भी खराब कर देता है।

६. व्याह न कर सकने के कारण व्यभिचार में फँस जाता है और वर्णसंकर पैदा करता है। बच्चे बहुत पैदा होते हैं परन्तु पैदाइश के समय काफी मदद न मिलने के कारण बहुत से बच्चे सौर में ही मर जाते हैं और दूध आदि पालन-पोषण का सामान न मिलने से छुटपन ही में बच्चे माता की गोद सूनी कर देते हैं।

७ अनेक दुखिया भुक्खड़ नातेदार, जिनको कहीं ठिकाना नहीं लगता, गरीब किसान के घर जबरदस्ती आकर रह जाते हैं। इस तरह उसके कष्ट और भी बढ़ जाते हैं।

८ उसका कुटुम्ब अक्सर बड़ा होता है। जितना ही बड़ा कुटुम्ब होता है सिर पीछे उतनी ही बेकारी बढ़ती है।

९ वह ज्यादा पोतवाला अच्छा खेत नहीं ले सकता। खराब खेत ज्यादा मेहनत चाहते हैं जो वह बेचारा कर नहीं सकता।

२. उसका भोजन अक्सर बे-नमक का होता है। बेचारा नमक तक खरीदने की सामर्थ्य नही रखता। जिसकी आमदनी ६ पैसे रोज़ से भी कम हो, वह नमक मिर्च कहाँ पावे।

३. उसके भोजन मे पालन-पोषण का तत्त्व बहुत कम होता है।

४. वह काफ़ी भोजन नहीं पाता, कभी आधा पेट पाता है, और कभी वह भी नही।

५. उसे दूध, घी, मठा, तो क्या मिलेगा, उसके बच्चो को छाछ भी नसीब नहीं होती।

६. उसके ढोर भूखो मरते हैं, उनके लिए घर नही होता।

७ उसके घर उसे धूप बरसात आँधी तूफ़ान और जाडे से बचाने के लिये काफी नही होते।

८. जङ्गलो और पेडो पर कोई अधिकार न होने से उसे जाडे के लिए काफी ईंधन नहीं मिलता, और वह लाचार हो उपले जलाने का आदी हो गया है, जिससे खेत के लिए उत्तम से उत्तम खाद वह चूल्हे मे जला देता है। परिस्थिति ने उसे भुलवा दिया है।

९ उसके पास काफी कपडा नही है, और जो है वह विला-यती है, जो काफी टिकाऊ नही होता, मगर सस्ता होने के कारण लिया जाता है।

१० उसकी खेती का सामान बढ़िया नही है, पूरी मेहनत करके भी उससे वह उतना अच्छा काम नही ले सकता, जितना कि अच्छे हल बैल से होता।

११ उसे अपने रोजगार के बढ़ाने का कोई साधन प्राप्त नही होता।

१२ मजूरी की दर बहुत कम होने से किसान को ऐसे काम

के लिए मजदूर नही मिल सकते जिन्हे वह अकेला नही कर सकता और वहाँ लड़को और औरतो की मदद काफी नही होती।

१३. अपने खेतो पर जो मजूरी की जाती है उसका बदला भी बहुत थोड़ा मिलता है।

१४ वह गाय पाल नही सकता और न छोटे-मोटे घरेलू रोजगार कर सकता है, और करे भी तो दशा ऐसी है कि रोजगार मे सफलता नही मिलती।

घर गृहस्थी मे किसान और उसका परिवार अपने दादा के समय मे आज की तरह बेकार नही रहता था। खेती से जो समय बचता था उसमे मजबूत हाथ-पैरवाला किसान और मेहनत के काम किया करता था। गाड़ी चलाकर थोक का थोक माल बाजार ले जाना, खँडसालें चलाना, रुई धुनना, गाय भैंस आदि बड़े ढोर पालना, सन पटसन आदि बटना, टोकरियाँ बनाना आदि इनके तरह के काम देहातो मे सब तरह के लोग करते थे। इनके सिवा पेशेवाले किसान, कुम्हार, लुहार, बढ़ई आदि भी अपने काम करते ही थे, ये पेशेवाले तो थोड़ा बहुत अब भी अपना काम करते ही हैं। इनके सिवा इनके घर की स्त्रियाँ और लड़के भी तरह तरह के काम करते थे।

दो पीढ़ी के लगभग हो गये। घी दूध और कपास का काम जो घर मे होता था, किसान के लिए बडे लाभ की चीजें थी। घी दूध मे परिवार भी तृप्त होता था और पैसे भी आते थे। ओटनी और चर्खे से परिवार का तन भी ढकता था और पैसे भी आते थे। इसके सिवा पेशेवालो के गॉव के गॉव होते थे जो आज उजड गये हैं। जहाँ कही खद्दर बनाने की कला बढ़ी हुई थी, वहाँ कोरी, कोष्टी, तॉती और जुलाहे आदि बुनकरो की बडी-बड़ी बस्तियाँ थी। ये बस्तियाँ उजड़ गई। जो थोड़ी बहुत बची हुई हैं विलायती सूत में उलझी हुई हैं। ग्वालो के गॉव के गॉव थे जिनके यहॉ दूध घी का भी रोज़गार था और खेती भी होती थी। बहुत से ऐसे गाँव उजड़ गये और जो बचे हुए हैं उनकी दशा दरिद्रता से आँखों में खून लाती है। यो गाँव-गॉव मे जहॉ सभी जाति और पेशे के किसान मिलजुलकर रहते थे, वहाँ दो एक घर खद्दर बुननेवालो के भी थे, और हफ्ते के दिनो मे जहॉ बाजार लगा करते थे, सूत कपास और खद्दर का लेनदेन और बिक्री हुआ करती थी। रोज़गार के अच्छा होने से लोगो के रहन-सहन का परिमाण बढा हुआ था। रोज़गार टूट जाने से रहन-सहन का परिमाण गिर गया।

५. शिक्षा पर प्रभाव

पहले गॉव-गाँव मे टोल थे, पाठशालायें थी। गॉव के भय्याजी सब बालको को पढ़ाते थे। गॉव के सभी किसान बालक थोडा लिखना-पढ़ना और हिसाब-किताब सीखते थे। टोलो, पाठशालाओ के खर्च के लिए माफ़ी के खेत थे। उनकी आमदनी से पढाई का खर्च चलता था। गॉववाले मास्टरो को सीधे देते थे। और अधिकाश

पञ्चायत के द्वारा सारा खर्च दिलवाया जाता था। पढ़ाई के लिए कहीं-कहीं घर होते थे, कहीं चौपालों में जगह होती थी, कहीं मन्दिरों और मठों में और कहीं-कहीं बागों में। जब पचायतों का अधिकार छिन गया, माफी खेत छिन गये, किसान दरिद्र हो गये, तब सारा बन्दोबस्त टूट गया। कुछ काल तक शिक्षा का महत्व समझनेवाले किसानों ने, अधिकांश इक्के दुक्के ने, अपनी ओर से बच्चों के पढ़ाने का प्रबन्ध जारी रक्खा। कहीं-कहीं बेहरी लगाकर कुछ समय तक पाठशालायें ठहरीं, परन्तु ठीक सगठन न होने से इस तरह के निजी उद्योग भी समाप्त हो गये। दरिद्रता के कारण—

१ गाँववाले बच्चों के पढ़ाने का बन्दोबस्त नहीं कर सकते। जो स्कूल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने कायम किये हैं वे बहुत कम हैं, दूर-दूर पर हैं, जहाँ छोटे-छोटे बच्चे नहीं पहुँच सकते इसलिए देश के बच्चों की बहुत थोड़ी गिनती तालीम पा सकती है।

२ जिन थोड़े से बच्चों को तालीम दी जाती है उन्हें किसानों के काम की कोई शिक्षा नहीं मिलती, क्योंकि किसानों को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में शिक्षा के बारे में अपनी नीति चलाने का कोई अधिकार नहीं है और उनके पास व साधन नहीं हैं कि काम की शिक्षा दे सकें।

३ वे अपने पढ़नेवाले बच्चों को खेती का काम नहीं सिखा सकते। पढ़नेवालों को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह शिक्षा पाकर खेती आदि के कामों को नीच समझने लगते हैं। शहरों और कस्बों में [illegible] नौकरियों के पीछे ठोकरें खाते फिरते हैं।

४ खेती की शिक्षा न होने से खेती का काम दिन पर दिन खराब होता जा रहा है।

५. किसान इतने गरीब हैं कि बच्चो के लिए किताबें मोल नही ले सकते।

६ वे अपने लिए कोई अखबार नही खरीद सकने, जिसमे खेती का, रोजगार का या दुनिया का कुछ हाल जान सकें।

७. वे देश के आन्दोलनो की खबर नही रखने।

८. वे अपनी ही दशा नही जानने, और न उसके सुधारने के लिए कोई आन्दोलन कर सकते हैं।

९ वे अपनी ओर से शिक्षक नही रख सकने जो उनके नेता का काम कर सके और प्रजाहित के कामो मे मदद दे।

१०. वे आपस मे से किसी को नेता के काम के लिए तैयार नहीं कर सकते।

११. उनकी बहुत बड़ी सख्या निरक्षर हो गई है, और निरक्षरता के जितने बुरे परिणाम हैं वे सब भोग रही हैं।

१२. बालको को ऊँची शिक्षा का कभी अवसर नही मिलता।

१३. खेती की शिक्षा न मिलने से लाभ कम होता है। लाभ न होने से खेती का सुधार नहीं होता, सुधार न होने से दरिद्रता बढती जाती है। दरिद्रता बढ़ते जाने से आगे शिक्षा की भी कोई आशा नहीं हो सकती। यह बड़ा ही दूषित भ्रामक चक्र है, जिसमे सारा देश फँसा हुआ है।

६. जायदाद पर प्रभाव

जब किसान खुशहाल था, तब उसकी गृहस्थी बड़ी होती थी, घर बडे और हवादार थे सब ऋतुओ के अनुकूल बने हुए थे। गोशाला थी, बाग, कुएँ, तालाब, मन्दिर, चौपाल सब कुछ था। पशुओं

के चरने के लिए गोचर-भूमि अलग होती थी। किसान और उसके पशु खुश रहते थे। आज सारी दशा विपरीत है।

दरिद्रता के कारण—

१. वह हवादार और अच्छे घर नहीं बना सकता। जीवन के आवश्यक सामान नहीं जुटा सकता।

२ वह लाचार होकर उपले जलाता है, क्योंकि लकड़ी न खरीद सकता है, न निर्धनता के कारण पेड़ मोल ले सकता है, न जमींदार से पेड़ लगाने या काटने के लिए आज्ञा मोल ले सकता है और न विदेशी सरकार की बाधा के कारण जङ्गल से लकड़ी काट सकता है। इस तरह उसे खेत के लिए सबसे उत्तम खाद खोना पड़ता है।

३ उचित खाद के बिना खेत की पैदावार दिन पर दिन घटती जाती है।

४ वह खेत का मालिक नहीं है और जानता है कि खेत की दशा बहुत अच्छी हो गई तो लगान बढ़ जायगा या बेदखली हो जायगी, या बन्दोबस्त पर सरकारी मालगुजारी बढ़ जायगी। इसलिए खेत में सुधार करने का उसे हौसला नहीं हो सकता।

५ वह अपने गाय भैंस, बैल का ठीक-ठीक पालन-पोषण नहीं कर सकता।

६ जो पहले गोचर-भूमि थी वह अब खेत है। ढोरों की चराई का बन्दोबस्त अच्छा नहीं है जिससे ढोर बहुत दुबले हो गये हैं।

७ लोग गोपालन के रोजगार में टोटा होने से इस ओर ध्यान नहीं देते, इससे यह कारोबार चौपट हो गया है।

८ गो-वंश-सुधार की रीतियाँ भूल जाने से ढोरों की नस्ल खराब हो रही है।

९ फलो का रोजगार ठीक रीति मे न होने के कारण लोगो का ध्यान अच्छे बाग लगाने या बाग की रचा पर नही है।

१०. आपस मे लडाई-झगडा होने के कारण बहुत छोटे-छोटे हिस्सो मे बँटवारा हो रहा है, एक खेत घर के पास है तो दूसरा मील भर दूर, तीसरा उससे एक फर्लाङ्ग पर, इस तरह इकट्ठी खेती करने का मौका नही है। दूसरे सब मदो मे खर्च बढता है, और रखवाली ठीक तौर पर नही हो सकती।

११ खेती के औजार पुराने और दकियानूसी हो गये है, और नये और अच्छे खरीदे या बनवाये नही जाते।

माली हालत किसानो की इतनी खराब है कि वे बाप-दादो की जायदाद को धीरे-धीरे खोते जाते हैं, उनके पास धन नही है कि अपनी भागती हुई जायदाद को चतुर साहूकार के चङ्गुल से बचा सकें।

७. तन्दुरुस्ती पर असर

पहले के किसान शहर के लोगो के मुकाबले अधिक हृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त समझे जाते थे, पर आज वह चलती-फिरती हुई ठठरियाँ हैं, जिनके चेहरे पर उदासी है। जान पडता है कि उन्होने हँसी-खुशी के दिन नही देखे हैं, और सीधे स्मशान की ओर चले जा रहे हैं। दरिद्रता के कारण—

१ अपनी तन्दुरुस्ती पर वे उचित ध्यान नही रख सकते।

२ कभी-कभी उन्हे खेतो मे कमर तोड परिश्रम करना पडता है, परन्तु साल मे अधिक बेकार ही रहना पडता है। इस असयम से वे बच नही सकते।

३ पोषण काफी नही होता, इसलिए जीवनीशक्ति कम होती और रोग का मुकाबला नही कर सकती।

१९ देहातों में घूमनेवाले डाक्टर न तो समय पर पहुँच सकते हैं, न काफी मदद करते हैं, और न इस अनमोल मदद का लाभ ज्यादा लोग उठा सकते हैं।

२०. लोगों की औसत उमर घटकर २८ वर्ष हो गई है।

२१ शरीर के पोषण के लिए जितने पदार्थ चाहिएँ उनमें मुख्य नमक है। जो अनेक रोगों से रक्षा करता है, यह नमक आदमी को काफी नहीं मिलता, और ढोरों को तो बिलकुल नहीं मिलता, क्योंकि किसानों की थोड़ी आमदनी के लिए वह बहुत महँगा है।

२२ ढोरों में बीमारियाँ फैल जाती हैं, मगर किसान इलाज नहीं कर सकता।

२३. जहाँ ढोर बाँधे जाते हैं वहाँ की काफी सफाई किसान नहीं कर सकता।

२४. बीमारियों से ढोर मर जाते हैं और दूसरे ढोरों में बीमारी फैला जाते हैं, इस तरह किसान का कई तरह का नुकसान हो जाता है।

२५ ढोरों की बीमारी में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से मदद का लाभ बहुत कम उठा सकता है।

जब गाँव का बन्दोबस्त पंचायत के हाथ में था, गाँव में वैद्य भी होते थे, और दवा-इलाज का बन्दोबस्त अपना होता था। उसके सिवाय शिक्षा ऐसी थी कि ग्वाले और गृहस्थ किसान शालिहोत्री और डाक्टर का बहुतेरा काम जानते थे। धाय का काम तात्कालिक चिकित्सा और दवा-दर्पण घर-घर बूढ़े किसान और घर की बाल-बच्चों वाली लुगाइयाँ इतना काफी जानती थीं, कि डाक्टर और अस्पताल की मोहताज न थीं। परन्तु पुरानी शिक्षा की विधि उठ गई, और बस्ती के उजड़ने से भी परम्परा और अभ्यास दोनों की हानि हुई।

८. माली दशा पर प्रभाव

इस विषय में तो पिछले पृष्ठों में हम 'सरकारी लगान नीति', उसकी रकमें और उसके वसूल करने की विधि इत्यादि पर विचार कर चुके हैं। सारी दरिद्रता का कारण तो वह स्वार्थी नीति है जिसका व्यवहार भूमि-कर के सम्बन्ध में किया जाता है। वही तो किसान की दरिद्रता का प्रधान कारण है। दरिद्रता के कारण—

१ सिंचाई का वह काफ़ी प्रबन्ध नहीं कर सकता, और वर्षा के भरोसे रह जाता है। वर्षा न हुई तो फसल गई।

२ वह अकेले मेहनत करता है। मजूरी न दे सकने के कारण या मजूर न मिलने के कारण उसकी खेती जितनी चाहिए उतनी सफल नहीं होती।

३ पैदावार के मुकाबले लागत खर्च खेती में ऊँचा पड़ता है, क्योंकि वह अच्छे औजार नहीं काम में ला सकता। उसके खेत दूर-दूर हैं और टुकड़े टुकड़े हैं। उसके बैल दुबले हैं और [illegible] इसी-लिए कम उपजता है।

४ जरूरत पड़ने पर उसके पास कोई जमा नहीं है [illegible]। पहले जमाने में उसकी औरत के गहने उसके लिए [illegible]। अब वह गहने भी नहीं बनवा सकता।

५ लगान या मालगुजारी देने के समय [illegible] होकर साहूकार से कर्ज लेना पड़ता है और खेत [illegible]। किसानों पर लगभग आठ अरब का कर्ज लदा हुआ है।

६ आये दिन की मुकदमेबाजी से किसान परेशान रहता है और अधिक से अधिक लुटता जाता है।

७ गाँजा, ताड़ी शराब की कुटेव मे फँसता है, और तन मन धन और धर्म सब खो देता है।

८ शादी-गमी, काम-काज मे वह अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करता है, और कर्ज से लद जाता है।

९ वह अपने लिए जरूरी कपडे भी नही खरीद सकता। उसकी खरीदने की ताकत बहुत कम हो गई है।

१०. काबुली, बलूची, पठान और दूसरे व्यापारी उसे जाडे के शुरू मे दूने तिगुने दामो पर उधार कपडे देकर ठगते हैं, और जाडा बीत जाने पर बडी कड़ाई से वसूल कर लेते है।

११ खेती के और समान भी वह नकद नही खरीद सकता। उधार के कारण उसे बहुत ठगाना पड़ता है।

१२ खेत की उपज दिन-दिन घटती जाती है। वह उपज बनाये रखने के लिए उपाय नही कर सकता।

१३. लगान की दर इतनी ऊँची है कि आधे से ज्यादा खेत का मुनाफा निकल जाता है, और उसे अपनी लागत का खर्चा और उसपर का सूद मुश्किल से मिलता है। फसल अच्छी न हुई तो वह भी गया।

१४ वह कॉग्रेस का चन्दा नही दे सकता, और अपना प्रतिनिधि कॉग्रेस मे नही भेज सकता।

१५ गाँव मे शिक्षा रक्षा और मन-बहलाव के लिए जो उपाय वह पहले कर सकता था, अब नही कर सकता।

१६ बुढ़ापे के लिए और अनाथो और विधवाओ के लिए कोई बन्दोबस्त नहीं कर सकता।

१७ आग लगने पर, बाढ आने पर और ओले पडने पर वह कोई उपाय नहीं कर सकता। बीमे के लिए उसके पास धन कहाँ है?

१८. उसकी औसत आमदनी छः पैसे रोज है। इतनी थोड़ी आमदनी पर वह आधा पेट मुश्किल से खा सकता है, और जरूरतों की कोई चरचा नहीं।

१६ वह साल में औसत छः महीने तक बेकार रहता है। उस बेकारी की दशा को 'फुरसत' नहीं कह सकते। दरिद्रता के कारण इसमें फुरसत का सुख वह नहीं उठा सकता।

२० उसके अनेक रोजगार छिन गये हैं। विदेशियों की चढ़ा-ऊपरी से, विदेशी सरकार होने के कारण उसके रोजगारों की रक्षा होने के बदले विनाश हो गया है। कपास की खेती, ओटना, धुनना, कातना, बुनना बन्द हो गया है। खँडसालें बन्द हो गई हैं, गोचर-भूमि के खेत बन जाने से और जीते हुए गाय-बैल के मुकाबले से चमड़ा, मांस, चर्बी, हड्डी, सींग आदि से ज्यादा दाम मिलने के कारण गोवंश का नाश हो गया और ग्वालों का रोजगार चौपट हो गया। ये सारे रोजगार नष्ट हो जाने से किसान के सारे जीवन पर बेकारी की मोहर लग गई।

विरक्त बहुत थोड़े हैं और होने भी चाहिएँ। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी संसार में थोड़े ही होते हैं। सबसे ज्यादा संख्या संसार में गृहस्थों की होनी चाहिए, जिनसे बाकी सबका पालन-पोषण होता है। धर्म की सबसे अधिक जिम्मेदारी गृहस्थों पर आती है। भारतीय किसान किसी समय बड़ा ही धार्मिक था। उसके द्वार से मगन निराश होकर नहीं लौटता था। होम, जप, तीर्थ, पूजा, त्यौहार और उत्सव उसके जीवन के अङ्ग थे। संसार में उसके बराबर सफ़ाई से रहनेवाला कोई न था। उसकी ईमानदारी और सचाई जगत् में प्रसिद्ध थी। वह अपनी बात पर मर मिटता था। उसके यहाँ स्त्री जाति का पूरा सम्मान था। पराई स्त्री को मा, बहन, बेटी समझता था। नशेबाज़ी की तरफ कभी आँख उठाकर भी न देखता था। जहाँ संसार के किसान मांस खाने के लिए पशु पालते थे, वहाँ भारतीय किसान अहिंसा—किसी प्राणी का जी न दुखाना और प्राणिमात्र से अपना आपा समझकर सच्चा प्रेम रखना—अपना परम धर्म मानता था। गाँवों की विशेष रूप से और पशुओं की साधारण रीति से रक्षा करता था। हम यह नहीं कहते कि भारत में मांस खानेवाले न थे। परन्तु संसार में और देशों के मुकाबले हमारे देश में मांस खाने की चाल बहुत कम थी, और इस कमी के कारण हमारे यहाँ के किसान ही थे। परन्तु आज क्या दशा है? दरिद्रता के कारण धर्म-बुद्धि नष्ट हो गई, और सदाचार के बदले कदाचार ने अपनी हुकूमत जमाई। दरिद्रता के कारण—

१. वह आवश्यक दान नहीं कर सकता।

२. तीर्थाटन नहीं कर सकता।

३ व्रत, होम, जप आदि भी नहीं कर सकता।

हो गया है। किसी का दिल दुखाना उसके निकट कोई पाप नही रह गया है। देखने मे वह अहिंसक अब भी है, परन्तु उसका कारण प्रेमभाव नही है। उसका कारण है उसकी अत्यन्त कमज़ोरी।

१४. किसान का अन्तरात्मा अभीतक जीता नहीं गया है। वह अब तक उसे बुरे कामो से रोकता है, परन्तु वह अन्तरात्मा का शब्द न सुनने के लिए अपने को तमाखू, भाँग, गाँजा, अफीम, ताडी, शराब आदि नशो से बेहोश कर लेता है, और तब दुराचार मे लगता है।

१५ वह व्यभिचारी हो गया है, और स्त्रियो का उसकी निगाहो मे पहले का सा सम्मान नही रह गया है।

१६ स्त्रियाँ बेचारी उसकी पूरी अवस्था नही समझती, और कुछ दरिद्रता और कुछ अशिक्षा के कारण उसकी पूरी सहायता नहीं कर सकती। आये दिन घर मे झगडे होते रहते है, और उनका निरादर होता रहता है।

आजकल नास्तिकता के जमाने मे धर्म के ह्रास की इस गिनती पर अनेक पडितम्मन्य पाठक मुस्करायेगे। परन्तु जहाँतक लेखक को मालूम है, रूस को छोड़कर ससार के सभी देशो मे किसान के कल्याण के लिए उसमे धार्मिकता और नैतिकता का भाव आवश्यक समझा जाता है। हम साम्प्रदायिकता के विरोधी है, परन्तु धार्मिकता को राष्ट्रीयता का आवश्यक अग समझते हैं।

१०. कला पर प्रभाव

कला तो सब तरह से सुख और समृद्धि पर निर्भर है। जहाँ पेट भर खाने को नहीं मिलता, वहाँ तो कला की चर्चा ही वृथा है।

ऐसा भी कोई न समझे कि कला की जरूरत ही नहीं है। मनबहलाव और व्यायाम—सामाजिक शिष्टाचार, मेले-तमाशे और मनोरंजन की सारी सामग्री कला में शामिल हैं। इन सब बातों का आदमी की आयु की कमी-बेशी पर प्रभाव पड़ता है। दरिद्रता के कारण—

१ खेल-कूद का सब तरह से अभाव हो गया है। बड़े तो खेल को भूल ही गये हैं। भूखे पेट खेल क्या होंगे?

२ बच्चे भी भूखों चिल्लाते हैं, कबड्डी आदि खेलने को इकट्ठे नहीं होते।

३ बालजीवन सुखमय नहीं है।

४ बच्चों को खिलौने नहीं मिलते।

५ मेले-तमाशे बहुत कम होते हैं।

६ पैदल दूर की यात्रा करने का हौसला नहीं है क्योंकि खाने को नहीं है, और सवारी का सुभीता नहीं है।

७ गाँव की कथा-वार्ता नहीं होती, क्योंकि लोग न शिक्षित हैं और न अनुभवी।

८ लोगों को जीवन में रस नहीं रहा। लोग [illegible] नहीं लगाते, गमले नहीं रखते और घर-द्वार सजाने का शौक नहीं रहा।

९. स्त्रियों को चौक पूरने और भीत पर चित्र लिखने का शौक नहीं रहा।

१० तीज-त्योहारों पर गाने-बजाने का शौक घट रहा है, दिवाली और फाग में अब वह पहले की-सी उमंग नहीं है।

११ संसार की वस्तुओं के सौन्दर्य की ओर ध्यान कम है, गाने-बजाने का रिवाज घट गया है।

१२ अपने शरीर को सुन्दर और स्वच्छ रखने की ओर ध्यान नहीं है, और हृष्ट-पुष्ट बनाने का हौसला नही है।

१३. जीवन की गाडी को घसीटकर मौत की मजिल तक किसी तरह पहुँचाना ही कर्तव्य मालूम होता है।

वैराग्य मे भी ऐसा निर्वेद हो जाता है कि आदमी सासारिक जीवन मे कोई रस नही पाता और ऊब कर परमात्मा मे चित्त लगा लेता है। परन्तु वह बात दूसरी है। किसान भी अपने जीवन मे ऊब गया है, परन्तु इसलिए नही कि उसका चित्त परमात्मा मे लग गया है। उसके निर्वेद का कारण भक्ति नहीं है, उसका कारण है भूख। जो जीवन की सबसे बडी जरूरत है—अर्थात् भोजन, वही उसे लाख जतन करने पर भी नहीं मिलता। भारत का किसान आजकल कुराज्य के प्रभाव से नरक-यातना भोग रहा है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

अच्छे राजा को प्रजा प्यारी होती है, क्योकि प्रजा (प्रकृति) को प्रसन्न रखने से (रञ्जनात्) ही राजा कहलाता है। विदेशी राजा को यहाँ की प्रजा उसी तरह प्यारी है जिस तरह माँस खाने वाले को बकरी। परन्तु विदेशी हुकूमत की नीति उसीके लिए अन्त में घातक है। मुर्गी से एक सोने का अडा नित्य लेना लाभकारी है। मारकर सब अडे एक साथ ले लेना, अथवा अडे देने की ताकत को नष्ट कर देना, बुद्धिमानी का काम नही है। विदेशी हाकिमो में अगर स्वार्थ के मुकाबिले दूरदर्शिता अधिक होती तो वे अपनी सारी कोशिश इस बात मे लगा देते कि भारत की खरीदारी की ताकत नित्य बढती जाय, और हमारा माल खपता जाय। वे अपने यहाँ

के स्वार्थी सिविलियनों के द्वारा भारत के धन को फ़िज़ूलख़र्ची में न लगाते। भूमि-कर बहुत हलका लेते। किसान सुखी रहता, वह विलायत का बहुत अच्छा ग्राहक होता, और इस तरह विलायत के माल तैयार करनेवाले शायद आजकल से अधिक धन खींच ले जाते। शुद्ध और सच्चे व्यापारी की नीति बुरी नहीं है, परन्तु बेईमान और ठग [illegible]पारियों की नीति अन्त में उन्हीं के लिए घातक होती है। इस घड़ी किसान के सिर पर दरिद्रता का बोझ अधिक होगया है। वह नाकों में आगया है। एक-एक लगान की देर उसके लिए दूभर है। उसकी खरीदारी की ताकत नष्ट हो जाने से देश का भीतरी व्यापार भी बुरी दशा में है। दरिद्रता की दशा में पाप और व्यभिचार का परनाला देहातों से बह-बहकर चारों ओर से शहरों में आकर सिमटता है, जहाँ बस्ती घनी है और आमदनी ज़्यादा है। फल यह होता है कि दरिद्र देहातों से खिंच [illegible] शहरों की [illegible] होजाते हैं। भारत वालों पर प्रत्यक्ष [illegible]

दशा इसीलिए कुछ अच्छी है। इसीलिए वे व्यसनों में सहज ही फँस जाते हैं। साथ ही यह बड़े दुःख की बात है कि किसानों की गाढे पसीने की कमाई उन शहरों को सजाने और सब तरह सुखी बनाने में विदेशी सरकार आसानी से खर्च कर देती है, जिनमें असल में किसानो को लाभ नही होता। एक ओर तो करोड़ो किसान दाने-दाने को तरसते हो, और दूसरी ओर १४ करोड रुपये लगाकर बिना आवश्यकता के नई दिल्ली के महल बनते हो, यह हद दर्जे की निठुराई है। शहरो मे पानी के बन्दोबस्त के लिए या बिजली का बन्दोबस्त करने के लिए रुपये पानी की तरह बहा दिये जाते हैं। किसान का बोझ हलका करने के लिए एक अगुली भी नहीं उठाई जाती।

हमने ऊपर विस्तार से दरिद्रता से पैदा होनेवाले दोप दिखाये हैं। एक दरिद्रता दूर हो जाय, तो ये सारे दोप दूर हो सकते हैं। सुधारक लोग हर दोप को दूर करने के लिए अलग-अलग उपाय करते रहते हैं, पर उन्हे सफलता नहीं होती। जगह-जगह पैवन्द लगाने से काम नही चलता। पत्ते-पत्ते पर जल देने से पूरे पेड का पोपण नहीं हो सकता। या तो विदेशी सरकार इस दरिद्रता को दूर करे या भारत की प्रजा इस दरिद्रता को पैदा करने वाली सरकार को दूर करे और अपना बन्दोबस्त आप ही करके अपनी पुरानी सुख-समृद्धि को लौटा लावे।

---

(2) O F Hall, Professor of Sociology, Purdue University

(3) John A Ferrell, M D International Health Board, and

(4) C E Allred, Professor of Agricultural Economics, University of Tenessee,

in "Farm Income & Farm Life" Published by the University of Chicago Press, 1927, pages 155-189

A W Hayes *Rural Sociology*, Longmans, Green & Co 1929, Chap XVIII, P P. 430-457

और देशों से भारत की खेती का मुकाबिला

१. सुधारकों की भूल

भारत की खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है इस बात से किसी को भी इनकार नहीं है. परन्तु जो लोग सुधार के उपाय बताते हैं वे अक्सर जापान और योरप का नमूना पेश करके चाहते हैं कि हमारा देश भी इन्हीं देशों की तरह उन्नति के उपाय करके कम-से-कम समय में सुखी और समृद्ध हो जाय। वे देखते हैं कि हमारे संयुक्त-प्रान्त में गेहूं सींचे हुए खेत में १० मन प्रति एकड़ और बिना सींचे हुए में ८ मन प्रति एकड़ पैदा होता है। वहीं इंग्लैण्ड में [illegible] मन और जर्मनी में १७ मन होता है।

होती है, लगभग साढ़े बाईस करोड़ एकड़ के हैं। इस तरह भारत में किसानों के सिर पीछे मुश्किल से एक एकड़ की खेती पड़ती है। संवत् १९६६ में अमेरिका में किसानों के पास सिर पीछे औसत ५५ एकड़ के खेत थे और सिर पीछे २० एकड़ परती। वहाँ किसानों की गिनती धीरे-धीरे घटती जा रही है। सम्वत् १९०७ में कुल आबादी के ६३ प्रति सैकड़ा किसान थे, संवत १९७७ में आबादी २९ प्रतिशत हो गई है। इतनी उन्नति होते हुए भी वहाँ किसानों की संख्या क्यों घटती जाती है? इसलिए कि उद्योग-व्यवसाय के मुकाबिले में खेती की आर्थिक स्थिति बराबर गिरी हुई रहती है। "इसका अर्थ यह है कि इस संसार की बड़ी-बड़ी मण्डियों में अमेरिका के उद्योग-व्यवसाय को बढ़ा-चढ़ा रखने के लिए वहाँ की खेती का बलिदान करना पड़ेगा।"[1]

भारत में सिर पीछे जो एक एकड़ की खेती का औसत बैठता है उसमें भी छोटे-छोटे टुकड़े हैं और वे टुकड़े दूर-दूर पर हैं। अमेरिका में सैकड़ों एकड़ की इकट्ठी खेती एक साथ है जिसकी जुताई-बुवाई के लिए इकट्ठी मशीनों से काम लेने में किफायत होती है। यह बात तो प्रत्यक्ष है कि रोजगार का फैलाव जितने अधिक विस्तार का होगा उतनी ही अधिक लागत भी बैठेगी और उसी हिसाब से मुनाफा भी ज्यादा होगा। यूरोप के स्वतन्त्र देशों में भी जिन देशों की आबादी घनी है और किसान को सिर पीछे खेती करने को कम जमीन मिलती है वहाँ के किसानों ने भी अमेरिका के किसानों के मुकाबिले कम उन्नति की है, यद्यपि न तो उनके

१. Farm Income & Farm Life The University of Chicago Press, 1927 p- 106

वहाँ भारत की तरह औसत जोत इतनी कम है और न पराधीनता है और न उससे उपजी हुई घोर दरिद्रता।

इस बात को भी भूल न जाना चाहिए कि अमेरिका आदि देशों के किसानों को लगान के बढ़ने या खेत से बेदखल हो जाने का उस तरह का डर नहीं है जिस तरह भारत में है। खेती की सुरक्षा तो भारत के मुकाबिले उन उपनिवेशों में ही अच्छी है जहाँ गिरमिटवाली गुलामी करने बहुत-से भारतीय गये और सुभीता देखकर वहीं बस गये और खेती करने लगे। विदेशों की-सी सुरक्षा यहाँ भी हो जाय तो पैदावार बढ़ सकती है।

ने इस काम को उठा लिया। रेल की गाड़ियों में और मोटरों में सिखानेवाले और कर दिखानेवाले बैठकर गाँव-गाँव का दौरा करने लगे। हर तरह की सरकारी सहायता बड़ी उदारता से मिलने लगी। क्यों न हो, अपने देश की खेती के बढ़ाने की बात जो थी। खेती की योग्यता के बढ़ाने के प्रश्न पर अमेरिका के मनुष्य का जितना दिमाग और जितनी ताकत पिछले १५ वर्षों में लगाई गई है, इतिहास में कहीं कभी नहीं लगाई गई थी।[1] पंजाब के गुड़गाँव के डिपुटी-कमिश्नर मिस्टर ब्रेन ने थोड़ी बहुत उसी ढँग पर कोशिश की थी, परन्तु उन्हें सफलता न हो पाई। कौआ चला हंस की चाल, अपनी चाल भी भूल गया। अमेरिका में जो काम होता है उस पर किसानों का पूरा विश्वास है। यहाँ सरकार में और किसान में भेड़िया और भेड़ का सम्बन्ध है। किसानों को सरकारी अफ़सरों का विश्वास नहीं है। जो कुछ ब्रेन साहब कर पाये, वह अफ़सरी के जोम पर। उनकी नीयत बड़ी अच्छी थी, परन्तु वह सरकारपने का कलङ्क अपने व्यक्तित्व से मिटा न सकते थे। उन्होंने ज्योंही पीठ फेरी, उनका सारा प्रभाव मिट गया और सुधार की दशा फिर ज्यों-की-त्यों हो गई। बात यह थी कि उनके अधिकार में मालगुजारी का बोझा घटाना नहीं था। वह बहुत कुछ शोरगुल करके रह गये, इसीलिए अधिक से अधिक वह भी पैवन्द लगाने का काम ही कर सकते थे, और हम दिखा आये हैं कि जहाँ जड़ ही खराब है वहाँ पत्ते-पत्ते की सिंचाई काम नहीं दे सकती। वह चाहते थे कि सरकार की ओर से माली सहायता मिले, मालगुजारी कम की जाय, जंगल बढ़ाये जायँ और

१. Farm Income and Farm Life The University of Chicago Press 1927, P 115

किसानों का उनपर अधिकार रहे।' लाट साहब हेली ने उनकी पुस्तक की भूमिका लिखी, परन्तु व्यवहार में ब्रेन के दिमाग की अवहेलना की।

अमेरिका में जितने सुभीते हैं, उतने सुभीते जिस देश में हो जायँ उसी देश की खेती दिन-पर-दिन बढ़ती जा सकती है। अमेरिका के सुभीते संक्षेप में ये हैं :—

(१) वह स्वाधीन राज्य है और वहाँ खेती से मिला हुआ धन देश के भीतर ही खर्च होता है।

(२) खेती पर किसान का सदैव का स्वार्थ है, उसे बेदखली का या इज़ाफ़ा लगान का कोई भय नहीं है।

(३) थोड़े से थोड़े धन में उसे ज्यादा-से-ज्यादा रुपया मिलती है।

(४) जीवन की जितनी ज़रूरी चीज़ें हैं वे उसके पास ज़रूरत से ज्यादा हैं।

(९) बाहर की आमद-रफ्त पत्र-व्यवहार और व्यापार के सब तरह के सुभीते उसे मिलते हैं।

(१०) जैसे उसका सारा देश स्वराज्य है उसी तरह उसका गाँव या बस्ती उस महास्वराज्य का एक स्वाधीन टुकड़ा है।

(११) उसके केन्द्रीय स्वराज्य से उसकी बस्ती का सम्बन्ध उसकी बस्ती के लिए सर्वथा हितकर है।

हमने जान-बूझकर मशीन के सुभीते और इकट्ठी बड़े रकबे की खेती ये दोनो बातें शामिल नही की। हमारे देश मे वडे रक़बे मिल नही सकते और जो लोग आजकल मशीनों के चमत्कार को देख-कर उनपर हज़ार जान से फिदा हो रहे हैं हम उन्हे यह याद दिलाना चाहते हैं कि जो मशीन दो सौ आदमियो की जगह केवल एक आदमी को लगाकर काम कर सकती है वह एक सौ निन्यानवे आदमियो को बेकार भी रखती है। ऐसी मशीनो की ज़रूरत वहाँ पड़ सकती है जहाँ आदमी कम हो और काम ज्यादा हो। हमारे देश में इसका बिलकुल उलटा है। आज तो हमारे यहाँ आदमी ज्यादा है और उनके लिए काफी मजूरी नही है। इसके सिवा मशीनों का काम वडे पैमानो पर होता है। हमारा देश ऐसी स्थिति मे है कि खेती के काम बडे पैमाने पर नही हो सकता। इस रोज़गार को वडे पैमाने पर करने मे भी भारत की जनता की हानि है। जिस तरह कपडे का कारोबार वडे पैमाने पर होने से भारत में बेकारी का रोग फैल गया, उसी तरह खेती का कारोबार भी वडे पैमाने पर होने से बेकारी बढती ही जायगी। यदि सम्पत्तिशास्त्र को संसार के कल्याण की दृष्टि से देखें और परस्पर लूटनेवाली राष्ट्रीयता का दुर्भाव हटावें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि कलों का प्रयोग वहीं तक कल्याणकारी है

यहाँतक वह अधिक-से-अधिक मनुष्यों को काम और दाम देकर अधिक-से अधिक अच्छाई और मात्रा में माल तैयार कर सके। हम ऊपर प्रमाण के साथ यह दिखा आये हैं, कि ऐसे उत्तम सुभीते के रहते भी किसानों की गिनती घटती जाती है और अधिक लोग संसार को लूटनेवाले उद्योग-व्यवसाय की ओर चले जा रहे हैं। मिल की माया से मोहित मनुष्य इस झूठी कल्पना में उलझे हुए हैं कि औद्योगिक लूट बराबर जारी रहेगी और लुटनेवाले अभागे जीव जगकर इस लूट का द्वार कभी बन्द न कर सकेंगे, परन्तु यह भारी भ्रम बहुत काल तक न रह सकेगा।

फिर भी अमरिका में हमको जो बातें सीखने लायक हैं हम ज़रूर सीख लेंगे। हम जितने सुभीते गिना आये हैं भारत के लिए वे सभी सुभीते चाहते हैं।

थे या स्वाधीन हो गये, जैसे डेनमार्क और अमेरिका उन्होंने उसी समय अपना सगठन और उत्थान आरम्भ किया, उसी समय भारत के पाँवो मे बेडियाँ पड गई, और उसके शरीर मे ख़ून चूमकर बाहर जानेवाली जोकें लग गई। डेनमार्क की उन्नति की बुनियाद भी बहुत पुरानी है। पुराने डेन्मार्क मे उसी समय उसी तरह का ग्राम-सगठन था जैसा कि भारत मे। हरेक गाँव एक प्रकार की सहयोगी-समिति थी जिसमे गाँव का हर आदमी शामिल था। वे अपना कानून खुद बनाते थे। उनकी कानून की किताब मे खेती, पशुपालन आदि के नियम लिखे रहते थे। गाँववाले सालभर के लिए या तीन साल के लिए अपना मुखिया चुन लेते थे। गाँव मे हरी घास पर यही मुखिया सभा किया करता था। हर मेम्बर के बैठने के लिए उसकी जायदाद की हैसियत के अनुसार मच हुआ करता था। मुखिया काम शुरू करता था और फिर ऐसी बातें तय कर ली जाती थी कि जोताई-बोवाई किस-किस दिन की जायगी, घास कब कटेगी, फसल कब काटी जायगी, कौन-कौन से दरख्त कटेंगे और कब कटेंगे, ढोरो का क्या बन्दोबस्त होगा, ग्वाले को क्या दिया जायगा। इस तरह के छोटे छोटे प्रश्नो से लेकर गाँव के सब तरह के बन्दोबस्त इसी पचायत मे होते थे। दीवानी और फौजदारी दोनो तरह के मुक़दमे फैसल होते थे। जुर्माने होते थे और लिये जाते थे। ये पचायतें बडे अदब क़ायदे से होती थी। कडे अनुशासन से काम लिया जाता था। पचायती पाठशाला आदि पचायत की चीज़ें थी। किसी के लडका हो या न हो, पर हर गाँववाला पढानेवाले के भोजन के खर्च मे हिस्सा देता था। इसके सिवा हर पढनेवाला लडका फीस भी देता था, जिससे मास्टर की तनख्वाह निकलती थी। बहुत विस्तार करना

थे या स्वाधीन हो गये, जैसे डेनमार्क और अमेरिका, उन्होंने उसी समय अपना संगठन और उत्थान आरम्भ किया; उसी समय भारत के पाँवों से बेड़ियाँ पड़ गईं, और उसके शरीर में खून चूसकर बाहर जानेवाली जोंकें लग गईं। डेनमार्क की उन्नति की बुनियाद भी बहुत पुरानी है। पुराने डेन्मार्क में उसी समय उसी तरह का ग्राम-संगठन था जैसा कि भारत में। हरेक गाँव एक प्रकार की सहयोगी-समिति थी जिसमें गाँव का हर आदमी शामिल था। वे अपना कानून खुद बनाते थे। उनकी कानून की किताब में खेती, पशुपालन आदि के नियम लिखे रहते थे। गाँववाले सालभर के लिए या तीन साल के लिए अपना मुखिया चुन लेते थे। गाँव में हरी घास पर यही मुखिया सभा किया करता था। हर मेम्बर के बैठने के लिए उसकी जायदाद की हैसियत के अनुसार मच हुआ करता था। मुखिया काम शुरू करता था और फिर ऐसी बातें तय कर ली जाती थीं कि जोताई-बोवाई किस-किस दिन की जायगी, घास कब कटेगी, फसल कब काटी जायगी, कौन-कौन से दरख्त कटेंगे और कब कटेंगे, ढोरों का क्या बन्दोबस्त होगा, ग्वाले को क्या दिया जायगा। इस तरह के छोटे छोटे प्रश्नों से लेकर गाँव के सब तरह के बन्दोबस्त इसी पंचायत में होते थे। दीवानी और फौजदारी दोनों तरह के मुक-दमे फैसल होते थे। जुर्माने होते थे और लिये जाते थे। ये पंचायतें बड़े अदब कायदे से होती थीं। कड़े अनुशासन से काम लिया जाता था। पंचायती पाठशाला आदि पंचायत की चीजें थीं। किसी के लड़का हो या न हो, पर हर गाँववाला पढ़ानेवाले के भोजन के खर्च में हिस्सा देता था। इसके सिवा हर पढ़नेवाला लड़का फीस भी देता था, जिससे मास्टर की तनख्वाह निकलती थी। बहुत विस्तार करना

व्यर्थ है, इतना कह देना काफी होगा कि हरेक गॉव अपने स्थानीय स्वराज्य का उपभोग करता था। परन्तु इसके साथ-साथ एक दोष यह था कि जमीदारी और काश्तकारी का भी सम्बन्ध था और मजूरो और आसामियो के साथ गुलामो का-सा वर्ताव होता था। परन्तु इस प्रथा मे धीरे-धीरे सुधार होने लगा, और पिछले पचास वर्षो मे सुधारो का वेग बहुत बढता गया। जहॉ-जहॉ जमीन रेतीली थी और खेती नही हो सकती थी, वहॉकी जमीनो पर जगल लगा दिये गये। जहॉ-जहॉ हो सका पशुओ का चारा उपजाया जाने लगा। घासो के उगने की जगह आलू, गाजर, शलजम आदि कन्दमूल उपजाये जाने लगे। बाज-बाज फसले पॉचवे, बाज छठवें और बाज सातवें साल अच्छी होती थी। अदला-बदली करके इस तरह पर वहॉ खेती होने लगी कि जिस साल जिस चीज की उपज सबसे ज्यादा होनेवाली थी उस साल वही चीज बोई जाती थी। यह तो खेती की बात हुई, जिससे कि उन्होने ऐसी तरक्की की कि बढते-बढते एकड पीछे सोलह मन गेहूँ उपजाने लगे। डेनो का गाहक पहले इंग्लिस्तान था, परन्तु मण्डी मे और मुल्को की चढा-ऊपरी से डेनो की अनाज की खपत कम होगई। उस समय डेन हताश नही हुए, वे गोवश को पहले ही से सुधार रहे थे। जब अनाज की बिक्री कम हुई तो उन्होंने मक्खन का रोजगार करना शुरू किया, गायें पाली और बछडे भी पालने लगे। भारत मे बैल बडे काम के जानवर हैं, खेती उन्ही के बल पर होती है, परन्तु डेनमार्क मे ढुलाई और जुताई आदि का काम घोडो से लेते हैं, इसलिए गोमास-भक्षी अंग्रेज ग्राहको को वे बैलो का मॉस देने लगे। मॉस, चर्बी आदि के लिए वे पहले से सुअर भी पालते थे, और

अडों के लिए मुर्ग, बत्तक आदि भी रखते थे। इस तरह उन्होंने अनाज की बिक्री घटने पर गोमांस, शूकर-मास, चर्बी, चमडा, मक्खन अडे इत्यादि की बिक्री बढाई। इस बात मे डेनी सरकार से उन्हे बहुत बडी मदद मिली। आज सिवाय अनाज के इन सब चीजो की बिक्री डेनमार्क की बहुत ज्यादा है। और ये सब चीजें खेती की उपज समझी जाती हैं। भारतवर्ष शायद ऐसी खूँखार तिजारत के लिए ठीक न होगा, परन्तु हमारे देश की शिक्षा के लिए वहाँ की सबसे बड़ी चीज़ें दो हैं —एक तो सहयोग-समितियाँ और दूसरे खेती की शिक्षा देनेवाले मदरसे।

सहयोग-समितियो की चर्चा भारतवर्ष मे बहुत चल रही है। उनके क़ानून भी बने हुए हैं। देश मे गवर्मेंएट की ओर से उसका आन्दोलन चल रहा है। परन्तु हमारे देश मे और डेनमार्क मे यह भारी अन्तर है कि डेनो की सहयोग-समितियाँ गाँव की पचायतो मे पैदा हुई हैं, और वहाँ की सरकार ने उन्हे अपना लिया है। यहाँ की सरकार ने पहले गाँव की पचायतो को नष्ट कर डाला, जिसको बहुत जल्दी सौ बरस के लगभग हो जायँगे, और कोई छब्बीस बरस हुए कि विदेशी सरकार ने सहयोग समितियो की बुनियाद डाली और उन्हे अपने ज़ोर से फैलाया, परन्तु उनमे इतने बधेज रक्खे कि हमारे गरीब किसान उनको अपना न पाये। वहाँ सहयोग समितियों की बुनियाद नीचे से पडी थी, और यहाँ शिमले की ऊँचाई से। यह साफ है कि कौनसी बुनियाद मज़बूत हो सकती है। वहाँ के किसानो ने सब तरह की समितियाँ बनाई हैं, जिनका आरम्भ पहले पहल 'मक्खन निकालनेवाली समिति' से हुआ। सवत १९३९ में कुछ द्ररिद्र किसानो ने मिलकर मक्खन निकालने के लिए पहले

पहल समिति वनाई। वहाँ आजकल ऐसी चौदह सौ समितियाँ हैं। इनके सिवा खरीदने की, बेचने की, लेनदेन की, सब तरह की सहयोग-समितियाँ बन गई हैं। इन पर सरकारी नियत्रण नही है, परन्तु सरकार मे इनकी साख मानी जाती है, इनको उधार रुपये दिये जाते हैं, और इनके विरुद्ध सरकारी अदालतो मे मुकदमे नहीं चलाये जा सकते।

डेनमार्क की सारी उन्नति की पूँजी वहाँ की 'लोक-पाठशालाओ' मे है। पादरी ग्रुण्ट फिग ने ६० वरस से ऊपर हुए इन पाठशालाओ का आरम्भ किया था। उसने एक वार इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की थी—"यह मेरी परम अभिलाषा है कि डेनो के लिए ऐसी पाठ-शालायें खुलें जिनमे देश के युवक पढ़ सकें। वहाँ वे मानव-स्वभाव और मानव-जीवन से अच्छा परिचय पा सकें, और विशेष कर अपने को खूब समझ सकें। वहाँ वे गाँवों मे रहनेवालो के कर्तव्य और सम्वन्ध अच्छी तरह समझ सकें, और देश की जरूरतें भी अच्छी तरह जानें। मातृ-भाषा की गोद मे उनकी देशभक्ति पलेगी, और डेनी गीतो मे उनके राष्ट्र का इतिहास पुष्ट होगा। हमारे लोगो को सुखी बनाने के लिए ऐसे मदरसे अमृत के कुण्ड होगे।"[१]

सचमुच इसी अमृत के कुड से डेनी किसानों का नया जीवन निकला। वहाँ ऐसे साठ मदरसे हैं, जिनमें लगभग सात हजार शिक्षार्थी हैं। ये १८ वरस से लेकर २५ बरस तक के युवक और युवतियाँ हैं। पाँच महीने में युवकों की पढ़ाई समाप्त होती है, और तीन महीनो में युवतियो की। ये लोग प्राय थोड़े लिखे-पढे मदरसो

१ Quoted from S Sorensen Danish Agriculture, League of Nations, 1929 P 26 27

मे भर्ती होते हैं, और खेती की ऊँची-से-ऊँची विद्या इस थोड़े काल मे पढकर पण्डित हो जाते है।

सक्षेप से डेनमार्क मे भी हम वही सब सुभीते पाते हैं जिन ?? सुभीतो की चर्चा हम अमेरिका के सम्बन्ध मे कर आये है। यहाँ दोहराने की जरूरत नहीं है। अमेरिका से फर्क इतना ही है कि अमेरिका की अनाज और फल की खेती बढी हुई है और डेनी लोग पशु की खेती मे बढे-चढे है। अमेरिका मे खेतो का विस्तार सिर पीछे डेनमार्क की अपेक्षा बहुत ज्यादा है। इन दोनो देशो मे बैलो से काम नही लिया जाता, बल्कि लोग उन्हे खा जाते है हाँ, वे गऊ के पालने मे बडे होशियार हैं और दूध मक्खन की भारी तिजारत करते हैं।

ससार के सबसे बडे खेती करनेवाले देशो मे जो बाते हम देखते हैं उनमे सीखने की बाते लोहे की मशीनें नही हैं बल्कि मनुष्यो के सगठन और प्रबन्ध हैं जो हम भी कर सकते है अगर हमारे हाथ-पाँव खुले हो।

'लोक साहित्य माला'

'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना इस उद्देश्य को लेकर हुई थी कि जन साधारण को ऊँचा उठानेवाला साहित्य सस्ते-से सस्ते मूल्य में सुलभ कर दिया जाय। हम नहीं कह सकते कि 'मण्डल' इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है, लेकिन इतना निश्चित है कि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर नेक नीयती से बढ़ते रहने की कोशिश की है और हिन्दी मे राष्ट्रनिर्माणकारी और जन-साधारण के लिए उपयोगी साहित्य देने मे उसने अपना खास स्थान बना लिया है। लेकिन हमको अपने इतने से कार्य से संतोष नहीं है। अभी तक 'मण्डल' से, कुछ अपवादों को छोडकर, ऐसा साहित्य नहीं निकला जो बिलकुल जन-साधारण का साहित्य—लोक साहित्य कहा जासके। अभी तक आमतौर पर मध्यम श्रेणी के लोगो को सामने रखकर 'मण्डल' का प्रकाशन कार्य होता रहा है लेकिन अब हमको अनुभव हो रहा है कि हमें अपनी गति और दिशा बदलनी चाहिए और जनता का और जनता के लिए साहित्य प्रकाशित करने का ख़ास-तौर से आयोजन करना चाहिए।

इसी उपरोक्त विचार को सामने रखकर 'मण्डल' से हम 'लोक साहित्य माला' नाम की एक पुस्तक माला प्रकाशित करने की तजवीज कर रहे हैं। इस माला में डबल क्राउन सोलह पेजी आकार की दो-ढाई सौ पृष्ठों की लगभग दो सौ पुस्तकें देने का हमारा विचार है। पुस्तकें साधारणत जन-साधारण की समझ में आने लायक सरल भाषा में, अपने विषयों के सुयोग्य विद्वानों द्वारा लिखाई जायँगी। पुस्तकों के विषयों में जनसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विषयों—जैसे खेती, बागवानी,

ग्राम उद्योग, पशुपालन, सफाई, सामाजिक बुराइयाँ, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनैतिक, सामान्य जानकारी देशभक्ति की कहानियाँ, महाभारत रामायण की कहानियाँ, चरित्रबल बढानेवाली कहानियाँ आदि का समावेश होगा। संक्षेप में हमारा इरादा यह है कि हम लगभग दो सौ पुस्तकों की एक ऐसी छोटी-सी लाइब्रेरी बना दें, जो साधारण पढे-लिखे लोगों के अन्दर वर्तमान काल के सारे विषयों को तथा उनको ऊँचा उठानेवाले युग परिवर्तनकारी विचारों को सरल-से सरल भाषा में रख दे और उसके बाद उन्हे फिर किसी विषय की खोज मे—उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए—कहीं बाहर न जाना पडे।

ऊपर लिखे अनुसार लगभग दो ढाई सौ पृष्ठों की पुस्तक माला की पुस्तकों का दाम हम सस्ते-से-सस्ता रखना चाहते हैं। आमतौर पर हिन्दी में उतने पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १) या १।) रु० रखा जाता है लेकिन हम इस माला के स्थायी ग्राहकों के लिए छ आना और फुटकर ग्राहकों के लिए आठ आना रखना चाहते हैं। कागज छपाई आदि बहुत बढिया होगी।

निम्नलिखित पुस्तकें इस माला में प्रकाशित हो चुकी हैं और कुछ तैयार हो रही हैं।

१ हमारे गाँवों की कहानी [स्व० रामदास गौड़]
२ महाभारत के पात्र—१ [आचार्य नानाभाई]
३ संतवाणी [वियोगी हरि]
४ अंग्रेज़ी राज में हमारी दशा [डॉ० अहमद]
५ लोक जीवन [काका कालेलकर]
६ राजनीति प्रवेशिका [हेरल्ड लास्की]
७ हमारे अधिकार और कर्तव्य [कृष्णचन्द्र विद्यालंकार]
८ सुगम चिकित्सा [चतुरसेन वैद्य]
९ महाभारत के पात्र—२ [नानाभाई]

गांधी साहित्य-माला

'मण्डल' का यह सौभाग्य रहा है कि महात्माजी की पुस्तकों को हिन्दी में प्रकाशित करने की स्वीकृति और सुविधा महात्माजी की ओर से उसे मिली है। और हिन्दी में गांधीजी की पुस्तकें मण्डल ने ही ज्यादा सख्या में निकाली भी हैं। 'मण्डल' का सर्वप्रथम प्रकाशन महात्माजी का लिखा 'दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह' था। उसके बाद उनकी 'आत्मकथा', 'अनासक्तियोग गीताबोध', 'अनीति की राह पर' और 'हमारा कलंक' आदि हमने प्रकाशित किये। लेकिन फिर भी अबतक हम एक बात नहीं कर पाये। बहुत दिनों से हमारी इच्छा थी कि महात्माजी के सारे लेखों और भाषणों का विषय-वार सुसपादित सस्करण निकाला जाय। अब पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस वर्ष हम इस काम को प्रधान रूप से हाथ में ले रहे हैं और महात्माजी के चुने हुए खास-खास लेखों को १५-२० भागों में उपरोक्त माला के रूप में निकाल रहे हैं। 'स्वदेशी और ग्रामोद्योग' इस माला की पहली पुस्तक है। इस माला के प्रत्येक भाग की पृष्ठ सख्या २०० और दाम ।।) होगा।

नवजीवन माला

मण्डल के प्रमुख सदस्य श्री महावीरप्रसाद पोद्दार सन् १९३०-३१ में कलकत्ता में 'शुद्ध खादी भण्डार' सचालन का काम करते थे। वहाँ से उन्होंने 'नवजीवन माला' नाम की एक पुस्तकमाला निकाली थी। उसका उद्देश्य, करोड़ों, हिन्दी भाषी गरीब लोगों में महात्मा गाधी और ससार के दूसरे सत्पुरुषों के नवजीवनदायी विचारों को सस्ते-से

सस्ते मूल्य में फैलाना और उनको भारत की आजादी के महायज्ञ के लिए तैयार करना था। इस माला मे कलकत्ते मे लग-भग ३० छोटी छोटी पुस्तकें निकली थीं। उनका बड़ा प्रचार हुआ और महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री जमनालाल बजाज आदि ने इन पुस्तकों की बहुत प्रशंसा की। बाद मे श्री पोद्दारजी दूसरे कामों मे लग गये और माला का प्रकाशन बन्द होगया। अब श्री पोद्दारजी ने इस माला का प्रकाशन 'सस्ता साहित्य मण्डल' के सिपुर्द कर दिया है और यह माला, पुरानी पुस्तकों के क्रम मे कुछ हेर फेर के साथ, मण्डल से नियमित रूप मे प्रकाशित होती रहेगी। इसकी पुरानी पुस्तकें जो प्राप्य होंगी वे भी मण्डल से मिल सकेंगी।

'मण्डल' से इस माला में निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं, उनका क्रम तथा परिचय इस प्रकार हैः—

१	गीताबोध	(गांधीजी)	-)॥
२	मंगलप्रभात	,,	-)॥
३	अनासक्तियोग (गांधीजी) =) श्लोकसहित ≡) सजिल्द ।)		
४	सर्वोदय	(गांधीजी)	-)
५	नवयुवकों से दो बातें	(क्रोपाटकिन)	-)
६	हिन्द स्वराज्य	(गांधीजी)	≡)
७	छूतछात की माया	(आनन्द कौसल्यायन)	-)
८	किसानों का सवाल	(डा० अहमद)	=)
९	ग्राम सेवा	(गांधीजी)	-)
१०	खादी गादी की लड़ाई	(विनोबा)	=)

सस्ता साहित्य मण्डल

'सर्वोदय साहित्य माला' की पुस्तकें

१—दिव्य-जीवन	।=)
२—जीवन साहित्य	१।)
३—तामिलवेद	।।।)
४—व्यसन और व्यभिचार	।।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ (जब्त अप्राप्य)	।।।)
६ भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग)	३)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो)	१।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान	।।।=)
९—यूरोप का इतिहास	२)
१०—समाज-विज्ञान	१।।)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र	।।।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व	।।।=)
१३—चीन की आवाज़ (अप्राप्य)	।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह	१।)
१५—विजयी बारडोली	२)
१६—अनीति की राह पर	।।=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा	।-)
१८—कन्या-शिक्षा	।)
१९—कर्मयोग	।=)
२०—कलवार की करतूत	=)
२१—व्यावहारिक सभ्यता	।।)
२२—अँधेरे में उजाला	।।)
२३—स्वामीजी का बलिदान (अप्राप्य)	।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी (ज़ब्त अप्राप्य)	।)
२५—स्त्री और पुरुष	।।)
२६—घरों की सफ़ाई	।=)
२७—क्या करें? (दो भाग)	१।।)
२८—हाथ की कताई बुनाई (अप्राप्य)	।।=)
२९—आत्मोपदेश	।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य)	।।-)
३१—जब अँग्रेज़ नहीं आये थे—	।)
३२—गंगा गोविन्दसिंह (अप्राप्य)	।।=)
३३—श्रीरामचरित्र	१।)

सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाज़ार, दिल्ली

आगे होनेवाले प्रकाशन

१ जीवन शोधन—किशोरलाल मशरूवाला
२ समाजवाद पूँजीवाद—
३ फेसिस्टवाद
४ नया शासन विधान—(फेडरेशन)
५ हमारे गाँव—चौधरी मुख्तारसिंह
६ हमारी आजादी की लडाई (२ भाग)—(हरिभाऊ उपाध्याय)
७ सरल विज्ञान—१ (चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय)
८ सुगम चिकित्सा—(चतुरसेन वैद्य)
९ गाधी साहित्य माला—(इसमे गाधीजी के चुने हुए लेखो का सग्रह होगा—इस माला मे २० पुस्तके निकलेगी। प्रत्येक का दाम ॥) होगा। पृष्ठ स० २००--२५०)
१० टाल्स्टाय ग्रन्थावलि—(टाल्स्टाय के चुने हुए। निबन्धो, लेखों और कहानियों का सग्रह। यह १५ भागो में होगा। प्रत्येक का मूल्य ॥), पृष्ठ सख्या २००- २५०)
११ बाल साहित्य माला—(बालोपयोगी पुस्तके)
१२ लोक साहित्य माला—(इसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर २०० पुस्तकें निकलेगी। मूल्य प्रत्येक का ॥) होगा और पृष्ठ सख्या २००–२५० होगी। इसकी ६ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं।)
१३ नवराष्ट्र माला—इसमे संसार के प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र निर्माताओ और राष्ट्रो का परिचय है। इस माला की पुस्तकें २००-२५० पृष्ठो की और सचित्र होंगी। मूल्य ॥।)
१४ नवजीवनमाला—छोटी-छोटी नवजीवनदायी पुस्तकें।

सस्ता साहित्य मण्डल

सर्वोदय साहित्य माला : उनासीवाँ ग्रन्थ

[७६]

प्रकाशक—

मार्तण्ड उपाध्याय,

मन्त्री सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

पहली बार २०००

जून, सन् १९३८

मूल्य

एक रुपया

मुद्रक—

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,

नई दिल्ली

प्रकाशक की ओर से

स्वर्गीय श्री रामदासजी गौड की यह दूसरी रचना हिन्दी जगत् के सामने रखते हुए हमे हर्ष होरहा है। गौडजी की पहली रचना, जो कि इस ग्रथ का एक प्रकार से पहला खण्ड है, मण्डल से 'लोक साहित्य माला' मे 'हमारे गाँवो की कहानी' के नाम से हम प्रकाशित कर चुके है।

इस पुस्तक के पीछे एक लम्बा इतिहास है। सन् १९२९–३० के दिनो मे स्व० गौडजी से 'मण्डल' ने यह ग्रन्थ लिखाया था। सन् १९३०-३१ मे गौडजी ने उसे लिखकर अपने मित्र और 'मण्डल' के सचालक-मण्डल के प्रमुख सदस्य श्री महावीरप्रसाद पोद्दार को देखने के लिए कलकत्ते भेज दिया। ग्रन्थ वहुत वडा होगया था और उनकी तथा 'मण्डल' की यह राय हुई कि गौडजी इसको कुछ छोटा करदे और इसे देखने के लिए गुजरात-विद्यापीठ के आचार्य श्री काका कालेलकर और महामात्र श्री नरहरि परीख को भेजदे। इसके मुताविक गौडजी ने इस ग्रथ को काका सा० को, सन् १९३१ के सितवर महीने मे जवकि वह काशी-विद्यापीठ के समावर्तन-सस्कार के निमित्त काशी गये थे, देदिया। काका सा० और नरहरिभाई ने ग्रन्थ को देखा-न-देखा कि सन् १९३२ का आन्दोलन शुरू होगया, गुजरात-विद्यापीठ पर सरकार का कब्जा होगया और काका सा० और नरहरिभाई जेल चले गये। सन् १९३३ मे जव विद्यापीठ पर से प्रतिवध उठा तव 'मण्डल' के मत्री ने उस ग्रन्थ के वारे मे वहाँ पूछताछ की। लेकिन मालूम हुआ कि ग्रन्थ कही खोगया है। इतने वडे और इतनी मेहनत से लिखे गये ग्रथ के खो जाने से हम सवको वडा दु ख हुआ।

लेकिन सन् १९३८ मे जव मण्डल दिल्ली आचुका था, तव उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री वलवीरसिंह हमे मिले और गौडजी की

को इस पुस्तक के बारे में पूछने लगे कि वह प्रकाशित हुई है या नहीं ? तब हमने उसके खो जाने की सारी कहानी उनको सुनाई। इसपर उन्होंने कहा कि उसकी एक नकल तो मेरे पास है, अगर आप चाहे तो मैं आपको दे दूं। हमे यह सुनकर आनन्द हुआ और आश्चर्य भी। पूछने पर उन्होंने बताया कि जब यह पुस्तक श्री महावीरप्रसाद पोद्दार के पास कलकत्ता गई थी तब वह उनके साथ शुद्ध खादी भण्डार में काम करते थे। वहा इस पुस्तक को उन्होने पढा, और पढने पर उनको यह इतनी अच्छी लगी कि रात-रातभर जागकर चुपके मे इसकी नकल करली। इसका न तो पोद्दारजी को पता था और न गौडजी को ही।

श्री बलवीरसिंहजी ने ग्रन्थ 'मण्डल' को देदिया। 'मण्डल' ने फिर गौडजी को भेजा कि इसको अगर कुछ घटादे और अद्यतन् (Up to date) बनादे तो इसे प्रकाशित किया जाय। लेकिन वह दूसरे ग्रन्थो के लेखन आदि मे इतने व्यस्त रहे कि इसका सपादन न कर सके और अन्त मे पिछले वर्ष भगवान् के घर जा रहे। उसके बाद यह ग्रन्थ फिर गौडजी के मित्र श्री कृष्णचन्द्रजी (सवजज, काशी) की मारफत श्री पोद्दारजी के पास गया। उन्होने इसे शुरू से अन्त तक पढा और मण्डल को सलाह दी कि इसको अब जैसा-का-तैसा ही प्रकाशित करना चाहिए। इसी निश्चय के फलस्वरूप यह ग्रन्थ आपके हाथ मे है।

इस प्रकार श्री बलवीरसिंहजी के परिश्रम से गौडजी का यह ग्रन्थ बचगया, इसके लिए वह हमारे और पाठको के बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

'मण्डल' ने इस ग्रथ पर स्व० गौडजी के परिवार को रॉयल्टी देना तय किया है। पहले तो यह ग्रथ ही इतना उपयोगी और उत्तम है कि प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक के लिए इसको अपने पास अपने मार्ग-दर्शन के लिए रखना बहुत जरूरी है। दूसरे जितना ही इसका अधिक

प्रचार होगा उतना ही स्व० गौडजी के दुखी परिवार को आर्थिक सहायता होगी और होती रहेगी। इसलिए आशा है, प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक इसे अवश्य खरीदेगा और लाभ उठावेगा।

—मन्त्री
सस्ता साहित्य मण्डल

प्रस्तावना

हमारा शरीर अत्यन्त सूक्ष्म, अत्यन्त बारीक माँस के कणो का बना हुआ है। प्रत्येक कण अपने अग-अग की दृष्टि से पूरा है। प्रत्येक का जीवन स्वतन्त्र है, फिर भी एक-दूसरे से मिला हुआ है, एक-दूसरे की पूरी सहायता करता है। हरेक अपना भोजन आप ही खीचकर लेता है, आप ही पचाता है। हरेक अपने सुख की सामग्री आप ही इकट्ठी करता है। अपनी कमी आप ही पूरी करता है। हरेक मे जीवन की भीतरी सामग्री पूरी है, परन्तु कण समाज की सामूहिक व्यवस्था मे, सबके इकट्ठे जीवन मे, अपनेसे बाहरी सामग्री के इकट्ठे करने मे और उसे जहाँ जितनी जरूरत हो उतनी बाँटने मे, सब-के-सब बडी तत्परता से, पूरी मुस्तैदी से सहायता करते है, एक-दूसरे का हाथ बँटाते है। एक कण जब रोगी होता है, जब उसमे किसी तरह की कमी आती है, तब दूसरे कण उसके रोग के निवारण के लिए उपाय करने मे कोई बात उठा नही रखते। परन्तु कभी-कभी कणो के समूह-के-समूह रोगी होजाते है। कभी तो इन कणो से बना हुआ सारा शरीर भी रोगी होजाता है। इसका अर्थ यही होता है कि शरीर के सभी कण रोगी होगये है। ऐसी दशा में सबसे चतुर और सबसे कुशल इलाज करनेवाला वही समझा जाता है जो हरेक रोगी कण की खबर लेता है, जो हरेक की चिकित्सा करता है, जो दवा की ऐसी नपी-तुली सूक्ष्म खूराक देता है जो हरेक कण को भला-चगा करदे। कभी-कभी चतुर वैद्य इन कणो मे से गये-बीतो को मृत्यु के मुख से बचा नही सकता। तब कण-समाज उस कण की कमी को आप पूरा करता है। हाँ, जब सभी कण रोगी होजाते है, सबमे से जीने की शक्ति का क्षय होने लगता है, जब सभी जवाब देदेने

सब तरह से रजापुंजा, भलाचगा, सुखी-समृद्ध और आदर्श होजाय तो सारा शरीर फिर से सुधर जाय। सारा समाज फिर से भला चगा हो-जाय। भारतवर्ष मे फिरसे सतजुग आजाय। अगर हरेक कण अपने को ठीक करले और हरेक गाँव अपनेको सुधारले, अगर हरेक गाँव अपनेको स्वावलम्बी बनाले, अगर हर गाँव अपना स्वराज्य स्थापित करले, किसी ओर का मुंह न देखे, बल्कि इतना पक्का-पोढा बन्दोवस्त करले कि दूसरे को भी उठाकर खडा करने की हिम्मत रक्खे, तब तो सात लाख गाँव स्वराज्य पा जायँ, इतना ही नही, सारा भारत स्वराज्य पा जाय।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि शहरो का क्या होगा? क्या शहरो के स्वराज्य पाये विना गाँव भारत मे स्वराज्य करा सकेगे?

शहर वितरण, व्यवस्था, केन्द्र आदि की दृष्टि से अपना महत्व अवश्य रखता है, परन्तु वह अपने पालन-पोषण के लिए तो गाँवो का ही सहारा ढूंढता है। वह गाँवो के द्वार पर जाकर रोटी माँगता है तब जीता है, कपडे माँगता है तब तन ढकता है। शहर गाँव का वह बिसाती है जो कुछ जरूरी चीजो के साथ ही साथ शौक और ऐश-आराम की चीज़े बेचकर गाँव को अधिकाश ठगता रहता है। शहरो से लाभ कम है, हानि अधिक, क्योकि परसत्वभोजियो का यही विहारस्थल हैं। यह अन्न-धन बाँटता है सही, पर इससे आज वे लोग अधिक लाभ उठाते है जिनका हक धन पर कम है। इसीलिए शहर स्वावलम्बी अगर कभी हो भी सकता है तो स्वय गाँव बनकर या गाँवो के ही सहारे। अर्थात् शहर शहर की हैसियत से सच्चा स्वावलम्बी नहीं होसकता। भारत के समाज-शरीर में शहर का हिस्सा अवश्य कम है, अत गाँवो में स्वराज्य होजाना सारे भारत मे स्वराज्य होजाना है।

इसलिए भारत-समाज के रोगी शरीर का इलाज होना जरूरी है कि वह खाट से उठकर चलने-फिरने लगे, काम-धन्धा करने लगे, भरपूर भोजन करने और पचाने लगे। उसकी मरी भूख जी उठे, जग जाय। वह आन के भरोसे न रहे, बल्कि औरों को सहारा देने लायक बन जाय। दवा जल्दी देनी चाहिए, क्योंकि अभी तड़का है, अभी रोगी अगड़ाइयाँ ले रहा है, सबेरे निहार मुँह की दवा जल्दी लाभ पहुचाती है। हमारे बड़े भाग्यों से हमें एक उत्तम चिकित्सक मिल गया है। हमे इस अवसर को खोना न चाहिए। उसने नाड़ी देखी है, रोग का निदान किया है, चिकित्सा सोच ली है, दवा ठीक करली है। वह दवा है **ग्राम-संगठन**। उसने जैसे इस दवा का सेवन बतलाया है, उसीमे देश का *कल्याण है। यह दवा समय लेगी रोगी धीरे-धीरे भला-चगा* होजायगा। इसके लिए धीरज से उपचार करना होगा। जब भला-चगा हो जायगा तब ठोस स्वराज्य मिलेगा। राजनैतिक स्वराज्य चाहे कल ही मिल जाय, परन्तु बिना इस ठोस स्वराज्य के राजनैतिक स्वराज्य ठहर नही सकेगा। बिना नीव के भीत बहुत दिनो तक खडी नही रह सकती। बुद्धिमान घर बनानेवाला पहले नीव दृढ करता है तब भीत उठाता है। स्वराज्य की भीत तो तभी उठेगी, जब ग्राम-सगठन की नीव पोढी पड जायगी। कुराज्य और पर-राज्य की भीत ढहाने का काम आज जल्दी भले ही होजाय, परन्तु इस नीव के काम मे तो देर अवश्य लगेगी।

किसी बडे भारी और महत्व के घर की स्वराज्य के पवित्र मदिर की नीव देने का काम कोई पवित्र और भारी महिमावाला मनुष्य ही करता है। सो हमारे स्वराज्य-मन्दिर के लिए उसकी दृढ भीत की नीव बनाने के लिए उसकी आधार-शिला उसी महात्मा ने रक्खी है

और उसने दवा तजवीज करदी है। रोगी की सेवा, उपचार, पथ्य का देना, समय-समय पर दवा खिलाना शुश्रूषको का काम है। इस रोगी के सेवको के लाभ के लिए, इस इमारत के तैयार करनेवाले मजूरो की सहायता के लिए, इन पन्नो मे **ग्राम-संगठन** पर भरसक विचार किया जायगा। गाँव पहले कैसे थे, आज कैसे है, कैसे होने चाहिएँ, और उन्हे वैसा वनाने के लिए क्या-क्या करना चाहिए, इन्ही बातो पर विचार करना इस पोथी का उद्देश्य है।

भगवान करे यह पोथी पढनेवालो और उसपर बरतनेवालो के काम में सहायक और लाभदायक सिद्ध हो।

रामदास गौड़

अनुक्रम

हमारे गाँवों का

सुधार और संगठन

: १ :

बेकारी का इलाज

१ बेकारी की भयानकता

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवश. कर्म सर्व प्रकृतिजैर्गुणै ॥
—गीता ३–५

एक क्षण भी कोई बिना कोई कर्म किये नही रह सकता। हरेक को प्रकृति के गुणो से बाध्य होकर कोई-न-कोई कर्म करना ही पडता है। जब प्रकृति ऐसी जबर्दस्त है कि कोई बिना कर्म किये रही नही सकता, तो जिन लोगो का रोजगार छीन लिया जायगा वे अपने बेकारी के समय में भला या बुरा कोई-न-कोई काम जरूर करेंगे। भारतवर्ष की किसानो और मजदूरो की इतनी भारी आबादी मे जहाँ शिक्षा के सुभीते बिलकुल नही है, यह आशा करना व्यर्थ की कल्पना है कि बेकार जनता अपने बेकारी के समय को अच्छे कामो मे लगायेगी। साधारण जन-समुदाय अपने बचे हुए समय को ससार के किसी भाग मे कहीं भी अच्छे कामो मे नही लगाता। यह बिल्कुल स्वाभाविक बात है। भारत की जनता इसका अपवाद नही हो सकती। जब उसके पास कोई काम नही है और वह भूखो मर रही है तब उससे कोई बात अकरनी नही है। इस बेकारी का हमारे देश पर भयानक परिणाम हुआ है। ससार के अन्य सभ्य देशो मे जब कभी बेकारो की गिनती हजारो और लाखो में पहुँचती है तो उसी समय देश-भर मे उथल-पुथल मच जाती है, सरकारे बदल

जाती ह, क्रान्ति हा जाती है। परन्तु भारतवर्ष की बेकारी हजारो और लाखो की गिनती की नही है। यहा की मर्दुमशुमारी बताती है कि बहुत काल से भारतवर्ष मे भिखमगो की सख्या पचास लाख से ऊपर है। देश मे दस-दस वर्ष पर जो मर्दुमशुमारी होती ह, उसमे बेकारो या अर्ध-बेकारो की गिनती नही कराई जाती। तब भी मर्दुमशुमारी की रिपोर्टो से ही हमने यह औसत निकाला है कि साल मे छ महीने के लगभग हमारे किसान बिलकुल बेकार रहते ह और इस बेकारी से उनकी भारी आर्थिक हानि होती है। दरिद्र किसान कर्ज मे लद गये है, भूख के विकराल गाल मे पिस रहे है, नशे मे अपना विनाश कर रहे है, और मुकदमेबाजी मे अपनेको बरबाद कर रहे है। यह पूर्व-सस्कार का प्रसाद समझना चाहिए कि वे ऐसे मजबूत है कि इतनी विपत्तियो को झेलकर भी अबतक उनके प्राण बाकी है।

भारतवर्ष की जितनी बडी बरबादी हो चुकी है उसका प्रकट रूप उसका कगाल होना है, और उसके कगाल होने का सबसे बडा कारण उसकी भयानक बेकारी है। इस महारोग का इलाज तुरत ही होना चाहिए, क्योकि इससे भारत की मजबूत आबादी भी धीरे-धीरे घट रही है, या कम-से-कम उस दर से नही बढ रही है जिस दर से कि जीते-जागते मनुष्यो को बढना चाहिए।

२. बेकारी दूर करने के उपाय

इस बेकारी को मिटाने के लिए देश के अनेक हितैषियो ने तरह-तरह के उपाय सोचे और सुझाये है। उनमे से पहले हम उन उपायो पर विचार करेगे जो कताई-बुनाई के अतिरिक्त है।

बम्बई की प्रान्तीय सहकारी-सस्था के सम्मान्य मन्त्री रावबहादुर तालमाकी साहब ने सन् १९२८ मे किसानो के लिए 'खेती के होने

और रोजगार' नाम की एक पोथी प्रकाशित कराई थी। उन्होंने इस सम्बन्ध मे बहुत उपयोगी विचार दिये हैं। उनका यह कहना बिलकुल ठीक है कि इस बेकारी का इलाज ऐसे ही कामो मे ठीक रीति से हो सकता है जो मौसिमो के फेरफार से स्वतत्र और खेती के कारबार से बिल्कुल अलग हो। ससार मे कही भी केवल खेती के कारबार मे पूरे ३६५ दिनो के लिए काम नही मिल सकता। ससार के सभी किसान कोई-न-कोई रोजगार जरूर करते है। भारत के किसान भी पहले तरह-तरह के रोजगार करते थे। वे सारे रोजगार ऐसे होते थे कि गाव छोड-कर कही बाहर नही जाना पडता था। यह ठीक भी है। क्योकि ऐसा रोजगार भी किसान के लिए बिलकुल बेकार है जिसमे उसे घर छोड-कर कही बाहर जाना पडे। खेती का काम ऐसा है कि किसी दिन उसे आधे ही दिन खेतो पर रहना पडता है, कभी उसका खेत का काम दो-चार घण्टे मे ही पूरा होजाता है, कभी उसे दो-चार दिन की छुट्टी मिल जाती है और कभी कई महीनो की। इसलिए उसके पास ऐसा काम चाहिए जिसे वह जिस घडी चाहे शुरू करदे या करते-करते छोड दे। कल-कारखानो की मजूरी या शहरो मे कुली का काम इस तरह का नही हो सकता। काम ऐसे होने चाहिएँ जिनमे उपजा हुआ माल खपाने के लिए बहुत दूर के बाजारो मे न जाना पडे। तालमाकी साहब ने जो-जो काम अपनी पोथी मे सुझाये है वे सब भारत के गॉवो मे बहुत जगहो पर थोडे-बहुत होते ही है। कुछ काम ऐसे जरूर है जो केवल शहरो के पास हो सकते है। कुछ इस तरह के भी है जो बडे पैमाने पर सगठन करके विदेशी व्यापार के काम मे आसकते हैं। डेनमार्कवाले दूध, मक्खन, सुअर का मास और अडो का बहुत बडा रोजगार करते है। यह भी सच है कि हमारे देश मे हिन्दुओ की एक बहुत बडी सख्या को छोड-

कर बाकी लोगो को इस तरह के रोजगारो मे कोई धार्मिक रुकावट नही हो सकती और रोजगारो के बढने पर देश के एक बहुत अच्छे भाग को लाभ पहुँच सकता है। परन्तु ये बाते उस समय सोचने की है जब हमारे देश मे ऐसे काम का पूरा प्रचार हो जाय जो बिना जात-पात, धर्म, समाज और व्यक्ति के बधन के हरेक आदमी कर सके, और फिर देश को दूसरे देशो मे व्यापार करके नफा पहुचाने का सवाल उठे। अभी तो हमारे सामने अपनी रक्षा का सवाल है।

हमारे देश मे हिन्दुओ की अनेक जातियाँ मुर्गियाँ और सुअर पालती है, और जितने की समाज मे जरूरत है इन रोजगारो मे उतनी उपज होती ही रहती है। मुसलमानो और ईसाईयो मे मुसलमान और ईसाई दोनो मुर्गियाँ जरूर पालते है और जो लोग अडे खाते है उनके लिए कभी बाजार मे अडो की कमी की शिकायत पैदा नही हुई। अधिकाश हिन्दू और सभी मुसलमान सुअर से परहेज करते है। परन्तु पासी सुअर पालते है और जिन्हे सुअर के मास, चर्बी आदि की आवश्यकता होती है, हमारा विश्वास है कि, उन्हे वह पर्याप्त परिणाम मे मिल भी जाता है। बडे पैमाने पर सुअर का मास, चर्बी और मुर्गियो या बतखो के अडे हमारे देश मे विदेशो से नही आते। इसलिए हमे कोई विशेष चिन्ता नही है कि हमारे देश के इन रोजगारो पर विदेशियो की विशेष रूप से चढाई है। भारत अहिंसक देश है। यहा इस तरह के रोजगार कभी सार्वजनिक नही हो सकते और न होने चाहिएँ।

फल और तरकारियो की खेती भारतवर्ष के बहुत अनुकूल है। पर फल और तरकारियो की जितनी माग इस देश मे है उतनी यहा उनकी उपज भी होती है। विदेशो से जो मुरब्बे और सुरक्षित फल आदि आते है, उनका परिमाण बहुत बडा नही है और उनकी

खपत बहुत धनवान श्रेणी में भी बहुत थोड़ी मात्रा में होती है। अगर कोशिश करके इनकी उपज बढ़ाई जाय तो यह रोजगार कुछ अधिक लाभ करा सकता है। परन्तु इस उपाय से, फिर भी, हम भारत के कंगालों की एक बहुत भारी संख्या अछूती छोड़ देंगे और बहुत थोड़े लोगों का रोजगार बढ़ सकेगा। सच तो यह है कि इस रोजगार को भी खेती में ही सम्मिलित समझना चाहिए। यह खेती से अलग नहीं हो सकता। यह इस तरह का रोजगार नहीं है जिसे जब चाहे शुरू करे और जब चाहे इसे छोड़कर दूसरे काम में लग जाय।

दूध-घी का रोजगार या गोपालन हमारे देश के लिए सबसे अच्छा रोजगार है। किसान के लिए गोपालन कामधेनु है। लेकिन बड़ी मुद्दत से बड़ी संख्या में गोवध होते रहने के कारण हमारे यहाँ का यह सनातन रोजगार आज बड़ी बुरी दशा में है। इसके ऊपर देश में बहुत काल से गोरक्षा का आन्दोलन भी चल रहा है। गोवंश के सुधार के लिए मुद्दत से पुकार हो रही है।[१] मगर अलग-अलग पैबन्द लगाने से वास्तविक गोरक्षा संभव नहीं है। मुसलमान और हिन्दुओं के गोहत्या-सम्बन्धी झगड़े तो असल में झगड़े ही हैं। गोवंश के नाश का असली कारण तो कुछ और ही है, जिसे जबतक दूर न किया जायगा तब-तक सारे सुधार बेकार हैं। यह सब जानते हैं कि हजारों गायें नित्य अंग्रेजी फौज के लिए कटती हैं, और अंग्रेजी सेना की जरूरत ब्रिटिश सरकार को इसलिए है कि हमारे देश को ब्रिटेन अपने कब्जे में रक्खे। इस तरह भारतवर्ष को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखने के लिए

१ इस सम्बन्ध में दीक्षितपुरा, जबलपुर के पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री मुद्दत से स्तुत्य प्रयत्न कर रहे हैं। गो-साहित्य पर उनकी लिखी छोटी-छोटी पोथियाँ और लेख पढ़ने योग्य हैं।

गोवंश का नाश जरूरी हो जाता है। इसलिए भारतवर्ष जबतक स्वाधीन न होगा तबतक गोवंश की वास्तविक रक्षा नहीं हो सकती। बेकारों की बेकारी गोपालन के द्वारा दूर करना अभी सम्भव नहीं है। क्योंकि गोचर-भूमि जोत-जोतकर खेत कर दिये गये हैं। ब्रिटिश राज्य के आरम्भ में ही लाट-के-लाट गोचर भूमि का नीलाम करके एक तरफ से मालगुजारी खड़ी की गई और दूसरी तरफ से गोपालन का रोजगार नष्ट कर दिया गया। अब जिन किसानों को एक बार पेट भर भोजन नहीं मिलता वे बेचारे गाय को खिलाने के लिए चारा कहां से लायेंगे? जिनके पास खेती के एकमात्र आधार बैल हैं, उनकी दशा भी शोचनीय है। भूखे, दुबले, हाड, चाम-मात्र रखनेवाले बैल भरपेट चारा न पाने के कारण आधे से भी कम काम कर सकते हैं। जिनके पास गायें हैं, उनकी भी दशा अच्छी नहीं है। चारा कम मिलने से गायें दूध कम देती हैं और जल्दी सूख जाती हैं। इस प्रकार यह तो दरिद्रता का रोग है, जिसका मुख्य कारण है बेकारी। इसी बेकारी को दूर करने के लिए गोपालन को उपाय बताना ठीक नहीं है।

बकरी और भेड़ का पालन हमारे यहां के कुछ किसानों का रोजगार है। जैसे गोपालन का बहुत बड़ा रोजगार लेकर समाज में अहीरों और ग्वालों की सृष्टि हुई, वैसे ही भेड़-बकरी के रोजगार से हिन्दुओं के समाज में गड़रियों की एक बड़ी भारी जाति मौजूद है। यह रोजगार आवश्यकता के अनुसार चल ही रहा है। भेड़ बकरी पालने में किसान को कोई रुकावट नहीं है, इसलिए जिनसे होसकता है वे इस काम में पीछे नहीं रहते। यह रोजगार भी देश की आवश्यकताओं पर निर्भर है। भेड़-बकरी की बहुत बढ़न्ती की जरूरत नहीं है। यह ऐसा रोजगार भी नहीं है कि आदमी बरस में छ महीना इसमें लगा रह सके। इस-

लिए इसमें भी बेकारी का वह इलाज नहीं है जिसकी हमें खोज है।

मधुमक्खी पालने और शहद निकालने का रोजगार भी बहुत अच्छा है। इस काम की भी कुछ शिक्षा चाहिए। बिना शिक्षा के, बिना पाली हुई मधुमक्खियों में मधु निकालने का काम किसान लोग अब भी करते हैं। आवश्यकतानुसार मधु निकाला जाता है। कुछ खर्च करके यह रोजगार भी बढ़ाया जा सकता है। इससे देश का कुछ लाभ भी हो सकता है, परन्तु इसमें भी साल में छ महीने की बेकारी दूर करने का उपाय नहीं है।

तेली का काम, कुम्हार का काम, चमार का काम, लोहार का काम, बढ़ई का काम गाँवों में होता है और जरूरी है। ये सब रोजगारी किसान भी हैं और अपना रोजगार भी करते हैं। देश को इनकी सेवाओं की जितनी जरूरत है उतनी ये करते हैं। इनका काम बढ़ाने से माँग नहीं बढ़ जायगी। इसलिए इन रोजगारों का कोई असर देश की बेकारी पर नहीं पड़ सकता। इनमें से प्राय सभी रोजगार ऐसे हैं जो किसान को थोड़ा-सा काम देते हैं। प्राय सब में इसी तरह का काम है कि लगातार छ महीने तक कोई रोजगारी नहीं कर सकता। बढ़ई, लोहार आदि का काम बच्चे और स्त्रियाँ नहीं कर सकते। कुम्हार का काम बरसात के दिनों में नहीं हो सकता। इनके सिवा रस्सी बटने, टोकरी बनाने और चटाई बुनने के भी रोजगार हैं, जो हमारे देश में बराबर जारी है। इस बारे में हमारी जितनी जरूरतें हैं वे प्राय. सब अपने देश से ही पूरी होती है। हम इनके लिए विदेशों के मोहताज नहीं है। हमारे देश में इन रोजगारों के बढ़ने से बेकारी का रोग दूर नहीं हो सकता, बल्कि थोड़े से ग़रीबों का जो रोज़गार पालन कर रहा है उसीमें चढ़ा-ऊपरी बढ़ जाने से इन रोज़गारियों का नुकसान है।

जगल से बहुत-से लोग लाग और ओषधियाँ सग्रह करके लाते थे, और बस्तियो मे बेचा करते थे। लकडहारे लकडियाँ काटकर लाते थे, और बेचकर अपनी रोटी चलाते थे परन्तु जगलो का इजारा सरकार ने ले लिया, इसमे लाखो गरीबो का रोजगार मारा गया और जानवरो को चराने के लिए कोई उपाय नही रह गया। इस तरह की जो बेकारी हो गई है वह तभी मिट सकती है जब कि जगल किसीकी मिल्कियत न रह जाय।

मुग़ल राज्य के अन्त तक नमक पर महसूल ज़रूर था, परन्तु वह था बहुत थोडा। नमक बनाने का काम उस समय तक नोनिया जाति वाले लोग किया करते थे। भारतीय समाज मे जैसे हर रोज़गारी की पचायत थी, जात-पाँत बनी हुई थी, वैसे ही नमक के रोज़गारियो की भी जाति अलग थी। नोनिये भारत के सभी प्रान्तो मे आजतक पाये जाते है। ये नमक बनाकर बेचा करते थे। कौटिल्य-अर्थशास्त्र से पता लगता है कि चन्द्रगुप्त के समय मे नमक बनाने और बेचने का रोजगार नोनियो के सिवाय ब्रह्मचारी, वनाश्रमी और श्रोत्रिय ब्राह्मण भी करते होगे। बेरोज़गारो के लिए यह बडा अच्छा रोज़गार था, पर वर्त्तमान सरकार ने इसे हमसे छीन लिया। यह सरकारी इजारा जब प्रजा सरकार के हाथ से लेलेगी, तो उन नोनियो और गरीब किसानो को कुछ थोडा-सा काम ज़रूर मिल जायगा जो समुद्र-तट पर या ऐसी जगह रहते है जहाँ नमक के खेत, झील, ताल या पहाड है। परन्तु भारत के सात लाख गाँवो के रहनेवाले सब तरह के किसानो के लिए छ महीने की बेकारी दूर करनेवाला काम यह नहीं है।

समुद्र, नदी, ताल पोखरे आदि से मछली निकालकर रोज़गार करने-वाले कभी नष्ट नही हुए। समुद्र के किनारे रहनेवालो का जहाज

बनाने और चलाने का रोजगार जरूर मारा गया, परन्तु ऐसे कारीगरों और माझियों की बेरोजगारी हमारे देश की आंशिक बेकारी है। यह बेकार किसानों की बहुत बड़ी गिनती में जोड़ दी जा सकती है, पर इस बेरोजगारी को दूर करने के लिए तबतक कोई उपाय नहीं हो सकता जबतक कि इस सम्बन्ध में विदेशों की गुलामी से छुटकारा न मिले।

रेशम और अंडी का रोजगार भी हमारे देश में चल रहा है। विदेशों में व्यापार करने के लिए इन्हें बढ़ाया भी जा सकता है, परन्तु इन कामों में शिक्षा की भारी जरूरत है, और इनमें जितना चाहिए उतना लाभ होने में भी सन्देह है। फिर यह रोजगार बढ़ाने से इनकी खपत उसी परिमाण में बढ़ जाय इसमें बहुत कुछ शुबहा है। इसके सिवा यह वह रोजगार नहीं है जिसपर विदेशियों का इजारा है। हमारे देश के उन रोजगारों में भी यह नहीं है जो हमारे यहाँ फैले थे और अब बरबाद होगये हैं। इसलिए यह भी इतनी भारी बेकारी को दूर करने का काफी इलाज नहीं है।

खडसालें हमारे देश की पुरानी चीजें हैं। पर विदेशियों की कृपा से यहाँ की बेगिनती खडसालें नष्ट हो गई। आज भी जो चल रही हैं उनकी दशा अच्छी नहीं है। अतः खडसालों को बढ़ाने की जरूरत है। परन्तु इस रोजगार से किसान को तीन-चार महीने से अधिक काम नहीं मिलता, और यह काम भी निश्चित मौसिम में करना पड़ता है, ऐसा नहीं है कि जब बेकार रहे तब कर लिया और जब खेती पर काम हुआ तब छोड़ दिया। ऐसे मौसिमों में यह काम होता है जबकि खेती का काम किसान के पास बहुत ज्यादा होता है, इसलिए यह कोई सुभीते का घरेलू धन्धा नहीं हो सकता।

सरकार ने भारत के लाखों रुपये खर्च करके शाही कमीशन के द्वारा

जाँच का पहाड खुदवाया, जिसने बडे परिश्रम से तीन चूहे खोद निकाले। उसकी राय मे —

१—कल-कारखानो से किसानो को प्रत्यक्ष लाभ हो सकता है।

२—गांव के व्यवसाय और घरेलू धन्धे वढाये जा सकते हैं।

३—भारत में किसान लोग ऐसी जगहो पर जाकर बस सकते हैं जहां खेती के लायक जमीन है।

यही तीन बातें हैं जो खेती के शाही कमीशन को सूझीं। इतनी भारी रिपोर्ट में चरखे के बारे मे कमीशन ने कोई चरचा नही की। जितने रोजगार कमीशन ने सुझाये हैं उन रोजगारो पर हम विचार कर चुके। जो रोजगार ऐसे है जिनमे विलायती मशीनो का खर्च है उनको हमने जान-बूझकर छोड दिया है। भारत काफी लुट चुका, और मशीनें मगाने के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। मशीनों वाले रोज़गार हमारे दरिद्र किसानो के लिए नही हैं। कल-कारखानो मे ज्यादा फायदा विदेशियो को है। यह बात इतनी जाहिर है कि इसपर बहस करने की जरूरत नही। भारत के भीतर एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसने के सुभीते लोग समझते है, और इस तरह के फेरफार हो रहे है, पर इनसे भयानक बेकारी नही मिटती। विदेशो मे जाकर हम इज्जत के साथ उसी दिन बस सकेंगे जिस दिन हमको यह अधिकार हो जायगा कि हम अपने देश में किसी विदेशी को बसने दे या न बसने दे। अभी हम अपने घर में गुलाम है, विदेशो मे जाकर अपनी और बेइज्जती नही करानी है। इसलिए कमीशन की तीनो सिफारिशे हमारे किसी काम की नहीं हैं।

३ बेकारी का सच्चा इलाज

दरिद्र भारत के लाखो रुपये खर्च कराकर खेती के शाही कमीशन को जो बाते सूझीं वे सब प्राय विलायत के मशीन बनाने वालो के

फायदे की थी। भारतवर्ष में सूर्य्य के समान चमकते हुए चरखा-आन्दोलन की तरफ कमीशन की निगाह भी न उठ सकी, वह फिर भी अंधेरे में ही रहा और जान-बूझकर कोई ऐसा सहायक काम भारत के बेकार किसानों के लिए न खोज सका जिससे सारा भारत सहज में लाभ उठा सके। पर कमीशन चरखे की सिफारिश करता ही क्यों? चरखे की बरबादी का कारण जो हुकूमत हो वही चरखा चलाने की सिफारिश भी करे, यह कैसे हो सकता है?

हमने अच्छी तरह सब तरह के कामों पर विचार किया है। जितने तरह के काम अब तक सुझाये गये हैं हम उन्हें बिलकुल नापसन्द नहीं करते। इनमें से कितने ही ऐसे काम हैं जिन्हें भारत के लोग मुद्दत से करते आये हैं। कुम्हार, बढ़ई, लोहार, धोबी, चमार, पासी, छीपी, रंगरेज़, थरकार, दबगर, सोनार, माझी, केवट, दरजी, जुलाहे आदि सब तरह के पेशेवर भारत में अबतक मौजूद हैं, जो अपने-अपने पेशे करते हैं। कुछ सुधारकों की यह राय है कि दरिद्र किसान इन पेशों में से कोई-कोई पेशे अख़्तियार करलें, परन्तु यह प्रस्ताव हमारे किसी लाभ का नहीं है। हमारे देश में ये सब पेशेवाले देश की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। प्राय उतने ही पेशेवाले हैं जितनों की ज़रूरत है न कम है न ज्यादा। समाज में इन कामों में छीना-झपटी करना दरिद्रता को दूर करने का कोई उपाय नहीं है। हाँ, मुद्दत से स्थापित समाज-साम्य को विचलित कर देने के प्रस्ताव अवश्य है। इनका फल यही हो सकता है कि भारत के लोगों में आपस में ही रोटी की चटा-ऊपरी का कड़ुवापन और भी ज्यादा बढ़ जाय। हम लोगों को अपने समाज के पिछले इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिए। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्याचारों से पीड़ित होकर देश के कोरी, कोष्टी, जुलाहे, टेड और तांती

लोगों ने जब देखा कि हमारा कपड़े की बुनाई का रोजगार नहीं चल सकता तो उन्होंने और पेशे अख्तियार कर लिये। उनका सबसे अधिक भार खेती के ऊपर पड़ा। इस तरह किसानों की गिनती बढ़ गई, और खेती जब इतना भारी बोझ सम्हाल न सकी तो दरिद्रता के सताये हुए लोग गिरमिट की गुलामी में नाम लिखा-लिखाकर अपना घर-बार छोड़ दूर देशों में गुलाम बन गये। आपस की चढ़ा-ऊपरी का कितना भयानक नतीजा हुआ! नहीं, हम ऐसा काम नहीं चाहते जिससे देश बरबाद हो। हाँ, हम यह जरूर चाहते हैं कि जिन रोजगारियों के रोजगार छिन गये उन्हें वे वापस मिले। समाज का कल्याण इसीमें है। कोरी, कोष्ठी, तांती, ढेड, जुलाहे आदि बुनाई करनेवाली जितनी जातियां अपने काम को नहीं तो नाम को ढो रही है। उन्हें उनका काम वापस मिले, उनके करघे फिर से चलने लगे, उनका रोजगार फिर से हरा हो जाय। बहुत-से लोग तो किसानों में ऐसे मिल गये हैं कि वे पहचाने नहीं जाते कि पहले कभी तांती थे। कपड़े की बुनाई के रोजगार में इतनी गुंजाइश है कि इस कला को सीख लेनेवाले किसान अगर तांती हो जायें और भारत में इतना खद्दर तैयार होने लगे कि हमारी खपत से उपज बहुत बढ़ जाय, तो हम फिर संसार के बाजारों में अपना सुन्दर खद्दर बेचने लग जायें। इस उपाय से खेती पर चढ़ा हुआ बोझ जरूर हलका हो सकता है। इसी तरह नोनियों का रोजगार भी फिर से चल निकलना चाहिए। इस वक्त नोनियों की बहुत बड़ी संख्या मजूरी और बेलदारी के काम में लगी हुई है। अनेक नोनिये और-और काम कर रहे हैं। नमक का कानून रद्द हो जाय तो नोनियों का रोजगार फिर से शुरु हो जायगा और नमक के क्षेत्रों के आसपास के दरिद्र किसान भी उसे अपना सकेंगे।

गावो के सुधार के लिए कुछ देशभक्तो का प्रस्ताव है कि कुएँ-तालाव वैज्ञानिक ढग से खुदवाने, पक्के कराने, नालियाँ वनवाने, सडके कुटवाने, मदरसे के मकान वनवाने, उपयुक्त स्थानो पर धर्म्म-शालाये और कुएँ वनवाने आदि के काम ज़िला वोर्ड की ओर से ऐसे निकाले जा सकते है जिनसे किसानो को अपने-अपने गाँवो मे सहायक काम मिल सकता है। ये सव काम वहुत अच्छे है और जो ज़िला-वोर्ड गावो के सुधार के लिए इस तरह के काम करावे वे सचमुच किसानो को वहुत कुछ लाभ पहुँचा सकते है। ये सव काम है भी ऐसे कि जिनमे ख़र्च वहुत लगता है और इसलिए ज़िला-वोर्ड जैसी सस्था ही इन्हे करा सकती है। गरीव किसानो के पास धन नही है कि वे सहकारिता द्वारा इस काम को पूरा कर सके। इस तरह के जितने काम मिले, वेकार किसानो को चाहिए कि उन सवको भरसक अपने अधिकार मे करले।

परन्तु इन सव कामो को करने मे न तो किसान को सारी वेरोज-गारी का समय लगा देना सभव होगा और न वह इन कामो को फुटकर घडियो म सम्हाल सकेगा। उसे तो कोई ऐसा काम चाहिए जो वह अपनी फुटकर घडियो मे अपने हाथ की पहुँच मे पा जाय—किसीसे मागना न पडे। वह किसी तरह पर भी अपनी फालतू घडियो को काम मे लाने मे किसी दूसरे का मोहताज न हो। इस तरह का काम चरखे के सिवा और कोई नही है।

चरखा कभी किसी ज़माने मे समाज के किसी एक अग का रोज-गार नही हुआ है। वच्चे, जवान, वूढे, नर-नारी जो चाहे चरखा चला सकते है। आटा पीसना, रई चलाना और चरखा कातना हरेक गृहस्थ के घर के तीन वडे ज़रूरी काम है। ये काम वहुत-से किसानो के घर आज भी होते है। घर की स्त्रियो के लिए गृहस्थी मे ये काम मगलमय

और शुभ समझे जाते है। पिसा हुआ आटा, दूध, दही, मट्ठा ये सब चीजे नित्य के खाने के काम मे आनेवाली है। चरखे मे कता हुआ सूत इकट्ठा किया जाता है और उसके कपडे बनते है। पहले तो किसान के परिवार के लिए ही कपडा चाहिए, फिर परिवार से बचा तो देश मे कपडे पहननेवालो की क्या कमी है? मनुष्य की तीन भारी आवश्यकतायें है। खाना, कपडा और रहने के लिए घर। चरखे का सूत इन तीन मे से एक बडी आवश्यकता को पूरा करता है। भारत मे आज सूत कातने और कपडे बुनने की बडी भारी जरूरत भी है। यह जरूरत कम-से-कम साठ करोड रुपये सालाना की है, क्योकि इसीके लगभग दाम का विदेशी कपडा हमारे देश मे हर साल आता है, और उसके बदले उन्ही दामो का अनाज खिचकर चला जाता है। हमे इतिहास बताता है कि हमारा घर-घर का घरेलू धन्धा विदेशी कपडे के व्यापारियो के प्रसाद से छिन गया।[१] जिन दिनो चरखा चलता था उन दिनो किसानो मे इतनी बेकारी न थी, और वे रोजगारी की घडियो मे काम करने के लिए और सब धधो के सिवाय चरखा भी एक व्यापक धधा था।

चरखे चलाने मे जितने सुभीते है उतने किसी एक घरेलू धधे मे नही पाये जाते। वे सुभीते हम नीचे एक-एक करके दिखलाते है–

१ और जितने काम है उनमे बल और परिश्रम इतना लगता है कि निर्बल और रोगी उन्हे नही कर सकते। लेकिन चरखा कातना ऐसा सुगम काम है कि उसे बच्चे, बूढे, निर्बल और रोगी सभी सुभीते से कर सकते है। किसीको इस काम मे कडी मेहनत का कष्ट नही होता। यह काम मनबहलाव-सा लगता है। इसमे अगर थकान भी मालूम होती है तो वह बहुत देर तक बैठने की थकान होती है।

१ "हाथ की कताई-बुनाई" सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली। मू०॥=)

२ चरखा कातने का सामान सस्ता और सुलभ होता है। हर गाव मे आसानी के साथ बन जा सकता है। घर के भीतर यह बिलकुल थोडी जगह लेता है। इसकी रचना इतनी सीधी-सादी है कि इसकी मामूली मरम्मत के लिए किसी खास कारीगर की खोज नही करनी होती। ज्यादा-से-ज्यादा गाव के बढई और लोहार का काम पडता है।

३ इसके लिए कच्चा माल हर किसान के बस की चीज है। किसान चाहे तो उत्तम से उत्तम कपास उपजा सकता है, और छोटे पैमाने पर हर कातनेवाला अपने हाथ से ओट कर और धुन कर पूनियाँ बना सकता है। इन बातो मे किसी दूसरे की मदद की जरूरत नही पडती।

४ इस धंधे का कच्चा माल बरसो तक रक्खा जा सकता है, खराब नही होता। किसान चाहे तो साल भर के काम के लिए कच्चा-माल इकट्ठा रख सकता है। इसके लिए किसी गोदाम की जरूरत नही है।

५ इस घरेलू कारबार के लिए किसी पूंजी की खोज नही होती, साहूकार से उधार लेने की भी जरूरत नही है। गाँव मे लकडी सस्ती होती है, मजूरी भी कम देनी पडती है, सब काम थोड मे होजाता है। और जितने घरेलू रोजगार हैं उनमे ये सुभीते नही है।

६ और जितने कारबार है इन सबमे कच्चा माल प्राय जितना खर्च किया जाता है उसीके हिसाब से तैयार माल उपजता है और उसके दाम चढते है, परन्तु सूत कातने की कला ऐसी सुन्दर और मनोमोहक है कि जितना ही बारीक और बढिया सूत काता जाय उतना ही कम कच्चा माल लगता है और उतना ही कीमती सूत तैयार होता है। इस तरह कला मे जितनी बढती होती है, कच्चे माल की जरूरत मे उतनी ही कमी होती जाती है।

७ सूत की कताई एक उत्तम प्रकार की कला होने के कारण

किसान का इस काम मे खूब मन लगता है, उसके परिवार भर को कम-से-कम एक उत्तम कला की शिक्षा मिलती है, साथ ही अपने जीवन की एक बहुत बडी जरूरत भी पूरी होती है।

८ अगर सूत अपने परिवार की जरूरत-भर कता तो साल-भर के कपडे के खर्च मे किसान को बडी किफायत होती है। अगर सूत अपनी जरूरत से ज्यादा कत गया तो उससे लाभ उठानेवाले ग्राहक उसे अपने ही गाँव मे बहुत मिल जाते है, उससे भी अधिक सूत तैयार हो तो किसी पास की सूत मडी, सूत बाजार या हफ्तावारी पेठ मे सूत की बिक्री सहज मे हो जा सकती है, और कातनेवाले किसान के लिए आमदनी का एक द्वार खुल जाता है।

९ सूत की कताई बहुत कम मिलती है। तीन-चार घटे की मेहनत मे अगर तीन-चार पैसे मिल गये तो बहुत समझना चाहिए।[१] देखने में तो यह रकम बहुत कम मालूम होती है, परन्तु परिवार मे जो चार प्राणी हो और हरेक दो पैसे रोज की कताई करे, तो परिवार की आमदनी चार रुपये मासिक या अडतालीस रुपये साल बढ जाती है। आदमी पीछे औसत-आमदनी किसान के लिए नौ पैसे रोज हो जाय, या आठ ही पैसे रोज होजाय तो दरिद्र किसान के लिए यह अच्छी वृद्धि है। जो सौ रुपये महीने कमाता है उसका वेतन सवा सौ हो जाय तो उसे उतनी तृप्ति और उतना सुख पचीस रुपया मासिक बढजाने पर नहीं होगा जितना सुख और तृप्ति सात पैसे रोज की आमदनीवाले को एक या दो पैसा रोज बढ जाने पर हो सकता है।

१ महात्माजी के आदेश पर अब सूत-कताई की मजूरी में काफी वृद्धि होगई है और महात्माजी उसे आठ आने रोज पर ले आने का इरादा रखते हैं। ——सम्पादक

१० गांव में ही किसी दूसरे के यहां जाकर कोई काम करके इतनी ही या इससे ज्यादा आमदनी हो तब भी वह सुभीते का काम नही हो सकता, क्योकि दूसरो के यहां काम करने मे समय का निश्चय करना जरूरी होगा और उसकी मरजी पर काम करना होगा। अपने घर के चरखे मे आदमी को आजादी है। वह अपनी मरजी मे काम करेगा। स्वतंत्र होकर काम करने के लिए चरखा एक नमूना है। घरेलू धधे के रूप मे चरखा आर्थिक स्वराज्य की मूर्ति है, और हर आदमी के छुटकारे और सयम की निशानी है।

११ दिन-रात मे जब कभी फुरसत हुई चरखा कातने लग गये। जब कभी काम पडा, चरखा छोडकर दूसरा काम करने लगे। इस तरह बीच-बीच मे काम रोक देने से कताई मे रत्ती-भर भी नुकसान नही है। और रोजगारो में इतनी उलझन है कि आदमी एकाएकी काम छोडकर कहीं जा नही सकता।

१२ हमारे देश के किसान छ महीने के लगभग खेत के काम से खाली रहते है। इस अध्याय में हम और सुधारको के सुझाये हुए जितने कामो की चर्चा कर आये है उनमे इस सुभीते के साथ किसान अपना खेत से बचा हुआ सारा समय काम मे नही लगा सकता। परन्तु सबसे ज्यादा सुभीते की बात यह है कि मुख्य तौर से किसान अपनी खेती का काम करे। खेती के काम से जितना वक्त उसे बचे और वह सुभीते से लगा सके तो ऐसे धधो मे लगावे जिनमे अच्छी मजूरी खडी हो सके। जैसे एक कुम्हार खेती से बचे समय मे मिट्टी के बरतन बनावे, पकावे और बेच भी ले। इसपर भी उसे समय बच जायगा, जिसमे उसके पास कोई काम न रहेगा। साल मे चार-पाच महीने जब बरसात के पडते है तब वह मिट्टी के बर-तनो का काम नहीं कर सकता। इन दिनो वह सुभीते के साथ चरखा

कात सकता है। इस तरह हर किसान खेती के सिवाय ज्यादा मजूरी देनेवाले और घरेलू धन्धे में भी बहुत-सा फालतू समय रखता है। इस फालतू समय को उसे चरखा कातने में जरूर लगाना चाहिए। मानलो कि साल में तीन महीना ऐसा फालतू समय किसान को मिलता है कि वह घर बैठे आठ-नौ घंटे चरखा रोज कात सकता है। इस तरह उसकी साल-भर की आमदनी में कम-से-कम दस-बारह रुपये बढ जाते हैं। जिन लोगो को साल में तीन महीने इस तरह से बचते है, ऐसे नर-नारी, बूढे, जवान, बच्चे सब मिलकर पन्द्रह करोड से कम न होंगे। अगर हम मान ले कि औसत आदमी पीछे दस रुपये साल की आमदनी हुई, तो इन पन्द्रह करोड प्राणियो की आमदनी साल में डेढ अरब के लगभग हो जाती है। यह तो हुई केवल कताई की मजूरी। एक रुपये के खद्दर में साढे चार आना कातनेवाले को मिलता है। हिसाब के सुभीते के लिए अगर हम मानले कि खद्दर की लागत में चौथाई हिस्सा कताई है तो इस तरह छ अरब रुपयो का खद्दर साल में तैयार हो सकता है। हमारे देश में इतने खद्दर में केवल दो अरब का खद्दर खप जायगा बाकी चार अरब का खद्दर हम विदेशो में बेचने के लिए लाचार होंगे। इससे यह प्रकट है कि असल में पन्द्रह करोड प्राणियो को तीन महीने तक आठ-नौ घंटे रोज काम करने की भी जरूरत नहीं है। केवल पांच करोड प्राणी छ महीने चार-पांच घंटे रोज अगर चरखा कात तो इतना खद्दर तैयार हो सकता है कि बम्बई, अहमदाबाद आदि के मिलो की जरूरत बिलकुल न रह जाय और जो भारी पूंजी और मुनाफा आरामतलब सेठो और रईसो के पास उनके भोग-विलास के लिए इकठ्ठा होता है वह सब दरिद्रो में थोडा थोड करके बट जाय, और बंटाई में व्यर्थ का कोई खर्च न हो। मानलो कि सोलह करोड ऐसे आदमियो में हर आदमी को दो-दो आना मजूरी …

बटवानी है, जो इकट्ठे किसी कारखाने मे काम नही करते, दूर-दूर गावो मे बसते है। इनके पास दो करोड रुपये रोज पहुचवाने हैं। कोई विधान ऐसा नही है कि हम किफायत के साथ किस तरह सोलह करोड प्राणियो में दो करोड रुपये रोज बटवा सके। डाकखाने मे मनीआर्डर का खर्च रुपया सैकडा लगता है। साहूकारो मे हुडी का रेट चार आने सैकडा है। डाकखाने का खर्च जगह-जगह बँटाई के प्रबन्ध के अनुसार बढा हुआ है। दो आना आदमी पीछे बँटाई का खर्च हर तरह पर डाकखाने से ज्यादा ही पडेगा। अगर हम डाकखाने के बराबर मान ले तो दो करोड रोज की बँटाई के लिए कम-से-कम दो लाख रुपया रोज ऊपर से लगेगा। घर-घर चरखा कातने के काम मे कम-से-कम रुपये सैकडो की तो बटाई की ही बचत होती है। इसलिए चरखे से हर बात मे देश के धन की रक्षा है, और समान रूप से जितने लोगो को जितने धन की बडी जरूरत है, चरखे के द्वारा उतना धन उनके पास पहुँच जाता है।

१३ विदेशो ने हमारे देश मे औसत साठ करोड का सूती माल हर साल आता है। इसीने हमारे देश मे भारी बेकारी फैलाई है। चरखे के द्वारा हम एक निशान से दो शिकार मारते है। एक ओर से हम अपनी बेकारी दूर करते है और दूसरी ओर से हम विदेशियो की लूट का द्वार बद कर देते है। इस तरह चरखे से एक पथ दो काज है। और रोजगारो मे विदेशी लूट से बचने का उपाय नही है—चरखे की कताई मे है।

हमने इस प्रकरण मे बेकार किसानो को दिये जानेवाले सब तरह के सहायक कामो पर विचार किया है। किसान का प्रधान काम खेती-बाडी है। खेती-बाडी के काम से फुरसत मिले तो वह ऐसा कोई काम करे जो उसे सहज मे मिल सके, जिससे उसकी खेती-बाडी मे कोई रुका-

वट न पड़े और जिसमें उसे खेती-बाडी में ज्यादा मजूरी मिले। परन्तु इस सहायक धंधे से भी उसकी बेकारी का पूरा नहीं पड सकता। वह अपना बाकी समय चरखा कातने में लगाकर देश का और अपना उद्धार करे। जिस किसान को चरखे से ज्यादा मजूरी देनेवाला कोई सहायक काम न मिले वह चरखा कातना ही अपना कर्तव्य समझे। किसी किसान को यह न भूलना चाहिए कि चरखा कातने में कपास की खेती, कपास की ओटाई और बुनाई भी शामिल है। इन सब की भी अलग-अलग मजूरी होती है। एक रुपये के खद्दर में रुई उपजाने के लिए तीन आना बिनौला साफ करने के लिए दो पैसे, बुनने के लिए सात पैसे, और कातने के लिए साढे चार आने मिलते हैं। इस तरह एक रुपये के खद्दर में पाने दस आने किसान के पास पहुँच सकते हैं। खद्दर की लगभग दो-तिहाई कीमत अपनी मेहनत से किसान ले सकता है। दरिद्र किसान के लिए खद्दर का यह काम उसकी दरिद्रता दूर करने का सबसे सहज, सुलभ और सुकर साधन है।

: २ :

भूमि पर अधिकार और बारडोली-विजय

१ किसान की लाचारी

हमारे देश के डेढसौ वरस पुराने पराधीनता के रोग के मुख्य लक्षण वेकारी और दरिद्रता है। इन दोनो का आपस का वडा घना सम्बन्ध है। इनमे से वेकारी के इलाज पर हमने पिछले अध्याय में विचार किया है। इसमे सदेह नही कि देश का शासन ठीक तरह का होता तो वेकारी का इलाज करने का काम उसीका था। अगर और सब दशाये हमारे अनुकूल होती तो इस रोग के दूर करने के लिए उचित उपाय न कर सकने वाली सरकार को एकदम वदल दिया जाता। परन्तु हमारी दशाये मुद्दत से विपरीत चली आ रही है। उनके होते हम सरकार के वदलने मे अभी-तक हम समर्थ नही हुए। हम यह भी देखते और जानते है कि यह भयानक बेकारी विदेशियो के स्वार्थ की नीति स हमारे देश मे मुद्दत से बराबर बढती आ रही है। इसलिए हमारी यह आशा कि विदेशी सरकार या उसका कोई कमीशन इस वेकारी का कोई सच्चा इलाज ढूढ निकालेगे, विलकुल व्यर्थ है। हाँ, हमारे किसान भाई चाहे और थोडा स्वावलम्वन की ओर झुकें तो इस वेकारी की भयानक दशा को वे आप—विना किसी वाहरी मदद के—दल सकते है। ऐसे ही स्वाधीन उपायो के ऊपर हमने पिछले अध्याय मे विचार किया है। सब किसान एकमत हो, दृढ सकल्प करके, आलस्य और लापरवाही छोडकर, अपने फूटे भाग्यो के भरोसे बैठे रहने की वान छोडकर, सकट मे एकमात्र सहायक भगवान

का नाम लेकर अगर दिनरात की अपनी वर्चा नडिया म चरखे की अनन्य उपासना मे लग जाय तो उनका आधा सकट दूर होजाय। बेकारी के पजे से जब छुटकारा मिल जाय, तब वे समझे और सोचे कि और कौन-कौन से उपाय करने चाहिए, जिनसे किसान की सुख-समृद्धि और दरिद्रता मिटे। यह पक्की तौर से समझ लेना चाहिए कि पराधीनता रोग के निवारण के महा-यज्ञ मे चरखा पहला सकल्प है। इस विधान को ठीक रीति से पूरा करके ही हम आगे बढ सकते है। सिवाय बेकारी रोग के और बाकी जितने सुधार है वे सब-के-सब ब्रिटेन की फौलादी मुट्ठी म ऐसे कसे हुए है कि जबतक इस फौलादी मुट्ठी को अपने दृढ सकल्प की भयानक आच मे पिघलाकर हम बहा न देगे तबतक एक भी साधन हम काम मे नही ला सकते।

इस तरह का सबसे पहला प्रश्न भूमि के अधिकार का है। ब्रिटिश राज्य ने अपना सिद्धान्त यह रक्खा है कि भूमि की असली मालिक सरकार है। इसी नाते वह अपनेको आधे मुनाफे की हकदार समझती है, और प्राय सभी दशाओ मे आधे से ज्यादा मुनाफा प्रजा को चूस-चूसकर वसूल कर लेती है। लेकिन अनादिकाल से भारत मे भूमि प्रजा की मिल्कियत चली आई है और राजा का अधिकार इतना ही है कि प्रजा की मिल्कियत की रक्षा के लिए राजा भूमि की उपज के दसवे हिस्से से छठे हिस्से तक कर के रूप में ले। इस कर की वसूली भी जबरदस्ती कभी नही हुआ करती थी। प्रजा से मागकर यह कर लिया जाता था, और प्रजा उसे खुशी से अदा करती थी, क्योकि स्वय प्रजा ने ही मनु को रक्षार्थ कर देने की रजामन्दी ज़ाहिर की थी।

आजकल जिन-जिन प्रान्तो में रैयतवारी प्रथा है, उनमे सरकार से सीधा सम्बन्ध है। सरकार मालिक और किसान आसामी है। जहा

ज़मींदारी की रीति चलती है वहाँ ज़मींदार असल मे ज़मीन का मालिक नही बल्कि एक तरह का ठेकेदार है जो रैयत और सरकार के बीच मे नफा खाता है। उससे जो कुछ ठेका हो चुका है उसीके अनुसार वह सरकार के खजाने मे मालगुज़ारी जमा करता है और रैयत से जो कुछ वसूल करता है उसमे से मालगुज़ारी की रकम बाद करके बाकी रकम वह अपनी जेब मे भरता है। सरकारी मालगुज़ारी वसूल न हो तो यह ठेकेदारी या ज़मींदारी बिक जाती है। इसी तरह लगान न दे सके तो किसान खेत से हाथ धो बैठता है। कैसे आश्चर्य की बात है कि रक्षा की मजूरी इतनी बढ गई कि जिस चीज़ की रक्षा के लिए वह मजूरी दी जाती है वह चीज़ ही मजूरी मे जब्त हो जाती है। जिस कर को देने के लिए किसान को आये दिन अपने कर्ज़ के बोझ को बढाये जाना पडता है और जो धीरे-धीरे सारी मिल्कियत को खा जाता है, वह कर अवश्य ही अपने उद्देश्य का विरोधी है। हमारे यहाँ के नीतिकारो ने लिखा है कि राजा पेड से गिरे हुए फलो की तरह प्रजा की आय का वह हिस्सा कर के रूप मे वसूल करे जो प्रजा के लिए बिल्कुल फालतू हो और जिसकी वसूली से प्रजा को किसी तरह का कष्ट न हो। परन्तु यहाँ कष्ट का तो कोई सवाल ही नही है। यहाँ तो सारी मिल्कियत समाप्त हुई जा रही है।

जो कर अपना उद्देश्य पूरा नही करता, जिससे रक्षा के बदले विनाश होता है, उस कर का समूल विनाश करने में ही प्रजा की रक्षा है। भारत के किसान ने हाथ जोडे विनतियां की, दरख्वास्ते दी, वकीलो और अहल्कारो की जेबें भरी, शान्त भाव मे रुपये-पैसे के रूप मे अपना खून बहाया, अपने दुधमुंहे बच्चो को हड्डी की ठठरी बनाया, कुटुम्बियो को और अपने-आपको भूखा रक्खा और हाकिमो को घी-दूध खिला-पिलाकर मोटा किया, तब भी उनकी सुनाई न हुई। इतनी लाचारी की

दशा किसानो की केवल इसीलिए हुई कि वे धर्म्म, नीति, कायदा-कानून को सदा से मानते आये। इनका मानना उनकी अनादि काल की परम्परा है। सच तो यह है कि भारत की परम्परा मे कायदा-कानून और धर्म्म-नीति के सामने सिर झुकाने के सिवाय किसान ने और कुछ जाना ही नही। जिन्हे यह पता लग भी गया कि हम न्याय, अनुशासन, नीति-धर्म, कायदा-कानून के नाम मे ठगे जा रहे है, वे भी यह नही जानते कि इस छल का मुकाबला हम किस तरह पर करे। अकेले अगर हम भारी कर देने से इनकार करते है तो हमारी जायदाद बिक जाती है। सब कोई मिलकर इसका विरोध करे तो भारी सगठन की जरूरत पडती है, जिसमें सैकडो बाधाये है। किसान चारो ओर से घिरा हुआ है। सरकारी बॉस, जमींदार की जबरदस्ती, पटवारी की चाले, चौकीदार और पुलिस का आतक, साहूकार का दबाव, और अहलकारो के जुल्म सब-के-सब चारो ओर से किसान को दबाये हुए है। किसान बेचारे को उभरने के लिए कही सास नही है। वह भारतवर्ष का तीन-चौथाई भाग है। इस तरह देश के तीन-चौथाई भाग को सरकार ने अपनी कपट-नीति से लाचार कर रक्खा है। इस माया-जाल से बचने का कोई साधन दिखाई नही पडता था। पर गाधीजी की सत्याग्रह की रीति ने एक नये साधन का द्वार खोल दिया है। एक-एक सत्याग्रह का विस्तार से वर्णन करना यहाँ सभव नही है। इसीलिए केवल एक बारडोली के सत्याग्रह का इतिहास हम यहाँ सक्षेप से देते है।

२ बारडोली का सत्याग्रह

इस पुस्तक के पढनेवालो के सुभीते के लिए हम यहा बारडोली के सत्याग्रह की कथा सक्षेप मे लिख देना चाहते है।

गुजरात प्रान्त के सूरत जिले मे बारडोली नाम का एक परगना है।

बारडोली और चौर्यासी ताल्लुके की तीस वर्ष की लगान की अटकल की मियाद सन् १९२७-२८ में पूरी होती थी। इसलिए सरकार ने तत्कालीन उत्तरविभाग के डिस्ट्रिक्ट कलेक्टर श्री० एम० एस० जयकर को १९२४ में असिस्टेंट सेटिलमेंट आफिसर के स्थान पर नियुक्त करके भेजा। उन्होंने १९२४-२५ में रिवीजन शुरू किया और ११ नवम्बर सन् १९२५ को सरकार के सामने अपनी रिपोर्ट पेश करदी। श्री जयकर ने वैसे तो अपनी रिपोर्ट में सिर्फ २५ फी सैकडे के इजाफे की ही सिफारिश की, लेकिन गाँवों के वर्गीकरण में उन्होंने २३ गाँवों को ऊपर के दरजे में चढा दिया, जिससे असल में लगान में कुल इजाफा तीस फीसदी तक पहुँच गया। श्री जयकर ने यह रिपोर्ट मि० ए० एम० मैक्मिलन के पास भेजदी, जो उन दिनों विलायत में थे। वहाँसे उन्होंने थोडी बहुत टीका-टिप्पणी करके वह रिपोर्ट लौटादी। तब श्री जयकर ने उसे सेटिलमेंट कमिश्नर मि० एण्डरसन के पास भेज दिया। मि० एण्डरसन ने श्री० जयकर की रिपोर्ट की खूब खबर ली। कहा– 'श्री जयकर ने बिना आधार के ही अपनी इमारत खडी करदी है। भला, बन्दोबस्त की रिपोर्ट कहीं इस तरह लिखी जाती है ?" मि० एण्डरसन ने यह भी लिखा कि, "श्री जयकर की रिपोर्ट के सत्तावन में पैंसठ तक पैराग्राफ तो बिलकुल व्यर्थ कहे जा सकते हैं। यही नहीं, उन्होंने लगान बढाने की जो सूचनायें की हैं, उनका समर्थन करना तो दूर, उन्हीं पैराग्राफों में उलटे उनके विरोध में दूसरे कुछ दलीलें आसानी से मिल सकती हैं। इसलिए वास्तव में वे भयकर ही हैं।" श्री जयकर की रिपोर्ट के खिलाफ मि० एण्डरसन ने सिर्फ इतना ही लिखकर बस नहीं किया, उन्होंने तो साफ-साफ यहाँतक लिख दिया कि "अगर सरकार लगान बढाने की हद पचहत्तर फीसदी कायम कर देती तो शायद श्री जयकर पैंसठ फीसदी लगान-वृद्धि को भी

उचित और न्याययुक्त कहकर किसानो पर पैंसठ फीसदी इज़ाफा करने की सिफारिश करते।" इस तरह मि० एण्डरसन ने श्री जयकर की रिपोर्ट को तो बिलकुल रद्दी साबित कर दिया, लेकिन खुद बिना जाच किये, अटकल-पच्चू लगाकर, यह फैसला कर दिया कि उन्तीस फीसदी इज़ाफा करके रिपोर्ट को उत्तर-विभाग के कमिश्नर मि० चेटफील्ड के पास भेज दिया जाय। मि० चेटफील्ड ने रिपोर्ट पर लिखा "मुझे, बारडोली सम्बन्धी कोई व्यक्तिगत जानकारी नही है, फिर भी मैं देखता हू कि मि० एण्डरसन ने थोडे लगानवाले गावो को ऊचे दरजे के गावो मे शामिल कर दिया है।" यह लिखते हुए भी उन्होने मि० एण्डरसन के किये हुए इज़ाफे को मजूर कर लिया।

बारडोली के किसानो ने इस मनमानी-घरजानी कार्रवाई के खिलाफ बहुत-कुछ लिखा-पढी की। उन्होने मि० चेटफील्ड के पास इस आशय की कई दरखास्तें भेजी कि लगान ग़लत आधार पर कूता गया है। लेकिन मि० चेटफील्ड ने उन सबको फिजूल बताकर रद्दी की टोकरी मे फेंक दिया और बन्दोबस्त के कमिश्नर की सिफारिशो की यानी उन्तीस फीसदी इज़ाफे की ताईद करते हुए मामले को बम्बई-सरकार के रेवेन्यू मिनिस्टर के पास भेज दिया। इस तरह कानून और कायदे के ठेकेदारो ने खुद कानून और कायदे को ताक पर रख दिया। क्योकि कायदा यह है कि बन्दोबस्त के अफसर को पहले खूब अच्छी तरह पूरी आर्थिक जाँच करनी चाहिए, और जब वह यह जाँच पूरी करके अपने प्रस्ताव ऊपर के हाकिमो के पास भेजे तब इज़ाफे की वजह तथा अपने प्रस्तावो वगैरा के साथ सरकार उस रिपोर्ट को काश्तकारो की जानकारी के लिए प्रकाशित करती है। अर्थात् जनता को उसपर अपनी अर्जियाँ, दरखास्ते, शिकायते, आपत्तियाँ आदि पेश करने का मौका देती है। जब जनता की तरफ

से सब शिकायतें वह सुन लेती है, तब उनका यथायोग्य उत्तर देकर अपनी उचित कर्रवाई करके जितना लगान घटाना-बढाना हो उतना घटा-बढाकर उसे कानून का रूप देती है। लेकिन बारडोली के मामले में न तो अफसर बन्दोबस्त ने पूरी तरह आर्थिक जाँच की और न रिपोर्ट तैयार हो जाने पर किसानो को उसपर अपने उत्तर पेश करने का मौका ही दिया गया। सरदार बल्लभभाई पटेल के शब्दो मे अफसर बन्दोबस्त ने "जाँच करते समय किसानो को खबर तक नही भेजी। बस, सर्किल इन्सपेक्टर को अपने साथ मे लेकर हरेक गाँव मे दो-दो मिनट ठहर कर जन्म-मरण के रजिस्टरो पर दस्तखत किये और चलते बने। इस तरह वह एक-एक दिन मे चार-चार पाँच-पाच गावो में घूम लिये। कई बार तो पटेलो को उपर्युक्त रजिस्टर समेत अपने मुकाम पर बुलवा लिया और उनपर दस्तखत करके बगायनाम पूछ-ताछ करली और बस।' अब रही रिपोर्ट किसानो के लिए प्रकाशित होने की बात, सो जो कुछ होता है वह यह है कि ताल्लुके के प्रधान दफ्तर मे रिपोर्ट की एक अंग्रेजी प्रति रखदी जाती है और किसानो से यह आशा की जाती है कि वे उसे पढकर अपनी शिकायतें भेजे।

किसानो ने इस धाँधलेबाजी की तरफ सरकार का ध्यान दिलाने के लिए कई अर्जियाँ भेजी। सारे ताल्लुके में कई सभायें की गई और उनमे इस बन्दोबस्त का विरोध करनेवाले कई प्रस्ताव भी पास किये गये। सरकार से यह प्रार्थना भी की गई कि वह लगान में जो मनमाना इजाफा कर दिया गया है उसे रद करदे। इन सभाओ मे से कई मे तो कौंसिल के मेम्बर भी उपस्थित थे। लेकिन सरकार के कान पर जूं तक नहीं रेंगी। कौंसिल मे भी इस सवाल को उठाया गया। खास-खास काश्तकारों का एक डेप्युटेशन भी महकमा बन्दोबस्त के मेम्बर मि० रिय्

से मिला। मि० रिय् के हुक्म के मुताबिक किसानो से अर्जी लिखवाकर भी उनकी खिदमत मे भिजवादी गई, लेकिन हुआ वही ढाक के तीन पात! सरकार ने इन सब बातो की रत्तीभर भी परवा नही की और १९ जुलाई १९२७ के दिन एक प्रस्ताव द्वारा लगान २९.०३ से घटाकर २१.९७ यानी कुछ कम बाईस फीसदी कर दिया और यह भी जाहिर कर दिया कि इस बन्दोबस्त के खिलाफ जितनी भी दलीले पेश की गई है गवर्नर-इन-कौंसिल उनपर खूब अच्छी तरह विचार करके इस नतीजे पर पहुँचे है कि लोगो ने इज़ाफा लगान के खिलाफ जितनी दलीले पेश की है वे सब गलत है।

बारडोली के किसान केवल इतना ही चाहते थे कि सरकार की तरफ से लगान मे जो इज़ाफा किया गया है उसके ऊपर निष्पक्ष विचार कराया जाय। इतनी बात पर भी राज़ी हो जाना सरकार ने अपने रोबदाब के खिलाफ समझा। तब इतनी बात करा लेने के लिए, बार-डोली ने अपना दृढ निश्चय कर लिया। उसने जब देखा कि किसी उपाय से सरकार टस से मस नही होती, तो महात्माजी के सत्याग्रह शस्त्र से काम लिया गया। ६ सितम्बर १९२७ को एक परिषद् ने निश्चय किया कि सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व मे सत्याग्रह किया जाय। ४ फरवरी १९२८ की सभा मे सरदार वल्लभभाई ने लोगो की अच्छी तरह जाँच करली और जब देखा कि लोग सत्याग्रह के लिए पूरे तौर पर तैयार है, उन्होने दो दिन बाद बम्बई-सरकार को पत्र द्वारा स्थिति की सूचना दी और निष्पक्ष पच नियुक्त करने के लिए प्रार्थना की। इधर लगान की वसूली की शुरू की तारीख थी। तलाटियो ने वेठियाओ के द्वारा लगान भर देने की डुग्गी गाँव-गाँव पिटवादी, परन्तु तहसील मे लगान की एक कौडी भी नही पहुँची। इधर गवर्नर ने यह लिखवा

भेजा कि सरदार का पत्र विचार और कार्रवाई करने के लिए माल-विभाग को भेज दिया गया है। यह केवल टालमटूली की बात थी। सरदार ने इसपर यही निश्चय किया कि लडाई छेड दी जाय। १२ फरवरी की विराट सभा मे यह निश्चय किया गया —

"बारडोली ताल्लुके के काश्तकारो की यह परिषद् प्रस्ताव करती है कि हमारे ताल्लुक़े के लगान में सरकार ने जो वृद्धि जाहिर की है वह अनुचित, अन्याय और अत्याचारपूर्ण है। ऐसा हम मानते है। इसलिए जबतक सरकार वर्तमान लगान को ही सम्पूर्ण लगान के बतौर लेने अथवा निष्पक्ष समिति के द्वारा इस लगान-वृद्धि के मामले की जांच फिर से कराने के लिए तैयार न हो, तबतक हम सरकार को लगान बिलकुल न दें। सरकार हमसे जबरदस्ती लगान वसूल करने के लिए जब्ती, ख़ालसा वग़ैरा जिन-जिन उपायो का अवलम्बन करे उनसे होने-वाले कष्टो को हम शान्तिपूर्वक सहन करें।

बढ़ाये हुए लगान को छोडकर पुराने लगान को ही सम्पूर्ण लगान समझकर सरकार लेना चाहे तो उसे हम फौरन भरदें।"

इस निश्चय के साथ लडाई की दुदुभी बज गई। हरेक गांव फौजी छावनी बन गया। सत्याग्रहियो की डाक नियुक्त हो गई। हर गांव सैनिको का दल बन गया। सत्याग्रह-छावनियो के दलपति मुकर्रर हो गये। खुफिया स्वयंसेवको का भी दल बना। प्रकाशित करने लायक खबरे छपने के लिए शाम को सूरत भेज दी जाती थी। जवाब देने लायक़ बातो का जवाब, सरदार की आज्ञाये तथा सत्याग्रह-समाचार जो रात को छपने के लिए भेजे जाते थे इन सबको लेकर सुबह मोटरे भिन्न-भिन्न विभागो की ओर चल देती थी और दिन के १२ बजे के लगभग हर विभाग-पति के पास पहुँच जाती थी। इस तरह २४ घटे के अन्दर

हरेक ज़रूरी बात पर सरदार का हुक्म हरेक विभाग-पति के पास पहुँच जाता और उसपर अमल भी होने लगता था। जिन गावो मे मोटरे नही पहुँच पाती थी उनमे डाक और सत्याग्रह-समाचार स्वयसेवक लोग पहुँचा देते थे। हर केन्द्र पर यह बन्दोबस्त था कि गाँव मे कोई खास बात हो जाने पर अक्सर १-२ घटे के अन्दर ही प्रधान कार्यालय म पहुँच जाती थी। ऐसे समयो मे मोटरो की स्पेशल छूटती थी। कभी-कभी सरकारी तारघर भी काम मे लाये जाते थे। सत्याग्रही मोटरो के सिवाय निजी और कम्पनियो की मोटरे भी ताल्लुके मे किराये पर चलती थी और इस तरह के काम करती थी।

सारे सगठन मे कठोर अनुशासन से काम लिया जाता था। कोई स्वयसेवक अपने नायक या विभाग-पति से यह न पूछता था कि यह काम क्यो करना चाहिए, या इतनी देर मे यह काम मुझसे न हो तो मैं क्या करूँ? जिस स्वयसेवक मे ढिलाई पाई जाती थी उसे तुरन्त अयोग्य कहकर लौटा दिया जाता था। उन सबमें तपस्या थी सयम था, त्याग था, और देश-सेवा की लगन थी। स्वयसेवक भी राष्ट्रीय तथा सरकारी हाईस्कूलो और कालेजो के विद्यार्थी थे, जो त्याग और सेवा-धर्म के भावो से भरे थे और इस सत्याग्रह की लडाई मे राजनीति, अर्थशास्त्र, तथा समाज-विज्ञान का व्यावहारिक अध्ययन कर रहे थे। गाँवो में सत्याग्रही पहरेदार थे, जो किसीपर हथियार चलाना तो क्या कठोर वचन का भी प्रयोग न करते थे। ऐसे लोग गाँवो के चारो ओर पहरा देते रहते थे और ज्यो ही किसी तलाटी (पटवारी) या अधिकारी को देखते तो शख, नक्कारा या बिगुल बजाकर सारे गाव को सजग कर देते थे। बस, गाँव-भर मे सन्नाटा छा जाता, मकानो के बाहर से ताले लगाकर किसान अन्दर चले जाते, सडके सूनी हो जाती, लगान

उगाहनेवाले सरकारी अधिकारी जब्ती करने आते तो हर मकान पर ताले पड़े देखते थे। पंच बनने, जब्ती का सामान पहुँचाने या बोली बोलने की कौन कहे, उनकी बात पूछनेवाला भी वहाँ कोई न मिलता था। जो सामान जब्त किया जाता था वह जहाँ-का-तहाँ पड़ा रह जाता था। धीरे-धीरे यह काम इस कमाल को पहुँच गया कि जब्ती करनेवाले सरकारी अफसरों को अपने आराम या सुभीते के लिए किसी चीज़ की ज़रूरत होती तो लाचार होकर सत्याग्रह छावनी पर आकर उन्हें माँगना पड़ता था। इसीपर बम्बई के 'टाइम्स' ने घबराकर लिखा था कि बारडोली में सरकारी राज उठ गया है।

शुरू-शुरू में भूल से और सरकार की पट्टी में आकर कुछ लोगों ने रिआयती लगान अदा कर दिया, पर वे लोग पछताये। अनेक पटेलों ने और तलाटियों ने इस्तीफे दे दिये। फरवरी का महीना बीत चला, लगान वसूल न हुआ। समय पर लगान न देने से लगान का एक-चौथाई बढ़ाकर उसके सहित काश्तकार से ज़ब्ती द्वारा या और किसी तरह वसूल किया जाता था। २७ फरवरी को कई गाँव के रहनेवालों को ऐसे नोटिस दिये गये। परन्तु नोटिस से क्या होता है? सरकार के पास कुर्की और ज़ब्ती के सिवाय कोई उपाय न था। इसलिए बारडोली के पड़ोस के माडवी तालुके में सरकारी अफसरों ने यह जाँच शुरू की कि बारडोली के किसानों की भैंसे तथा ज़मीनें लेने को ग्राहक मिलेंगे या नहीं? किसानों में पड़ोस का धर्म जागृत हुआ उन लोगों ने जगह-जगह सभायें करके निश्चय किया —

(१) बारडोली के किसानों के यहाँ ज़ब्ती हो तो यहाँ से कोई पंच बनकर न जाय। अधिकारियों को ठहरने के लिए मकान और गाड़ी भाड़ा न दे। कोई उनकी किसी तरह बेगार न करे।

(२) हमारे ताल्लुके मे कोई किसान बारडोली के किसानो की जमीन न ले, न जोते, न जुतवाये । ज़मीन मुफ्त मिलती हो तो भी न ले ।

(३) सत्याग्रह के लिए चन्दा एकत्र करे ।

प्राय सभी पडोसियो ने यह समझ लिया कि बारडोली-सत्याग्रह केवल बारडोली के लिए नही बल्कि हम सबके लिए है । इस तरह सगठन और आन्दोलन बारडोली और आस-पास के ताल्लुको मे ज़ोर पकड रहा था । इसी बीच सरकार और सरदार मे लम्बी-चौडी लिखा-पढी चल रही थी और बम्बई की धारा-सभा मे मेम्बर लोग अपनी ओर से पूरा ज़ोर लगा रहे थे । इसी समय वढवान के प्रसिद्ध कवि श्री० फूलचन्दभाई शाह के बनाए लडाई के गीतो मे गुजरात की भूमि गूंज रही थी । बच्चे, जवान, बूढे नर-नारी सबके बीच इन गीतो मे जोश फैल रहा था ।

जब जब्तियाँ शुरू हुई, उस समय वालोड मे एक और तमाशा हो गया । वहाँके तहसीलदार दो साहूकारो के यहाँ ज़ब्ती करने गये । दोनो सेठ तहसीलदार से मिले हुए थे । जब तहसीलदार तीन पटवारियो को लेकर गाँव मे पहुँचे तो सारे गाँव मे खबर होगई और लोग तुरन्त अपने-अपने घरो मे ताला लगाकर बैठ गये । दोनो सेठो को भी खबर मिली, पर उन्होंने दरवाज़े बन्द नही किये । तहसीलदार ने आकर कुर्की का नाटक किया और गल्लो मे रक्खे हुए नोटो का बण्डल लेकर चलता हुआ । इस बात की खबर फैलते ही सारे ताल्लुके मे गुस्से की भयानक आग भडक उठी । गाँव-गाँव ने इनके सामाजिक बहिष्कार का इरादा किया, परन्तु सरदार ने भरी सभा मे लोगो को समझाया —

"जोश में आकर आप लोग कुछ भला-बुरा न कर बैठें । इस तरह डर दिखाने से कोई कायर शूर नहीं हो सकता । किसीको टेका लगा

कर खडा करने से वह हमेशा थोडे ही खडा रह सकता है ? जो अपनी प्रतिज्ञा के महत्व को समझता है, जिसे अपनी इज्जत का ख़याल है, वह तो कभी लगान अदा नहीं करेगा, चाहे सारा गांव अपनी प्रतिज्ञा को तोडकर भले ही लगान अदा करदे ।

"यदि आपको यह डर हो कि इन दोनो को क्षमा कर देंगे तो दूसरो का भी पतन होगा, तो उसे भी दिल से निकाल बाहर कर दें । इस तरह यह काम नहीं चल सकता । ऐसी प्रतिज्ञावाली लडाइयो में हरेक आदमी का यही सकल्प होना चाहिए कि सारा गांव भले ही लगान जमा करदे, मैं कभी न दूंगा ।

"मुझे इन वहिष्कार के प्रस्तावो आदि की ख़बर मिल चुकी है, जिनपर आप विचार कर रहे हैं । पर मैं आपसे यह कहूँगा कि अभी इन बातो की जल्दी न करें । हम सरकार के साथ लडने चले हैं, ख़ुद हमारे ही अन्दर जो कमजोर लोग हैं उनसे लडने के लिए नहीं । इनसे लडकर भी आप क्या करेंगे ? ये तो आपसे भी डरते हैं और सरकार से भी डरते हैं । इसीलिए तो जब्तियो के ऐसे नाटक उन्हे करने पडते हैं । हमें सत्याग्रही का धर्म न छोडना चाहिए । वह बडा मुश्किल है । क्रोध के लिए उसमें कहीं स्थान ही नहीं है । यह लडाई आपस में लडने के लिए नही छेडी गई है । निर्माल्य लोगो को पैरो-तले रौंदने के लिए हमने यह युद्ध नहीं छेडा है । यह मानना झूठ है कि जिसके पास धन है, जमीन है, वह बहादुर है । अरे, इनपर तो हमें दया आनी चाहिए कि ऐसा इनका जीवन है ! गरीब, अपढ़, अजान लोगो के अगूठे काट-काटकर तो इन्होने जमीन इकट्ठी की है, और फिर इन्हीं जमीनो पर ख़ूब मुनाफा लेकर किराये पर उठा दिया है । और इन ऊँचे किराये के अको को देख-देख कर ही सरकार ने इनके पाप के फल-

स्वरूप सारे ताल्लुके पर लगान बढ़ाया है । और जब आप इस लगान वृद्धि के विरोध में युद्ध छेड़ बैठे हैं तब यही साहूकार लोग फिर आपके रास्ते में रोड़े अटका रहे हैं । अगर आपको अपनी शक्ति का पूरा-पूरा भान हो जायगा तो आपको किसी प्रकार का दबाव डालने की जरूरत नहीं रहेगी । सब अपनेआप सीधे होते चले जावेंगे ।

"हमारी इस अहिंसा-धर्म की लड़ाई में यह अच्छी तरह याद रखना चाहिए कि हम तो अपनी ओर से मजबूत रहें, परन्तु हमारा कोई भाई अगर अपनी कमजोरी से कोई खोटा काम कर बैठे तो हम बहुत ज्यादा उसके फेर में न पड़ें । हम अगर अपने काम में चोकस रहेंगे तो काम कभी न बिगड़ेगा । और यदि कोई बुरा काम करे और उसके साथ फिर भी हम भलाई करें तो उसका फल अच्छा ही होगा । हमारा बिगड़ा हुआ भाई आगे चलकर राह पर आ सकता है। इसलिए बुरे पर मिट्टी डालकर हमें उसे भुला देना चाहिए और ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि ऐसी कुमति हममें उपजे उससे पहले मृत्यु की गोद में हम सो जायें ।"

कुरकी के नोटिस घर-घर चिपकाये जाने लगे । कुरकी के अफसर दौरे लगाते थे परन्तु शंख-नक्कारे आदि बजाकर पहरेवाले सबको सचेत कर देते थे । अहलकार लोग सुनसान गांव देखकर हैरान हो लौट जाते थे। अफसरों को अपने बंगलों पर भी चैन न था । वे जहां डेरा डालते थे वहां भी सत्याग्रही स्वयंसेवक कहीं पास में कुटिया डालकर अपना थाना बना लेते थे, और उनके सारे समाचार पैरगाड़ियों और घोड़ों पर बैठकर चारों ओर पहुँचाने लगते थे । ऐसे जबरदस्त संगठन को देखकर सरकार हैरान हो गई । जमीन और खेतों की कुरकी के नोटिस तो लग ही गये थे, अब दमन और जबरदस्ती के जोर पर कुरकी होने लगी । जब्ती-

अफसर आपस में चढ़ा-ऊपरी करने लगे कि कौन अपने काम में सफल होता है। अहलकारों को दमन करने के अधिकार भी मिल गये। १९ अप्रैल से यह काम बड़े जोरों से शुरू हुआ। कुरकी के खास आफिसर के साथ, कई मजिस्ट्रेट हथियारबन्द पुलिस, चुने हुए पठान और तीन मोटरें लेकर कुरकी का काम शुरू किया गया। एक डिप्टी पुलिस सुपरिण्टेण्डेन्ट खास तौर पर मुकर्रर हुआ। खुफिया पुलिस का भी एक दल तैनात हुआ। इस तरह सज-धजकर गाँव में दिन-रात सरकारी डाके पड़ने शुरू हुए। खुले मकानों पर डाका पड़ना तो कोई बात न थी, और दरवाजों पर इधर-उधर टूटी-फूटी खाट और पलंग सहज में मिल जाते थे। पर इन्हें भी उठाने को आदमी न मिलते थे। सरकारी डाकेवाले दीवारों को फाँदकर भी घर के भीतर घुसने लगे। जो माल मिलता सिपाहियों को ही लादकर ले जाना पड़ता था। बैल न मिलने पर पठानों को छकड़े भी खींचने पड़ते थे। कुरकी के अफसरों को जब और कोई उपाय न सूझा तो उन्होंने चरते हुए पशुओं पर हाथ लगाया। बैलों की कुरकी नहीं कर सकते थे, भागती गायों को पकड़ने में कठिनाई होती थी। अतः उन्होंने भैंसों को पकड़ना और बेदर्दी से पीटना शुरू किया। एक भैंस पर इतनी मार पड़ी कि वह मर गई। यह देखकर और भैंसों का भी पकड़ा जाना कठिन होगया। किसी-न-किसी ढंग से जो भैंसें जब्त भी की जा सकीं उनको पानी और चारा देने का कोई बन्दोबस्त न था। यह जब्ती भी अंधाधुंध थी। पता न था कि कौन भैंस किस किसान की है। इन भैंसों में कुछ ऐसे लोगों की भी थीं जिनके जमीन न थी और जिनने लगान नहीं पाना था। उन लोगों ने नोटिस दिये कि हमारी भैंसें वापस करो, नहीं तो अदालत में घसीटेंगे।

घर पर सामान न मिलता था तो कपास या दूसरे माल की गाड़

चलती गाडियाँ तक जब्त करली जाती थी। जमीनो की कुरकी भी धूम से हुई। तीस-तीस हज़ार की जमीनें डेढ-डेढ, दो-दो सौ रुपयो के लिए कुरकी पर चढी। और इसी तरह डेढ-डेढ सौ की भैंसे पाच-पाँच रुपये पर नीलाम हुई।

सत्याग्रहियो के पहरे मे, बाजे मे, जय-घोष मे, डाक मे और अद्भुत सगठन मे घबराकर ३ मई को ताल्लुके भर मे नोटिस चिपकाये गये, जिनके द्वारा कोशिश की गई कि स्वयसेवक लोगो को इन कामो मे रुकावट हो, और गिरफ्तारियो और जेल की धमकिया दी गई। किसानो को भी जोश आया। कलक्टर को मोटर मिलना मुश्किल होगया। तीन बैल-गाडियाँ मगवाई। किराये पर देनेवाले किसानो को जब उनको भूल मालूम हुई तो उन्होने गाडीवानो को मना किया। सामान लद चुका था, पुलिसवालो ने उतारने न दिया। लाचार हो गाडी और बैल छोडकर हाँकनेवाले और किसान लोग चले गये। इस घटना पर सरकार ने श्री रविशकर भाई को ५ मास १० दिन की कडी कैद की सजादी, और इस सज़ा पर महात्माजी ने अपनी असीस दी। रविशकरजी से तो आरम्भ किया गया, फिर तो किसी-न-किसी बहाने काम करनेवालो और स्वय-सेवको में जो-जो अगुआ थे वे सभी धडाधड जेल जाने लगे, और सत्या-ग्रह के चौथे महीने में बारडोली ताल्लुके भर मे गुण्डे पठानो का राज्य शुरू होगया। सरकार सगठित डाकेजनी से सतुष्ट न हुई, अब गुण्डो के राज्य में यह पूछने की जरूरत न थी कि जिसका यह मकान है उसमे हमें कुछ पाना है या नहीं? बाडो मे, गाँवो मे, खेतो मे दिन-रात पठान घूमते पाये जाने लगे। रात के एक-एक, दो-दो बजे किसानो के दरवाजे खट-खटाये जाते और उन्हे इस तरह पुकारा जाता मानो कोई सगा सम्बन्धी आया हुआ है। अब हाल यह था कि राह चलते आदमी, चाहे वे कहीं

के हों, बारडोली की सड़कों पर लुट जाते थे, उनकी गाड़ियाँ और पशु छिन जाते थे, और उनकी दोहाई सुननेवाला नहीं था। ये लोग चाहे जिसके घरों में घुस जाते थे और मनमानी चीजें उठा लेजाते थे। अंधेर यहाँतक बढ़ा कि स्त्रियों के सतीत्व पर भी आक्रमण होने लगे। दिन-दहाड़े की चोरी, जबरदस्ती, डाका, लूट और तरह-तरह के जुल्मों की शिकायतें सरकार तक बरम्बार पहुँचती भी गई, तो भी बम्बई-सरकार ने यह कहकर गुण्डों को चाल-चलन की सनद दे दी कि "सरकार इस बात से सतुष्ट है कि उनका व्यवहार हर तरह पर आदर्श-रूप रहा है।' सरकार के एक बड़े खैरख्वाह और किसानों के बड़े हितैषी बननेवाले अदल्जी बहराम नाम के एक पारसी सज्जन किसानों को बहकाने के लिए, कि वे लगान देने को राजी हो जायँ, समाचारपत्रों में सरकार की खैरख्वाही के लेख छपवाने लगे। एक ओर से जहाँ कमिश्नर और बहरामजी सरकार की ओर से अन्दोलन कर रहे थे, दूसरी ओर से देश के बड़े-बड़े नेताओं में यह खलबली पड़ी हुई थी कि हम बारडोली की इस अद्भुत लड़ाई को चलकर देखें। सरदार वल्लभभाई यह नहीं चाहते थे कि भारत के बड़े-बड़े नेता बारडोली में आकर इस लड़ाई को अखिल-भारतीय रूप देदें। उन्होंने महात्माजी को ही आने से रोका। श्री राज-गोपालाचार्य और श्री गगाधरराव देशपाडे को सरदार ने बारडोली जाने से रोका। गुजरात के बाहर के अनगिनत स्वयंसेवकों की अर्जियाँ आईं, परन्तु सरदार ने धन्यवाद देकर उन्हें आने से रोक दिया। पठानों के अत्याचार ऐसे बढ़ गये थे कि बाहर से चन्दे की मदद की जरूरत मालूम हुई। सरदार ने अपील की और महात्माजी ने उसे दोहराया। फल यह हुआ कि केवल भारत नहीं बल्कि ससार के भिन्न-भिन्न भागों से चन्दा आने लगा। सब जगह से इस अद्भुत सग्राम के साथ सहानुभूति प्रकट की जाने लगी;

सरदार के लाख रोकने पर भी कुछ नेता तो आकर ही रहे। पहले-पहल श्री भरुचा और नरीमान आये। श्री नरीमान ने बारडोली में ५,००० किसानों की सभा में कहा —

"मैं तो आपकी टीका करनेवाले से कहूंगा कि यहां आकर पहले किसानों की हालत देखो, तब आपको सच्ची हालत मालूम होगी। चन्द घण्टों में ही मैंने यहांकी हालत को देख लिया है। सारा ताल्लुक़ा जेल बन गया है। बेचारे किसान दिन-दिन भर अपने जानवरों को लेकर घर में बन्द रहते हैं। लोग कहते हैं कि चोर, लुटेरों और पिण्डारियों को निकालकर अंग्रेज यहां राज कर रहे हैं। पर मैं तो कहूंगा कि और कहीं चाहे जो हो, बारडोली में तो आज पिण्डारियों, पठानों और बम्बई के गुण्डों का ही राज्य है। इस ताल्लुके में आजकल घूमनेवाले पठान वही बम्बई के पठान हैं जिनके पीछे रात-दिन पुलिस घूमती रहती है, जो वहां लोगों के गले काटते फिरते हैं। अब ये बदमाश किसान बहनों से भी छेड़छाड़ करने लगे हैं। मैं कहता हूं, सरकार के लिए इससे अधिक लज्जाजनक और कुछ नहीं हो सकता। यह लड़ाई तो मामूली लगान-वृद्धि की थी। पर सरकार ने इसे बहुत विशालरूप दे दिया है। इसलिए अब कहा जा सकता है कि आप तो सारे देश के लिए लड़ रहे हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि देश के बड़े-बड़े नेताओं का, जो परिषदें और प्रस्ताव करते रहते हैं, ध्यान अबतक बारडोली की तरफ़ क्यों नहीं आकर्षित हुआ? मेरा तो ख़याल है कि पिछले सौ वर्ष में सरकार की ज़ालिम नीति का सामना करने के लिए यदि कोई सच्चा आन्दोलन हुआ है तो वह बारडोली का सत्याग्रह है। मैं कहता हूं कि अगर एक दर्जन ताल्लुके भी इस तरह संगठित हो जायें और आधे दर्जन ऐसे सेनापति पैदा

हो जायँ तो उसी क्षण स्वराज हमारे हाथ में आ जाय। मै तो बम्बई के लोगो से जाकर कहूँगा कि धारासभा में प्रस्ताव पास करने से कुछ होना-जाना नही। सरकार से कैसे लडना चाहिए तथा लोगो का किस तरह नेतृत्व करना चाहिए, यह अगर देखना हो तो बारडोली जाकर देख लो। शेष सारी लडाइयाँ और नेतापन व्यर्थ हैं।"

सूरत की जिला कान्फ्रेंस मे, जो २७ मई को हुई, बारडोली मे पठान राज्य पर किसानो मे उनकी वीरता और कष्ट सहने पर सहानुभूति प्रकट की गई, उनका अभिनदन किया गया सरदार के अहसान माने गये और सरकार को चेतावनी दी गई।

इस बीच सरकार ने लगान अदा करने की मीयाद १९ जून तक बढाकर कहा कि अगर उस तारीख तक भी लगान जमा न हुआ तो सारी जमीने छीन ली जायँगी, परन्तु जो १९ जून तक लगान दे देंगे उनपर चौथाई दड भी नही लगेगा। मगर बारडोली की लडाई इस तरह के बहकावो से बडी दूर जा पडी थी।

पठानो के अत्याचारो की पुकार वहा पहुची सही पर उनके एका-एक हटाये जाने मे सरकार के रोब मे फर्क पडता था। जब सरकार यह स्वीकार करने लगी कि पठानो के रखने मे उसे विशेष लाभ नही है। किसानो की जो लिखा-पढी सरकार से होती थी वह इकट्ठी और सरदार की मारफत होती थी, परन्तु सरकार को सगठन खलता था। वह कहती थी कि अलग-अलग दरख्वास्ते पेश करोगे तो सुनवाई होगी। इसके जवाब मे सरदार ने अपने एक भाषण मे यो कहा

"भला ऐसा भी मूर्ख कोई होगा जो इतनी बडी सुसगठित सरकार से अलग-अलग लडकर सफलता की आशा करे? सरकार के पास इतनी भारी फौज है बन्दूके है, तोपे है, तिसपर भी तो वह सारे काम सगठित

रूप से करती है। प्रजा को सिर्फ माल के महकमे से शिकायत है और उसीसे उसने लडाई छेडी है। परन्तु सरकार ने तो जनता पर जुल्म करने के लिए न्याय-विभाग को कलकित किया, कृपि-विभाग को भी न छोडा, और आवकारी-विभाग को तो प्रत्यक्ष अपना शस्त्र ही बना लिया। कितने ही मास्टरो को इस युद्ध मे दिलचस्पी लेते देखकर उन्हे भी बदल दिया और इस तरह विद्या-विभाग जैसे निर्दोप और पवित्र विभाग को अपवित्र कर दिया। पुलिस-विभाग तो सबसे आगे है ही। इस तरह वह तो सुसगठित रूप से हर तरफ मे लोगो पर जुल्म कर रही है, और किसानो से कह रही है कि तुम अकेले रहो ?

"सीधी-सी बात तो है। किसानो से मै साफ कहूगा कि जो तुम्हारे साथ विश्वासघात करे उसे तुम कभी माफ न करो। 'माफ न करो' के यह मानी नही है कि उसे मारो या पीटो। नही। यह न करो। आप तो उसे यह कह दो कि हम सबको एक नाव मे बैठकर जाना है। अगर किसीको नाव में छेद करना है तो वह नाव से उतर जावे। हमारा-उसका कोई सम्बन्ध नही। यह सगठन आत्मरक्षा के लिए है, किसीको दुख देने के लिए नही। आत्म-रक्षा के लिए भी सगठन न करना आत्म-हत्या करने के समान है। हम तो पौधे को भी जानवरो से बचाने के लिए वाड वगैर लगाकर सुरक्षित रखते है। तब जब इतनी बडी सरकार से लोहा लेना है, तो अपना सगठन भी न करे ?"

सरकार के सारे कामो मे पटेल और पटवारी मदद दिया करते थे। इस लडाई में पटवारियो को सरकार की मदद करने के लिए सत्याग्रह की दशा में अपने हाथ से नोटिस चिपकाने पडे, डुग्गी पीटनी पडी, सिर पर बस्ता लाद-लादकर घूमना पडा, जब्ती के अफसरो के लिए चौका-बासन करना पडा और रसोई बनानी पडी। इधर तो

सरकारी अफसरो की हर तरह की सेवा करने के लिए झुकना पडा और उधर गाँव के लोगो के सामने दुरदुर होना पडा और गाँव के लडके 'बावला कुत्ता' कहकर उन्हे चिढाने लगे। इतने पर भी उनकी दशा यह हुई कि सरकार और प्रजा दोनो उन्हे सन्देह की निगाह से देखते थे। इस दुर्दशा को न सहकर अनेक पटवारियो ने इस्तीफे दे दिये।

अब स्वयंसेवको को छोडकर सरकार ने गिरफ्तारी के अस्त्र का प्रयोग किसानो पर करना आरम्भ किया। इस मास के आरम्भ मे करीब १८ गिरफ्तारियाँ हुई, जिनमे से अधिकाश किसान ही थे। सिर्फ एक-दो गुजरात-विद्यापीठ के विद्यार्थी थे। कई दिन तक उनपर मामला चलता रहा। कहने की आवश्यकता नही कि सरकारी आक्षेप झूठे थे। पर सत्याग्रही अपना बचाव तो करते ही न थे। इसलिए सबने चुपचाप अपने-अपने बयान पेश करके जिन्हे जो सजा सुनाई गई उसको हँसते हुए स्वीकार कर लिया और तपस्या के लिए चले गये। वे जिस दिन जेल गये, जनता ने उन्हे बडे सम्मान के साथ विदा किया। स्टेशन पर हजारो का झुण्ड था।

१२ जून का सारे देश मे बारडोली-दिवस मनाया गया। देश मे सैकडो सभाओ मे बारडोली के सत्याग्रह का रहस्य लोगो को समझाया गया। सत्याग्रह के लिए चन्दा एकत्र किया गया और सत्याग्रहियो के प्रति सहानुभूति तथा सरकार की दमन-नीति की निन्दा करनेवाले प्रस्ताव पास किये गये।

१२ जून १९२८ तक ३,६१२ खालसा नोटिस जारी हो चुके थे और सत्याग्रह-कोष मे ८२०८०=)॥। एकत्र हो चुके थे।

१२२ पटेलो मे से ८८ ने इस्तीफे दे दिये, ६५ पटवारियो मे से ११ ने नौकरी छोड दी। इस तरफ से सरकार का एक अधिकारी लिखता

कि ताल्लुका दवना जा रहा है, अब नही तो थोडा दमन और कि वह औंधे मुँह गिरा, पर दूसरी तरफ से पुलिसवाले लिखते कि लोग दिन-दिन कट्टर हुए जा रहे है और मरने पर भी तुले है, अपनी टेक न छोडेगे। सरकार ने ठीक परिस्थिति की जाँच के लिए एक खास पुलिस अफसर मिस्टर हेली को भेजा। मि० हेली के साथ कमिश्नर भी आया। मि० हेली ने रिपोर्ट भेजी कि यहाँ पुलिस की कोई जरूरत नही है और न पठानो का काम है। इसपर पठान लोग हटा दिये गये।

इस समय तक बम्बई-धारासभा के कोई १६ सदस्यो ने अपने इस्तीफे दे दिये, और फिर सभी बारडोली के प्रश्न को लेकर अपनी जगहो के लिए खडे हुए। सबके सब फिर से चुन भी लिये गये।

"भारत-सेवक-समिति (सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी) ने न केवल इस आन्दोलन से सहानुभूति दरसाई बल्कि सरकार से जोर देकर इनकी माँग पूरी करने की प्रार्थना भी की।

इसके बाद बम्बई के इण्डियन-चैम्बर, आफ कामर्स के कुछ सहृदय मित्र गोलमेज कॉनफ्रेंस के लिए सरकार को राजी करने लगे। जून महीने के प्रारभ में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास कमिश्नर ने मिलने के लिए सूरत गये। साथ ही उन्होने इस विचार से सरदार वल्लभभाई को भी वहाँ बुलाया कि कमिश्नर और उनके बीच रूबरू कुछ खानगी तौर से बातचीत हो जाय। उन दिनो सरदार को काम की बडी गडबडी थी। उन्होने श्री महादेव देसाई को सूरत भेज दिया। श्री महादेव भाई की मि० स्मार्ट से खूब बातचीत हुई, जिसमे महादेवभाई ने यह देखा कि मि० स्मार्ट हर तरह से सत्याग्रह को तोडने पर तुले हुए है। मि० स्मार्ट का यह खयाल था कि अधिकाश सत्याग्रही जून के अन्त तक आत्म-समर्पण कर देगे। सर पुरुषोत्तमदास ने मि० स्मार्ट को समझाया

कि "आपका मत गलत है। आपको सत्याग्रहियों की सहन-शक्ति का पता नहीं है। जब्ती-अफसरों तथा पठानों के व्यवहार ने सरकार को बदनाम कर दिया है।" इसके बाद उन्होंने अपने चेम्बर में यह कहा कि यदि सरकार नहीं मानती तो हमारे प्रतिनिधि श्री लालजी नारणजी बारडोली के प्रश्न पर कौंसिल से इस्तीफा क्यों न दे दें? तब चेम्बर के अध्यक्ष श्री मोदी ने सरकार की नीयत जानने के लिए गवर्नर से पत्र-व्यवहार शुरू किया, पर इसका कुछ भी नतीजा न निकला। उत्तर में गवर्नर ने जो पत्र भेजे उनमें सत्ता-मद भरा था। फिर भी उन्होंने सोचा कि शिष्ट-मण्डल लेकर गवर्नर से स्वतः मिलना चाहिए और उससे समझौते की बातचीत प्रत्यक्ष करनी चाहिए। इसलिए सत्याग्रहियों की आवश्यक शर्तें जानने के ख्याल से सर पुरुषोत्तमदास साबरमती पहुँचे, और वहाँ उन्होंने वल्लभभाई को भी बुलवाया। महात्माजी से मिलकर वह श्री लालजी नारणजी तथा श्री मोदी को लेकर गवर्नर से मिलने पूना गये। पर इस बार भी उनको बड़ी निराशा हुई। सर पुरुषोत्तमदास चाहते थे कि गवर्नर सरदार वल्लभभाई को एक गोलमेज कान्फ्रेंस में बुलावें और उनसे समझौता करलें। पर ऐसा नहीं हुआ। तब वह स्वयं स्वतंत्र तौर से गवर्नर से मिले। गवर्नर उनसे बड़ी अच्छी तरह मिले, पर अपनी बात को उन्होंने नहीं छोड़ा। उनकी शर्त वही थी—सत्याग्रही पहले बढ़ा हुआ लगान अदा करदें या पुराना लगान जमा करके वृद्धि की रकम किसी तीसरे पक्ष के पास जमा करादें तब जांच हो सकेगी। शिष्ट मण्डल तो यह आशा लेकर लौटा कि संभव है इस शर्त पर दोनों पक्षों का समझौता हो जाय। अतः जब सर पुरुषोत्तमदास पूना से बम्बई लौटे तो वह वल्लभभाई से मिले और शिष्टमण्डल से गवर्नर की जो बातचीत हुई थी वह सब सुनाई। पर स्पष्ट ही सरदार इन शर्तों को स्वीकार नहीं कर सकते

थे । अत यह प्रयत्न भी असफल ही रहा । लालजी नारणजी ने सरकार की हठ को अनुचित बताते हुए धारा-सभा से अपना इस्तीफा दे दिया ।

जुलाई के आरभ मे बारडोली-सत्याग्रह का समर्थन करने के लिए भडौच मे एक ज़िला परिषद् हुई, जिसके स्वागताध्यक्ष श्री कन्हैयालाल मुनशी थे और अध्यक्ष श्री खुरशेदजी नरीमान ।

ज्यो-ज्यो लोकमत प्रबल होता गया, सरकार की स्थिति साप-छछूंदर की-सी होती गई । दमन करती है तो ससार मे बदनाम होती है, क्योकि बारडोली के किसान अखड शान्ति का पालन कर रहे थे । इधर उनकी माँग के सामने अपना सिर झुकाती है तो सरकारपन ही मारा जाता है । यदि वह झुक जाय तो उसकी प्रतिष्ठा ही क्या रही ? फिर यह प्रश्न केवल बारडोली का तो था नहीं । यहाँ तो आये दिन उसे किसी-न-किसी ताल्लुके मे नया बन्दोबस्त करना ही पडता है । सभी जगह के लोग इसी तरह ताल ठोक कर फिरट हो जायं तब तो उसके लिए यहाँ शासन करना भी असभव हो जाय । अन्त मे 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने अपने विशेष सवाददाता को बारडोली भेजा । तीन लम्बे-लम्बे और चौंका देनेवाले लेख निकले । चार-पाँच दिन के अन्दर सारे ससार मे यह खबर फैल गई कि "हिन्दुस्तान के बम्बई इलाके मे बारडोली नाम का एक ताल्लुका है । वहाँ महात्मा गाधी ने बोलशेविज्म का प्रयोग करना शुरू किया है । प्रयोग बहुत हदतक सफल हो गया है । वहाँ सरकार के सारे कल-पुर्जे बन्द हो गये है । गांधी के शिष्य पटेल का बोल-बाला है । वही वहाँका लेनिन है । स्त्रियो, पुरुषो और बालको में एक नई आग सुलग उठी है, और इस दावानल मे राजभक्ति की अन्त्येष्टि क्रिया हो रही है । स्त्रियो मे नवीन चैतन्य भर आया है । अपने नायक वल्लभभाई पटेल में वे अनन्य भक्ति रखती है । वह उनके गीतो का विषय हो रहा

है। पर इन गीतों में राजद्रोह की भयंकर आग है। सुनते ही कान जल उठते हैं। निःसन्देह यदि यही हाल रहा तो आश्चर्य नहीं कि यहाँ शीघ्र ही खून की नदियाँ बहने लगें।" इत्यादि।

और ब्रिटिश शेर नींद में अपने होंठ चाटता हुआ जमुहा कर उठा। उसने गर्जना की—"सम्राट की सत्ता का जो अपमान कर रहा हो उसकी मरम्मत करने के लिए साम्राज्य की सारी शक्ति लगादी जायगी।" फलतः वायुमण्डल में अफवाह उड़ने लगी कि बारडोली में सम्राट् की सत्ता की रक्षा के लिए फौज आरही है। सिपाहियों के लिए खाटें, तम्बू, रसद, सामान वगैरा की व्यवस्था हो रही है। लेकिन बारडोली के निर्भय किसान इससे भयभीत नहीं हुए।

सरकार की विपरीत मनोदशा और किसानों के क्लेश देखकर देश के बड़े-बड़े नेता अपनी सेवायें अर्पण करने के पत्र सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम भेजने लगे। सरदार वल्लभभाई पटेल की गिरफ्तारी की अफवाह भी उड़ने लगी। तब महात्माजी ने भी उन्हें लिखा कि जब जरूरत हो, मुझे खबर कर देना, आजाऊँगा। डा० अनसारी, प० मदनमोहन मालवीय, प० मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय आदि ने भी इसी आशय के पत्र सरदार के नाम भेजे। सरदार शार्दूलसिंह ने तो देश में बारडोली से सहानुभूति-सूचक व्यक्तिगत सत्याग्रह छेड़ने की सिफारिश भी की। शिरोमणि अकाली दल ने अमृतसर के तमाम जत्थों को इस आशय की एक गश्ती चिट्ठी भेजी कि यदि बारडोली की न्याय्य मांगों को सरकार इसी तरह ठुकराती रही तो शिरोमणि अकाली दल को उसकी सहायता के लिए जाना पड़ेगा, इसलिए अकाली भाई अपने बारडोली स्थित किसान भाइयों के लिए आवश्यक कष्ट सहने को तैयार रहें।

इधर बारडोली मे पठान हटा लिये गये और अब उनके स्थान पर हथियारबन्द पुलिस आ गई। मि० स्मार्ट हारकर अहमदाबाद लौट गये। किसानो की कठोर तपस्या विजयी हुई। यह देखकर मेघराज इन्द्र गद्‌गद् हो गये। वह आकाश से वर्षा द्वारा उनपर अभिषेक करने लगे। किसानो ने महीनो से बन्द किये हुए अपने मकानो को खोला और अपनी प्यारी जमीन को निर्भयतापूर्वक जोतने लगे, यद्यपि यह कहा जाता था कि उनमे की कई बिक चुकी है। कुछ लोगो को यह भी आशका थी कि सरकार उन लोगो पर शायद मामला चलाये, जो बिकी हुई जमीनो पर हल चलायेगे। पर एक भी किसान इस बात से नही डरा, न पीछे हटा। बहने तो इससे भी आगे बढ गई थी। कुमारी मणिबेन पटेल और श्रीमती मीठाबेन पेटिट ने बिकी हुई जमीनो पर अपने रहने के लिए कुटियाये बनवाली।

जमीन की जब्ती के नोटिस छ हजार से भी ऊपर निकल चुके थे। कितने ही स्वयसेवक जेल गये, जानवर भी बीमार हुए। सबने बडे-बडे नुक्सान उठाये। बारडोली तबाह हो गई, परन्तु किसीने पीछे पाव नही रक्खा। सरकार और सरदार के बीच समझौते की कोशिश भी हुई, परन्तु उसमे सफलता न हुई। अन्त मे २३ जुलाई को धारासभा में गवर्नर ने अपना अन्तिम निश्चय यह सुनाया कि सरकार मांगी हुई निष्पक्ष, स्वतत्र और सम्पूर्ण जॉच के लिए तैयार है, केवल इसी शर्त पर कि लोग नया लगान पहले जमा करदे और यह आन्दोलन बन्द कर दिया जाय।

सरकारी शर्तों मे आन्दोलन बन्द करने की शर्त तो फौरन पूरी की जा सकती थी, अगर सरकार निष्पक्ष जॉच की माग बिना किसी और शर्त के मजूर कर लेती परन्तु नया लगान पहले कैसे जमा हो सकता

था ? झगडा तो इस बात का था कि या तो सरकार बढे हुए लगान को रद करदे, या अगर इसे वह न्याय्य समझती है तो सत्य के निर्णय के लिए निष्पक्ष और स्वतन्त्र समिति से जाँच करावे। फिर नया लगान पहले ही से अदा कराने पर किसान कब राजी होने लगे ? इस सत्याग्रह मे वे हार कब गये थे ?

अत सरदार वल्लभभाई तथा उनके किसान अड गये। पर उस समय श्री रामचन्द्र भट्ट नामक धारा-सभा के एक सभ्य के हृदय मे एकाएक करुणा का सचार हुआ। उन्होने, किसानो की तरफ से नही, किसानो के लिए सरकारी खजाने मे ताल्लुके के बढे हुए लगान के रुपये जमा करा देने की इच्छा प्रकट की। पिछले अकाली-सत्याग्रह के समय भी इसी तरह सर गगाराम 'गुरु-का-बाग' की जमीन अपने यहाँ रहन मे रखने के लिए राजी हो गये थे। सरकार के भाग्य से या किसी अज्ञात अदृश्य की प्रेरणा से आनबान के समय, जबकि देश के बलाबल को नापने का समय आजाता है, कोई ऐसे व्यक्ति पैदा हो जाते है जिनके हृदय मे एकाएक देश-भक्ति और भ्रातृ-प्रेम का उदय हो जाता है। श्री रामचन्द्र भट्ट ने भी यह रकम जमा करने की इच्छा प्रकट करके ससार की आखो मे सरकार की प्रतिष्ठा की बडे मौके पर रक्षा कर दी। क्योकि यही एक ऐसी बात थी जिसपर दोनो पक्ष अडे हुए थे। इसके बाद तो सुलह का मार्ग बहुत आसान हो गया। यह सारी व्यवस्था धारा-सभा के कुछ सभ्यो द्वारा हुई।

गाधीजी ने गवर्नर के भाषण पर क्रोध न करने की जनता को सलाह दी। उनकी माग को फिर जनता के सामने रक्खा और अन्त मे श्री रामचन्द्र भट्ट के उपर्युक्त कार्य पर अपने विचार इस तरह प्रकट किये —

"जिस बढे हुए लगान को अदा न करने के लिए सत्याग्रह छेडा

गया था, उसे बम्बई के किसी गृहस्थ ने सरकार में जमा करा दिया है, ऐसा अख़बारों में छपा है। यदि सरकार को इतनी बड़ी रकम भेंट करने का वह विचार ही कर चुके हों, तो उन्हें कौन रोक सकता है ? यदि ऐसी भेंट से सरकार अपना मन सन्तुष्ट करले तो हम उसका द्वेष न करें। बम्बई में रहनेवाले बारडोली ताल्लुके के इन गृहस्थ ने यह रुपये जमा कराके अपना नुकसान किया या जनता का, इसका निर्णय आज नहीं हो सकता। यह रकम सरकार के लिए तुच्छ है। पर यदि उससे उसे सन्तोष हो जाय और वह सुलह करने पर राज़ी हो जाय तो सुलह कर लेना सत्याग्रही का धर्म है।"

पर कहीं कोई यह खयाल न करले कि सरकार झुक गई है। अत लदन से सहायक भारतमंत्री अर्ल विण्टर्टन को भी गवर्नर के भाषण का समर्थन करने की ज़रूरत दिखाई दी। उनसे पूछे गये प्रश्नों का जवाब देते हुए अर्ल विण्टर्टन ने हाउस ऑफ कामन्स में कहा —

"आज बम्बई की धारा-सभा में सर लेसली विलसन ने बारडोली के सम्बन्ध में जो शर्तें पेश की है, वे पूरी न की गईं तो बम्बई-सरकार को पूर्ण अधिकार है कि वह आन्दोलन को कुचल दे और जनता को कानून का आदर करने पर मजबूर करे। इसमें भारत-सरकार और साम्राज्य-सरकार पूर्णतया उसके साथ है। शर्तों के न मानने के साफ़ मानी यह होंगे कि आन्दोलन-कर्त्ताओं के दु ख असली दु ख नहीं हैं। वे ख्वामख्वाह सरकार को झुकाकर अपनी बातें मानने पर मजबूर करना चाहते हैं।"

इस प्रकार सरकार ने तो ऊपर से तो नानाशाही दिखाई, पर भीतर-ही-भीतर श्री रामचन्द्र भट्ट को प्रेरणा की गई कि बारडोली के किसानों की तरफ से नया लगान चुका देने की रजामन्दी जाहिर करे।

ऊपर से उनसे कहा गया कि हम आपकी बात नही सुनेगे, सूरत के ही प्रतिनिधियो की बात सुनेगे, परन्तु जब उन प्रतिनिधियो की सूरत नही नजर आई, तब भट्टजी की बात चुपचाप मान ली गई। इस कथा के विस्तार मे न जाकर सक्षेप मे इसका अन्त इस प्रकार सरदार के शब्दो मे ही कर देना चाहते है —

"परमकृपालु ईश्वर की कृपा से हमने जो प्रतिज्ञा की थी उसका सम्पूर्ण पालन हो गया। हम लोगो पर बढ़ाये गये लगान के बारे में हम जैसी जांच चाहते थे सरकार ने वैसी जाँच-समिति का नियुक्त करना कबूल कर लिया है। खालसा जमीने किसानो को वापस मिलेगी, जेल में गये हुए सत्याग्रही छोड दिये जायेंगे, पटेल और तलाटियो को फिर उनकी नौकरी पर रख लिया जायगा, और भी जो छोटी-छोटी मांगें हमने पेश की थीं उनकी स्वीकृति हो गई है। इस तरह हमारी टेक पूरी करने के लिए हमें परमात्मा का उपकार मानना चाहिए।

"अब हमें पुराना लगान अदा कर देना चाहिए, बढा हुआ लगान नहीं। मैं आशा करता हूँ कि पुराना लगान अदा करने की सारी तैयारी आप करके रक्खेंगे। लगान जमा कराने का समय आते ही मैं सूचना कर दूगा।

"अब सब लोग अपने-अपने काम-काज में लग जावें। अभी तो हमें बहुत-सा उपयोगी काम करना है। उसे इकट्ठा करने की तैयारी तो हमें आज से ही करनी पडेगी। इसके अतिरिक्त सारे ताल्लुके में रचनात्मक काम करने के लिए भी हमे खूब प्रयत्न करना पडेगा। इस विषय में तफसीलवार सूचना फिर दी जायगी।

"सकट के समय आत्म-रक्षा के लिए जिन खास लोगो से हमें सम्बन्ध तोडना पडा तथा दूसरी तरह के व्यवहार भी पचो की आज्ञा

से वन्द करने पडे, उनपर पचो को चाहिए कि वे फिर विचार करें। जिन्होने हमारा विरोध किया, उनका भी हमें तो विरोध न करना चाहिए। सारी कटुता को भुलाकर अब हमें सबसे प्रेमपूर्वक हिलना-मिलना चाहिए। बारडोली के किसानो को अब इस बात के समझाने की जरूरत तो नहीं होनी चाहिए।"

बारडोली की लडाई स्वराज्य के लिए न थी। वह जिस बात के लिए थी उसमे उसे पूरी विजय हुई। गुरु-का-बाग के सत्याग्रह मे भी सिक्ख लोग एक विशेष बात के लिए लडे थे और उसमे उन्हे पूरी सफलता हुई थी। खेडा, बोरसद और नागपुर के झडा-सत्याग्रह म भी खास-खास बातो पर सत्याग्रह हुआ और सबमे सत्याग्रहियो की जीत हुई। इन सब सत्याग्रहो मे विशेषता यह थी कि शत्रु-पक्ष से जितने अत्याचार होते थे, सत्याग्रही उन्हे सहता परन्तु अपनी बात पर अडा रहता था। दूसरे पक्ष को किसी तरह का कष्ट नही पहुचाता था और न बदले का भाव मन मे लाता था। जिस बात पर अडता था उसे पूरा करके ही छोडता था, चाहे इस कोशिश मे जान क्यो न चली जाय। किसानो को इस तरह की लडाई सीखने के लिए सत्याग्रह का इतिहास जानना जरूरी है। अफ्रीका के सत्याग्रह से लेकर चम्पारन खेडा गुरु-का-बाग, बोरसद और नागपुर के सत्याग्रह का इतिहास भी बारडोली के साथ-साथ पढने लायक है।[१]

१ इन सब सत्याग्रहो का इतिहास सक्षेप में 'मण्डल' से प्रकाशित 'काग्रेस का इतिहास' में दिया गया है। इसका मूल्य २॥) है। —सम्पादक

: ३ :

विदेशी राज्य से असहयोग और सत्याग्रह

१ विदेशी राज्य प्रजा के राजी हुए बिना नहीं रह सकता

किसी देश की प्रजा के लिए पहले तो यह बात स्वाभाविक नहीं है कि किसी दूसरे देश का राज्य पसंद करले। यदि ऐसा कभी हो भी तो प्रजा इसलिए विदेशी राज्य पसन्द कर सकती है कि विदेशी राज्य से उसका कल्याण हो। परन्तु जिस विदेशी राज्य में प्रजा का कल्याण भी नहीं होता, वह प्रजा की रजामन्दी से नहीं बल्कि जबरदस्ती शासन करता है। यह बात केवल विदेशी शासन की ही नहीं है। वेन, रावण, कंस जरासंध आदि विदेशी राजा न थे, तोभी प्रजा पर जबरदस्ती कठोर शासन करते थे। वेन को ऋषियों ने मार डाला। रामचन्द्रजी ने रावण का वध किया। कंस और जरासंध को श्रीकृष्ण ने मारा, ये राजा थे और अपनी जबरदस्ती से राज्य करते थे, इसलिए इन्हें मार डाला गया और उनकी जगह पर कोई अच्छा हाकिम राजा बना दिया गया। परन्तु आजकल अंग्रेजों के राजा तो नाम ही नाम हैं। असल में राज्य तो अंग्रेजी प्रजा करती है और उस अंग्रेजी प्रजा में भी उस वर्ग के लोग असल में राज्य की बागडोर अपने हाथ में रखते हैं जिनके हाथ में अंग्रेजी राज्य का अधिकार है और जो सारी प्रजा के एक छोटे से धनवान अंग हैं। जिनका स्वार्थ न केवल भारतवर्ष के बल्कि दुनिया भर के शोषण में है। एक आदमी का राज्य हो तो अत्याचार को दूर करने के लिए उसे ही दूर कर दिया जाय, परन्तु जब एक समूह-का-समूह या जाति-की-

जाति राज्य करती हो तो पहले तो उन सबको नष्ट कर देना सम्भव नही है, दूसरे व्यक्तियो को नष्ट करने मे दुर्नीति या अत्याचार का नाश नही हो सकता ।

कोई आदमी या कोई समाज दूसरे आदमी या दूसरे समाज पर बिना उसकी रजामन्दी के अत्याचार नही कर सकता । कोई आदमी या समाज कभी अत्याचार सहने के लिए राजी हो भी जाय, तो उसकी रजा-मन्दी का कारण केवल उसकी दुर्बलता है । भारत की प्रजा इसी दुर्बलता के कारण मुट्ठी-भर अंग्रेजो की गुलामी मे फस गई । यहा के आदमी और यहाँ के समाज जुल्म सह लेने के लिए राजी होगये । इसीलिए विदेशियो ने धीरे-धीरे हमारे देश मे अपना कदम मजबूत कर लिया । आज भी कुछ गया नही है । हम चाहे तो आज भी अपनी जान पर खेल जायें और निश्चय करले कि 'आज से हम विदेशियो का अत्याचार नही सहेगे ।' फिर हमारे छुटकारे मे कुछ भी देर नही लगती ।

हमारे किसान भाइयो को अपनी इज्जत का, अपनी स्वतत्रता का और अपने भले-बुरे का खयाल न रहा हो ऐसी बात नही है । हमारे यहाँ के शात और सीधे किसान अपने दुःख और झगडे गाव को पचायत के सामने पेश किया करते थे । जब पचायते तोड डाली गई, तब उन्हे समझाया गया कि अपने झगडो का निपटारा तुम अंग्रेजी अदालतो मे कराया करो, वहाँ बहुत अच्छा न्याय होगा । अगेज रोजगारियो ने अदा-लत का रोजगार खडा करके अपनी आमदनी बढाई । सीधे-साद किसानो ने इसका रहस्य न समझा । अहलकार, वकील, दलाल, आदि जिनकी मुट्ठियाँ गरम होने लगी वे इस रोजगार मे शरीक होगये और इसमे मदद पहुचाने लगे । अपने भाइयो से लड-झगडाकर किसान बरबाद होने लगा और आपस की लडाई और फूट के पीछे अपना खून चूसनेवाले विदेशी

हाकिम का भूल गया, जिसने कि अन्धाधुन्ध मालगुजारी और लगान वसूल करने के लिए कानून बनाने का काम अपने हाथ मे रक्खा था। किसान देखता था कि अपने भाइयो से लडने मे तो हमे अच्छे दाम देकर थोडी-बहुत सफलता मिल भी जाती है, हम अपने को बरबाद करके अपनी मूछे खडी कर सकते है, परन्तु जहाँ सरकार से मुकाबला करना पडता है वहा तो हम अपने सर्वस्व की बाजी लगादे तो भी हमारी मूछे नीची ही रहेगी। पर इतना जानकर भी किसान कुछ कर नही सकता था। उसके गाँव के मुखिया अपने नही रह गये वे विदेशी सरकार के गुलाम हो गये। अपनी पचायते टूट गई और सरकार के विरुद्ध फरियाद सुननेवाला कोई नही रहा। पटवारी, चौकीदार, पुलिस, तहसीलदार सबके सब सरकार के आदमी ठहरे, सरकार के विरुद्ध उसकी कोई सुननेवाला नही है। ऐसी दशा मे किसान हर तरफ से दबकर पिस गया। आज भी उसके लिए ऐसा कोई इलाज या साधन दब नही पडता जिससे उसका उद्धार हो सके।

वे जिस दिन सरकार के आदमियो की बात मानकर उनकी रही बातो पर राजी होगये और विदेशियो की मदद करने लगे उसी दिन से उन्होने गुलामी की जजीर अपनी गरदन मे डाल ली। किसी जुल्म को सहने के लिए, किसी दुर्नीति को मान लेने के लिए, किसी अनुचित काम को करने के लिए राजी हो जाना आदमी को पाप का भागी बनाना है। अनुचित लगान देने के लिए किसान का राजी हो जाना अपनेको नष्ट करने के पाप का भागी होना है। अपने यहा के रोजगार को चौपट करके दूसरो का रोजगार बढाना पाप है। अपने गाव के आदमियो को भूखा मारकर विदेशियो की दावत करना घोर पाप है। अपने यहा का बहुत का रोजगार नष्ट होगया। कोरी, कोष्टी जुलाहे, तातिये और

नोनिये बेरोजगार होगये और किसानों ने मोहवश विदेशी कपड़े पहनने में अपनी इज्जत मानी। यह भारी भूल हुई। इस भारी भूल का प्रायश्चित्त एक ही तरह से हो सकता है, कि वे विदेशी राज्य से असहयोग करें।

२. असहयोग

किसान ने बहुत थोड़े-थोड़े से लालच में आकर विदेशी सरकार से सहयोग किया है। विदेशी कपड़े महीन और सस्ते बनते हैं। महीन के लालच से उसने विदेशी पहनना शुरू किया। नोनियों का तो कानून से रोजगार छिन गया। बुनकर बेरोजगार होकर तितर-बितर होगये। बहुत ज्यादा गिनती ऐसे बेरोजगारों की रोजी की तलाश में इधर-उधर घूमती थी। इनमें बहुतेरे खेती में लग गये। गोचर-भूमि के तोड़ने से खेती बढ़ी तो सही, पर खेतिहरों की बढ़ी हुई गिनती के सामने वह कुछ न थी, इस लिए खेत पर काम करनेवालों की गिनती बहुत बढ़ गई। बढ़ी हुई बेकारी से बहुत-से लोग आवारा घूमने लगे। विदेशी सरकार की कुटिल नीति से पैसे की माया फैली। चलनसार सिक्का सस्ता कर दिया गया। बेकार किसान और मजदूर जिन्हें कोई रोजी नहीं मिलती थी, गाँव छोड़कर बाहर जाने लगे। इधर जाल बिछा था, चिड़ियों के आने की देर थी। सीधे-सादे देहाती फस गये। अच्छे-से-अच्छे चुने हुए जवानों ने थोड़े-से रुपयों के सहारे के ऊपर अपनी अनमोल जानें बेच दीं, और विदेशी सरकार की सेना में भरती होगये। जिन्हें सेना या पुलिस में जगह न मिली वे अरकाटी के जाल में फस गये। ये बेचारे नहीं जानते थे कि हम क्या कर रहे हैं और कहां जारहे हैं। सेना और पुलिस इन्हीं बेरोजगार किसानों से भरी पड़ी है। इन्हीं पुलिस और सेनावालों के भाई-बन्धुओं के ऊपर विदेशी सरकार मनमानी करती है और जब उसके मुकाबले में लड़ने के लिए अहिंसा-

त्मक युद्ध होता है तब सत्याग्रहियों की सहायता करने के बदले यही भूले हुए भाई उलटे उन्हींपर टूटे और गोलियाँ बरसाते हैं।

किसान को इसलिए, विदेशी सरकार से असहयोग करना चाहिए। विदेशी कपडा मत पहनो क्योंकि उसके तार-तार में आपकी दरिद्रता उलझी हुई है। आपका परिवार बहुत कुछ उसीकी बदौलत भूखों मर रहा है। विदेशी कपड़े का त्यागना और खद्दर का तैयार करना दोनों साथ-साथ चलनेवाली बातें हैं। विदेशी कपडे के त्याग का साफ यही मतलब है कि हर किसान अपने लिए खद्दर तैयार कराने का उपाय करे। खद्दर का उपाय किये बिना विदेशी कपडा का त्याग करना बिल्कुल निरर्थक है। क्योंकि हम बिना किसी तरह के कपड़े के रह नहीं सकते। पिछले अध्याय में हम यह दिखा आये हैं कि किसानों की बेरोजगारी दूर करने के लिए खद्दर की तैयारी और विदेशी का बहिष्कार जरूरी है। इस अध्याय में हम यह दिखाते हैं कि विदेशी कपडा पहनना पाप है और अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाडी मारना है। इस पाप से बचने के लिए हम विदेशी का त्याग और खद्दर का ग्रहण करना चाहिए।

विदेशी कपड़े के त्याग से और खद्दर के ग्रहण से हमको चारों पदार्थ मिलते हैं। हम आत्मघात के महापातक से बचकर आत्म-रक्षा के धर्म के भागी होते हैं। बेरोजगारों को काम देकर और उनकी दरिद्रता दूर करके हम अर्थ के भागी होते हैं। मुद्दत से भूली हुई कातने और बुनने की सुन्दर और कोमल कला को फिर जिलाकर और उसे बढ़ावा देकर हम काम के भागी होते हैं। लंकाशायर के दुर्निवार राक्षसी पाशों में बंधे हुए अपने देश को बन्धन से छुड़ाकर हम मोक्ष के भागी होते हैं। इस तरह विदेशी से असहयोग करके हम अकेले कपड़े में ही चारों पुरुषार्थ पाते हैं।

परन्तु असहयोग का काम इतने मे ही पूरा नही होता । आपस मे फूट भी हमे दूसरो के बन्धन मे फसा देती है, अत उसका भी परित्याग करना चाहिए ।

एक बात और भी है। किसान कर्ज के बोझ मे लदाहुआ है । साहूकार अपना रुपया छोडनेवाला नही । वह किसान को अदालत घसीटेगा । डिगरी करावेगा । जायदाद कुर्क करावेगा । वह पचायत को न मानेगा । इसी तरह बहुत सम्भव है कि जमींदार गाव की पचायत बनने मे ही बाधा डाले और विदेशी सरकार से असहयोग करने मे किसी तरह राजी न हो । इसलिए जहाँ साहूकार और जमींदार समझाने-बुझाने से भी न माने वहाँ उनके बिना ही पचायत बनानी पडेगी और सत्याग्रह और अहिंसा के बल से अन्त मे पचायत अपनेको मनवा लेगी और उसकी विजय भी होगी । साराश यह कि जमींदार और साहूकार चाहे कितना ही विरोध करे, किसानो को अपनी पचायते बनानी चाहिए ।

असहयोग का बहुत बडा अग नशे का त्याग है । हम अबतक असहयोग के जिन पहलुओ को देखते आये है, उनमे से सबसे बडा पहलू नशे के त्याग का है । नशे की सब चीजो के ऊपर सरकार ने महसूल लगा रक्खा है और उससे उसको खासी आमदनी है । यह एक बहाने की बात है कि महसूल ज्यादा लगाने से नशे का प्रचार घटेगा । पहले शुरू-शुरू मे कम महसूल लगाकर नशे का खूब प्रचार किया गया । जब नशेबाजो को चसका लग गया, तब महसूल बढाने का यही मतलब है कि सरकारी आमदनी बढजाय । कोई धर्म ऐसा नही है जो नशे के इस्तैमाल को पाप न ठहराता हो । नशे का प्रचार करके विदेशी सरकार भारत के लोगो का धर्म और धन दोनो हर लेती है । इसलिए नशे से असहयोग करने का यह मतलब है कि हम अपने धन और धर्म

दोनों की रक्षा करें। शराब, ताड़ी, गाँजा, भंग, चरस, चंडू, अफीम ये सभी नशे हमारा धर्म भी बिगाड़ते हैं, हमारे स्वास्थ्य को भी खराब करते हैं, हमारे पैसों को भी बरबाद करते हैं। इस तरह जिन नशीली चीज़ों से हमारा धन भी जाय, धर्म भी जाय, और हमारी स्वतन्त्रता छिनकर हमारी गर्दनों में गुलामी की जंजीर पड़े उनसे असहयोग करना तो हमारा पहला काम है। इसमें जमींदार और साहूकार कोई बाधा नहीं डाल सकते। नशे का इस्तेमाल करनेवालों को आप ही अपना जी कड़ा करके इन पापों का परित्याग कर देना चाहिए। नशा बेचनेवाले जब ग्राहक न पावेंगे तो आप अपना रोज़गार छोड़ देंगे।

३ सत्याग्रह

असहयोग तो अधर्म से और असत्य से सम्बन्ध छोड़ देना है। हम जिस काम में बुराई देखते हैं उस काम से अलग हो जाते हैं। हम जिस काम को ठीक नहीं समझते उसमें अपनी तरफ से किसी तरह की मदद नहीं पहुँचाते। यह धर्म का एक पक्ष है—एक पहलू है। हमने पाप में हिस्सा नहीं लिया, हम पाप के भागी नहीं हुए। परन्तु इतने से ही हमारे कर्तव्य पूरे नहीं होते। हमें तो जो सत्य है और जो धर्म है उसका पालन करना कर्तव्य है।

जो हठि राखै धर्म को, तेहि राखै करतार।

धर्म और सत्य में कोई भेद नहीं है। धर्म सत्य है और सत्य धर्म है। जिसमें सचाई नहीं है वह धर्म कभी नहीं हो सकता। सत्याग्रह सत्य के लिए अड़ जाना और अपने प्राणों को बलि करके भी सत्य को पाना है। सत्याग्रह ही असहयोग का वह दूसरा पहलू है जो हमारे ग्राम-संगठन के काम की बुनियाद है। जब हम यह जानते हैं कि हमारी खेती से इतनी पैदावार नहीं हुई है कि हम उतना लगान दे सकें जितना

कि सरकार मागती है, तो हमारा यह कर्तव्य है कि हम इस सत्य पर अड जाय कि हम उतना ही लगान अदा करेगे जितना कि खेती की रक्षा करने के लिए राजा का हक होता है। हमारे धर्मशास्त्रों के अनुसार राजा को पैदावार के छठे भाग से अधिक लेने का अधिकार नही है। जहाँ इससे अधिक लिया जाता है वहा अधर्म किया जाता है। सत्य यह है कि राजा छठा भाग ले और प्रजा के धन की रक्षा करे। इसी छठे भाग के भीतर लगान मालगुजारी आदि सब कुछ है। इस समय लगान और मालगुजारी के नाम से किसान लुट जाता है। इस लूट से बचने के लिए उसे सत्याग्रह करने की जरूरत है। लेकिन किसान को हिंसा का खयाल तक करने की जरूरत नही है। जैसे वे लाखो तरह के सकट और जुल्म सहते आये है, जी कडा करके और थोडे सकट और जुल्म सह लेना कबूल कर ले, और इस बात के लिए सच्ची टेक कर ले कि हम सब सकट सहेगे, जान दे देगे, पर झूठा लगान न देगे और न अत्याचार करनेवालो पर गुस्सा करेगे न बदला लेगे और न उनको तकलीफ पहुँचायेगे। सत्य और अहिसा के व्रती किसान कभी हार नही सकते। सत्य की सदा जय होती है। परन्तु साथ ही यह याद रहे कि हिसा सत्य नही है। अहिसा सत्य है। हिसा छल है। अहिसा निष्कपट सत्य है। छल से मिला हुआ सत्य कभी नही होता। अहिसा और सत्य कभी अलग नही हो सकते। अहिसा और सत्य मे ही भारत की जीत है।

इसके लिए बारडोली की लडाई की कथा विस्तार से पढने लायक है। हमने जिस पुस्तक के आधार पर और जिसके अनेक अवतरण देकर पिछले अध्याय में बारडोली की विजय का वर्णन किया है वह "विजयी बारडोली"[१]

१. "विजयी बारडोली" श्री वैजनाथ महोदय लिखित। प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिल्ली। मूल्य २) रु०

है। यह पुस्तक सत्याग्रह की इच्छा करनेवाले हर किसान को आदि से अन्त तक पढ डालनी चाहिए। औरो के उदाहरणो का हमारे ऊपर अच्छा प्रभाव पडता है और बारडोली की लडाई तो हर तरह पर आदर्श लडाई हुई है।

: ४ :

ज़मींदार, साहूकार और किसान

अनाज, कपडे, बरतन, गृहस्थी के सामान, घर, बाग-बगीचे, खेत, मैदान, सोना, चादी, मणि, रत्न, हाथी, घोडे, रथ, गाडिया आदि सवारी, गाय, बैल आदि ढोर—ये सब-के-सब उस मनुष्य के धन कहलाते है जो इनका मनचाहा उपभोग कर सकता है और दूसरो को इनका उपभोग करने देने का या न करने देने का अधिकारी होता है। जो सम्पत्ति हमने ऊपर गिनाई है उसमें से किसीके पास थोडी और किसीके पास बहुत होती है। इसी हिसाब से हम किसीको कम और किसीको ज्यादा धन-वान कहते है। जिनके पास इतने अन्न-वस्त्र का सग्रह नही है कि वे बिना हाथ का काम किये या बिना एक या कई इन्द्रियो से पूरा परिश्रम किये गुजारा न कर सके, वे धनवान कहे जाने के अधिकारी नही है। वे धन के नाते तो दरिद्र है। हाँ, शक्ति के नाते हम उनको शक्तिमान कह सकते है। परन्तु धन भी एक शक्ति है, और ऐसी-वैसी नही बहुत भारी शक्ति है। धनवानो के पास वह शक्ति भी मौजूद है जो दरिद्रो के पास है और उसके अतिरिक्त धन की भी अपार शक्ति है। अगर हम ताकत का मुकाबला करे तो एक धनवान एक कगाल की अपेक्षा अपार शक्ति रखता है, क्योकि दरिद्र और धनवान दोनो की शरीर-शक्ति तो बराबर है परन्तु धनवान के पास धन की शक्ति अत्यधिक है। इस हिसाब से धनवान और निर्धन दोनो मे यदि झगडा हो तो धनवान के मुकाबले में निर्धन कभी खडा नही हो सकता। कभी अगर निर्धन अपने जैसे सौ

निर्धनों को धनवान का मुकाबला करने के लिए इकट्ठा करे तो शायद धनवान को कुछ भय हो जाय। परन्तु सौगुनी जन-शक्ति का मुकाबला करने के लिए सम्भव है कि धनवान की धन-शक्ति कहीं अधिक बलवती ठहरे और वह अपने धन-बल से एक के बदले दसगुनी और सौ के बदले हजार गुनी जन-शक्ति पैदा करले। अच्छी मजूरी और बहुत ललचानेवाला इनाम रखकर अमीर आदमी चाहे तो सौ आदमियों के मुकाबले के लिए एक हजार आदमी रख सकता है। जरूरत की घड़ी पर मजूरों के एक हजार के दल को भी, जो एकाएकी काम पड़ने पर भीड़ पड़ने पर इकट्ठे होगये हों, मुट्ठी के सीखे-पढ़े सिपाही सौ भी हों तो सहज में खदेड़ सकते हैं और अपनेसे दस गुनी या ज्यादा गिनती के आदमियों को हरा सकते हैं। जिसके पास धन-बल है वह जन-बल भी पैदा कर सकता है। इस तरह सदा से निर्धन या दरिद्र लोग धनवानों की अधीनता में रहते आये हैं। राजा, जमींदार, साहूकार, कारखानेदार, व्यापारी आदि सभी धनवानों की श्रेणी में आते हैं और सबका निर्धनों के ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव है। यदि ये लोग मनुष्य न हों, उनमें हृदय न हो और काम, क्रोध, लोभादि अवगुणों के साथ-साथ दया, क्षमा, करुणा, श्रद्धा, उपकार आदि के भाव भी न हों तो ये सहज ही राक्षस-रूप होकर निर्धनों को बरबाद कर सकते हैं और साथ ही अपने भविष्य को भी बिगाड़ सकते हैं। आसुरी सम्पत्ति दूसरों का भी क्षय करती है और अपना भी। दैवी सम्पत्ति दूसरों की रक्षा करती है और अपनेको भी सुरक्षित रखती है।

निर्धन के पास अपने शरीर की शक्ति की ही सम्पत्ति है, चाहे वह मानसिक हो चाहे कायिक। परन्तु व्यक्ति यदि चाहे तो और व्यक्तियों की शक्ति अपने साथ जोड़कर सामूहिक जन-शक्ति पैदा कर सकता है।

जिस व्यक्ति में सगठन-शक्ति हो वह और व्यक्तियों की शक्ति को अपने साथ जोड सकता है, और इस तरह के सगठन करनेवाले अनेक मनुष्य हो तो जन-बल का सगठन हो जाना सहज है। धनवान के सगठित जन-बल के मुकाबले में इस प्रकार निर्धनो का सगठित जनबल भी बडा हो सकता है और उनकी धनवानो से बराबर की लडाई हो सकती है।

परन्तु एक ऐसी दशा भी आ सकती है जिसमे धनवान जन-शक्ति का मुकाबला नही कर सकता। जब दरिद्र या निर्धन यह समझने लग जाय कि यह धनवान हमको ही कुल्हाडी का बेट बनाता है और धन का लोभ देकर हमारे ही हाथो हमारे भाइयो का खून कराता है तो उसके मन मे अपनेआप खटका पैदा होजाता है। साथ ही जब विरोधी निर्धन भाई उसके मनोभाव को बढावा देते है और उसे धन-लोभ से हटा-कर निर्धन भाइयो के साथ सहानुभूति की ओर खीच ले जाते है तो धन-वान को आदमी कम मिलते है। ज्यो-ज्यो निर्धनो का सगठन बढता है, उनमें आपस की सहानुभूति लोभ को सवरण करने मे सक्षम होती जाती है और एकता का भाव दृढ होता जाता है त्यो-त्यो धनवान का सग जन-शक्ति छोडती जाती है, अन्त मे धनवान एक ओर होता है और जन-शक्ति दूसरी ओर मुकाबले में खडी होती है। धन-शक्ति और जन-शक्ति का जहाँ इस प्रकार का सघर्ष होता है वहाँ विजय-पताका जन-शक्ति के ही हाथ रहती है। परिणाम यह देख पडता है कि धनवान की अपेक्षा जनवान मे अधिक बल है। इसलिए धनवान को उचित है कि जन-शक्ति को अपनी ओर रक्खे।

राज-शक्ति क्या है ? राज-शक्ति वही धन-शक्ति है जिसने राज-सेना तथा धन के बल से जनबल को अपनी ओर कर रक्खा है, चाहे वह सेना हो, चाहे सभा हो और चाहे सहानुभूति हो। राज-शक्ति को बनाये

रखने के लिए सहानुभूति नितान्त आवश्यक है। इसके बिना सेना और सभा ठहर नहीं सकती। चाहे राजशक्ति किसी एक व्यक्ति की हो चाहे समूह की हो परन्तु संगठन और सामूहिक सहानुभूति उसके विधायक है।

हमारे यहाँ के पहले धनवान जमींदार है। जमींदार शब्द फारसी है। इसका संस्कृत पर्याय भूपति है और हिन्दी भुइहार है। बहुत संभव है कि जो आजकल जमींदार है वे पहले कभी स्वतंत्र या कर देनेवाले राजा रहे हों अथवा किसी बड़े राजा के ठेकेदार रहे हों या विदेशी सत्ता की स्थापना के बाद अधिकार मोल लेकर जमींदार होगये हों। जमींदारी कैसी ही हो, खेती करनेवाले किसान जमींदारों की प्रजा कहलाते हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं है कि जो जमींदार है वह खेती नहीं करता। शायद ही कोई ऐसा जमींदार हो जिसके अपने खेत जोते बोये न जाते हों और और जिसकी अपनी फसलें न कटती हों। हमारी समझ में किसान दोनों ही है, चाहे जमींदार हो चाहे काश्तकार। जमींदार तो दरभंगा सरीखे महाराजा बहादुर भी है और काशिराज सरीखे राजा भी है, जिनके पास अपार धन है, परन्तु साथ ही छोटे-छोटे जमींदार भी है, जिनके पास किसी गाँव में एक या दो पाई से ज्यादा हिस्सा नहीं है और जो अभाव में मरते है और मेहनत मजूरी करके पेट भरते है। इसलिए हर जमींदार को हम धनवान नहीं कह सकते। किसानों में ऐसे जमींदार किसान भी है, जिनके यहाँ सैकड़ों एकड़ की खेती होती है खण्डसारें है और खेतों का बहुत कारबार है। ऐसे किसान भी है जिनके पास जमींदारी के नाम एक पाई भी नहीं है, परन्तु वे बहुतसे जमींदारों से अधिक धनवान है। इसीलिए न तो हर जमींदार धनवान कहला सकता है और न हर किसान और काश्तकार दरिद्र कहला सकता है। परन्तु जब हम किसान और जमींदार दोनों के नाम लेकर बातचीत करते है तब हमारा मतलब होता

है उन दरिद्र जमींदारों या काश्तकारों से जो धनवान जमींदारों के आधीन होते हैं। इस प्रसंग में जमींदार कहने से धनवान जमींदार या ताल्लुकेदार ही समझा जाता है। इन धनवान जमींदारों से दरिद्र किसानों का वास्ता है, जिनमें ऐसे मजदूर भी हैं जो किसानों के सहायक हैं और स्वयं खेतिहर नहीं हैं।

हमारे देश में साहूकार महाजनों की भी एक श्रेणी है जो सूद पर रुपया देकर और खेतों को अपने यहां बन्धक रखकर जमींदारी बाग और जायदाद के मालिक होगये हैं। यद्यपि ये धनवान जमींदार होचुके हैं, तथापि साहूकारी या लेन-देन इनके यहां जारी है। ये अबतक साहूकार बने हुए हैं। साथ ही बहुत-से ऐसे जमींदार भी हैं जिन्होंने अपने यहां लेन-देन का कारबार जारी कर दिया है। ये जमींदार होते हुए भी साहूकार हैं। इस तरह साहूकारी और जमींदारी दोनों प्रायः सम्मिलित व्यवसाय बन गई हैं। किसान काश्तकार भी है और कर्जदार भी है। जिस तरह धनवान जमींदारी और साहूकारी दोनों साथ ही करता है उसी तरह किसान दरिद्र खेतिहर भी है और कर्जदार भी है।

विदेशी सरकार भारतवर्ष में धन के ही लोभ से स्थापित है। उसने आरम्भ से धनियों के ऊपर ही अपना अधिकार जमा रक्खा है। राजशासन में जब कभी भाग देने की बात आई है तब धनियों को ही उसने मिलाया है। जहाँ कहीं बन पड़ा है वहाँ उसने ज़मींदारों और व्यापारियों के हाथ मज़बूत किये हैं और यह विदेशी सरकार के लिए बिलकुल स्वाभाविक बात थी, क्योंकि वह स्वयं व्यापारियों की ही सरकार है। उसका लाभ इसीमें है कि भारतवर्ष के व्यापारी बराबर उसकी मदद करते रहें। कौंसिलों में, सभाओं में, दरबारों में, बड़ी-बड़ी नौकरियों में, निदान सभी जगह अंग्रेज़ी सरकार ने धनवानों को ही अधिकार दिये

है। इस तरह न केवल उसने धन का लाभ उठाया है, बल्कि साथ ही उसने धनवानों और धनहीनों के बीच नित्य की बढ़ती हुई गहरी खाई खोद दी है और दोनों वर्गों में फूट डालकर अपनी स्थिति को मजबूत कर रक्खा है। धनवान समझते हैं कि आये दिन सरकार हमारी रक्षा करेगी, इसलिए सरकार को हमेशा खुश रखना चाहिए। इस तरह धनवानों का और सरकार का स्वार्थ सम्मिलित हो गया है, और अपने ही देश के धनवान और निर्धन भाइयों में झगड़े की बुनियाद मजबूत हो गई। पंजे की सब अंगुलियां आपस में एक-दूसरे की मजबूती और मदद के लिए थीं परन्तु भारत में यह हुआ कि बड़ी अंगुलियां विदेशी स्वार्थियों की अंगुलियों से मिल गईं और छोटी उंगलियों को बेकार और उनके अधीन कर दिया गया।

जमींदार किसानों से लगान, नजराना, भांति-भांति की भेंट और बेगार तक लेते हैं। किसान की मजाल नहीं कि इनकार कर सके। अगर वह करे भी तो जमींदार की मदद में बड़ी खर्चीली अदालत कायम है। वह सिर उठाने की हिम्मत करे तो जमींदार की मदद को सरकार की पुलिस के डंडे मौजूद हैं, और अगर जरूरत हो तो गोली, बारूद और सेना भी निहत्थे नर-नारियों को खड़े भून देने को तैयार है। मजूरों और किसानों को दबाने के लिए बड़ी कौंसिलों में कानून बन जाते हैं। मजूरों और किसानों के लाभ के कानून बनने में बाधाओं का कोई अन्त नहीं है। हम मजूरों और किसानों की वकालत में ये बातें नहीं कह रहे हैं। यह तो हमारे देश में नित्य घटनेवाले ऐतिहासिक तथ्य हैं। एक मुद्दत से धनवानों और निर्धनों के बीच ऐसा व्यवहार चला आया है जिससे निर्धन लोग धनवानों को अपना वैरी समझने लगे हैं और धनवान लोग निर्धनों के साथ वे व्यवहार करते भी नहीं लजाते जो किसी समय गुलामों के साथ किये जाते थे।

पिछली चौथाई शताब्दी मे यहाके मजूर और किसान भी कुछ-कुछ चेतन लगे है। जो लहर ससार मे जोरो से बही वह हिन्द महासागर में हिलोर मारे बिना न रही। यह आन्दोलन पिछले कई बरसो से जोर पकडने लगा है। आज किसान और मजदूर दोनो जगे हुए है। किसानो का आन्दोलन जगह-जगह चल रहा है। वे अत्याचार सहते-सहते थक गये है। मज़दूरो की हडताले बडे-बडे स्थानो मे होती रहती है। भारत-वर्ष मे कोई प्रान्त ऐसा नही जहा मजदूर और किसान सन्तुष्ट हो।

किसानो का आन्दोलन अवधप्रान्त मे तालुकेदारो के विरुद्ध बडे जोरो से चल चुका है। रायबरेली मे एक वीर तालुकेदार ने निहत्थे दरिद्रो पर गोलिया चलाके यश कमाया था। यह किसानो के उपद्रव के अनेक उदाहरणो मे से एक है, अभी तो दमन बहुत आसान है, क्योकि सभी किसान चेते नही है। परन्तु यह तो अभी आरम्भ है, आगे चलकर किस दरजे का विकास होगा, यह कौन कह सकता है ?

पुलिस और हिन्दुस्तानी सेना मे वही लोग काम करते है जिनके भाई देश के मजूर और किसान है। जब धनवान भी अपने लिए चपरासी, जमादार, फेरीदार, बल्लमदार, खिदमतगार, ग्वाले और गुण्डे आदि तलाश करता है तो इन्ही मजदूरो के भाई-बन्धु इन कामो के लिए मिलते है। अभी तो इतनी खैरियत है कि उनके लिए ये दरिद्र लोग नौकरी करने को मिल जाते है और समय पडने पर उनकी रक्षा करते है और नमक अदा करते है। परन्तु जिस दिन ये चेत जायेंगे उस दिन पहले तो इनमे से जो ईमानदार है वे अपने भाइयो के विरुद्ध धनवानो की नौकरी करने को तैयार न होगे और जो इस दरजे की ईमानदारी नही रखते या पेट के पीछे ईमानदारी की उतनी परवा नहीं करते, वे धनवानो की नौकरी करते हुए भी जब देखेगे कि वे हमारे

भाइयों का विरोध करते हैं अथवा भाइयों का स्वार्थ धनवानों का साथ देने से बिगड़ता है, तो वे नमक की ज़रा भी परवा न करेंगे और ठीक जोखिम के समय अपने अन्नदाताओं का साथ छोड़ देंगे। इतना ही नहीं, कोई आश्चर्य नहीं है कि जब सहानुभूति की मात्रा बढ़ जायगी तब वे अपने अन्नदाताओं को दगा भी दे सकते हैं। आजकल आन्दोलनों के जैसे लक्षण दीखते हैं उनसे यही पता चलता है कि हमारे देश के लिए कुशल नहीं है।

हमारे किसान और देशों के किसानों की अपेक्षा अधिक शान्त हैं, अधिक सौम्य हैं, अधिक सहनशील हैं और अधिक समझदार भी हैं। यह सब होते हुए भी इनको ठीक मार्ग पर ले चलने के लिए अमीरों और गरीबों दोनों के लिए तटस्थ, निःस्वार्थ संगठनकारी दिमागों की ज़रूरत है। हमारी समझ में हमारे मजूरों और किसानों को अभीतक ऐसा नेतृत्व दुर्लभ है। और शायद कुछ काल तक मजूरों और किसानों में इतनी योग्यता न पैदा हो सके कि वे अपने बीच से काम के नेता और संगठन-कर्ता खोज लें। जबतक उनका योग्य संगठन न होजाय तबतक उन्हें एक भयानक भीड़ समझना चाहिए जिसका मनोविज्ञान अच्छे-अच्छे विचारकों के लिए भी जटिल समस्या है। यह भयानक भीड़ आये दिन जो न करे सो थोड़ा। यह एक-एक उपद्रव कर सकती है जिसको काबू में लाना हवाई जहाजों, मशीनगनों और सेनाओं के बस की बात नहीं है। अगर किसी भीड़ ने किसी गाँव को लूट लिया या आग लगा दी तो भयंकर हानि तो हो गई। पीछे से हवाई जहाज और मशीनगन आकर उस हानि को तो किसी तरह रोक नहीं सकतीं, बल्कि उससे भी अधिक हानि पहुँचा सकती हैं। यह समझना नासमझी है कि आगे के होनेवाले उपद्रव इन सन्तना-

युक्त उपद्रवो मे रुक जायगे। मल मे मल धोया जाय तो वह नही छूटता। एक उपद्रव के सहारे हम दूसरे उपद्रव को दूर करना चाहे तो उपद्रव घटने के बदले एक और एक ग्यारह हो जाते है। चौरीचौरा-हत्याकाण्ड अभी लोगो को याद होगा। अधी और बहरी जनता ने पुलिस के ऊपर जो नाहक अत्याचार किया उसका कितना भयानक परिणाम हुआ? भारत के स्वराज्य पाने मे यह दुर्घटना जिस तरह बाधक हुई वह तो सभी जानते है, परन्तु इस बात की ओर कम लोगो का ख़याल गया होगा कि जितने भाइयो के ऊपर भीड ने वह अत्याचार किया था उससे कितने गुने अधिक भाई उस प्रतिक्रियात्मक उपद्रव मे फासे गये जो अमन, दमन और मुकदमो और सजाओ के रूप मे उस दुर्घटना के बाद हुआ। हुआ जो कुछ, परन्तु अन्तत परिणाम यह हुआ कि उपद्रव और उसकी प्रतिक्रिया दोनो मे हमारे देश की ही हानि हुई।

जो सच्चे देशभक्त है, जो सच्चे राष्ट्र-हितैषी है, वे ऐसा कोई उपद्रव नही चाहते जिसमे अन्तत हमारे अमीर या ग़रीब किसी भाई का रत्ती-भर भी नुकसान हो और देश का रत्ती-भर भी फायदा न हो। चौरीचौरा-हत्याकाण्ड ऐसी ही दुर्घटनाओ मे से एक है, जिससे भारत की भयानक हानि हुई। रत्ती-भर लाभ न किसी व्यक्ति को हुआ न देश को।

भीड का मनोविज्ञान ठीक-ठीक समझनेवाले और उसके अनुसार उस बडे धारा-प्रवाह को इष्ट दिशा मे ले जानेवाले नेता हमारे देश मे बहुत नही है। तो भी इतने काफी है कि वे भीड को ठीक दिशा मे ले जा सकते है यदि उन्हे काम करने दिया जाय। परन्तु जब कही उपद्रव खडा होता है तब इन स्वाभाविक नेताओ को तो सरकार भीड के पास नही जाने देती, उलटे दमन पर उतारू हो जाती है। मोपला-उपद्रव मे,

पंजाब के उपद्रवों में, शान्ति के अवतार जगद्वन्द्य गांधीजी तक को सरकार ने रोक दिया। सरकार एकमात्र दमन ही जानती है। तो क्या भीड़ का दमन करना ही उपद्रव-शान्ति का एकमात्र उपाय है? क्या अमीरों को गरीबों पर अत्याचार करने में खुशी से मदद करनेवाली विदेशी सरकार की सहानुभूति अधिक लाभकारी है? या धनवानों के लिए ज्यादा सुभीते की बात यह है कि गरीबों के साथ सहानुभूति करें, उनके हृदय को अपने बस करलें, अपने अच्छे सलूक से अपने ग़रीब भाइयों को अपनालें, इस हद तक कि आये दिन किसी उपद्रव के समय यही निर्धन भाई धनवानों की ढाल हो जायें और जिस तरह धनवानों और निर्धनों के बीच भाई-चारे का सम्बन्ध पहले था उसी तरह अब भी हो जाय? हमारी समझ में इस बात में किसीका मतभेद नहीं हो सकता कि दूसरा ही उपाय उपयुक्त है। उन दोनों प्रश्नों को दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि अमीरों के लिए दो राह खुली हुई हैं, अर्थात् वे वर्तमान काल में विदेशी राज का साथ दें या स्वदेशी प्रजा का? अभीतक हमारे अमीर लोगों में उन लोगों की संख्या बहुत बड़ी है जो राजा का साथ देते हैं वे, धनवान जो प्रजा का साथ दे रहे हैं बहुत थोड़े हैं और वे इस समय कांग्रेस के पक्ष के ही लोग हैं। परन्तु कांग्रेस के वे धनवान जो प्रजा से सहानुभूति रखते हैं और राजा के पक्षपाती नहीं हैं, मजूरों और किसानों पर कुछ थोड़ा-सा प्रभाव रखते हैं। इस प्रभाव का रहस्य यह है कि वे किसान को अपना भाई समझते हैं, और उनपर उस तरह की कड़ाई और ज़बरदस्ती नहीं करते जैसा कि ज़मींदार लोग आम तौर पर किया करते हैं। साधारण ज़मींदारों का भाव अद्भुत होता है। वे गरीब किसानों को अपना गुलाम समझते हैं। कुछ जातियां तो ऐसी हैं जिनको निठुराई से पीटकर और जिनका अपमान

करके काम लेना वे अपना हक समझते है। गरीब चमार या पासी का जब चाहा बुलवाकर बेगार मे जोत दिया। उस गरीब ने ज़रा भी नाही-नूही की तो जूता से उसका पिट जाना निश्चय ही है। यह अपमान और यह अत्याचार हर जमीदार निर्भय होकर करता है। वह जानता है कि पुलिस और थानेदार हमारी तरफदारी करेगे। रिश्वत देने को इस दरिद्र के पास पैसे कहाँ है? लगान वसूल करने के लिए किसी किसान को बुलाकर जेठ की कडी धूप मे घटो बिठलाकर दण्ड देना जमीदारो की एक मामूली रीति है। साहूकार तो दूसरे तरह के अत्याचार करता है। वह खेत-बारी बधक रख लेता है और जब उसके ब्याज पर ब्याज चढने लगते है तो अन्त मे उसके पुरखो की जायदाद कौडियो के मोल नीलाम होकर साहूकार के पेट मे चली जाती है। सरकार, साहूकार और जमीदार तीनो मिलकर किसान के तन-मन-धन पर कब्जा कर लेते है।

असल मे जमीदार केवल बीच का दलाल है। सरकार ने ब्रिटिश-भारत की सारी जमीन को अपनी मिल्कियत बना रक्खा है। जमीदार तो नाम-ही-नाम को जमीन का मालिक है। वह अगर मालगुज़ारी न दे तो उसकी मिल्कियत खतम हो जाय। जमीदार वह बीच का दलाल है जो विदेशी सरकार को अपनी नाममात्र की मिल्कियत का किराया देकर अपने धन के बल से किसानो पर अत्याचार करने का अधिकार मोल ले लेता है। परन्तु हम यह दिखा आये है कि धन-बल कितना ही बडा हो, जन-बल से आगे ठहर नही सकता। किसानो और मजदूरो के चेत जाने पर जमीदार अपने अत्याचारो को जारी नही रख सकता। मोटरावन हथियावन, घोडावन, नचावन आदि के नाम से जो कर वह दरिद्र किसानो से ले-लेकर मौज उडाता है वह बिलकुल जबरदस्ती है। अपने अधिकारो को समझनेवाले किसान इस लूट-खसोट को चुपचाप नही सह

मकान। उन्हें सहना भी नहीं चाहिए। वह लगान की रकम से अलग लूटते हैं, तरह-तरह के करों से अलग तबाह होते हैं, फिर बेगार ऊपर से। पंचायत का यह कर्तव्य है कि पहले जमींदारों को समझाने की कोशिश करे कि इन अत्याचारों को बन्द कर दें, और अगर जमींदार न मानें तो पंचायत को असहयोग और सत्याग्रह से काम लेना चाहिए। ऐसी दशा गाँवों में पैदा की जा सकती है कि जमींदार का सिपाही किसान को जूते या डंडे लगाने से इन्कार करदे। और किसान जमींदार के हाथ पिटें और चूं न करें। अपना प्राण दे दें। परन्तु जमींदार की अन्याय की आज्ञा न मानें। किसीसे कोई बिना उसकी रजामन्दी के एक पाई भी नहीं पा सकता और एक तिनका भी नहीं खिसकवा सकता। बेगार से तो मजदूर और किसान को साफ इनकार कर देना चाहिए।

जमींदार और किसान की इस लड़ाई में किसान लोगों को यह बिलकुल न भूलना चाहिए, कि जमींदार भी हमारा ही भाई है। इस-लिए उसको, उसके परिवार को और उसके पशुओं को या उसके पशु निबाहनेवालों को खान-पान पहनने, और छाया में रहने आदि साधारण मनुष्यों की आवश्यकताओं से वंचित न किया जाय। उसे किसी प्रकार का कष्ट न दिया जाय।

यह भी भूलने की बात नहीं है कि जन-बल अगर ठीक संगठित रूप से काम में लाया जाय तो बहुत बड़ी ताकत है, और अगर संगठन न हो तो जन-बल एक खाली भीड़ है जिसकी ताकत किसी एक निश्चित काम के लिए तो कोई कीमत नहीं रखती, बल्कि ठीक उद्देश्य के अनुसार काम करने की योग्यता न होने के कारण अलग-अलग जोश और अलग सोच-विचार रखनेवालों और अलग दिशाओं से आनेवालों [illegible] है जिनका उपयोग कुछ भी नहीं है। जन-बल का इसीलिए बहुत [illegible]

और नियमित मगठन होना बहुत जरूरी है। मगठित जन-बल अपार और अपरिमेय शक्ति है। उमके अनगिननियो कान है, मगर एक ही बात के सुननेवाले है। उसकी असख्य आंखें है, मगर एक ही निशाने को देखनेवाली है। उमकी असख्य जीभे है, पर एक ही बात एक ही साथ एक ही स्वर मे कहनेवाली है। उमके बेगिनती हाथ हैं, परन्तु वे सब एकसाथ एक ही समय मे एक ही दिशा में एक ही काम के लिए उठनेवाले है। उसके अनगिनत चरण है जो एक ही दिशा में एक ही हिसाब से निरन्तर आगे बढते रहनेवाले है। ये सारी इन्द्रियां एक ही मनुष्य की इन्द्रियो की तरह एकता के सूत्र मे बँधी हुई एक-सी ही क्यो दीखती है? इसका कारण यह है कि यह महान् जन-बल हज़ारो सिर रखते हुए भी एक ही सिर रखता है। एक ही सगठन करनेवाले दिमाग के तावे होकर सारी बाते उसी दिमाग़ के आदेश के अनुसार करता है। ऐसे सगठित जन-बल का जो नेता है उसीका दिमाग़ सारी जनता के नख से शिखा का तक का काम करता है।

हमारे देश का जन-बल किसान है, और धन-बल ज़मीदार और साहूकार है। इसमे सन्देह नही कि सगठित जन-बल के सामने धन-बल कुछ भी नही है। परन्तु जन-बल के सगठित होने की शर्त बहुत कडी है। जो किसान जन-बल की सेना मे सगठित होना चाहे उन्हे तो अपने प्राणो का मोह छोडकर इस सेना मे भरती होना पडेगा। यह वह लडाई नही है कि जिसमे सिपाही को वरदी के लिए खर्च करना पडे, या बारको में रहना पडे, या अपने साथियो के साथ कई साल तक दलेल करना पडे। गांव के जन-बल के विकास मे ऐसी रीति-रस्मो की ज़रूरत नही है। तो भी उसे अपने बहुत-से बचे हुए समय मे से सगठन की शिक्षा पाने के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य खर्च करना पडेगा। उसे असहयोग

और सत्याग्रह की विधियाँ सीखनी पड़ेगी। रत्ती से रवा तक सारे विचार छोड़कर अपने नायक के आज्ञा-पालन में आँख मूँदकर जुट जाना सीखना होगा। उसके आज्ञा-पालन मे प्राण भी चढ जायें तो उनका कोई हिसाब नही करना होगा। हर तरह पर अपनेको बलिदान कर देना पडेगा। सेना मे हरेक के लिए अपनी-अपनी जगह होती है। उसे किसी दूसरे की जगह का लालच न करना होगा। जो काम उसे सौंपा जाय, बुरा-भला, खरा-खोटा, चाहे जैसा हो, सिपाही का काम है कि उसे पूरा करे। जब एक बार सिपाही ने अपने नायक की आधीनता मानली तो उसने अपना लड़ाई के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र विचार भी उसीके हाथ सौंप दिया। क्योंकि *युद्ध मे जन-बल को चलानेवाला दिमाग एक ही होना जरूरी है।*

यह लड़ाई शान्ति, अहिंसा और सत्य की लड़ाई है। इसके सिपाही इस बड़े सत्य को कबूल करते है कि कोई प्राणी किसी क्षण भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। इसीलिए कोई किसान जो सगठित जन-बल मे मिलकर काम कर रहा है, अपना एक पल का भी बेकार न खोवेगा। वह हर घड़ी चरखा या तकली के पवित्र यज्ञ मे लगा रहेगा।

पचायत के पीछे जब उसकी मदद करने के लिए किसानो का ऐसा सगठित जन-बल होगा जिसके भरोसे पचायत जरूरत पड़ते ही असहयोग और सत्याग्रह ठान देगी, उस समय किसी जमींदार या साहूकार की यह हिम्मत नही हो सकती कि पचायत की न्यायोचित आज्ञा न माने और अगर ऐसी हिम्मत किसीने की भी तो उसे उल्टे मुह की खानी पड़ेगी।

किसान, साहूकार और जमींदार के पारस्परिक सम्बन्ध सुधरे बिना काम नहीं चल सकता। जो बेगारियाँ और जबरदस्तियाँ अबतक चलती रही हैं उनका अन्त तो होना ही है, परन्तु उनका अन्त करने के लिए न

तो शस्त्र या हिंसा का प्रयोग करना होगा और न किसी बाहरवाले से सहायता मागकर अपनी बेआबरूई करानी होगी।

धरती का मालिक

आजकल जो जमींदार के नाम से पुकारे जाते है वे किसान असल मे उतनी ही धरती के मालिक है जितनी पर उनकी अपनी खेती होती है। बाकी और खेतीबाडी, जिनके लिए वह औरो से लगान वसूल करते हैं, असल मे उनकी मिल्कियत नही है। वह तो उन लोगो की मिल्कियत है जो उसे जोतते-बोते और उसमे से अनाज पैदा करते हैं। जमींदार कई प्रान्तो मे उनपर इजाफा लगान कर देता है और अगर वे बढा हुआ लगान नही देते तो उन्हे बेदखल भी कर देता है। जहां कही तीस साल मे बन्दोबस्त होने का रिवाज है वहा तो जमींदार कुछ दिन तक इजाफा लगान करके फायदा उठाता रहता है। परन्तु बन्दोबस्त के समय सरकारी मालगुजारी की अटकल बढे हुए लगान से लगाई जाती है और वह बढा हुआ लगान सदा के लिए बढ जाता है। जमींदार को जो फायदा मिलता था, अब उतना नही मिलता, इसलिए लालची जमींदार फिर लगान बढाता है। किसान के इस दु ख का कभी अन्त नही होता। किसान भी यह समझ जाता है कि हम जमीन की उपज बढाते है, तो उसका फायदा लगान बढाकर जमींदार ले लेता है और हमे कुछ नही मिलता, इसी तरह उपजने की ताकत अगर हम बढा दे, और बढा हुआ लगान न देना चाहे तो खेत हमारे हाथ से निकल जाता है। इस तरह खेत की ताकत और हैसियत बढाने मे किसान अपना कोई फायदा नही देखता। जो चीज असल मे अपनी मिल्कियत नही है उसकी तरक्की मे हम अपने-को क्यो वृथा घुलावे ? भारत का किसान देखता है कि यहांकी धरती गैरो की मिल्कियत है। इसीलिए इस देश मे खेती की तरक्की नही

होगी। विदेशी सरकार ने खेती की तरक्की के नाम से देश में जो सर्कारी संस्थायें खोल रक्खी हैं उनका किया कुछ भी नहीं हो सकता। पहले तो वे खासकर विलायती मेशीनों के बिकवाने के लिए और उनके विज्ञापन के सुभीते के लिए सफेद हाथी की तरह हैं, दूसरे अगर वे खेती की तरक्की कराना भी चाहें तो तबतक नहीं करा सकतीं, जबतक कि किसानों के मन में यह बात न बैठ जाय कि हमारे खेत हमारी मिल्कियत हैं। हमारे देश के सुधारकों ने खेती के सुधार पर बड़ी-बड़ी कोशिशें की हैं परन्तु उनसे क्या होता है? असली रुकावट जबतक दूर न होगी, खेती में तरक्की नहीं हो सकती।

जबतक सरकार का मनमाना कानून है तबतक किसानों की मिल्कियत कुछ भी नहीं है। गाँव की पंचायत के ही अर्थात् जब गाँव की खेती का बन्दोबस्त होगा, जब सब तरह पर पंचायत ही रक्षा करने लगेगी तभी वह पंचायती कानून बनेगा जिससे कि जनता की रक्षा होगी और तब किसानों की मिल्कियत होगी, साथ ही साहूकार के पंजे से बचाने के लिए पंचायत को यह निश्चय कर देना पड़ेगा कि कोई किसान अपने निजी खेत को बेच न सकेगा। और न किसी किसान [illegible], घर और जीविका देनेवाली मिल्कियत [illegible]

अपने परिवार के लिए खेतो की आवश्यकता है। पचायत ऐसा नियम कर सकती है कि मिल्कियत पानेवाला किसान उसके बदले पचायत द्वारा ठहराई हुई रकम छोटी-छोटी किश्तो मे कर के सूद-सहित दे डाले। डेनमार्क की स्वदेशी सरकार ने ऐसे कानून बनाकर छोटे-छोटे मिल्कियत-दार पैदा कर दिये हैं, जिनके होने से सारा राष्ट्र पहले से अधिक सुखी और समृद्ध होगया है। प्रजा-भक्त सरकार ने ऐसे कानून बना दिये है कि बहुत छोटी हैसियत के लोग सरकार से ही नाममात्र के सूद पर रुपये लेकर और धीरे-धीरे आठ-दस बरसो मे चुकता करके मिल्कियतदार बन गये है। हमारे यहाँ पचायते भी थोडी हैसियत के लोगो को मदद करके अच्छी हैसियतवाले बना सकती है। वह बेमिल्कियतवाले मजूरो को मिल्कियतदार भी कर सकती है। जिन-जिन किसानो के खेतो के टुकडे दूर-दूर पड गये हैं, उन्हे आपस मे राज़ी करके ऐसा बन्दोबस्त करा सकती है कि हरेक किसान के अपने खेत पास-पास हो जायं। कर्ज पाटने के लिए भी पचायते ऐसा कुछ बन्दोबत कर सकती है कि साहूकार नाम मात्र के ब्याज के ऊपर छोटी-छोटी किस्तो मे अपना पावना वसूल करने को राज़ी हो जायँ।

गाँव की पचायत से बग़ावत करनेवाले या उसे कायम न होने देने-वाले ज़मीदारो और साहूकारो का मुकाबला करने के लिए सत्याग्रह की विधि जो हमने ऊपर बताई है वह ग्राम-सगठन के काम मे पडनेवाली बाधाओ को दूर करने के लिए है, परतु पचायत का रचनात्मक काम बहुत बडा है। बेकारी दूर करने के लिए पहले अध्याय मे जो खद्दर का काम हमने बताया है, पचायत का वह पहला रचनात्मक काम समझा जाना चाहिए। लगान और मालगुजारी को ठीक मर्यादा के भीतर लाकर देश में जो ही सरकार हुकूमत करती हो और उचित रीति से

रक्षा का काम करती हो उसे रक्षा मात्र के लिए भूमि कर के रूप मे देने का प्रबन्ध करना यह दूसरा रचनात्मक काम होगा । किसानो को धरती का सच्चा मालिक बनाकर किसानो मे हाथ की अगुलियो की तरह तारतम्य रखकर उनकी फिर से बँटाई करना और खेती की मिल्कियत को भरसक पास-पास कराकर इसे सुभीते का व्यवसाय बनाना पचायत का तीसरा रचनात्मक काम होगा । भूमि-कर के देने का ऐसा बन्दोबस्त करना कि वह रुपयो मे न दिया जाकर खेती की उपज के अंश मे दिया जाय, और यह अंश भी भूमि-कर के नाते उन्ही लोगो को देना पडे जिनके खेतो से कम-से-कम उपजवाले सालो मे भी अपने परिवार के साल-भर के खर्च के लिए उपज को निकालकर फाजिल उपज बचती हो । यह बन्दोबस्त गाव की पचायत का चौथा रचनात्मक काम होगा । ये चार रचनात्मक काम मुख्य होगे, और गाव की पचायत को सबसे पहले इन्ही कामो की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेनी होगी ।

इसका मतलब यह नही है कि पचायत का जो नित्य का काम है—अर्थात शिक्षा रक्षा व्यवसाय, विनोद और सेवा इन कामो को ग्राम की पचायत किसी आगे आनेवाले युग के लिए उठा रखे । ये सारे के नित्य और निमित्त के कर्तव्य तो आगे अलग दिखाये । यहा तो हमने उन जरूरी कामो का निर्देश किया है जिनका करना हमारे देश की असाधारण परिस्थिति के कारण गाव की पचायतो के लिए अत्यन्त आवश्यक और अनिवार्य है ।

: ५ :

कर्ज़ और मुक़दमेबाज़ी

१ ऋण-भार

आज भारतवर्ष के किसानों के सिर पर सात-आठ अरब रुपयों के कर्ज का बोझा है। यह बोझ दिन-पर-दिन बढ़ता चला जा रहा है। जिन किसान की आमदनी छः पैसे रोज़ के लगभग है, उसे पापी पेट को भरने के लिए अन्न तो मिलता नहीं, वह बेचारा अपना ऋण चुकाने के लिए रुपया कहांसे लावेगा। साल-भर में किसान जितना ही सिर पीछे कमाता है लगभग उतना ही उसके सिर पर कर्ज़ा भी रक्खा हुआ है। जिस आदमी की आमदनी साल में बारह सौ रुपये हों वह अपने ऊपर एक हज़ार रुपये का ऋण बहुत भारी बोझ मानता है और उसके चुकाने के लिए विशेष उपाय करता है। जिसकी आमदनी इतनी कम हो कि उसे चौबीस घंटे में एकबार भी उससे भर पेट भोजन न मिल सके, वह अपनी साल-भर की आमदनी की बराबर की रकम भला कैसे चुका सकेगा? किसान तो असल में सरकार की करतूतों से दिवालिया बन गया है। वह तो किसी तरह पर अपना ऋण चुका नहीं सकता। उधर साहूकार भी उससे पाई-पाई वसूल करने के लिए तुला बैठा है। साहूकार की निठुराई और बेदरदी मशहूर है। वह अपने रोज़गार की बदौलत घर बैठे रईस बन गया है। व्याज की कड़ाई को कानून और अदालत ने बहुत कुछ कम कर दिया है, यह बात सही है। यह भी सही है कि सहकार-समितियों ने कुछ मालदार किसानों को भी

इस दिशा में लाभ पहुँचाया है। परन्तु यह लाभ बहुत थोड़ा है। हमारे देश के दरिद्र किसानों को रत्ती-भर भी लाभ नहीं पहुँच सकता।

किसानों के सिर पर ऐसा भारी कर्ज़ का बोझ कैसे पड़ गया? यह बड़ा विकट सवाल है। इसमें बहुत कुछ तो हमारे किसान भाइयों का दोष है, तो भी सरकार का दोष थोड़ा नहीं है। जिन दिनों किसान सुखी और समृद्ध था, उसके पास खाने-पहनने की कोई कमी न थी। उस भूमि-कर देकर भी इतना बचता था कि आये दिन उत्सव और सगाई के कामों में और तीज-त्योहारों पर वह जी खोलकर खर्च करता था और खुशियाँ मनाता था। उसके वे सुख के दिन तो कभी के बीत गये पर उसके मन का हौसला न गया। वह ऐसे मौकों में जी खोलकर खर्च करने में अपनी आबरू समझता आया है। जब वह देखता है कि हमारी आमदनी में इतना नहीं बचता कि हम काम-काज में लगा सकें तो वह साहूकार की शरण लेता है और यह आशा रखता है कि [illegible]-माता की कृपा से कभी तो हमारे भले दिन आवेंगे और हम कर्ज़ के बोझ से छुटकारा पायेंगे। दुर्भाग्य से ऐसे भले दिन तो [illegible]। [illegible] सपने में भी देखने को नहीं मिलते। किसान इतनी बात [illegible] देखता सूद का ऐसा हृदयवेधक बढ़ना देता है कि वह [illegible]

इस तरह अब जो भी ऋण उसके सिर पर है पहले के मुक़ाबले काम-काज उसका प्रधान कारण नहीं है। उसका मुख्य कारण तो आज लगान और मालगुजारी है, जिसकी किस्तें निश्चित समय पर चुका देना बहुत ज़रूरी है। सरकारी पावना चुकाने के लिए किसान को क्या कुछ नहीं करना पड़ता। सरकारी दूतों की भांति-भांति की यातनाओं से लाचार होकर उसे कुएँ को छोड़कर खाई में गिरना पड़ता है और साहूकार की शरण में जाकर मुंहमांगे सूद पर कर्ज़ लेना होता है और इसी कर्ज़ से ज़मींदार की और सरकार की मांग चुकानी पड़ती है। आज जो उसके ऊपर कर्ज़े का भारी बोझ है वह ज़्यादा करके इसी कारण बराबर बढ़ता आया है।

साहूकार के ब्याज लगाने की विधि अद्भुत है। वह अक्सर साढ़े-सैंतीस रुपया सैकड़ा सालाना ब्याज मांगता है और बेचारे किसान को इतने कड़े सूद को मान लेने के सिवाय कोई गति नहीं है। पर यह सूद महीने-महीने देना वाजिब ठहराया जाता है, और न देने पर एक महीने के सूद पर दूसरे महीने ही सूद-दर-सूद लगाया जाने लगता है। इस भयंकर महाजन की चक्की के नीचे पिसकर किसान का चूरा हुए बिना नहीं रह सकता। कानून ने इस विधि को न्यायसंगत नहीं ठहराया है, और विदेशी कानून के दरवाज़े को खटखटाया जाता है, तब यद्यपि न्यायाधीश ऐसे भयंकर ब्याज को दिलाना नहीं मंज़ूर करता, तो भी इस जुल्म की कोई सज़ा नहीं दी जाती। ज़्यादा-से-ज़्यादा ऐसे भयानक अत्याचार पर न्यायाधीश मुस्कुरा देता है और उपेक्षा करता है। कानून ने इस लूट की कोई सज़ा नहीं ठहराई है। इस अत्याचार से सभी किसान पीड़ित रहते हैं। जो अदालत तक घसीटे जा सकते हैं वही मज़े में रहते हैं। परन्तु अदालत तक सबको जाने की नौबत नहीं आती। सीधे-सादे

ईमानदार किसान ब्याज का सब नहीं तो कुछ अंश समय पर सहायता करनेवाले उस अत्याचारी साहूकार के पास शुद्ध कृतज्ञता के भाव से पहुँचाते रहते हैं। साहूकार की एक तरह से बँधी आमदनी बनी रहती है। असल के चुकता करने की तो बात ही क्या है, पूरा न अदा होने के कारण सूद ही बढ़ता रहता है। इस तरह थोड़े-से रुपये देकर साहूकार किसान से गुलामी का दायमी पट्टा लिखवा लेता है। जो ब्रिटिश जाति यह घमण्ड करती है कि हमारे राज्य में गुलामी की प्रथा नहीं है, उसीकी करतूतों की बदौलत सैकड़ों दरिद्र किसान साहूकारों के यहाँ सारे जीवन गुलामी करते देखे जाते हैं।

२ यह बोझ कैसे हलका हो ?

जबतक आजकल की वह परिस्थिति बनी हुई है जिसका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं तबतक इस बोझ के हलका करने के लिए कोई ऐसा उपाय नहीं किया जा सकता जिसका कोई विशेष प्रभाव पड़ सके। जबतक खून चूसनेवाला कड़ा लगान, निठुराई और हृदय-हीनता से वसूल किया जाता रहेगा, तबतक इस कर्ज़ का सिलसिला बंद नहीं हो सकता। एक देश डेनमार्क है, जहाँकी सरकार नाम मात्र के सूद पर खरीदी जानेवाली जायदाद की ज़मानत पर रुपया देकर दरिद्र मजदूरों को मिल्कियतदार किसान बनाती है और एक हमारा भारत देश है

ज़बरदस्ती से बचावे जिससे वह आगे को कर्ज का बोझा बढ़ाने के लिए लाचार न हो।

पंचायत के सामने ऋण-भार को हलका करने का सवाल बड़ा ज़बरदस्त है। पंचायत को यह उचित है कि इस सम्बन्ध में न्यायसंगत कानून बनावे। साहूकार का असल रुपया डूबना नहीं चाहिए। उसके रुपये पर साल-साल के हिसाब से उचित ब्याज भी मिलना चाहिए। जो ब्याज मिती पूजने पर भी न दिया जाय उसे मूल में जोड़कर आगे चलकर उस मिश्रित रकम पर ब्याज लगाना भी न्यायसंगत है, पर इस सूद-दर-सूद के देने के लिए इस समय किसान समर्थ नहीं है, न आगे बहुत काल तक वह समर्थ हो सकता है। इसलिए पंचायत को इस सम्बन्ध के कानून बनाने पड़ेंगे अथवा पंचायत के संगठन के समय जो सरकार हो उससे इस सम्बन्ध के उचित कानून बनवाने पड़ेंगे। कानून ऐसे होने चाहिएँ कि सहने योग्य ब्याज की दर मुकर्रर करदें और अगर कोई साहूकार उस ब्याज से अधिक का हिसाब लगाकर किसी किसान से वसूल करना चाहे तो ऐसा करना दंड के योग्य अपराध समझा जाय। इस तरह का कानून बनने से महाजन के साथ अन्याय भी न होगा, किसान लुटेगा भी नहीं और अत्यधिक ब्याज वसूल करनेवाली मुकदमेबाज़ी भी कम हो जायगी।

पंचायत को अथवा स्वराज्य-सरकार को ऐसे कानून की भी रचना करनी पड़ेगी कि जिस किसान को परिवार को खिलाने पहराने के बाद उपज से इतना न बचता हो कि भूमि-कर और ऋण की किस्त दोनों ही दे सके वह किसान ऐसा दिवालिया ठहराया जाय जिससे साहूकार को छोटी-छोटी किस्तों में मूलधन मात्र लौटवा दिया जाय। उससे कम हैसियत के किसान ऐसे दिवालिये ठहराये जायँ जिनसे कुछ भी वसूल

नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि साहूकार को इसमें नुकसान है, परन्तु आज भी कौन साहूकार ऐसा है जिसके कर्ज़दार दीवालिये होकर इस तरह सूद तक हज़म न कर जाते हों। दीवालियेपन की जो आजकल ठह-गई हुई हद है, हमारे इस प्रस्ताव से उसका कुछ थोड़ा निस्तार हो जायगा। यह कोई अनोखी बात नहीं है।

पंचायत को एक और ज़रूरी काम करना होगा। उसे कर्ज़दार किसानों के ऊपर कुछ थोड़ी-सी वाजिब कड़ाई करनी पड़ेगी। कुछ ऐसे कायदे बनाने होंगे कि वे काम-काज पड़ने पर एक हद के भीतर खर्च करने को लाचार किये जायँ। वह खेती से बचे हुए समय को उपज बढ़ाने के काम में लगावें और अपने खाने पहरने के ऊपर बचा हुआ उपज का अंश पंचायत को उस समय तक बराबर देता रहे जबतक कि उसका कर्ज़ा चुकता न हो जाय। इस तरह कर्ज़ लेने और देनेवाले दोनों का बड़ा सुभीता होगा।

मिल सके। ग्राम-पचायतो के सगठन के बाद सहकार-समितिया से किसानो को ऐसा लाभ पहुँच सकता है।

३ मुकदमेबाजी

ऋण का मुकदमेबाजी से भी बडा सम्बन्ध है। ऋण के लिए मुकदमेबाजी की जाती है और मुकदमेबाजी के लिए ऋण लिया जाता है। मुकदमेबाजी किसानो का एक बडा जबरदस्त रोग है। जमींदार और किसान के बीच लगान, हक, दस्तूर, नजराना, बाग, ऊसर आदि के झगडे चलते रहते है। जमींदार की मर्जी बिना किसान पेड की एक डाली भी नही कटवा सकता। किसी गरीब किसान ने अपना पापी पेट भरने के लिए तालाब मे से मछलियां पकडी, और उधर जमींदार का कहर टूट पडा। इस तरह के झगडे तो जमींदार और किसान के बीच मे होते ही रहते है। पारिवारिक झगडे भी कम नही है। भाई-भाई लड जाते है। बँटवारे का झगडा पैदा हो जाता है। पट्टीदारो मे परस्पर डाँड-मेड का झगडा लगा रहता है। विरासत और हकीयत के झगडे भी कम नही है। साहूकार कर्ज वसूल करने के लिए भी दावा दायर किया करता है। फिर आपस के ऐसे झगडे भी होते रहते है जिनका अत तुरन्त की डडेबाजी, अग-भग और कभी-कभी हत्या तक मे होता है। माल, दीवानी और फौजदारी तीनो तरह के मुकदमे हमारे गांवो से निकलकर दूर-दूर की अदालतो मे जाते है, और गांव की गाढी कमाई अदालतो के अनउपजाऊ खानेवालो मे बँट जाती है। और बहुत-सा रुपया आजकल स्टाम्प, कोर्ट-फीस, टिकट आदि के रूप मे विदेशी सरकार के हाथ लगता है। किसान शारीरिक दु ख भी उठाता है, धन भी खोता है और जब एक दफे अदालत के चक्कर मे फस गया तो कर्ज लिये बिना आगे का कोई काम उसका चल ही नही सकता। अगर उसकी जीत भी हुई तो

अदालती बन्दर-बाँट में उसकी डिगरी की कीमत कुछ भी नहीं रह जाती। अब वह कर्ज़ कहाँ से अदा करे?

इस चक्कर में वह बिल्कुल अपनी ही मूर्खता से नहीं फँसा। सीधे-सादे किसान को फँसाने के लिए विदेशी सरकार ने एक महाजाल बिछा रक्खा है। जब गाँवों में पहले पंचायतें थीं तब वह इस जाल में नहीं फँसता था। बिना कौड़ी खर्च कराये पंचायत उसका सारा काम कर देती थी। बेचारों ने बंदर-बाँट की रीति को न समझा और जाल में फँसकर तबाह होगये। आज फिर भी वही गाँव की पंचायत किसान को इस तबाही से उबार सकती है। मुकदमे के लिए किसान की कर्ज़दारी की ज़िम्मेदारी भी सरकार पर है।

मुकदमेबाज़ी तो आदि से अंत तक कर्ज़दारी का कारण हो जाती है। जहाँ चार बरतन होते हैं वहाँ खन-खन होना स्वाभाविक है। परिवार बड़ा हुआ, भाई-बन्धु बढ़े, तो आपस में दरिद्रता के कारण लड़ाई-झगड़ा का बढ़ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। कोई परिवार ऐसा नहीं है जिसमें सभी प्राणी समझदार और सहनशील हों। समझदार और सहनशीलों के बीच में भी नासमझ और उतावले प्राणी निकल आते हैं। दरिद्रता रही-सही समझदारी को भी बिगाड़ देती है। भाई भाई लड़ जाते हैं। दलाली से रोटी कमानेवाले इसी ताक में रहते हैं और नासमझ उतावले बिगड़ैल भाई को फुसलाकर फूट की धार को तेज़ कर देते हैं। जो झगड़ा आसानी से सुलझ जानेवाला भी होता है उसमें ऐसी उलझन पैदा कर देते हैं कि वह अदालत को गये बिना नहीं रहता। साझे की जायदाद भाई-भाई की लड़ाई में बारह-बाट हो जाती है। मुकदमेबाज़ी के लिए मुद्दई-मुद्दालेह दोनों कर्ज़ लेते हैं। अन्त में बन्दर-बाँट के बाद मुकदमे का खर्च और कर्ज़ा सिर पर आता है। फिर सन

जो कि १० बीघे की खेती होती थी तो इकट्ठी खेती करने में एक ही हल, बैल और हलवाहे से काम चल जाता था, अब पाँच-पाँच बीघे जो दो भाइयो में बटे तो उसमे हल, बैल और हलवाहा किसी-न-किसी भाई को अलग रखना ही पड़ेगा। यह सब भी कर्ज के ही बल से हो सकता है। यही झगड़ा अगर अदालत न जाता और गाव की पचायत में ही तय होता तो दलाल की तो दुर्दशा हो जाती। लेने के देने पड़ जाते। झगड़ने वालो को कौडी न खर्च करनी पड़ती। नासमझ झगड़ालू भाई को समझा बुझाकर ऐसा राजी किया जाता कि अलग हल, बैल और हलवाहे की भी जरूरत न पड़ती। इस उदाहरण से पढ़नेवालो को यह समझ में आ जायगा कि मुकदमेबाजी किस तरह खर्च बढाती है, कर्जदार बनाती है और धन को चुसवाकर विदेशी सरकार के पास पहुचवाती है। अगर पुरानी पचायते सरकार की कृपा से नष्ट न होगई होती तो यह सारी नौबत न आती। इसी लिए जैसे लगान की वसूली में सरकार कर्जदारी का कारण बनती है वैसे ही मुकदमेबाजी में भी। कर्जदारी का मूल सरकार है।

सरकार लगान पर कर्जदारी में फस जाने का अपराध किसान को ही लगाती है। कहती है कि हम तो फसल तैयार हो जाने पर लगान का रुपया वसूल करते है। यह तो सच है। अगर किसान से लगान के रुपये के बदले जमीदार या सरकार पैदावार का कोई निश्चित अंश लेकर लगान की भरपाई लिख दिया करते तब तो उतना दोष सरकार का न होता, परन्तु वास्तव मे होता यह है कि फसल तैयार हो जाने के समय से ही सरकारी पावना चुकाने के लिए किसान को लाचार होकर पैदावार को बेच डालने की चिन्ता होती है। सभी किसान एक ही समय में जब अपनी-अपनी पैदावार को बेच डालने को तैयार हो जाते है तो मण्डी में माल ज्यादा हो जाता है और घटी हुई माँग के कारण

: ६ :

गो-रक्षा

१ अंग्रेज़ी शासन के पहले

प्राचीन हिन्दू राज्यो मे भी गो-भक्षी राक्षसो की चर्चा जहा-तहा इतिहासो और पुराणो मे पाई जाती है। देवता और असुर सभी ज़माना में हुए है, और दोनो का युद्ध हर युग और हर समय मे बराबर होता आया है। गो-भक्षक मुसलमान भी है, परन्तु इतने नही जितने कि अग्रेज। मुसलमानो का राष्ट्रीय भोजन गोमास नही है, परन्तु अग्रेजो का तो यह राष्ट्रीय भोजन है। मुसलमानो के समय मे भी इतना गोवध नही होता था जितना आज हो रहा है।

सन् १९२९ के दिसम्बर मे लाहौर मे अखिल भारतीय गो-परिषद के सभापति-पद से बाबू गोविन्ददासजी ने अपने भाषण मे कहा था—

"फयवा-हुमायुनी जिल्द १ पन्ना ३०७ पर लिखा है, इस्लाम के मजहबी नियत से गोहत्या जरूरी नही है। नीचे लिखा फतवा मौलाना अब्दुलहसन मुहम्मद अबदुल्ला, मुहम्मद अब्दुलवहाब, अब्दुलहमीद काजी मुहम्मदहुसेन आदि कई मुसलमान मौलवियो के दस्तखतो से मशहूर हुआ है—'गोवध कोई जरूरी बात नही। अगर कोई मुसलमान छोड देता है तो गुनाह नही करता। अगर कोई मुसलमान गाय न काटे या गोमास न खावे तो उसके मजहब पर कोई फर्क नही पडता। झगडे टालने के लिए और खासकर ऐसी जगहो मे जहां झगडे या बुरे विचार पैदा होने का अन्देशा है, गाय की कुरबानी न होनी चाहिए। किसी

मज़हबी जज़बात को चोट पहुंचाने का इस्लाम मज़हब सबक नहीं सिखाता।' मुसलमानों के राज्य में भी गाय की कुर्बानी बहुत दूर तक बन्द थी। डाक्टर सैयद महमूद ने अपनी एक किताब 'काऊ प्रोटेक्शन अन्डर मुस्लिम रूल' में लिखा है—'मुस्लिम राज्य की शुरुआत में ही कसाइयों पर फी गाय १२ जीतल का खास टैक्स लगाया गया था। यह (टैक्स) मुसलमानी राज्य की शुरुआत से फीरोज़शाह तुग़लक के वक्त तक यानी २०० वर्ष तक बराबर जारी रहा। जब बाबर तख्तनशीन हुए तब उन्होंने अपने बेटे हुमायूं को पोशीदा वसीयत नामा लिखा, जिसमें गाय की कुर्बानी कतई बन्द करने का फरमान जारी किया था। आईन-ए-अकबरी और दूसरी किताबों से यह बात साफ ज़ाहिर होती है।' मशहूर इतिहास लेखक मिस्टर विन्सेण्ट स्मिथ ने 'अकबर दी ग्रेट मुग़ल' में लिखा है कि 'अकबर के राज्य में गाय की कुर्बानी के वास्ते फांसी की सज़ा थी। आज भी कई मुस्लिम राज्यों में गाय की कुर्बानी बन्द है।''

है कि "इस देश मे किसी गाय या बैल की हत्या नही की जाती, क्योकि इन पशुओ से यहा ठीक उसी तरह से खेती का काम लिया जाता है जैसे हालैण्ड मे घोडो से। बादशाह ने गाय-बैलो की हत्या करने की मनाही करदी है। जो कोई हत्या करता है, उसे फासी की सजा दी जाती है। उन्होने भैसो की हत्या करने की आज्ञा देदी है। बादशाह ने यह कानून हिन्दू राजाओ, बनियो और अपनी प्रजा को, जो गाय को सबसे बडा देवता और प्राणीमात्र मे सबसे अधिक पवित्र मानते है, प्रसन्न रखने के लिए बनाया है। ये लोग बादशाह और सरकार पर कभी-कभी इस बात का दबाव डालते है कि कुछ त्योहारो पर बाजारो मे मास नही बिकने जाना चाहिए और कोई भी आदमी न मछली पकडे और न किसी जानवर की हत्या करे। इन आज्ञाओ से कभी-कभी प्रजा को असुविधाये होती है। ये लोग हम लोगो के विपरीत, गर्मी की वजह से ज्यादा भोजन नही कर सकते, बल्कि पानी बहुत ज्यादा पीते है, जिससे वे कमजोर और मोटे हो जाते है।' उपर्युक्त उद्धरण देकर श्री० अब्दुर्रहीम ने अपने सहधर्मी भारतीय मुसलमानो से अपील की है कि वे अपने बडे-बडे मुगल बादशाहो की सहनशीलता से शिक्षा ग्रहण करे और देश की एकता के लिए अपने देशवासियो को प्रसन्न करने के हेतु अधिक उदारता और विवेक से काम ले। इसके साथ ही आपने हिन्दुओ से उक्त यूरोपियन फ्रान्सिसको के कथन की ओर ध्यान देने तथा मुसलमानो की असुविधाओ का पूरा ध्यान रखने की प्रार्थना की है।'

मुसलमान हाकिम भी एक तो हिन्दुओ का लिहाज करके, दूसरे खासकर अन्नधन की तरह गोधन को भी बडी भारी सम्पत्ति समझकर उसकी रक्षा करते थे।[१] आज भी अमेरिका, कनाडा, इंग्लिस्तान, यूरोप

१ कलकत्ते की 'काऊ प्रोटेक्शन सोसाइटी' के मत्री मौलवी वाहिद

आदि जितने देशों में खेती होती है उनमें गोपालन पर बहुत बड़ा ज़ोर दिया जाता है। यूरप अंग्रेज़ों के देश में गायों की बड़ी सेवा होती है और गाय बहुत ज्यादा दूध देती है, परन्तु भारत के गोधन की रक्षा की तरफ उनका ध्यान नहीं है। भारत में अपनी हुकूमत बनाए रखने के लिये वह जो भारी सेना रखते हैं उसको भोजन के लिए नित्य गोमांस चाहिए। इन्हीं गोरों के लिए बड़े भारी परिमाण में नित्य गोवध होता रहता है। सिविलियन और सेना दोनों के खाने के लिए १० से लेकर २० हज़ार तक गौओं का वध होता है। यह क्रिया हिन्दुओं की आँखों के सामने नहीं होती इसलिए इस बात पर न तो कोई उत्तेजना होती है। और न कोई धर्म-प्राण हिन्दू इस महा पातक का विचार न ही पाता है।

कारणो की अपेक्षा केवल नाममात्र है। इस तरह गोवंश का नाश अधिकाँश भोजन और व्यापार के लिए ही होता है।

वध के सिवा एक और तरह से भी हमारे यहा गाय-बैल की कमी होती जाती है। इस देश के चुने हुए अच्छे-से-अच्छे मवेशी भी हिन्दुस्तान के बाहर, दूसरे देशो के कल्याण के लिए भेज दिये जाते है। सन् १९२४-२५ मे इस तरह भेजे जानेवाले बैलो और साडो की गिनती १०,१९५ थी, वही सन् १९२८-२९ मे १९,३५८ होगई। बाहर जाने वाले मवेशियो की गिनती इस तरह बराबर बढती ही जारही है। विदेशो में अच्छे साडो से तो गोवश बढाने का काम लिया जाता है, परन्तु बैलो से उस तरह से काम नही लिया जा सकता, उनका मांस ही काम मे आता है। क्योकि अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया सभी गोरे देशो मे हल जोतने का और गाडी खीचने का काम घोडो से लेते हैं। बैलो से इस तरह के काम केवल हमारे देश मे लिये जाते है।

इस प्रकार चाहे इस देश मे गोरो और मुसलमानो के खिलाने के लिए और चाहे व्यापार के लिए गोवश का नाश किया जाता है और चाहे यहाँ से भू-भाग से हटाकर उन्हे बाहर भेज दिया जाता हो, हमारे देश के गोधन मे हर तरह नित्य कमी होती जा रही है। इस तरह की दिनोदिन की बढती हुई कमी कैसे रोकी जाय, यह पहला सवाल है। गोधन जो नित्य घटता जा रहा है, पहले इस घटी को हम रोक ले तब बढाने की चिन्ता करना उचित होगा। बढाने की चिन्ता पहले ही हम करे और नित्य की घटती का द्वार बद न करे तो हम गोवश बढाने में कभी सफल नही हो सकते। अब तक जो असफलता हुई है उसका रहस्य यही है।

लेकिन जहाँ हम इतनी बडी गिनती मे नित्य के गोवध का कारण

अंग्रेजों को ठहराते हैं, वहाँ हमें यह न भूलजाना चाहिए कि आज तक गोवध को दूर करने में हमारी जिम्मेदारी बहुत भारी है, और हम भी परदेशी गो-भक्षियों से कम दोषी नहीं हैं। इस बात को हम बिसरा नहीं सकते कि कटने के लिए गायें बेचने वाले हमीं हैं। अगर हम अपने गाय-बैल-बछड़े उनके हाथ न बेचें तो यह गोहत्या कभी हो नहीं सकती। आम तौर पर हममें से बहुत से लोग बूढ़ी और लंगड़ी-लूली गायें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से कसाइयों के हाथ बेच डालते हैं। किसानों और ग्वालों में से बहुतेरे जो शहर के भीतर या शहर के पास अपना रोजगार करते हैं, दूध देनेवाली या गाभिन गायें खरीद कर जब तक दूध होता है तब तक रुपये कमाते हैं और जब दूध टूट गया तो घर बैठाकर खिलाने की बला टालने के लिए गाय को बेच डालते हैं और दूसरी दूध देनेवाली मोल ले लेते हैं। उनका रोजगार चोखा हो जाता है

कारणो की अपेक्षा केवल नाममात्र है। इस तरह गोवश का नाश अधिकांश भोजन और व्यापार के लिए ही होता है।

वध के सिवा एक और तरह मे भी हमारे यहां गाय-बैल की कमी होती जाती है। इस देश के चुने हुए अच्छे-से-अच्छे मवेशी भी हिन्दुस्तान के बाहर, दूसरे देशो के कल्याण के लिए भेज दिये जाते है। सन् १९२४-२५ मे इस तरह भेजे जानेवाले बैलो और साडो की गिनती १०,१९५ थी, वही सन् १९२८-२९ मे १९,३५८ होगई। बाहर जाने वाले मवेशियो की गिनती इस तरह बराबर बढती ही जारही है। विदेशो मे अच्छे साडो से तो गोवश बढाने का काम लिया जाता है, परन्तु बैलो से उस तरह से काम नही लिया जा सकता, उनका मांस ही काम मे आता है। क्योकि अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया सभी गोरे देशो मे हल जोतने का और गाडी खीचने का काम घोडो से लेते है। बैलो से इस तरह के काम केवल हमारे देश मे लिये जाते है।

इस प्रकार चाहे इस देश मे गोरो और मुसल्मानो के खिलाने के लिए और चाहे व्यापार के लिए गोवश का नाश किया जाता है और चाहे यहाँ से भू-भाग से हटाकर उन्हे बाहर भेज दिया जाता हो, हमारे देश के गोधन में हर तरह नित्य कमी होती जा रही है। इस तरह की दिनोदिन की बढती हुई कमी कैसे रोकी जाय, यह पहला सवाल है। गोधन जो नित्य घटता जा रहा है, पहले इस घटी को हम रोक ले तब बढाने की चिन्ता करना उचित होगा। बढाने की चिन्ता पहले ही हम करे और नित्य की घटती का द्वार बद न करे तो हम गोवश बढाने मे कभी सफल नही हो सकते। अब तक जो असफलता हुई है उसका रहस्य यही है।

लेकिन जहाँ हम इतनी बडी गिनती मे नित्य के गोवध का कारण

अंग्रेजो को ठहराते है, वहाँ हमे यह न भूलजाना चाहिए कि आज तक गोवध को दूर करने मे हमारी जिम्मेदारी वहुत भारी है, और हम भी परदेशी गो-भक्षियो से कम दोषी नही है। इस वात को हम विसरा नही सकते कि कटने के लिए गाये वेचने वाले हमी है। अगर हम अपने गाय-वैल-वछडे उनके हाथ न वेचे तो यह गोहत्या कभी हो नही सकती। आम तौर पर हममे से वहुत से लोग वूढी और लगडी-लूली गाये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से कसाइयो के हाथ वेच डालते है। किसानो और ग्वालो मे से वहुतेरे जो शहर के भीतर या शहर के पास अपना रोजगार करते है, दूध देनेवाली या गाभिन गाय खरीद कर जव तक दूध होता है तव तक रुपये कमाते है और जव दूध टूट गया तो घर वैठाकर खिलाने की वला टालने के लिए गाय को वेच डालते है और दूसरी दूध देनेवाली मोल ले लेते है। उनका रोजगार चोखा हो जाता है, परन्तु गाय कसाईखाने मे चली जाती है। देश मे गोरक्षिणी सभाये है और पिंजरापोल है। पर ये सस्थाये इतनी थोडी है कि इनमे वहुत कम रक्षा होती है। वेचारे किसान और ग्वाले भी क्या करे, वे तो आप भूखो मरते है, और मरता क्या न करता? भूखी माये जव अपनी सतान का परित्याग कर देती है, तो फिर ये कगाल गोवश का परित्याग करे तो अस्वाभाविक नही है। अत ग्वाले और किसान ऐसा सत्याग्रह कर सकते है कि भारत की एक भी गाय गोभक्षियो के अधिकार मे न जाने पाये। इस काम के लिए गांव-गांव मे पिकेटिंग हो सकती है। और गोवश की रक्षा का पूरा उपाय हो सकता है। इस काम मे मुसल्-मान भाई जव तक हमारी मदद न करेगे तव तक हमे कभी सफलता नही हो सकती। परन्तु असहयोग और सत्याग्रह की लडाई मे किसी दल, किसी जाति या किसी समाज-विशेष के रूठ वैठने से हार नही हो

सकती । सबके एक मे मिल जाने मे जीन आसान जरूर हो जाती है ।

जहां तक चारे का सम्बन्ध है वहां तक सरकार हर तरह पर जिम्मेदार है । किसान की असमर्थता भी उसीके कारण है । इसलिए किसानो को प्रयत्न करके जगलो मे ढोर चराने और लकडी लेने का अपना पुराना अधिकार उससे वापस लेना चाहिए ।

जब विदेशी कारणो से उपजा हुआ गोवध बन्द होजाय और ढोरो के लिए गोचर-भूमि मिल जाय और चरने के लिए जगलो का द्वार खुल जाय, तो तीन-चौथाई गोरक्षा निश्चित समझनी चाहिए । जब किसानो की बेकारी पहले अध्याय मे बताये हुए उपायो से दूर होजायगी, और जब खद्दर के द्वारा विदेशी माल का पूरा बहिष्कार हो जायगा, तब किसानो के पास अनाज की कमी न रहेगी, वे भूखो न मरेगे और अपने ढोरो को भर पेट खिला सकेगे । तब गोवश के सुधार का सवाल दो चार वर्षो का प्रश्न रह जायगा । तब सस्ती लकडी जलाकर अनमोल गोबर को वे खाद के काम मे लावेगे, और तब खेतो से कुबेर का गडा खजाना निकल पडेगा । किसान फिर आसानी के साथ ऋण भार से अपने को मुक्त कर सकेगा, और गोरक्षा के पुण्य प्रभाव से भारत का सौभाग्य लौट आवेगा ।

: ७ :

संगठन का श्रीगणेश

१. संगठन की ज़रूरत

देश मे जब स्वराज्य हो जायगा तब उसका क्या रूप होगा, इस बात के ऊपर बहुत शास्त्रार्थ हो चुका है। इस शास्त्रार्थ मे बेचारे किसान की वकालत करनेवाला, दरिद्रो के लिए अपने को मिटा देनेवाला जो पुरुषोत्तम है उसने उपेक्षा का भाव दिखाया। बात यह है कि जो लोग पूर्ण स्वराज्य का रूप नही देखे हुए है वे उसके भावी रूप का निश्चय नही कर सकते, साथ ही जब हम यह देखते है कि भारतवर्ष किसानो का देश है और हर दस आदमी मे ७ आदमी खेती पर निर्वाह करते है तो इसमे हमे तनिक भी सदेह नही रह जाता कि स्वराज्य असल मे किसानो का ही हो सकता है। अगर किसानो का न हुआ तो १० मे तीन आदमियो का स्वराज्य असम्भव कल्पना है। थोडी देर के लिए हम मान भी ले कि मुट्ठी भर पढे-लिखे लोगो ने राज्य की स्थापना कर ली, तो भी जब तक किसानो का सगठन न होगा तब तक देश दरिद्र बना रहेगा और देश की दरिद्रता जब तक दूर न होगी तब तक स्वराज्य का उद्देश्य सिद्ध न होगा, और जिस काम मे उद्देश्य ही पूरा न हुआ वह काम पूरा कैसे कहा जा सकता है ?

देश मे मजूरो तक का सगठन हो गया है, और सारे भारत के मजूर अब अपने प्रतिनिधि अखिल भारतीय मजूर सघ मे भेजते है। परन्तु मजूरो का सगठन उन बडे शहरो का सगठन है जिनमे मिले है।

और कल-कारखाने है। इस सघ मे वे लाखो और करोडो मजूर नही शामिल है जो नाम को तो किसान है पर जिन्हे खेती से भरपूर मजूरी नही मिल सकती, इसीलिए वे गावो मे अपने भाई किसानो के यहा या जमीदारो के यहा मजूरी करते है या बडी-बडी बस्तियो और कस्बो मे और छोटे-छोटे शहरो मे बेलदारी, पल्लेदारी या कुली का काम करते है। मजूर-सघ के सगठन मे यह कमी है, और यह कमी थोडी नही है।

किसानो का सगठन कितना जरूरी है, यह प्रतिपादन करना आज व्यर्थ ही मालूम पडता है। सगठन न होने से किसानो को जितने कष्ट होते है उनका वर्णन समय-समय पर देश के हितैषी करते रहे है। अब सवाल सिर्फ यही है कि सगठन का आरम्भ किया कैसे जाय। प० श्री-कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दो मे "जरूरत है इस बात की कि हिन्दुस्तान में, इस पन्थो के मुल्क हिन्दुस्तान मे, किसान-पन्थ चले। किसानो के सग-ठन का काम ही महात्मा गोखले के शब्दो मे हमारा धर्म होजाय। इस पन्थ को माननेवाले बाबा किसान-दास गॉव-गॉव मे पैदा हो जायें। वे बाबा किसानदास गॉव की किसान-कुटी मे रहे। एक वक्त चुटकी मॉग लाया करे, उससे अपना पेट भरे और दिन-रात किसानो की भलाई की बाते सोचे। उनकी सेवा करने, उनका सगठन करने मे उन्हे उनकी भलाई की बाते बताने मे लगे रहे। उन्हे मिलकर सफाई के साथ रहने और चरखा चलाने की शिक्षा देते रहे। लिखा-पढी करके उनकी जरूरते पूरी कराते रहे और उनकी शिकायते दूर कराते रहे। गॉव-गॉव में किसान-कुटी हो। एक-एक किसान-कुटी मे किसानो की कालीमाई, धरतीमाई, भारतमाई की मूर्ति और उसका मन्दिर हो। हर मन्दिरमे बाबा किसानदास हो जो चुटकी से आये हुए आटे से किसानो

की माई को भोग लगाकर खुद प्रसाद पावे। इस किसान-पन्थ मे हर गाँव मे किसानो की सभा का होना धर्म हो। उस सभा का मेम्वर होना और उसकी आज्ञा मानना हरेक किसान का धर्म हो। किसान-पन्थ मे जो किसान-सभा का मेम्वर न वने वह और जो किसान सभा कायम न करे वह गाँव धर्म-विमुख समझा जाय और जो झूठी गवाही दे वह सवसे वडा पापी समझा जाय। गाँव-गाँव मे किसानो की कथाये हो। गाँव-गाँव मे किसानो को कितावे पढकर सुनाई जाँय। गाँव-गाँव मे यह गूंज उठे कि पन्थ तो किसान-पन्थ है और सव पन्थ झूठे है। हर किसान का यही कथन हो कि वावा तो वावा किसानदास है और सव वावा झूठे है। जिस दिन यह होगा उसी दिन किसानो का उद्धार भी हो सकेगा। इससे पहले हरगिज नहीं—हरगिज नही।"

२ आरम्भ कैसे किया जाय?

सचमुच गाँवो का वास्तविक सगठन गाँववाले ही कर सकते है। किसानो का सगठन करने के लिए ऐसे ही नेताओ की जरूरत है जो वावा किसानदास वनकर गाँवो मे अपनी कुटी वनाले और गाव की चुटकी पर अपना निर्वाह करे। कोई शहर का आदमी जिसे किसान के कामो का और उसके जीवन का कोई तजुरवा नही है, इस तरह का वावा किसानदास वनने की योग्यता नही रखता। वह कुटुम्वी किसान भी जो परिवार के पालन-पोषण और व्यवसाय और दरिद्रता के चहले मे फसा है, वावा किसानदास वनकर नही वैठ सकता। वावा किसान दास अपनी पूजा कराने के लिए नही होगे। वह दरिद्रनारायण की उपासना करने के लिए अपने सुखो का त्याग कर देगे। वह जो कुछ सगठन करेगे उसमे आनेवाले सकटो के सहने के लिए अपनी आहुति पहले देगे। परन्तु अभी तो वह किसान-पथ चला नही है जिससे गाव-

गाँव मे किसानदास का अवतार होगा। इस पथ को चलाने के लिए अभी कुछ प्रारम्भिक उद्योग करने होगे।

पूर्ण स्वराज्य के वर्तमान आन्दोलन मे हजारो आदमी ऐसे है जो ग्राम-सगठन के शुरू के काम के लिए बहुत उपयुक्त है। हमारे राष्ट्रीय विद्यापीठो मे और काग्रेस की सस्थाओ मे ऐसे लोगो को अधिक नही तो आठ-दस दिन[1] की शिक्षा देने की जरूरत है, जिससे वे शुरू के काम कर सके। इन्हे ग्राम-सगठन के लिए स्वयसेवक बनाकर थोडे ही समय मे ऐसा तैयार किया जा सकता है कि वे साल दो साल के लिए त्यागपूर्वक गाँवो मे काम कर सके। परन्तु हर जगह तो राष्ट्रीय विद्यापीठ नही है, और यह काम तो हर जिले मे बहुत जोरो से करने की जरूरत होगी। ऐसे स्वय सेवको की गिनती भी थोडी नही होगी। अगर छ महीने के लिए १०-१० गावो का सगठन करने के लिए एक एक स्वय सेवक रखा जाय, तो सात लाख गावो के लिए सारे भारत मे काम करने को सत्तर हजार आदमी चाहिए। सगठन के शुरू का काम कराने के लिए हर गाँव मे एक-एक नेता खोज लेने के लिए हर गाव का एक-एक मडल बनाने के लिए यदि एक आदमी छ महीने तक परिश्रम करता रहे तो काफी है, और सत्तर हजार की सख्या भी बहुत बडी नही है। हर जिला काग्रेस कमेटी अपने को ग्राम-सगठन का बोर्ड बनाले और अपना यह कर्तव्य समझे कि जिले मे जितने गाव है उन गाँवो के दशमाश स्वय-सेवक बनाकर उन्हे ज्यादा-से-ज्यादा आठ-दस

१ मुझे इस बात का अपना तजर्बा है कि चार घटा रोज काम कराके ८ दिन में धुनने और कातने की पूरी शिक्षा दी जा सकती है। २-३ घटे और शिक्षा देकर संगठन का काम अच्छी तरह समझाया जा सकता है। —लेखक

दिन तक मे आरम्भिक काम की शिक्षा देदे तो कोई बडी बात नही है। जो लोग कांग्रेस के प्रमुख नेता भी है और देश मे गाँवो की दशा से पूरे परिचित है, उन लोगो को काग्रेस की कार्य्य-समिति की आज्ञा पर एक उपयुक्त समिति बनकर ग्राम-सगठन की आवश्यकताओ पर पूरा विचार करना चाहिए। किसान-सघ की रचना और साधारण नियमावली का एक नमूना तैयार करदे, दस-दस गाँवो पर नियुक्त होनेवाले स्वय सेवक को क्या-क्या करना होगा इसका निर्देष पूरा-पूरा करदे और आठ दिन के भीतर खतम होने लायक ऐसी विषयावली बनादे जिसपर व्यवहार करते हुए स्वय-सेवक को कोई अडचन न पडे। यह बोर्ड जिला काग्रेस कमेटियो से सीधा सबध रखकर सारे भारत मे ग्राम-सगठन के आरम्भिक काम का पूरा प्रबन्ध करे। यह काम काग्रेस का ही है और काग्रेस का सगठन ऐसा है जो आज ही गाँव-गाँव पहुँच सकता है। सरकार ने जो ज़िला बोर्ड बना रक्खे है उनके सगठन मे जिला काग्रेस कमेटी का सगठन अधिक सुगम और सुकर होगा।

जब हमने स्वय सेवक तैयार कर लिये और उन्हे गाव-गाव मे तैनात करना है, तो जिला काँग्रेस कमेटी का यह काम होगा कि अपनी तहसील कमेटियो से सलाह करके दस-दस गाँवो के मडल बनावे और किसी काग्रेस नेता को उन स्वय-सेवको के साथ भेजे कि मडल के मुख्य-मुख्य गावो में स्वय-सेवको को लेजाकर सगठन की कुटिया बनादे और गाव वालो को बुलाकर वह ग्राम सेवक उनको सौप दे। काग्रेस के उस नेता का यह भी कर्तव्य होगा कि वह समय-समय पर दौरा करके देखे कि कैसा काम हो रहा है, ग्राम-सेवको को सहायता पहुँचावे और जो-जो ग्राम-सेवक अपना काम करने मे किसी तरह असमर्थ हो जायँ उनकी जगह पर दूसरे ग्राम-सेवक का काम करने के लिए प्रबन्ध कर देवे।

३. किसान-संगठन का स्थायी काम

किसान-सगठन का जो काम लडाई के समय में शुरू किया जाय वह केवल लडाई के दिनो के लिए ही न समझा जाय। यह तो वह काम है जो परीक्षा की कसौटी पर कसा जा चुका है। जो काम लडाई के समय मे भी सफल हो चुका वह साधारण समय मे तो और भी अधिक सफल होना ही चाहिए। पशु-बल वाली सेना म सिपाही लोगो को तभी तक काम रहता है जब तक मारकाट होती रहती है। जिन घडियो में बेकारी के भयानक रोग का इलाज किसान-सगठन का पहला काम है, इस बेकारी को दूर करके सगठन की शिक्षा पाने वाला किसान फिर भी निश्चिन्त नही रह सकता। पिछले अध्यायो में वर्णित असहयोग और सत्याग्रह, धनवान-निर्धन का सम्बन्ध, ऋणभार, मुकदमेबाजी और गोवध बद करने के लिए उसे बहुत बहुत काम करने है। साथ ही उन्हे अपने-अपने गांव के लिए स्थायी रूप से शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, विनोद और सेवा के कामो का सगठन भी करना है। साधारण समयो मे सगठन का काम उसके लिए सारे जीवन का काम है।

किसान-सघ के सगठन के सम्बन्ध में ६ अगस्त १९२९ के "सैनिक" में एक स्कीम प्रकाशित हुई थी। वही योजना हम यहां एक मसविदे के तौर पर देते है कि ग्राम-सगठन करनेवालो को अपनी नियमावली बनाने में सहायता मिले। हमने इसमे आवश्यक परिवर्तन इसलिए कर दिये है कि यह नियमावली समय के अनुकूल हो जाय —

कृषि-जीवी-सघ

किसान सभाओ का नाम किसान-सघ रक्खा जाय, जिसमे जिनकी जीविका खेती से चलती है वे सभी किसान-सभा के मेम्बर हो सके—

किसान तथा ज़मीदार सभी उसमे शामिल हो सके यह सभा अपनी तरफ से किसानो और ज़मीदारो मे सहयोग स्थापित करे ।

सघ का उद्देश्य

हर शान्त और न्याय्य तरीके से—

(१) खेती और खेती से गुज़र करनेवालो की तरक्की करना,

(२) किसानो को जो हक मिले हुए है, उनकी रखवाली करना,

(३) जो हक खेती और खेती से गुज़र करनेवालो की तरक्की और वहतरी के लिए और मिलने चाहिएँ वे दिलाना,

(४) गाँवो और गाँववासियो की सेवा और सुधार का काम करना, तथा

(५) किसानो का वहुत मज़बूत, सदा के लिए सगठन कायम करना और उसके द्वारा ग्राम-स्वराज्य स्थापित करना हो ।

उद्देश्य-पूर्ति के साधन

इन उद्देश्यो की पूर्ति करने के लिए सभा निम्नलिखित उपायो से काम ले—

(१) शिक्षा द्वारा किसानो को उनके नैतिक हको और कर्तव्यो का ज्ञान कराना, जिससे वे अनैतिक कार्यवाहियो से अपने को रचा सके और अपने कर्तव्यो का पालन करके अपना भला कर सके ।

(२) महकमा खेती, महकमा नहर, महकमा तन्दुरुस्ती, महकमा तालीम, महकमा सहयोग समिति, महकमा माल, महकमा उद्योग-धन्धे वगैर का और ज़िला सभा का किसानो और किसानी के फायदे के लिए ज्यादा-से-ज्यादा और सर्वोत्तम उपयोग करना । इन महकमो से किसानो को ज्यादा-से-ज्यादा मदद दिलाना । किसानो की सामाजिक बुराइयो को दूर करने के लिए प्रचार करना, उनमे आपस मे प्रेम और

मिलकर काम करने का भाव पैदा करने की कोशिश करना। उनके आपसी झगड़े मिटाने के लिए पंचायतें कायम करना। उनकी शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, विनोद और सेवा के प्रबन्ध कराना।

मेम्बर

हरेक किसान फिर चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, जिसकी उम्र अठारह साल से ज्यादा है, सभा का मेम्बर हो सकता है। मेम्बरी की फीस चार आने फसल रक्खी जाय। इस तरह अगर ज़िले भर में दस हज़ार मेम्बर बना लिये जायं और मामूली तौर पर दो फसलों का हिसाब रक्खा जाय तो किसान सभा को पाँच हज़ार रुपये साल की आमदनी हो सकती है, जिससे किसानों की सेवा और सुधार के लिए एक-एक ज़िले में पचासों सुशिक्षित, सुसंगठित कार्यकर्ता, रक्खे जा सकते हैं। किसान सभा के सुव्यवस्थित बाकायदा दफ्तर रक्खे जा सकते हैं। किसानों की सेवा के छोटे-छोटे कार्य करके उनके लिए सभा द्वारा मुफ्त कानूनी सलाह, मुफ्त चिकित्सा वगैरे का इन्तज़ाम करके उन्हें हर महकमें से मदद दिला कर, सुख-दुख में उनका साथ देकर, जुल्मों और मुसीबतों से उन्हें बचाकर चार आना फसल लेना कोई मुश्किल बात नहीं है। चार आने का नाज तो फसल पर गरीब-से-गरीब किसान राह चलते फकीर को दे देता है।

(१) जिस गाँव में कम-से-कम दस मेम्बर हो जायंगे, उसमें गाँव की किसान-सभा कायम की जा सकेगी परन्तु किसान-सभा में साधारणतया घर पीछे एक सदस्य रहेगा।

(२) किसान-सभा के संगठन की इकाई हलका किसान-सभा होगी।

(३) हर जिले में जिला-सभा के चुनाव के जितने हलके होंगे उतने ही हलके किसान-सभा के भी होंगे।

(४) कम-से-कम पचास मेम्बर होने पर हलका किसान-सभा कायम हो सकेगी।

(५) हलके की किसान-सभा की कार्यकारिणी के मेम्बरों की तादाद पचास तक हो सकती है। इन मेम्बरों और कार्यकारिणी के पदाधिकारियों—सभापति, उपसभापति, मन्त्री, उपमन्त्री, कोषाध्यक्ष, हिसाब-निरीक्षक तथा ज़िला-सभा के लिए दो मेम्बरों का चुनाव हलके-भर के मेम्बर वैसाख सुदी १५ तक कर लिया करेंगे।

(६) चुनाव की इत्तिला तमाम मेम्बरों को नाई या स्वयंसेवकों के हाथों पहले चिट्ठियाँ भेजकर या डौंडी पिटवाकर या नोटिस बँटवा-कर कम-से-कम सात दिन पहले करनी होगी। चुनाव में वे ही मेम्बर वोट दे सकेंगे जिनकी फीस चुनाव से एक दिन पहले तक सभा के दफ्तर में जमा हो चुकी होगी।

ज़िला किसान सभा

(७) ज़िला किसान-सभा की कार्यकारिणी में जितने हलके होंगे उसके दुगने तथा उनके बाद की दहाई में जितने कम होंगे उतने और मेम्बर होंगे। यानी अगर किसी ज़िले में इक्कीस हलके होंगे तो इक्कीस दूनी बयालीस और आगे की दहाई के आठ और यानी कुल पचास मेम्बर होंगे।

(८) हरेक हलके से दो मेम्बर चुनकर आया करेंगे। आगे की दहाई को पूरा करने के लिए जितने मेम्बर और जरूरी होंगे उन्हें हलकों के चुने हुए मेम्बर बैठकर चुनेंगे।

(९) इन मेम्बरों का तथा ज़िला-सभा—पदाधिकारियों, के सभापति उपसभापति, मन्त्री, उपमन्त्री, कोषाध्यक्ष, आय-व्यय निरीक्षक तथा सूबे सभा के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव गंगा दशहरा तक हो जाना चाहिए।

(१०) मेम्बरी की फीस मे से एक-चौथाई सूबे की सभा को, एक-चौथाई ज़िला सभा को, और एक-चौथाई हलका सभा को देना होगा। बाकी एक चौथाई गाँव की किसान-सभा के पास रहेगा। जहा गाँव की किसान-सभा न होगी वहाँ उसका हिस्सा हलका सभा को मिलेगा। सूबे की सभा न होगी तो उसका हिस्सा ज़िला सभा को मिलेगा।

(११) ज़िला-सभा की वे ही हलका-सभाये अपने प्रतिनिधि भेज सकेगी जिनके मेम्बरो की फीस का चौथाई ज़िला-सभा को मिल चुका होगा। आधे से अधिक हलके के प्रतिनिधि चुने जाने पर ही ज़िला-सभा का बाकायदा सगठन हो सकेगा। हा, जहाँ सगठन पूरा न हो सकेगा वहाँ यानी शुरू मे काम करने के लिए अस्थायी ज़िला कमेटियां बनाई जा सकती है।

(१२) ज़िला सभा ज़रूरी समझे तो तहसील के हलके के प्रतिनिधियो तथा तीन बाहरी मेम्बरो की एक तहसील-सभा कायम कर सकती है।

सूबा सभा

(१३) सूबा सभा मे हर ज़िले के दो-दो चुने हुए प्रतिनिधि रहेगे, सूबा सभा के कुल मेम्बरो की तादाद, अपने पद के कारण जो मेम्बर है उनको छोडकर, एक सौ इक्कीस होगी। ज़िले के चुने हुए प्रतिनिधियो के अलावा जितनी जगहे बचेगी उनका चुनाव तथा सूबा सभा के पदाधिकारियो का चुनाव ज़िले के प्रतिनिधि आषाढ बदी पन्द्रह यानी अमावस तक कर लिया करेगे।

(१४) कम-से-कम आधे से अधिक ज़िलो के चुने हुए प्रतिनिधि होने पर ही सूबा सभा का बाकायदा सगठन हो सकेगा। हाँ, जबतक

ज़िला का सगठन न हो पावे, तबतक यानी शुरू मे स्थायी सूबा सभा बनाई जा सकती है।

(१५) सूबा सभा के भूतपूर्व सभापति प्रान्तीय कमेटी के अपने पद के कारण मेम्बर माने जायेंगे, लेकिन उनके लिए यह ज़रूरी होगा कि वे प्रान्त की किसी मूल किसान-सभा के सदस्य हो।

(१६) हलका-सभा के निर्वाचन के बाद चुने हुए मेम्बरो, पदाधिकारियो और प्रतिनिधियो की नामावली ज़िला-सभा के पास भेजदी जायगी और इस तरह ज़िला कमेटी के निर्वाचन के बाद चुने हुए मेम्बरो, पदाधिकारियो और प्रतिनिधियो की नामावली सूबा सभा के पास भेजदी जायगी।

(१७) हलका-ज़िला और सूबा सभाये अपने काम को ठीक तौर से चलाने के लिए एक छोटी-सी पचायत या कार्यकर्ता कमेटी बना सकती है।

(१८) गाँव, हलका, ज़िला और सूबा सभा के मेम्बर वही हो सकेंगे जो किसी-न-किसी किसान-सभा के मेम्बर है।

(१९) हरेक सभा मे कोरम उसके कुल मेम्बरो का पाँचवा हिस्सा होगा। इससे कम मेम्बरो की हाज़िरी मे सभा की कार्रवाई मान्य नही होगी। हाँ, मुल्तवी-शुदा मीटिग हो सकती है।

(२०) साधारण हलका, ज़िला और सूबा सभा की बैठके महीने मे एक बार हुआ करेगी। इनकी सूचना कम-से-कम एक हफ्ता पहले होजानी चाहिए। सब बाते बहुमत से तय हुआ करेगी।

(२१) सघ का रुपया बैंक मे जमा किया जायगा।

पालीवालजी ने ऊपर लिखी योजना ग्राम-स्वराज्य की दृष्टि से नहीं लिखी है, बल्कि विदेशी सरकार को मानकर ही वह योजना

बनाई गई है। हमारी राय मे हर गाँव की किसान-सभा मे हर घर से एक सदस्य चुनकर जाना चाहिए। इस सभा का यह काम होगा कि वह गाँव के कामो के लिए आवश्यक धन-सग्रह करने का बन्दोबस्त करे। यह बन्दोबस्त बेहरी, चदा या किसी तरह का कर लगाकर करना होगा। यह फसल पर चार आने वाले चन्दे से बिल्कुल अलग होगा। स्वराज्य होजाने पर किसानो के सगठन के खर्च और इन किसान-सभाओ को चलाने के लिए सूबे को, ज़िले को, तहसील को, और गाँवो को जो कर दिया जाना चाहिए वही यह कर होगा। ये किसान-सभाये गाव के भीतर स्वराज्य की इकाई बनावेगी, और किसान-सगठन को चलाने वाले खर्च के अलावा शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, विनोद और सेवा के काम के लिए एव समय-समय पर सत्याग्रह की लडाई के लिए जो कुछ खर्च करना होगा वह फसल पर चार आने के इस चदे के सिवाय होगा। गाँव की किसान-सभा इसके लिए उचित धन मजूर करेगी और कर के रुपये किसान-सभा की अन्तरग को देगी।

किसान-सभा की मुख्य कार्यकर्त्री सभा अन्तरग सभा होगी, जिसमे किसान-सभा का सभापति, गाँव का मुखिया, सभा का मत्री और दो सदस्य मिलाकर कुल पाँच आदमी होगे। यही पचायत असल मे गाँव पर हुकूमत करनेवाली पचायत होगी। किसान-सभा की आज्ञा के अनुसार यह पचायत धन का सग्रह करेगी, हरेक विभाग को मजूर किया हुआ खर्च देगी और वर्ष के अन्त मे सबसे हिसाब का ब्योरा लेगी और धन का सारा हिसाब देखभाल कर और जाँचकर किसान सभा की सालाना बैठक मे पेश करने के लिए ज़िम्मेदार होगी।

इस पचायत के सिवाय शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, विनोद और सेवा के लिए पाँच और पचायते होगी जो किसान-सभा अपने सदस्यो मे से

या बाहर के लोगों में से चुनेगी। यह भी जरूरी न होगा कि जो आदमी एक पंचायत का मेम्बर हो चुका है वह दूसरी पंचायत का मेम्बर न हो।

शिक्षा-पंचायत का यह कर्तव्य होगा कि गाँव के बूढ़े-बच्चे नर-नारी सबकी शिक्षा के लिए उचित उपाय करे। शिक्षा उन बातों की हो जिनकी किसान के जीवन में सबसे ज्यादा जरूरत है। शिक्षा पढ़ने-लिखने की भी हो और विनोद के विषय में भी हो। किसी बाहरी परीक्षा या प्रमाणपत्र के अधीन कोई शिक्षा न रक्खी जाय।

रक्षा-पंचायत का यह कर्तव्य होगा कि सारे गाँव की रक्षा का बन्दोबस्त करे। गाँव के लिए पहरुये चाहे तनख्वाह देकर रक्खे, और चाहे गाँव के सेवा-दल के आदमियों की बारी बाँध दे। खेती और व्यवसाय की रक्षा के लिए भी बन्दोबस्त करना रक्षा-पंचायत का काम होगा। इसके सिवाय आये दिन विदेशी आक्रमणों से बचने के लिए उपाय करने पड़ेंगे और सारे गाँव को असहयोग और सत्याग्रह की शिक्षा देकर अपनी स्वतन्त्रता और स्वराज्य की रक्षा के लिए बराबर तैयार रहना पड़ेगा। विदेशी व्यापार भी एक तरह की चढ़ाई समझी जायगी और उससे गाँव की रक्षा करना भी इसी पंचायत का काम होगा। गाँव के भीतर आपस के झगड़े जो किसान-सभा के भीतर होंगे वे सब इसी रक्षा-पंचायत में पहले आवेंगे। रक्षा-पंचायत का निपटारा अगर दोनों पक्षों में से किसी को मंजूर न होगा तो वह गाँव की किसान-सभा में अपील करेगा। किसान-सभा का फैसला आखिरी होगा।

व्यवसाय-पंचायत का काम होगा कि वह किसानों के सब तरह के व्यवसाय के सुधार और संगठन का बन्दोबस्त करे और ऐसे उपाय करे कि किसान फिजूलखर्ची से बचे और कर्जदारी से छुटकारा पा जाय। शिक्षा-पंचायत से मिलकर इस पंचायत को भी गाँव के स्वच-

साय और व्यापार की रक्षा के लिए पूरा उद्योग करना पड़ेगा।

विनोद-पचायत का यह काम होगा कि तीज-त्योहार, मेले आदि का प्रवन्ध करे, उन्हे किसानो के लिए लाभदायक बनावे। नित्य के खेल-कूद, व्यवसाय आदि का प्रवन्ध करे और नशे आदि कुटेवो से किसानो को दूर रक्खे। किसानो के मेहनती जीवन को जिन-जिन नैतिक उपायो से सुखी वनाया जा सकता है वे सब उपाय इस पचायत को करने होगे।

सेवा-पचायत का काम हर तरह की सेवा है। रोगी की सेवा के लिए वैद्य का प्रवन्ध, औषधि का वन्दोवस्त, रोगी की परिचया आदि इस सेवा-पंचायत का एक विभाग होगा। भूखो मरते हुए किसी भाई को अन्न पहुँचाना, लगडे-लूले अपाहिज के खाने-कपडे का बन्दोवस्त करना, जिसके छाया न हो उसके लिए छाया का उपाय करना, जिसे किसी दुर्घटना मे चोट लग गई हो, जो जल गया हो, जिसे जहरीले जानवरो से या जहरो से पीडा हो, उसका कष्ट दूर करना, एकाएकी किसी आफत के आजाने पर पीडितो की रक्षा करना इत्यादि सभी काम सेवा-पचायत के है। सेवा-पचायत अपने अधीन एक सगठित सेवा-दल रक्खेगी जो जरूरत पडने पर उचित सेवा किया करेगा। इसी सेवा-दल से रक्षा-पचायत भी काम लिया करेगी।

ये पाँचो पचायते अपने-अपने काम मे एक-दूसरे की वरावर सहायता करेगी और हर तरह पर गाव की किसान-सभा के अधीन होगी।

अतरग की चर्चा करते हुए हमने मुखिया की चर्चा की है। गाव का मुखिया गाँव का सब-से वडावूढा और समझदार आदमी होगा, जो गाँव की भलाई की सब वाते, जिनका सम्वन्ध गाँव के वाहर के लोगो से होगा, आप जाकर निपटावेगा। इसका चुनाव लम्वे समय के लिए हुआ करेगा, जैसे पाच या सात वरस, और जरूरत होगी तो मुद्दत पूरी

होने पर फिर उसीका चुनाव हो सकेगा। गाँव का नेता इसी मुखिया को समझना चाहिए। यह किसान-सभा का सभापति भी चुना जा सकेगा, परन्तु तीन-तीन साल के चुनाव मे यह जरूरी होगा कि एक ही आदमी लगातार सभापति न चुना जाय।

४ गाँव के नेता की उत्पत्ति

आज किसानो की इतनी भारी आबादी होते हुए भी उनमे इतना जीवन नही है कि आये दिन के सकटो मे कोई उनके ही बीच से निकलकर उनका अगुवा बने और सकट को दूर करने के लिए उपाय करे और करावे। करोडो कण्ठ भावो से भरे होते हुए भी वाणी के न होने से जड और गूगो की तरह चुप है और चुपचाप विपत्ति झेलते है। पर ऐसी दशा अब नही रह सकती। भारत की उर्वरा भूमि महात्मा गाधी जैसे पुरुषोत्तम के आदर्श के ऊपर चलनेवाले असख्य वीरो के खून से सीची जा रही है। सच्चे भारतवासी किसान है और उन्ही किसानो मे से इसी धरती मे बहुत जल्दी ही नये जीवन वाले किसान-नेता एका-एकी निकल पडेगे, जो अहिंसा और सत्य के अनुयायी होगे और जो किसान-सगठन और ग्राम-सगठन को अपने हाथो मे ले लेगे। उस समय गावो मे नेताओ की कमी नही रहेगी। उस समय बडे बाहरी पढे-लिखे नेताओ की तलाश न होगी।। यही गाव के सभापति होगे, मुखिया होगे, सगठन करनेवाले होगे। जबतक ऐसे नेता पैदा नही हो जाते तब-तक हमारे देश मे जो लोग वर्तमान लडाई मे अगुवा हो रहे है उन्हीसे सगठन के काम मे मदद लेनी पडेगी। उन्हीसे भावी नेता के निर्माण, उपनयन और शिक्षा की आशा करनी पडेगी।

इन लोगो का काम भी थोडा नही है। सोते हुए कृषको और हलधरो को जगा देना, और उन्हे उस काम मे सचेत कर देना जो देश

उनसे चाहता है, थोडा नही है। आजकल के हमारे काम करनेवाले दागबेल डालनेवाले लोग है जिसे देखकर आगे आनेवाली पीढियाँ अपने-अपने रास्ते समझेगी और उन्हे जल्दी-से-जल्दी अपना कार्यक्रम निश्चित करने मे बडी मदद मिलेगी। बात यह है कि किसानो को अपने पैरो पर खडे होना है। किसानो के अगुवा किसानो को ही होना है। बाहर का आदमी उनका काम बहुत दिनो तक नही कर सकेगा। उनकी योग्यता भी उसमे न होगी। किराये के टट्टू पर मजिल तक पहुँचने मे लँगडे-लूलो को ही सबसे ज्यादा सुभीता होता है। मजबूत टाँगो वाले हट्टे-कट्टे लोग ऐसी रद्दी सवारी के बस मे होकर धीरे-धीरे चलना कभी पसद न करेगे। क्रान्ति का वेग अपाहिजो और लाचारो को पीछे छोड-कर आगे बढता है। इसीलिए किसानो को अपना अगुवा आप होना पडेगा। अपना सगठन आप करना पडेगा। उन्हे इसके लिए कमर कस-कर तैयार हो जाना चाहिए।

: ८ :

किसानो का आर्थिक सुधार और उनकी माली हालत की जॉच

१ किसानो का खर्च घटाने की ज़रूरत

पिछले अध्यायो मे हम कई बाते ऐसी कह आये है जिनसे किसानो के खर्च का बोझ जरूर हलका होजायगा। आदमी की माली हालत सुधारने के लिए सबसे सीधा उपाय यही है, कि उसका खर्च घटाया जाय और उसकी आमदनी बढाई जाय। यो तो साधारण रीति से अगर वह कपास की खेती करे और अपने लिए खद्दर बनाने का उपाय करे तो उसके कपडे का कुछ खर्च घट जाता है और उसकी आमदनी कुछ बढ जाती है। परन्तु उसके खाने और कपडे का खर्च तो बहुत थोडा है। उसका भारी खर्च तो लगान है, और जमीदार, पुलिस व पटवारी को खुश रखने के लिए दी जानेवाली तरह-तरह की घूस है, नजराना है, बेगार है, मुकदमेबाजी है, नशा है। जहाँ नहर है वहा पानी के दाम है, तरह-तरह के हक दस्तूर है, नमक पर अप्रत्यक्ष कर है, कचहरिया और दफ्तरो की दौड है, आये दिन के तीज-त्योहार उत्सव का खर्च है, ब्याह आदि सस्कार और मरनी-करनी का खर्च है। ये सब जीवन के अत्यन्त आवश्यक खर्च नही है, परन्तु तरह-तरह के दबावो से दबकर और लाचारी से उन्हे ये सब खर्च करने पडते है। खेती की उपज बढाने के लिए जो खर्च उन्हे करना चाहिए, अनेक कारणो से उससे हाथ खीचना पडता है और इन मदो मे जबरदस्ती खर्च करना पडता है।

पिछले अध्यायो मे जिन परिवर्तनो का वर्णन हम कर आये है, उनके होजाने पर उसका खर्च बहुत घट जायगा। पर हमारी राय मे सबसे ज्यादा बोझा और सबसे बडी खर्च की मद वह कर है जिनके चुकाने के लिए किसान पिसान हुआ जा रहा है। इन सबमे सबसे ज्यादा कमर-तोड सरकारी लगान है।

डेनमार्क मे वहा की सरकार की ओर से संवत् १८५६ मे पहले-पहल एक कानून ऐसा बनाया गया, जिसमे बडी-बडी खेती वाली रियासते जो सरकारी थी या सार्वजनिक थी छोटे-छोटे टुकडे करके सुभीते के साथ छोटे किसानो को छोटी जोते नीलाम मे देकर उनकी मिल्कियत बना दी गई। यह काम बराबर धीरे-धीरे बढाया गया और उस कानून में सुभीते के परिवर्तन होते रहे। अन्त मे संवत् १९७६ के कानून से सब मिलाकर कुल ८३,९८० एकड जमीन छोटी-छोटी जोतो मे बट गई। और वहाँ की सरकार को ६५ करोड रुपये की आमदनी हुई। वहाँ छोटी-छोटी जोतो का औसत १७ एकड के लगभग रक्खा गया है। इस तरह लगभग ५ हजार के नई जोते बन गई।[१]

डेनमार्क की नकल करना हमारे लिए बिलकुल असभव है। डेनमार्क की सारी आबादी हमारे एक बडे जिले से ज्यादा की नहीं है, परन्तु उसका क्षेत्रफल हमारे यहाँ की एक छोटी कमिश्नरी के लगभग का है। वहाँ आबादी के हिसाब से खेती की जमीन बहुत ज्यादा है। हमारे देश में आबादी वहाँ के मुकाबले अत्यन्त घनी है। ब्रिटिश भारत मे कुल जमीन जिसमें खेती होती है, लगभग साढे बाईस करोड एकड के है। किसानो

१ Small Holdings in Denmark—25 years Legislation. by L Th Arnskov, 1924, Reprinted from the Danish Foreign Office Journal by Dyva & Jeppesen, Copenhagen

की आवादी, वच्चे-बूढे, नर-नारी मिलाकर अगर साढे वाईस करोड मानली जाय तो भी सिर पीछे एक ही एकड पडता है। विहार मे जहाँ आवादी बहुत घनी है, किसानो की जोत का औसत आधे एकड से कम ही पड़ता है। मद्रास अहाते के उन ज़िलो मे जहाँ रैयतवारी रीति है, प्राणी पीछे एक मे लेकर पाँच एकड तक जोत होती है। डाक्टर मान ने हिसाव लगाया है कि दक्षिण मे सैकडा पीछे साठ जोते पचास एकड से कम है। वगाल मे सवत् १९७८ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट म टामसन साहव इस वात को कवूल करते हैं कि वहाँ जितनी खेती होती है, मुश्किल से तीन एकड हर काम करनेवाले को पडती है। आसाम म औसत जोत तीन एकड मे भी कम है, और सयुक्त प्रान्त म केवल ढाई एकड है।

भारतवर्ष मे तो भारी-भारी थोक की खेती कही होती ही नहीं। डेनमार्क मे १७ एकड के लगभग जो छोटी जोत का औसत रक्खा गया है, वह ब्रिटिश भारत के सिर पीछे एक एकड के औसत से १७ गुना ज्यादा है। पजाव और वम्वई प्रान्तो मे और प्रान्तो से जोत का औसत कुछ वडा है। डेनमार्क का औसत भारत के वडे-से-वडे औसत से ड्योढे से कुछ अधिक ही है।

अंग्रेज़ो के आने से पहले और उनके शुरू के समय म साधारण तौर से जोते वडी होती थी। नौ-दस एकड से वडा ही औसत था, परन्तु अब दो एकड से ज्यादा की अकेली जोते बहुत मुश्किल से रह गई है। अब जोतो की सख्या दूनी से ज्यादा हो गई है, और १०० मे ८१ जोते एक एकड से कम की है, और ६० जोते ५ एकड से कम की है।

१ Land and Labour in a Deccan Village, by Sir Harold Mann

संवत् १९७८ की मर्दुमशुमारी में खेतिहरों की आबादी सैकड़ा पीछे ७१ ठहराई गई है, इस ७१ में भी सबके सब खेत में काम नहीं करते। इसमें वे लोग भी शामिल हैं जो खेत पर गुजारा तो करते हैं, पर आप खुद कोई खेती नहीं करते। संवत् १९५८ की रिपोर्ट में यह लिखा है कि एक भारी गिनती ऐसे लोगों की बढ़ गई है जिनके पास जमीन नहीं है। उन सूबों में जहाँ बराबर अकाल पड़ जाया करता है, या उन जिलों में जहाँ गावों की आबादी बहुत बढ़ गई है, बिना जमीनवाले खेतिहर मजूर भी बढ़े हुए हैं। जिन बरसों में फसल की दशा साधारण होती है, उनमें भी खेत पर काम करनेवाला मजूर घोर दरिद्रता और दुःख में दिन काटता है। आबादी बढ़ गई है, पुराने परिवार टूटते गये हैं, मुकदमेबाज़ी के दलालों ने फूट डालकर जायदाद का लगातार बटवारा कराने में कोई कोर-कसर नहीं रक्खी। इस तरह देश में खेतों के बहुत छोटे-छोटे भाग भी हो गये हैं और खेती बहुत दूर-दूर पड़ गई है। कभी-कभी एक ही आदमी की जोत इतनी दूर-दूर पर और ऐसी बिखरी होती है कि खेती करना कठिन हो जाता है और लाभ कुछ नहीं होता।

जब देश की ऐसी दशा है तब स्वराज्य-सरकार भी एकाएक जोतों का औसत तो बढ़ा न सकेगी। जितनी जमीन पर खेती होती होती है और किसानों की जो आबादी है, उसका बढ़ाना-घटाना मनुष्य के अधिकार में नहीं है। स्वराज्य-सरकार धीरे-धीरे देश के खोये हुए कारबार और मरे हुए व्यवसायों को फिर खोजकर और जिलाकर बहुत से बेधरती के किसानों को तथा लाचारी से किसान बन जानेवालों को उनमें लगा सकती है। इस तरह जोत का औसत काल पाकर बढ़ सकता है। परन्तु इसमें बहुत दिन लगेंगे। जो लोग डेनमार्क और अमेरिका की

रिपोर्टों को पढ़कर लुभा जाते हैं, उन्हें इन बातों पर ध्यान देना चाहिए ।

अपनी परिस्थिति को देखते हुए लगान को घटाकर आधे से कम कर देना एक उपाय मालूम होता है । दूसरा उपाय यह है कि जिन किसानों की आमदनी पाँच सौ रुपये साल से कम है उनसे कोई लगान न लिया जाय । इसके ऊपर जिसकी आमदनी ५००) से लेकर हजार रुपये साल तक हो उससे कम-से-कम लगान लिया जाय । इसके ऊपर किसान की आमदनी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाय लगान की दर भी अधिकाधिक ऊँची होती जाय । इसके लिए देश में ऐसा कानून बन जाय कि ज़मींदार इज़ाफ़ा लगान न कर सकें । फिर से बन्दोबस्त होकर सरकार की ओर से जो लगान मुकर्रर हो जाय उसमें ज़मींदार बिल्कुल हाथ न डाल सकें । ज़मींदारी की रीति अगर चलती रहे तो उसके ऊपर ऐसा नियन्त्रण होना चाहिए कि ज़मींदार अच्छे-से-अच्छे किसान की तरह सुख से रहे, और उसकी जो फालतू आमदनी हो—और यह आमदनी मालगुज़ारी अदा कर देने पर बची हुई रकम से आँकी जाय—उसपर आमदनी का बहुत बढ़ा हुआ कर लगाया जाय ।

किसानों के ऊपर लदे हुए बोझे को हलका करने के सिवाय उनके सुधार के लिए बेकारी को दूर करना और दूर-दूर पर बिखरे हुए जोतों को पंचायत द्वारा फिर से बाँटकर किसान की सब जोतों का पास-पास हो जाना, ये दो ज़रूरी काम होंगे । ये दोनों उपाय हम पहले सुझा चुके हैं । पिछले अध्यायों में जो-जो उपाय हम बता आये हैं उनको व्यवहार में लाने के दस बरस के भीतर ही, हमको पूरा विश्वास है, किसान न केवल ऋण से मुक्त हो जायगा, बल्कि उसकी दशा इतनी सुधर जायगी कि वह दोनों जून पेट भर भोजन कर सकेगा ।

२. अनाज और कच्चे माल की खींच कम करनी पड़ेगी

जब हम विदेशो से कपड़ा मँगाना एकदम बन्द कर देगे और विदेशी माल पर बाधक कर लगा देगे, तो फल यह होगा कि विदेशो से आनेवाला माल बहुत घट जायगा और उसपर लगे हुए बाधक कर की आमदनी सरकार के हाथो मे आवेगी। विदेशी माल के ही बदले मे हमारे यहाँ का अनाज और कच्चा माल बाहर चला जाता है। इस तरह इसका बाहर जाना कम होजायगा। इधर तो दशा यह हो गई है कि गेहूँ कनाडा और आस्ट्रेलिया से आने लगा है। इसमे बढके और क्या विपदा होगी कि अनाज के लिए भी हम औरो के मोहताज हो गये है? ऊपर बताई हुई विधि से हमारे देश का बहुत थोडा अनाज बाहर जाया करेगा। किसान चाहे लगान देता हो या न देता हो, उसके लिए यह भी क़ानून कर देना पडेगा कि वह अपने साल-भर के खाने से कुछ ऊपर रखले तभी अनाज बेचने पावे। उससे लगान भी लिया जाय तो उपज के ही अश में लिया जाय, या कम-से-कम यह बात उसकी मर्जी पर छोड दी जाय—जैसा कि मुसलमानी राज्यो में था—कि वह चाहे उपज का अश दे और चाहे तो उसकी आकी हुई कीमत दे दे। इस तरह किसान के घर मे खाने का टोटा नही रह सकता और इस समय अनाज की जो भारी खींच है उससे छुटकारा मिल सकता है।

एक बात और दोहराने मे हम हर्ज नही समझते। जबतक किसान के ऊपर ऋण का भार है तबतक पचायत उसके ऊपर यह दबाव रक्खे कि सामाजिक कामो में वह एक पैसा भी खर्च न करे। फसल पर खुश होकर खुले हाथो दान न दे। वह वही दान दे और वही खर्च करे जिसे पचायत मजूर करे। इस तरह खर्च पर नियत्रण रहेगा। खर्च इस प्रकार घटे और चरखा आदि सहायक कामो से उसकी आमदनी बढे, तो उसकी

मिल्कियत अडोल हो जाने के कारण वह तन, मन, धन लगाकर अपनी उपज बढावे। इस तरह उसकी आमदनी भी बढ जायगी।

३ जाँच की विधि

आजकल हमारे किसानो की माली हालत जैसी और जितनी खराब है, वैसी और उतनी खराब ससार मे कही के किसानो की नहीं है। वर्तमान समय मे इसीलिए किसानो की माली हालत की जाँच की जरूरत नही है। आज उनकी जो दशा है वह पशुओ से भी गई-बीती है। जब वे भरपेट भोजन पाने लगेगे, जब उनके कधो मे कर्ज का बोझ उतर जायगा, और शाति और सुख के जीवन को कुछ साल तक बिता लेगे, तब और तभी वह समय आवेगा कि उनकी माली हालत की जाँच की जाय और उन्हे अधिक सुखी और समृद्ध बनाया जाय।

स्वराज्य की स्थापना हो जाने पर ही किसानो की हालत सुधर सकती है। जब वे शुभ दिन आयेगे तब गाँवो का सगठन भी हो चुका रहेगा। कम-से-कम वह प्रारम्भिक सगठन हुआ रहेगा जिसके बिना स्वराज्य हो ही नही सकता। उस समय हर किसान अपना राजा होगा, और पचायतो के काबू मे अपनेको रखकर वह अपनेको सुधारेगा, अपनी माली हालत वह पहले के कई सालो मे इतनी अच्छी जरूर बना लेगा कि पेट भर रूखी-सूखी रोटियाँ जरूर पा सके। इस दशा के दस-पाँच बरस बाद इस बात की जरूरत पडेगी कि उसकी आर्थिक दशा की उचित जाच की जाय।

उसका गाव उसकी इकाई होगी। किसान की चौबीसो घटे, तीसो दिन और बारहो मास की जरूरतो के अनुसार गावो मे सभी तरह के लोग बसते होगे। उन सब लोगो का जीवन किसानो का ही जीवन होगा, उनके रहन-सहन का परिमाण लगभग एकसा होगा। ये सब-के-सब किसान ही

समझे जायगे । माली हालत की जांच मे गाव के हर रहनेवाले की गिनती की जायगी, दूध पीते वच्चे से लेकर अपाहिज वूढे तक गिने जायगे । ये लोग क्या खाते-पीते है, क्या पहनते हैं, कैसे घरो मे रहते है ? कव-कव क्या-क्या काम किया करते है ? इनके ओढने-विछाने के सामान कैसे है ? कौन कितना कातता है, कितना वुनता है ? किसके यहा किन-किन चीज़ो की कितनी-कितनी खेती होती है ? किन-किन के पास कितनी-कितनी और किस मालियत की जायदाद है ? खाट पर सोते है या ज़मीन पर ? खाट है तो कैसी है आर किस मालियत की है ? वरतन कैसे और किस मालियत के है ? पानी का क्या प्रवन्ध है ? रोशनी का क्या सामान है ? इनपर कितना खर्च होता है ? कपडे-लत्तो पर कितना खर्च होता है ? नित्य का खर्च क्या है ? महीने-महीने का क्या खर्च होता है ? किन-किन चीज़ो पर कितना सालाना खर्च पडता है ? घर के भीतर सजावट का भी सामान है या नही ? है तो किस तरह का है और किस मालियत का है ? स्त्रियो के शरीर पर गहने-पाते है या नही ? है तो किन दामो के है ? किन-किनको किसान ने अपनी कमाई से वनवाया है ? कौन-कौन और कितने के गहने वह को माता-पिता से मिले है ? किसान के पास कितने ढोर है और किन दामो के है ? उसके और-और व्यवसाय के क्या-क्या सामान है और किन-किन दामो के है ? खेती आदि व्यवसाय मे वह कितना लगाता है ? कितने-कितने दामो की मजूरी वह खुद करता है, और कितनी-कितनी मजूरी देकर वह औरो से काम लेता है ? उसकी लागत के मुकावले हरेक व्यवसाय से क्या औसत उपज होती है और उस उपज की क्या मालियत होती है ? उस उपज का कितना भाग रक्षा आदि के लिए कर के रूप मे देना पडता है ? जिन किसानो को उनकी दरिद्रता

के कारण कोई कर नही देना पडता उनकी माली हालत की भी पूरी जाँच होनी चाहिए ।

माली हालत के साथ-साथ गाव की परिस्थिति की भी जाँच होनी चाहिए । गाव के आस-पास के खेतो की ज़मीन कैसी है ? औसत बरसात कैसी हुआ करती है ? सिचाई के लिए क्या-क्या सुभीते है और आम तौर पर इसमे कितना खर्च पडता है ? मजदूरी की दर क्या है, ज़रूरत पडने पर मजूर मिलते है या नही ? माल के ढोने और बाज़ार तक लेजाने मे क्या खर्च पडता है ? बाज़ार कितनी दूर है और उसके क्या-क्या सुभीते है ? तैयार माल या फालतू अनाज गाँव से दूर बडी-बडी मडियो मे भेजने के क्या-क्या साधन है ? ढोरो के लिए चारे के क्या सुभीते है ? जलावन किस तरह के सुभीते से मिल सकता है और काम मे आता है ? इन सब बातो का प्रभाव भी किसान की माली हालत पर पडता है ।

गाव मे शिक्षा का क्या प्रबन्ध है ? बच्चो की शिक्षा के लिए कितनी पाठशालाये है ? किस काम की शिक्षा दी जाती है ? शिक्षा मे क्या खर्च पडता है ? प्रबंध कैसा है ? पढानेवाले गाव के ही है या बाहर के ? उन्हे क्या-क्या लाभ गाव से मिलता है ? बडो की शिक्षा का क्या बन्दोबस्त है ? कथा-पुराण का क्या बन्दोबस्त है ? इसमे क्या खर्च पडता है ? इसका बन्दोबस्त गाव से बाहर से है या गाव के भीतर के लोगो के द्वारा ही है ? गाव की तन्दुरुस्ती का क्या हाल है ? गाव मे कितने वैद्य है ? कोई चिकित्सालय है या नही ? उसमे कितने रोगी आमतौर नित्य आते है ? कितने किसानो का अपने खर्च से इलाज होता है ? कितने रोगियो का इलाज पचायती खर्च से होता है ? सार्वजनिक खेल-कूद, मेले-तमाशे क्या-क्या और किस-किस तरह से होते

हैं ? इन सबमें क्या सार्वजनिक खर्च पड़ता है ? फिर पीछे औसत गांव में कितना खर्च पड़ता है ? सेवा-दल या गांववाले कितना खर्च करते हैं ? गांव के पंच किन-किन कामों के लिए भत्ता लेते हैं ? सभा और पंचायत के सम्बन्ध में क्या-क्या और कितना खर्च होता है ? इत्यादि सार्वजनिक जमा-खर्च की भी विवरणी बनानी होगी।

अमेरिका और डेनमार्क की इस प्रकार की जांच की रिपोर्टें अनुशीलन के योग्य हैं। उनसे पता चलता है कि प्रजा की माली दशा की जाँच सरकार की ओर से कितनी अच्छी तरह होती है। वहां यह काम करनेवाले राज्य की ओर से भेजे हुए अर्थ-शास्त्र के पंडित कर्मचारी होते हैं। वे लोग पूरे वैज्ञानिक ढंग से निश्चित समयों पर यह काम करते रहते हैं, परन्तु उनके यहां भी यह काम नया है इसलिए वे समझते हैं कि इसमें बहुत पढ़े-लिखे होने की जरूरत है, जबकि हमारा अनुमान है कि जब इस तरह की जाँच करने के लिए उपयुक्त समय आवेगा तब किसानों में से ही ऐसे योग्य और शिक्षा पाये हुए लोग निकलेंगे जिनके बन्दोबस्त में हर गाँव में किसान-सभा ऐसी माली जांच का दफ्तर खोल देगी और गांव से ऐसी रिपोर्टें तहसील-सभाओं में जायेंगी और तहसील-सभायें इन रिपोर्टों को आपस में खूब मिलाकर तहसील-भर के लिए औसत निकालेंगी और अपनी तहसील-भर की रिपोर्ट इकट्ठी कर-करके जिला-सभा को भेजेंगी। जिला-सभा जिले के भौगोलिक विभाग को समझकर विविध भागों में इन रिपोर्टों को बांटेगी और समझने लायक साररूप बनाकर प्रान्तीय सभा के पास भेजेगी, प्रान्तीय सभा का संपत्ति-शास्त्रीय विभाग प्रान्त-भर की रिपोर्टों का संकलन करेगा। यह रिपोर्ट सारे प्रान्त की आर्थिक दशा बतावेगी। इस रिपोर्ट से पता लगेगा कि किसानों ने पिछले कितने वर्षों में कितनी तरक्की की है और उनकी

माली हालत ज्यादा अच्छी बनने के लिए क्या-क्या उपाय किये जा सकते हैं। इस तरह की समय-समय पर की हुई जाँच से यह पता लगेगा कि हमारे पशुवत् जीवन-निर्वाह करनेवाले किसानों की दशा सुधरी या नहीं ? मनुष्य के जीवन के लिए जिन-जिन चीज़ों की ऐसी ज़रूरत है कि उनके बिना काम ही नहीं चल सकता, वे सब चीज़ उनको सुलभ हुई या नहीं ? जिस सरकार ने इतना भी बन्दोबस्त नहीं कर पाया उसे बिलकुल असफल समझना चाहिए और जाँच की कसौटी पर सुधार के जो उपाय खरे न ठहरें उनका तो तुरन्त ही परित्याग उचित है। हमने जो सुधार के उपाय बताये हैं उन्हें व्यवहार में लाने के कुछ काल पीछे उनकी जाँच ऊपर बताई विधि से अवश्य होनी चाहिए।

: ९ :

शिक्षा-पंचायत

१ वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के दोष

किसानो के फायदे का काम वही सबसे अच्छा हो सकता है जो उनकी जरूरत और इच्छा के अनुकूल हो, जिसका बन्दोबस्त वे स्वय करे और जिसके सचालन मे उनका ही विकसित विचार काम करे। आजकल जिस तरह की तालीम दी जा रही है, वह किसान के लिए कौडी काम की नही है। किसान के बालको को आजकल की शिक्षा बाबू बना देती है, फिर पढा-लिखा किसान का बेटा या तो मुदर्रिसी करता है, या कही मुहर्रिरी का काम बरसो की खोज मे ढूंढ निकालता है, या अपनेको मुकदमेबाज़ी मे कुशल बना लेता है। उसे खेती के काम से घृणा हो जाती है। हमारे देश का कोई किसान इस तरह की तालीम से सतुष्ट नही है। परन्तु बेचारा करे क्या ? अगर इन मदरसो मे न भेजे तो बालक अपढ रह जाते है और यह बात उसके बाप-दादो की चाल से विपरीत है। वह नही चाहता कि उसकी सन्तान निरक्षर रहे और माता-पिता को कर्तव्य-पालन न करने के लिए वैरी समझे। जब पढने को भेज देता है तब वह मानो अपनी सन्तान से हाथ धो बैठता है। खेतो पर मेहनत करने का पवित्र काम पढे-लिखे लडको की निगाहो मे नीच दिखाई देता है। जिस काम मे ताकत और मेहनत लगती है, जिसमे मज़बूत हाथ-पाँवो का काम है, जिसमे कलियुग मे प्राणो की रक्षा करने-वाले पवित्र अन्न के उपजाने की विधि है, जिसमे बल और मरदानगी

की ज़रूरत है, उस काम की बडी कीमत को न समझकर आजकल का अभागा किसान का बेटा स्त्रियों के योग्य लिखने-पढने के नाजुक काम को, जिसमें बेहद कृत्रिमता है, बडी धूर्तता है, और हद दर्जे की गुलामी है, ज्यादा इज्ज़त और आबरू का काम समझता है और उसीपर अपने पवित्र होनहार जीवन को आजकल की पच्छाहीं सभ्यता के मोह में पडकर बलि कर देता है। जहाँ बाप अपना पानी आप भरने में, अपनी लकडी आप काटने में अपना बोझा आप ढोने में गौरव समझता है वहाँ बेटा इन कामों के करने में शरमाता है और मौका पडने पर कुली की तलाश करता है। इस तरह का भाव किसान के काम के लिए लाभ-कर नहीं है और किसान ने सचमुच इस तरह बेटे को खो दिया है। किसान के बेटे की शिक्षा का तो उद्देश्य यह होना चाहिए कि बेटा बाप से बढकर किसान हो। परन्तु आज तो वह अपने बाप के पेशे को निन्द्य समझता है।

साथ ही एक दूसरा दोष भी है। वह जितना समय शिक्षा में लगाता है, उतना अगर अपने बाप के साथ खेती का काम व्यावहारिक रीति से सीखने में लगाता तो किसान के काम में थोडा-बहुत सुधार हो जाता, और घृणा भी न होती। यह बात नहीं है कि किसान के काम [illegible] में उसे समय बहुत लगे। असली ज़रूरत तो यह है कि बच्चों में मेहनत का काम करने की आदत डालने के लिए बचपन से ही खेत में लगन की ज़रूरत है। बच्चा जब खेतों में आने-जाने लायक हो और उठा-बैठा काम करने के लायक हो जाय तभी से खेत की छोटी-मोटी सहायता का काम करने के लिए छोड देनी चाहिए और उन [illegible] देना चाहिए। लडकपन से ही खेतों में उसे इस तरह रम हो जाना और उसे मामूली लिखना-पढना और हिसाब का ज्ञान कराने के लिए

कोशिश करके भी सफल नहीं होते । यह बात नहीं है कि देहातवाले उर्दू से घृणा करते है । वे तो खुशी से लडको को उर्दू पढाये जाने के लिए राजी हो जाते है, चाहे उसमे बच्चो का कितना ही नुकसान हो । किसानो को इस बात का लालच होता है कि हमारा लडका उर्दू पढ जाय, तो हमारे मुकदमेबाजी के काम मे बडी मदद मिल जायगी । सम्मन और अर्जी-नालिशे पढ लेगा, और उसे कचहरी के गुरगे धोखा न दे सकेंगे । परन्तु जब लडका कचहरी की घसीट लिखावट वाले सम्मन को भी नही पढ सकता तब उन्हे अन्त म निराश होना पडता है । इस तरह लडके के दिल और दिमाग के ऊपर बडी कोमल अवस्था मे दो बिलकुल भिन्न लिखावटो के सीखने का भारी बोझ डाल दिया जाता है । इससे इन दोनो अँगो मे जरूरत से ज्यादा परिश्रम पडने के कारण स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नही पडता ।

जो तालीम का तरीका चल रहा है वह किसान के हक म बहुत ही बुरा है । हमे गुलाम बनानेवाला और पराधीन रखनेवाला है । अपने भले के लिए हमारे देश के हर किसान का यह कर्तव्य होगा कि वह इस शिक्षा-विधि से असहयोग करे और ऐसे मदरसो का पूरा बहिष्कार करे । साथ ही गाव के बच्चो की शिक्षा का बन्दोबस्त शिक्षा-दाता के स्वतत्र हाथो मे सौप ।

जिला बोर्ड ने लडको की कुशिक्षा का तो बन्दोबस्त कर दिया । परन्तु उसने बडो की शिक्षा के लिए कोई उपाय न किया । यह एक तरह से अच्छा ही हुआ, क्योकि शायद उनके बन्दोबस्त मे बडो की शिक्षा भी उसी तरह निकम्मी होती और हमे पछताना पडता ।

२ पंचायत कैसी शिक्षा दे ?

बच्चो या बडो किसीकी शिक्षा के लिए किसी कचहरी अधिकारी

के प्रमाणपत्र या सनद की जरूरत नहीं है। शिक्षा-पचायत गाँव के उन लोगो के द्वारा बनी होनी चाहिए जो गाव की आवश्यकताओ को खूब समझते है, और जिन्हे इस बात का ज्ञान है कि कैसी शिक्षा पढनेवालो को लाभदायक होगी। हमारी राय मे तो बच्चो की छुटपन मे ही किसानी की शिक्षा होनी चाहिए, और किसानी की शिक्षा मे हम उन सब बातो को शामिल करते है जिनमे किसान समझदार, सभ्य और विवेकी समझा जायगा। किसानी की शिक्षा मे पढना-लिखना और जरूरतभर हिसाब का जानना शामिल होगा। पढना उसे इतना आजाय कि वह जनता के लिए निकलनेवाले किसी साधारण अखबार को पढ सके और तुलसीदास जी के रामचरितमानस (रामायण) को गा सके और थोडा-बहुत समझ सके। लिखना हम इतना सिखा देना चाहते है कि वह किसान-सभा का मत्री बना दिया जाय तो सभा की कार्रवाई लिख सके। हिसाब हम इतना सिखा देना चाहते है कि वह शासन या राष्ट्र-पचायत के हिसाबिये का काम कर सके और अपने व्यवसाय का बहीखाता भी ठीक-ठीक रख सके। इतिहास और भूगोल के पढाने मे हम अभी उसका समय नही बिगाडना चाहते, क्योकि इन विषयो पर किसानो के लायक पोथियाँ अभी छपी नही। जब वह समाचारपत्र पढने-लायक हो जायगा, तब वह इतिहास और भूगोल की ठीक पोथियाँ अपने आप पढ लेगा। इन विषयो पर किसानो के लायक तबतक समयानुसार अच्छी-अच्छी पोथियाँ छप भी जायँगी। पढने-लिखने का काम बस इतना ही काफी होगा। अच्छा शिक्षक इतनी पढाई के साथ-साथ दो तरह की शिक्षा देगा। एक तो व्यवसाय की और दूसरे तन-मन-वचन की शुद्धता और स्वास्थ्य की। यह शिक्षा जबानी भी होगी और व्यावहारिक भी।

गाँव के पुरुषों को ये विषय जानने चाहिएँ —

(१) खेती ।

(२) ओटाई, धुनाई, कताई ।

(३) तात्कालिक उपचार ।

(४) बच्चों की रक्षा और सार-सम्हाल ।

(५) स्वास्थ्य-रक्षा ।

(६) सफाई ।

(७) पशु-पालन ।

(८) मरी आदि सार्वजनिक संकटों के समय रक्षा ।

(९) दिल-बहलाव, खेल आदि ।

(१०) गाना-बजाना ।

इनकी उचित शिक्षा के लिए हर तरह का सुभीता करना पंचायत का कर्तव्य होगा ।

व्यावसायिक शिक्षा में पहली और मुख्य शिक्षा होगी खेती-बाड़ी की । यह शिक्षा घर भी मिलेगी और पाठशाला में भी । खेती-बाड़ी के बाद कपास के ओटने, रुई के धुनने, और पूनियों के कातने की शिक्षा मुख्य होगी । खेती-बाड़ी और कताई का कारबार सारे भारत के प्रायः सभी गांवों में होगा । इसलिए इन दो व्यवसायों की शिक्षा सारे [illegible] लिए सार्वभौम होगी । हर पाठशाला को ये दो शिक्षायें देनी ही पड़ेंगी । हर शिक्षा-पंचायत को इन दोनों व्यवसायों का विज्ञान का पूरा [illegible] करना पड़ेगा । इसमें साधारणतया दो बरस लगेंगे, परन्तु जल्दी करने की कोई जरूरत नहीं है । जरूरत पड़े तो इतने ही [illegible] में पढ़ाया जाय, और फिर लड़कों को गांव में ऐसे [illegible] दिया जाय जिनमें उनकी पाई शिक्षा काम आ सके । [illegible]

काम दिया जाय कि वे अखबार पढकर सुनाया करें, मण्डलियाँ बनाकर रामायण गाया करें, भूगोल और इतिहास की पोथियाँ अपढ किसानो को सुनाया करें, गाववालो की चिट्ठिया लिखा करें। साली पचायत में माँगकर लिखने का काम करें। गाव के हिसाबिये के काम मे मदद दे। जहाँ मकान कुआ आदि बनता हो वहा लगनेवाले मसाले या मजूरी आदि का हिसाब किया करें। बडो के साथ खेती मे जाकर खेती-बाडी के काम मे मदद दे और अपनी क्यारियो या अपने जलगाये हुए खेतो का सारा काम अपने-अपने घर के लिए करना ही चाहिए। इस तरह जो-जो काम उन्होंने दो से लेकर चार बरस तक सीखे है, उनका बराबर अभ्यास बना रहेगा।

कुछ ज्यादा होशियार होजाने पर अपने घर का स्वतन्त्र काम इन्ही नौजवानो को करना होगा। एकबार फिर कुछ बरसो के बाद इन्ही व्यवसायो की फिर से शिक्षा देनी होगी, परन्तु वह शिक्षा बहुत ऊँचे दरजे की होगी और उसके लिए शिक्षा-पचायत को विशेष प्रबंध करना होगा। गाँव के प्रचलित व्यवसायो के विशेषज्ञ लोग आकर किसी सुभीते के केन्द्र मे पाठशाला स्थापित करके ३ महीने से लेकर ६ महीने तक शिक्षा देकर जवान किसानो को उनके कामो मे दक्ष करदे। यह समय दक्ष होने के लिए थोडा नही है। डेनमार्क मे इसी तरह जवान किसानो को शिक्षा दी गई है और अबतक दी जाती है। इसमे उनको बडी सफलता हुई है। इस तरह की शिक्षा अगर बचपन मे दी जाय तो ४-५ वर्ष लगने पर भी सफलता की आशा नही की जा सकती। जब किसान समझदार होगया और उसे अपने व्यवसाय का कुछ अनुभव होगया तो उस समय की दी हुई शिक्षा जल्दी हृदयगम होजाती है और उसे तुरत ही व्यवहार मे लाने का मौका भी मिलता है। इस तरह दोनो अवसरो

पर मिलाकर शिक्षा का कुल समय कम-से-कम ढाई बरस और अधिक-से-अधिक चार बरस का होता है। अगर यह सारी शिक्षा एकबारगी दी जाय तो बजाय ढाई और चार बरस के पाँच-सात बरस जरूर लग जाये। इस विधि से शिक्षा-दान मे बडी किफायत होती है। शिक्षा भी इस तरह से ऐसे प्रकार की दी जायगी जिससे किसानो को हर तरह का लाभ हो।

शिक्षा-पचायत का यह भी कर्त्तव्य होगा, कि वह बडो और बूढो की शिक्षा का भी प्रबध करे। लडकियो को भी उपयुक्त शिक्षा देनी होगी। पढना-लिखना और हिसाब तो लडकियो को उतना ही सिखलाना होगा जितना लडको को, परन्तु जिन व्यवसायो की शिक्षा लडको को दी जाती है उन्ही व्यवसायो की शिक्षा लडकियो को भी दी जाय यह जरूरी नहीं है। लडकियो को उन व्यवसायो की शिक्षा अवश्य दी जाय जिनका काम साधारणतया घर-गृहस्थी मे पडता है। कताई बुनाई सिलाई आदि की शिक्षा तो लडकियो को जरूर ही देनी चाहिए। इसके सिवाय घर-गृहस्थी मे अनाज साफ करना और खाने के सामान कर देना, भोजन पकाना, दही-दूध आदि के सारे काम करना, बरतन साफ करना, घर की सफाई, सीना-पिरोना, बूटा-कसीदा आदि का काम

सुभीता रहे। समाचारपत्र भी उनको मिलते रहे। उनके मानसिक विकास के लिए समय-समय पर इतिहासो और पुराणो की कथा का भी प्रबंध होना चाहिए। अच्छे कथा कहनेवाले देश, काल और परिस्थिति का विचार करके उत्तम-उत्तम कथाये सुनाकर उनका बडा उपकार कर सकते है। समय-समय पर मेले-तमाशे और अभिनयो मे भी अच्छी शिक्षा मिल सकती है। बाजार, मडी और नुमाइशो मे भी जाने मे अनेक तरह की शिक्षा मिलती है।

गाँव मे विशेष शिक्षा का प्रबन्ध हर जगह नही हो सकता। परन्तु किसी केन्द्र मे पुरोतो आदि की विशेष शिक्षा का बन्दोबस्त करना ही पडेगा, जहाँ थोडीसी ज्योतिष, कुछ पूजा-पाठ त्योहारो के काम, घर व कुआँ आदि बनाने के नियम, रोगी का औषधोपचार, रोगी-सेवा, स्वास्थ्य के नियम, शौचाचार, भोजन आदि के नियम—यह सब कुछ बरस दो बरस मे अच्छी तरह सिखाया जा सकता है। गांव का पुरोहित, वैद्य, इजिनियर और ज्योतिषी एक ही आदमी होसक्ता है।

सामाजिक दोषो के सुधार का काम तो शिक्षा का ही काम है। सच्ची शिक्षा तो चरित्र की ही शिक्षा है। इसलिए गाँव की पाठशाला की प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर मेले-तमाशे और बाजार तक की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे चरित्र का सुधार हो, बिगाड नही। नीति की सबसे अच्छी शिक्षा व्यवहार से दी जा सकती है। अहिंसा और सत्याग्रह की लडाई नीति की व्यावहारिक शिक्षा देती है, परन्तु इस तरह की शिक्षा देने के लिए उपयुक्त शिक्षक वही होसकते हैं, जो अपने जीवन में नीति और धर्म्म को व्यवहार मे लाते हैं। शिक्षा ऐसो ही के हाथ मे होनी चाहिए। जिसमे वास्तविक व्यवहार नही है, उसकी मौखिक शिक्षा का प्रभाव भी छात्रो पर नही पड सकता।

३ मंडलियाँ

जो शिक्षा आदमी को जीवन के लिए उपयोगी बनाती है उसका आरम्भ बड़े और समझदार होने पर होना है। जो आरम्भिक शिक्षा बचपन मे मिलती है वह तो केवल उपयोगी शिक्षा पाने के लिए पात्र बनाती है। बड़े होने पर दिल और दिमाग दोनो के दोनो बढ़कर पात्र मे शिक्षा की अधिक समाई पैदा कर देते हैं। ऊपर बताई हुई पाठशाला के सिवाय अनेक तरह की मण्डलियाँ गाँवो मे स्थापित होसकती हैं जिनसे कि शिक्षा भी मिले और गावो की भलाई का काम भी होसके। अमेरिका की एक कमेटी ने शिक्षा के ये सात उद्देश्य बताये हैं —

१ स्वास्थ्य

२ व्यावहारिक विधियो का ज्ञान

३ कुटुम्ब का योग्य सदस्य होना

४ पेशा,

५ ग्रामिकता

६ अवकाश के समय का सदुपयोग और

७ सदाचार

हमारे गाव के लोगो की शिक्षा के लिए भी ये सातो उद्देश्य हमारी निगाह मे उपयोगी जँचते हैं। इन सातो मे ग्रामिकता [illegible] का शब्द है। ग्रामिकता का भाव आज भी हर गाव के [illegible] मे मौजूद है। हर किसान अपने गाव की बड़ी ममता रखता है और हर तरह पर उसकी भलाई चाहता है। अभी पंचायतो का संगठन नहीं हुआ है। जब होजायगा तब वे गाव की सब तरह की भलाई करेंगे और गाव की हर बुराई को दूर करने के लिए अपनेको जिम्मेदार समझने लगेंगी। शुरू-शुरू मे यह काम भिन्न-भिन्न मंडलियो के द्वारा [illegible]

सकेगा। शिक्षा पाने के लिए दस से लेकर अठारह वर्ष तक के लडके और लडकिया ओटने, धुनने, कातने और बुनने के काम के लिए इकट्ठा बन्दोबस्त कर सकते है। अपने-अपने कामो का हिसाब रक्खे, इकट्ठे माल जमा करे, इकट्ठे ही बेचे और होड के साथ एक-दूसरे की देखा-देखी अपने-अपने काम मे चोखाई पैदा करे। इसी तरह तरकारिया उपजाने में, शहद उपजाने मे, उत्तम-से-उत्तम कपास उपजाने मे, अच्छी-से-अच्छी भेडें पालने मे, उत्तम-से-उत्तम घी-दूध के काम मे, खद्दर की रगाई-छपाई मे, कपडे के काट और सिलाई में, ऐसी मडलियाँ बनाकर और होड लगाकर गाँव के लडके और लडकियाँ चोखे-से-चोखे काम करने लग जायँगे और बढिया-से-बढिया माल तैयार होने लगेगा। इस शिक्षा के साथ-साथ कला की भी बढन्ती है। ऐसी ही मडलियाँ पढने-लिखने और अच्छे आचार-विचार के प्रचार में उपयोगी होसकती है।

लडको की यही मण्डलियाँ धीरे-धीरे बढते-बढते बडो की मडलियाँ बन जायँगी और सब तरह के गाँव के व्यवसाया मे भी इस तरह बराबर उन्नति होसकती है। नये-नये साप्ताहिक या सप्ताह मे दो-तीन बार वाले बाजार बढाये जा सकते हैं। नये मेले और उत्सव कायम किये जा सकते है।

४. साक्षरता

हमारे देश मे यह भारी भ्रम फैलाया गया है कि अक्षरो का ज्ञान ही बडी भारी शिक्षा है। यह भ्रम फैलाकर और आरम्भिक शिक्षा मे कमी करके भारतवासियो को निरक्षर और नालायक बनाया गया है। इस समय सैकडा पीछे ७ से अधिक साक्षर नही है। यह विदेशी हुकूमत का प्रसाद है। यद्यपि यह हम जानते है कि शिक्षा और साक्षरता एक ही चीज नही है, तो भी नि सन्देह साक्षरता में बडा सुभीता है, इसलिए

इसका प्रचार ज़ोरो से होना चाहिए। नागरी अक्षरो का सिखाना बहुत आसान है। कोई स्वयंसेवक चाहे तो एक महीने मे नित्य शाम को पढ़-कर सारे गाँव को साक्षर भी कर सकता है और चरखा कातना भी सिखा सकता है। जहाँकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहा भी इसी तरह वहाँ-की मातृ-भाषा की आरम्भिक शिक्षा दी जा सकती है। मातृभाषा की आरम्भिक शिक्षा और अक्षर-ज्ञान सहज है। देवनागरी की तरह वह भी हर तरह पर सुलभ होसकता है। जबतक गाँवो को पूरा स्वराज्य प्राप्त नही होजायगा, तबतक तो शुरू-शुरू मे कांग्रेस के स्वयंसेवकों को हर गाँव के लिए एक महीने भर का काम जरूर करना पड़ेगा। हर जिले मे काफी बड़े-बड़े मदरसे है, जहाँके बड़े लड़के हर साल गर्मी की छुट्टी का एक महीना सहज मे दे सकते है। इस तरह अगर कांग्रेस अपने-अपने जिले मे कसकर काम करे तो एक साल म ही सैकड़ा पीछे सात के बदले साक्षरो की सख्या सत्तानवे होजाय। साक्षरता इस तरह बढ़ जाने पर अच्छी-से-अच्छी कोई पोथी किसान के हाथ मे दी जा सकती है जिसे वह पढ़कर समझ सके और सीखे हुए अक्षर भूल न जाय। हिन्दी भाषा-वाले प्रान्तो में तो तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस' से बढ़कर और उपयोगी पोथी नहीं होसकती। राष्ट्रभाषा की दृष्टि से तो इसका भी अन्य प्रान्तो मे प्रचार होसकता है, जैसा कि दक्षिण मे [illegible]।

ग्राम-संगठन का पहला काम शिक्षा है। इसके बिना कोई काम शुरू नहीं होसकता। यह काम गाँववाले आरम्भ नहीं कर सकते। इसे तो कांग्रेस को ही करना पड़ेगा। सातवें अध्याय मे हमने यह दिखाया है कि संगठन का काम कैसे शुरू किया जाय।

: १० :

रक्षा-पंचायत

शान्ति के समय मे चोरो, डाकुओ, हत्यारो, ठगो और इसी प्रकार के और अत्याचारियो से रक्षा करने के लिए पुलिस का बन्दोबस्त होता है और युद्ध के समय मे देश के जान-माल की रक्षा के लिए सेना रक्खी जाती है। इसका मतलब यह है कि देश के बाहर से जब कभी अपने देश पर चढाई हो तो दुश्मन का मुकाबला किया जाय। यह मुकाबला हर्बे-हथियारो से ही होता है और उसमे एक-दूसरे को पीडा पहुँचाई जाती है। खून बहाया जाता है और अच्छे-से-अच्छे वीर देश की रक्षा के लिए जान देते है। परन्तु कोई किसी देश पर चढाई क्यो करता है? साधारणतया यही बहाना किया जाता है कि अमुक देश ने हमारी अमुक हानि की है, हमारे साथ अमुक बुरा सलूक किया है, इसलिए हम उसका बदला लेगे। परन्तु अच्छी तरह विचार करके देखा जाय तो सब झगडो की तह मे लोभ, क्रोध, बदला लेने का भाव, अपने पशुबल का नशा, और इसी तरह के नीच विकार ही काम करते रहते है। चोर, डाकू, लुटेरे और ठग भी जो कुछ प्रजा पर अत्याचार करते है उसकी तह मे भी काम, क्रोध लोभ, मद, मत्सर आदि नीच वृत्तियाँ काम करती रहती है। सत्याग्रह और अहिंसा की भारी लडाई के बाद भी हमको ऐसा न समझना चाहिए कि मनुष्य का स्वभाव एकदम बदल जायगा और काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर का ससार से लोप होजायगा। ये विकार तो सृष्टि के साथ है, ये न हो तो सृष्टि का

विकास नहीं होसकता। हाँ, एक बात है, कि इस समय बहुत-सी चोरी, डाके, लूट आदि दरिद्रता के कारण भी होते होंगे। स्वराज्य के होने पर इनकी गिनती जरूर कम होजायगी। परन्तु ये अपराध मनुष्यों में थोड़े-बहुत होते ही रहेंगे और इनसे प्रजा की रक्षा की जरूरत बाकी ही रहेगी।

भारतवर्ष में अहिंसा और सत्य की जब पूरी तरह पर विजय हो जायगी तब एक देश के दूसरे देश पर चढ़ाई करने का जोखिम जरूर ही मिट जायगा। इसलिए पशुबल की सेना रखने की जरूरत जब प्रान्तों को ही पड़ने की सम्भावना नहीं है, तो गाँवों को तो इसकी जरूरत पड़ ही नहीं सकती। चोरों-डाकुओं से रक्षा करने के लिए पुलिस की तो जरूरत होनी ही है। गाँव का सेवादल ही गाँव के लिए जरूरी पुलिस का काम करे, इस दल का संगठन बहुत उत्तम रीति से होना चाहिए। इसकी उचित शिक्षा होनी चाहिए। चोरों से मार खाकर और अपनी जान जोखिम में डालकर उन्हें पकड़ लेना और फिर न्याय की पंचायत के सामने उन्हें हाजिर करना उनका कर्तव्य होना चाहिए। अभियोग सिद्ध होजाने पर अभियुक्त को दंड देना न्याय-पंचायत ही का काम है। [illegible] दंड भी न्याय-पंचायत का कर्तव्य होगा और शायद यह दंड [illegible] नये ढंग का हो, परन्तु इस दंड से चोरी घट जायगी। [illegible] में कमी होजायगी। प्राचीन काल के दंडों की तरह न [illegible] कत्ल करने की जरूरत है और न कोड़ों से मारने की आवश्यकता है। चोरी का कारण दरिद्रता हो तो उसे मिटा देना समाज का [illegible]। जाति-जाति की और पेशे-पेशे की पंचायतें अपनी ओर से अपने अपराधियों को सामाजिक दंड देंगी और इससे अगर आचरण का सुधार न हुआ तो इस तरह के बन्दीखाने भी रखने होंगे जिनमें बन्दी से अच्छा [illegible] लिया जायगा। उसे सत्य और अहिंसा की शिक्षा दी जायगी और [illegible]

कोई-न-कोई धर्म का ऐसा धन्धा सिखाया जायगा कि वह अपने सुधार की मियाद काटकर ईमान की मेहनत करके कमाने-खाने लगेगा। यह कोई खयाली बात नहीं है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारतवर्ष में लोग मकानों मे ताले नहीं लगाते थे और चोरियां सुनने मे नहीं आती थीं। बहुत सम्भव है कि हाथ काटने के बहुत कठोर और अमानुषी दंड के भय मे उस समय चोरियां कम होती हों। परन्तु उनका नाम जो नहीं सुना जाता था उसका कारण नैतिक सुधार ही हो सकता है, क्योंकि उसीके लगभग कठोर वध का दंड थोड़े ही समय पहले इंगलिस्तान मे दिया जाता था तब भी वहां चोरियां इतनी घटी हुई नहीं थीं। शिक्षा और सामाजिक दंड से नैतिक अपराध बहुत घटाये जा सकते हैं।

जान-माल की रक्षा केवल चोरों और डाकुओं से ही नहीं की जाती। फैलनेवाले रोगों मे इतनी जानें जाती हैं कि उनका मुकाबला युद्ध में मरनेवालों से सहज ही किया जा सकता है। आग लगने से किसानों के खलिहान-के-खलिहान भस्म होजाते हैं। घर-द्वार नष्ट होजाता है। जब एकाएकी बाढ़ आजाती है तो गांव-का-गांव उजड़ जाता है। आदमी और पशु डूब जाते हैं और बह जाते हैं। खेती-बाड़ी तबाह होजाती है। जब टिड्डी-दल की चढ़ाई होती है तो हाहाकार मच जाता है और वह दुर्भिक्ष पड़ता है कि टिड्डियों को आदमी खाजाते हैं और टिड्डियां आदमी को खाजाती हैं। ऐसी दशा मे भी रक्षा करने की आवश्यकता होती है। गन्दगी के कारण अनेक रोग फैल जाते हैं और संयम और सफाई न रखने से आदमी जवानी मे ही बूढ़ा होजाता और बुढ़ापा आने के पहले ही मर जाता है। इसलिए जान और मान की रक्षा इन उपद्रवों से करने की जरूरत है।

सचाई, अहिंसा और न्याय-बुद्धि के भाव की कमी से आये दिन

आपस के झगडे गाँवो मे भी होते रहते है। ये झगडे भी होते ही रहेंगे। इनको निपटाने के लिए आज कचहरियो के जाल मे फसकर किसान बरबाद होरहा है और अदालतो का उनकी बरबादी की बदौलत रोज़गार चलता है। उनमे जाने मे किसानो का कल्याण न होगा। गाँव की न्याय-पचायतो मे ही गाँववालो का भला होसकता है।

इस तरह रक्षा-पचायत के तीन विभाग तो जरूर होने चाहिएँ— (१) पहरा-दल, (२) स्वास्थ्य-रक्षा-मण्डल और (३) न्याय-पचायत।

पहरा-दल सेवा-दल का वह भाग होगा जो अपने पहरे बाँधकर बारी-बारी से बस्ती के भीतर गश्त लगाया करेगा। ऐसी दशा मे किसी एक चौकीदार के रखने की ज़रूरत न होगी। आग लगने पर, बाढ आने पर, टिड्डी आदि के उपद्रवो पर इसी दल का काम करना चाहिए। ऐसी सार्वजनिक विपत्तियो के आने पर इस पहरेवाले दल की सहायता सारा गाँव करेगा। परन्तु साधारण अवस्था मे यह पहरा-दल ही काफी होगा।

स्वास्थ्य-रक्षा-मण्डल का काम बहुत भारी होगा। [illegible] सफाई और सयम के साथ रहने के लिए शिक्षा देनी होगी। [illegible] मे क्या खाना चाहिए कैसे रहना चाहिए [illegible] और [illegible] सफाई कैसी रखनी और कैसे नहाना-धोना चाहिए [illegible] अपने कपडो की सफाई कैसे रखनी चाहिए अपने घर-द्वार [illegible] शुद्ध और पवित्र रखना चाहिए और किस तरह अपने [illegible] सफाई के सारे काम करने चाहिएँ—ये सब बातें हर किसान [illegible] कराती चाहिए और हर बच्चो को सिखानी चाहिए। इस तरह [illegible] स्वास्थ्य-शिक्षा का प्रचार इसी मण्डल का काम होगा। परन्तु [illegible] [illegible] घरो से नालिया बहती है, जिनसे गलियो मे बडी गन्दगी [illegible]

है। मकान के सामने घूरा है, जिसमें कूड़ा-कचरा सड़ा करता है। गन्दी नालियों में गन्दे कीड़े बिजबिजाया करते हैं। जहाँ गाय-बैल बाँधे जाते हैं वहाँ उनके मल-मूत्र से यों ही गन्दगी बनी रहती है। मकानों के पास ही अक्सर गड्ढे होते हैं, जिनमें बरसाती पानी भरा रहता है, काई जमी रहती है और लकड़ी-पत्तियाँ और कभी-कभी मैला भी बहता रहता है। लोग उसीमें आबदस्त लेते हैं, कुल्ला करते हैं, मिट्टी मल-मलकर हाथ धोते हैं और लोटा माँजते हैं। इसी पानी में मच्छर का परिवार बड़े जोरों से बढ़ता है और इन्हीं गड्ढों की बदौलत फसली बुखार फैलता है। गाँव के लोग मैदान में, खेतों में, घरों के पास बेधड़क पाखाना फिरते हैं। मैला सड़ता और सूखता रहता है। उसपर मक्खियाँ भिनकती रहती हैं और अपने गन्दे पाँव लेकर वे बस्ती के भीतर घरों में जाकर भोजन के पदार्थों पर बैठती हैं और उन्हें गन्दा कर देती हैं। लोग जगह-जगह थूकते-खखारते हैं और जूठा-कूड़ा इधर-उधर डाल देते हैं। इन गन्दी आदतों से गाँववालों को मुक्त करना है। घरों की भी बड़ी दुर्दशा है। हवा और रोशनी के आने की गुंजाइश कम रहती है। भीतों पर और छतों में गर्द-गुबार, जाले, कीड़े-मकोड़े भिरे रहते हैं। बदन पर का कपड़ा दरिद्रता और आलस्य के कारण बहुत दिनों तक न तो बदला जाता है और न धोया जाता है। बच्चों के मुँह पर लीबड़ लपटा हुआ है। गन्दी जगह लोट रहे हैं। माता-पिता को जब अपनी सफाई का ध्यान नहीं है तो लड़कों की सफाई का क्या होगा? गोबर-सा उत्तम और सोने के बराबर कीमती खाद पाथ कर जला दिया जाता है। आदमी का मैला ऊपर-ही-ऊपर सूखकर बीमारी फैलाने का कारण होता है। प्राचीन काल में गोबर और गोमूत्र में लक्ष्मी का वास इसीलिए था कि ये चीजें खाद के काम में आती थीं। खेत में गड्ढे बनाकर और अगर जरूरत

हो तो मामूली टट्टी लगाकर गाव के लोगो के बैठने के लिए बहुत-से पाखाने बन सकते है। इस तरह जिस खेत को खाद देकर बलवान करना मजूर हो उसमे नालियाँ खोद-खोदकर और पट जाने पर टट्टियाँ हटाकर सारे खेत का सुधार भी होसकता है और हर फरागत होनेवाला अगर उठते समय मैले को काफी मिट्टी से ढकता जाय तो न तो गाव में मक्खियो द्वारा गन्दगी फैले और न आदमियो की आखो को नाक को और तन्दुरुस्ती को किसी तरह का कष्ट पहुचे। गाय-बैल के मूत को इकट्ठा करने के लिए चोबच्चे बन सकते है जिनमे खेत की सूखी मिट्टी इस तरह डाली जासकती है कि पेशाब उसीमे समा जाय और वह मिट्टी समय-समय पर निकालकर अनाज और तरकारियो के खेतो मे खाद की तरह छिडक दी जाया करे। गोबर के लिए बस्ती से कुछ दूर पर या मैदान मे एक उस तरह का गड्ढा बनाया जाय कि सारा रोज-का-रोज उसमे डाल दिया जाया करे और उसको तन की मिट्टी से इसलिए ढक दिया जाया करे कि गन्दगी न फैले और [illegible] पर यही खाद खेतो मे डाल दी जाया करे। यह [illegible] प्रबन्ध स्वास्थ्य-रक्षा-मण्डल के सगठन से ही हो सकता है। [illegible] लोगो की सफाई सिखा सकता है और गाव और [illegible] रखवाता है।

नई सडके, नई धर्मशाला, नये कुएं, पाठशाला आदि तैयार कराने का बन्दोबस्त भी उसे ही करना होगा। यह सब काम गांव की किसान-सभा के खर्च से हो, चन्दे मे हो, किसीके दान मे हो, या गाववालो की आपस की शारीरिक मेहनत-मजूरी मे हो, चाहे जैसे हो, परन्तु होना जरूरी है।

गाव मे आवश्यकता समझी जाय तो अस्पताल बनाना भी स्वास्थ्य-मण्डल का ही काम होगा। परन्तु उसे यह तो हर हालत मे देखना होगा कि गांव के आसपास पाई जानेवाली काष्ट-औषधिया, पथ्याहार, जल, मिट्टी, वायु, धूप, व्यायाम, मालिश आदि स्वाभाविक और सुलभ विधियो से इलाज करनेवाला कोई समझदार वैद्य गाव मे है या नही। न हो तो एक किसी ऐसे वैद्य की जरूरत गांव के ही किसी रहनेवाले को यह काम सिखलवाकर पूरी करनी चाहिए। महामारी, हैजा, चेचक, फसली ज्वर आदि फैलनेवाली बीमारियो के होजाने पर किसानो की रक्षा करने के लिए, या इसी तरह की लगनी या पसरनी बीमारियो से पशुओ को बचाने के लिए, सदा उचित उपायो मे सजग रहना स्वास्थ्य-मडल का ही काम होगा। इस तरह पर प्राणो की रक्षा करने के उपाय करना स्वास्थ्य-मडल का एकमात्र कर्तव्य होगा।

स्वास्थ्य-रक्षा-मडल के दफ्तर मे जन्म, स्वास्थ्य की दशा और रोजगार की हालत और मरण तक का सारा विवरण हर मानव-प्राणी का रहा करेगा और हर दसवे बरस अको का मुकाबला करके एक रिपोर्ट तय्यार की जायगी, जिससे पता चलेगा कि गांव के जनबल ने कितनी उन्नति की है।

न्याय-मण्डल का काम भी जान-माल और नीति व सत्य की रक्षा का ही है। न्याय-पचायत में वही लोग चुन जाने चाहिएं जो गांव मे निडर, ईमानदार और परमेश्वर से डरनेवाले समझे जाते हो और जो

किसीका पक्षपात न करते हो। रक्षा-पचायत ऐसे ही आदमियों को चुनकर न्याय-मण्डल मे रक्खेगी। जिसे नालिश करनी होगी उसे न्याय-मण्डल के सदस्यो मे से दो को अपना पच चुनकर अपनी फरियाद उनसे कहदेना होगी। ये दो सज्जन न्याय-मण्डल के मत्री से मुद्दालेह को बुलवावेगे और उनसे अपने दो पच और चुनवा लेगे। चारो मिलकर एक सरपच उसी मडल के सदस्यो में से चुन लेगे और पाँचो मिलकर पच की कचहरी का समय ठहराकर मुद्दई-मुद्दालेह को सूचना देदगे। इस ठहराये हुए समय पर पच की अदालत बैठेगी और फैसला कर देगी। फैसला पचायत-मडल की पोथी मे लिखा जाया करेगा। इन पचो के फैसले पर अपील किसान-सभा मे होसकेगी। परन्तु गाव के भीतर के झगडे उस गाँव की किसान-सभा मे आगे न जा सकेगे।

एक गाँव के जो झगडे दूसरे किसी गाँव से होगे उनके लिए दोनो गावो मे चुने हुए पचो की कचहरी मे उनका मुकदमा होगा और अगर कई गावो मे कोई झगडा फैला तो हर गाव मे न्यायी प्रतिनिधि चुने जायँगे, किसी केन्द्र मे कचहरी बैठेगी, पास के अधिक [illegible] और उनके फैसले की अपील बडी केन्द्रस्थ किसान-सभा मे [illegible]। उस किसान-सभा का फैसला ही आखिरी होगा।

: ११ :

व्यवसाय-पंचायत

किसान के मुख्य-मुख्य तीन व्यवसाय है—(१) खेती, (२) गोपालन, और (३) वाणिज्य-व्यापार। इन्ही तीनो व्यवसायो के अन्तर्गत गाँवो के रहनेवालो के सभी पेशे आजाते है। हल, चरखे, चरखी आदि बनाने के लिए लोहार, बढई आदि, मोट, ताँत आदि बनाने को और मरे पशुओ को काम मे लाने को चमडे आदि के व्यवसायी चमार, बास की चीजे बनाने को बसफोर आदि तो खेती के अग ही समझे जाने चाहिए। परन्तु खेती करनेवाले को कपडे चाहिएं, उनके धोनेवाले चाहिए, रगने और छापनेवाले चाहिएँ, बरतन बनानेवाले चाहिएं, हजामत के लिए नाई चाहिए। ये तो जीवन के लिए जरूरी बाते हुई। परन्तु मनुष्य केवल खाने-पहरने पर ही अपना जीवन निर्भर नही करता। उसे सौन्दर्य्य और कला की भी जीवन को सुखी बनाने के लिए जरूरत पडती है। निदान, जितने पेशे है, जितने शिल्प है, सभी खेती के अधीन है। सबका विकास गाँव से ही आरम्भ होता है। शहरो मे बस्ती बडी होने से और राजा, साहूकार, महाजन तथा राजपुरुषो के अपनाने से शिल्प-कला एव ललित-कलाओ का विकास अपनी पराकाष्ठा को पहुँचता है। गाँव से ही आरभ होने के कारण सभी पेशे और सभी कला के लोग गाँवो मे पाये जाते है। इनमें से बहुत-से व्यवसायी ऐसी वस्तुये तैयार करते है जो गाँवो के भीतर खर्च होजाने पर भी बच रहती है और जिनको खपाने के लिए उन्हे ऐसे गाँवो में भेजना जरूरी होता है जहाँ वस्तुये कम तैयार

होती है, या नहीं तैयार होती। इसके लिए जगह-जगह हाट और बाजार
खुलते है, जहाँ बेचने और खरीदनेवाले जुटते हैं। सुभीते के लिए गाव
के बिकनेलायक माल इकट्ठे करके लोग लेजाते है और एक ऐसी जगह
रखते है जहा गाहक जुटते हो। इस तरह खेती के काम मे जैसे केवल
खतने नहीं बल्कि और तरह से उपजे माल भी शामिल है, उसी तरह
वाणिज्य में खेती ही नहीं बल्कि कारीगरो के बनाये, खानो से निकले
जगलो से सग्रह किये, सभी तरह के माल शामिल होते है। इसी तरह
गोपालन मे मुख्य काम गाय-बैल का पालना है परन्तु गोपालन के साथ-
साथ भेड, बकरी भैस, घोडे, गधे, सुअर आदि पशु और बतख, मुर्गी
आदि पक्षी भी शामिल है। बहुत जगह मछली मारना भी पेशा है और
खेती के ही अन्तर्गत समझा जाता है। यह 'पालन" नहीं है। इसी तरह
पशुओ और पक्षियो का शिकार करना "व्याधो आदि का काम भी
गावो म होता है। परन्तु जो हत्या के काम है वे [illegible] के कामो म
शामिल नहीं होसकते। किसान का काम रक्षा का है हत्या का नहीं।
हमारे प्राचीन ग्रन्थो म व्याधो, चाडाल, [illegible]
आदि हत्यारो के लिए गाव से बाहर रहने की [illegible] था। [illegible]
हत्या का पेशा ऐसी घृणा से देखा जाता था [illegible]
गन्दे समझे जाते थे। परन्तु समाज मे इनकी [illegible]
करने के लिए इनके उपयुक्त गन्दा काम [illegible]
दी जाती थी। यही नीच श्रेणी के शूद्र थे। [illegible]
मौजूद है। इन्हे उठाने की कोशिश होरही है। [illegible]
और हत्या के कर्म छोड दे तो समाज के लिए [illegible]
गावो को पुरोहित, वैद्य, ज्योतिषी और [illegible] चारो [illegible]
जरूरत है। ये चारो भी व्यवसाय है, परन्तु [illegible]

के लिए इनकी भी जरूरत है, परन्तु इनकी अदला बदली या बटाई की जरूरत नहीं पडती। इनको ऊँचे प्रकार की मजूरी मे गिन सकते है। इसी लिए व्यवसाय-पचायत मे इनके शामिल होने की जरूरत नहीं है।

इस प्रकरण मे हम उन्हीं व्यवसायो के सगठन पर विचार करेगे जो सम्पत्ति को उपजाते है, उसकी रक्षा करते है, उसको प्रजा मे उचित रीति पर बाँटते है और परस्पर अदला-बदली करते है।

व्यवसाय-पचायत का उद्देश्य यही होना चाहिए कि सम्पत्ति उपजे और बढे, प्रजा मे जैसी आवश्यकता हो उसके अनुसार उचित अदला-बदली होती रहे, उसकी बँटाई ठीक ढग से हो, और उबरे हुए माल को उन लोगो मे सहज उपाय से पहुचाया जाय जिनको उसकी जरूरत है। इन उद्देश्यो का सबसे उत्तम साधन यही है कि व्यवसाय के सबध में व्यवसायी लोग जितने काम करे वे इकट्ठे मिलकर करे। इसीलिए व्यवसाय-पचायत का यही काम होगा कि वह अपनी ओर से सहयोग-समितियाँ बनावे।

सहयोग-समितियाँ सरकार की ओर से देश मे बनी नहीं, परन्तु वे उस हवेली की तरह तैयार हुई जिसकी नींव आकाश मे दी गई हो। तात्पर्य यह कि गाँव के रहनेवालो के सुभीते के लिए जो सस्था बने उसे तो गाँवो में ही पैदा होना चाहिए और बढते-बढते देश मे फैलकर बडा रूप धारण करना चाहिए, पीछे उसकी रक्षा के लिए चाहे सरकार कानून भले ही बनादे। वर्तमान सरकार की सहयोग-समितियाँ ठीक विपरीत विधि से बनी है। इसीलिए न तो उनसे जितना चाहिए उतना लाभ होसका और न प्रचार ही होसका। उनमें एक बडा और अनिवार्य्य दोष यह है कि उनसे दरिद्र और कगाल किसान लाभ नहीं उठा सकता। यह दोष उन्हे और भी निकम्मी कर देता है।

खेती करनेवाले अपनी सहयोग-समिति खेती के सुभीते के लिए बनाकर बहुत लाभ उठा सकते है। मानलो कि चार किसानो के पास चार-चार बीघे ही खेत है। एक हल और एक जोडी बैल तो उनमे से हरेक को चाहिएँ। इस तरह अलग-अलग तो उन्हे चार हल और चार जोडी बैलो की जरूरत हुई। पर चारो मिलकर काम करे तो दो जोडी बैलो और दो हलो से काम चल सकता है। उन्हे बीजा की ज़रूरत पडी। हरेक फुटकर खरीदेगा तो महगे पडेगे। अगर इकट्ठे सब मिलकर ख़रीदेगे तो सस्ते पडेगे। मिलकर कुए खुदवाने और इकट्ठे काम लेने मे भी इसी तरह सुभीता होगा। खडी फसल की रक्षा करने के लिए भी परस्पर सहायता काम म आती है। अनाज की बिक्री के समय भी बाहरी व्यापारी से भाव के निश्चय मे सहयोग लाभदायक है। बिकने के लिए माल को बाज़ार [illegible] भेजने म भी सुभीता है। इसी तरह गाँव म जरूरी माल के मँगवाने म भी मिलकर काम करने मे ही सुभीता है। इस तरह किसान लोग मिलकर काम करे तो बडी किफायत म उनका काम [illegible]। व्यवसाय-पचायत का काम है कि वह अपने प्रदेश [illegible] की ग्राहक-मडली, साहूकार-मडली आदि सहयोग-मडलियो [illegible] सुभीते से काम होने का बन्दोबस्त करे।

गावो मे कई पेशेवाले होसकते है। कहीं-कहीं तो [illegible] कुम्हारो से ही बसे है। किसी गाव मे [illegible] जुलाहे है। इस तरह के गावो मे तो कुम्हारो, [illegible] मडली आसानी से बन सकती है। गावो मे जो [illegible] मडली उसी गाव के लिए होनी काफी है। परन्तु [illegible] मिले-जुले लोगो से ही बसे होते है जिनमे प्रधान [illegible]

होती है । इनमें तो किसानों की विविध सहयोग-मंडलियां बन ही जायगी । परन्तु इन मिली-जुली बस्तियों में जो इक्के-दुक्के पेशे वाले रहते हैं, उन्हें भी सहयोग करनेवाली पंचायतों के लाभों में वंचित न रहना चाहिए । ऐसे मिले-जुले सौ-पचास गांवों के रहनेवाले हर पेशे-वालों की अपनी मिली-जुली पंचायत या मंडली होनी ही चाहिए । जैसे कुम्हार, लोहार, सोनार, धोबी, नाई, तेली चमार आदि दो-एक घर तो हरेक गांव में होने ही चाहिए । इस तरह के पचास गांवों में पचहत्तर या सौ घर तो जरूर होंगे । जहां उनकी इस तरह की पंचायतें नहीं हैं वहाँ इनकी पंचायतें या मंडलियां बन जानी चाहिए । इनकी रचना इन पेशेवाले अपनेआप न करें तो गांवों की व्यवसाय-पंचायतों को आपस में मिलकर इनकी इस काम में सहायता करनी चाहिए ।

कारीगरों की मंडलियां तो विशेषरूप से इसलिए बननी चाहिए कि उनकी कला बराबर उन्नति करती जाय और जनता के लिए वे जो काम करें वह उत्तम-से-उत्तम हो । उसमें सचाई और नीति पूरी तौर से बरती जाय । कोई कारीगर अपने पवित्र धर्म में खोटाई करे, सच्चाई और ईमानदारी के मार्ग से डिग जाय, या कला की हानि करे, तो उसकी मंडली की ओर से उसे कड़े-से-कड़ा दंड दिया जाय ।

व्यवसाय की जितनी मंडलियां हों उन सबका एक ही लक्ष्य यह सचाई और ईमानदारी, उपकार और अहिंसा की पूरी रक्षा करते हुए उस व्यवसाय की हर तरह पर उन्नति बराबर होती ही जाय ।

व्यवसाय-पंचायत का काम अपने अन्तर्गत सहयोग की मंडलियां खोलकर ही पूरा नहीं होजाता । सहयोग-मंडलियों का निर्माण उसका मुख्य काम है, परन्तु साथ ही उसका यह भी कर्त्तव्य है कि अपने गाँव की परिस्थिति को अच्छी तरह ध्यान में रखकर खेती, पशुपालन और

वाणिज्य मे जिन-जिन उपायो से उन्नति होसके वे उपाय स्वय करे और मडलियो से करावे। कृषि-विभाग से सहायता ले, कृषि-शास्त्र का अनुशीलन करके निरन्तर सुधारो पर विचार करता रहे। इस तरह पर खेती करावे कि अधिक-से-अधिक उपज बढे। सिचाई का उत्तम-से-उत्तम बन्दोबस्त करे। माल की ढुलाई के लिए उचित उपाय करता रहे और गाँवो से बात-चीत करके अपने यहाका उबरा माल दूसरे गाँवो मे और दूसरे गावो का उबरा माल अपने गावो मे मंगवाकर बंटवावे या खपवावे, जिससे कही आवश्यक माल जमा होकर न रह जाय।

व्यवसाय-पचायत बराबर नये व्यवसायो की खोज मे भी रहेगी और गाँवो के बेकारो को भरसक काम दिलाने का जतन करती रहेगी। वह यह भी देखभाल रखेगी कि गाँव मे कितने दरिद्र ऐसे है कि काम कर लेने पर भी उन्हे खाने-पहनने को काफी नही मिलता और वे दरिद्रता के कारण सफलता से कोई काम नही कर सकते। [illegible] ऐसे कगालो को मदद देकर उभारना और उन्हे ऊचे उठाकर अपने पैरो पर खड़ा करना व्यवसाय-पचायत का परम-कर्तव्य है। [illegible] का एक ही सुधार है।

जाय । यह तपस्या है, सयम है, उसे किसीको बुरा न समझना चाहिए ।

व्यवसाय-पचायत का यह कर्त्तव्य होगा कि भरसक थोडा-बहुत मूल ऋण चुकाने का हरेक ऋणी के लिए बन्दोबस्त करती रहे और साहूकार पर अकुश रक्खे कि वह अत्यन्त हल्के ब्याज से ही ऋणी को छुटकारा देदे ।

व्यवसाय-पचायत का यह भी कर्त्तव्य होगा कि जिन लोगो के पास कोई मिल्कियत न हो और वे ऐसी मिल्कियत खरीदना चाहे कि जिससे वे गुजर-बसर कर सके, तो उनके लिए ऐसी छोटी मिल्कियत के खरीदवाने मे भरसक सहायता करे ।

व्यवसाय-पचायत का एक विभाग ऐसा होगा जो हर किसान के व्यवसाय का ब्योरा अपनी बही मे रक्खेगा । इसी विभाग के अधिकार मे गाँव का पटवारी और उसका दफ्तर भी होगा । उसकी सारी देख-भाल पचायत करेगी और पटवारी का वेतन पचायत देगी ।

व्यवसाय-पचायत के सम्बन्ध मे हमने विविध पेशो और जातियो की मण्डलियो की चर्चा की है । परन्तु यह सभी जानते है कि विविध जातियो का सगठन देश मे मौजूद है । सबकी पचायते हैं । ये पचायते पहले पेशे की रही होगी, परन्तु आज उनका सगठन पेशे की भलाई या उन्नति के लिए नही मालूम होता । उनके सामने तो आज केवल रोटी और बेटी के प्रश्न उपस्थित होते है । वे पचायते सामाजिक हो गई है, व्यावसायिक नही है । परन्तु प्राय हर जाति का नाम उस जाति के पेशे की सूचना देता है । जान पडता है कि हिन्दू-समाज का प्राचीन सगठन पेशो के अनुसार था और उसकी पचायते भी उन-उन पेशो की रक्षा और उन्नति के लिए थी । यह बात भी सही है कि पीढी-दर-पीढी के एक ही व्यवसाय मे लगे रहने से उस व्यवसाय मे पूर्णता आजाती है । उस

वश का आदमी उस व्यवसाय मे कुशल, दक्ष और परिपूर्ण हो जाता है। माता-पिता की कुशलता और दक्षता का प्रभाव सन्तान पर पडता ही है। सहवास और सहभोजन इसमे सहायक होता है। इसीलिए ये व्यावसायिक पचायत प्राचीन काल मे इस बात पर बहुत कडी निगाह रखती होगी कि एक व्यवसायवाले का रक्त-सम्बन्ध उसी व्यवसाय-वाले के साथ हो। सहभोज और सहवास भी भरसक विशेष व्यवसाय के भीतर ही हो। काल पाकर उस विचार का केवल अन्तिम अर्थात् रोटी-बेटी के सामाजिक व्यवहार का ही विषय उसका मुख्य ध्येय रह गया और व्यवसाय की रक्षा जो पहले मुख्य उद्देश्य था वह धीरे-धीरे गौण विषय हो गया। अब भी हमारी समझ मे व्यवसाय की मुख्यता देकर इन जातियो की जीवित विद्यमान पचायतो को हम ठीक मार्ग पर ला सकते है और बने-बनाये काम का सुधार सरल है। मेरी समझ मे जाति-पाँति के तोडनेवाले भूल पर है और उनकी निर्दिष्ट क्रान्ति बड़े परिमाण मे सफल भी नही होसकती। बने-बनाये काम को नाश करने का प्रयत्न समीचीन नही समझा जा सकता। जाति-पाँति ने [illegible] समाज की रक्षा की है। स्वतन्त्रता जाने पर [illegible]

शासन-समिति मे सलाह लेकर व्यवसाय की नीति निर्धारित करना, रक्षा-पचायत से मिलकर धन-जन की यथेष्ट रक्षा मे पूरी सहायता लेना, शिक्षा-पचायत से मिलकर गांववालो को ऐसी शिक्षा देने के बन्दोबस्त मे मदद देना जिससे कि खोये हुए व्यवसाय फिर मिल जायँ और उनकी एक मिनट की शिक्षा भी निरर्थक न हो, और सेवा-पचायत मे मिलकर ऐसे उपाय करना कि गाववालो की भयानक बेकारी मिटे—यह सहकारिता का व्यवहार व्यवसाय-पचायत के लिए अत्यन्त आवश्यक होगा।

शासन और अर्थ-समिति को यही व्यवसाय-पचायत समय-समय पर यह सलाह देगी कि गांववालो से किस प्रकार किस हिसाब से कर लिया जाय, अथवा सभी कामो मे किस प्रकार सहकारिता प्राप्त की जाय, और व्यवसाय की दशा देखकर ही खर्च का सयम किया जायगा।

सेवा-पंचायत

सेवा-पंचायत के दो विभाग होंगे। एक मजूर-मण्डली और दूसरी विहार-मण्डली।

हर गाँव में ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिनके कोई सिक्खियत नहीं है और न वे ऐसे समर्थ हैं कि जल्दी किसी सिक्खियत के अधिकारी हो सकें। यह मजूरी भी कई तरह की हो सकती है। किसीमें शारीरिक बल और परिश्रम अधिक चाहिए और किसीमें कम। किसीमें लगातार काम करना पड़ता है और किसीमें बीच-बीच में रुककर। जहाँ इंजन या बैल्ट चलता है वहाँ मजूर को लगातार या निरन्तर खड़े रहकर बिना रुके काम करना पड़ता है।

होसकते वह मजूर रखकर काम लेता है। ये सारे काम प्रतिष्ठित और पवित्र है, और यद्यपि ये मजूरी लेकर किये जाते है तो भी जिसके लिए किये जाते है उसे तो मजूरी देकर भी मजूर का अहमान मानना चाहिए। मजूरी तो उस काम करनेवाले के निर्वाह के लिए दी जाती है, परन्तु वह जो अपनी स्वतत्रता और समय और आराम को छोडकर काम करता है वह विशेषरूप से "सेवा" करता है। सेवा पवित्र काम है। रुपये-पैसे या अन्न से उसका बदला नहीं होसकता। क्योंकि त्याग का बदला रुपये-पैसो के द्वारा नहीं दिया जासकता।

जिसके पास मिल्कियत है वह भी मेहनत करता है और वही मेहनत करता है जो मजूर करता है, परन्तु अपनी मिल्कियत पर आप ही जो काम करता है उसकी मजूरी न तो लेता है न जोडता है। इसी-लिए यह नहीं कहा जासकता कि वह मजूरी करता है, परन्तु उसका और मजूर का काम असल मे एक ही है।

अनेक ऐसे मिल्कियतवाले भी है जो अपनी जमींदारी या साहूकारी की आमदनी पर जीते है, मेहनत करना अपना अपमान समझते है, आराम की, सुस्ती की और वेकारी की जिन्दगी काटते है। इनका काम मजूर करते है। ऐसे लोगो की गिनती साधारण किसानो मे नहीं हो सकती। ये धनवान पूँजीपति समझे जासकते है।

हम देख चुके है कि साधारण किसान और मजूर गाव मे काम एक ही तरह का करते है। इनका काम घोर शारीरिक परिश्रम का है। इनमे कई काम इस तरह के है कि बगैर मिल-जुलके किये हो नहीं सकते। छप्पर उठाने के लिए बहुत-से आदमियो की मदद लेनी पडती है। फिर साधारण मजूरी के काम मे भी एक मजूर दूसरे से अधिक कुशल होसकता है। इसीलिए मजूरो का सगठन होजाय और जो काम

है, कातता है, कम्बल आदि बनाता और बेचता है। बसफोर बांस काटकर सादी और चित्रित भांति-भांति की सुन्दर चीजें बनाता है। बढ़ई व लोहार लकड़ी और लोहे का काम करते है और अपनी ओर से सामान बनाकर बेचते भी हैं। सोनार सोने-चांदी का काम करता है। निदान ये सभी शिल्पी मजूर है। कारीगर हैं और रोजगारी है। इनकी अलग-अलग पेशेवाली पंचायतों की चर्चा हम कर आये है।

साधारण मजूर मोटे काम करते है और अपनी ओर से कोई रोजगार नहीं करते। इनकी पंचायत भी होनी चाहिए। इनकी एक मंडली मजूर-मंडली बने जिसमें हलवाहे, बेलदार, पेशराज, दीवाल उठानेवाले, छप्पर छानेवाले, पानी भरनेवाले, डोली-बहँगी ढोनेवाले, गाड़ीवान, चौकीदारी करनेवाले, हरकारे, नाई, बारी आदि सभी मोटे काम करनेवाले शामिल हों। इन्हें चाहिए कि अपने-अपने काम में बढ़न्ती करें और उन कामों को मुख्य रखकर, दूसरी तरह की कला—पढ़ना-लिखना, गाना-बजाना, चित्रकारी आदि—सीखें। अपने-अपने काम में सचाई, अहिंसा, त्याग, सेवा, धर्म्म आदि पर निगाह रखते हुए तरक्की करें।

२ विहार-मंडली

शासन, शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, सेवा सभी परिश्रम के काम हैं। दिनभर जो मेहनत करता है उसे खाने-कपड़े, नहाने-सोने आदि कामों के सिवा जी बहलाने और शरीर और मन की थकान मिटाने की जरूरत भी पड़ती है। ऐसा न करे तो उसका शरीर और मन दोनों जल्दी जवाब देदेंगे, और उसके जीवन के दिन घट जायँगे। बचपन की अवस्था खेल-कूद और निश्चिन्त रहने की अवस्था समझी जाती है। यह अवस्था तन्दुरुस्ती को ठीक रखती है, आयु को बढ़ाती है और प्राणी को सुखी

लाभ बहुत है पर दड, बैठक आदि में मेहनत बहुत है और मन-बहलाव कम है, साथ ही यह वह काम नहीं है जो थके शरीर पर किया जाय। खेती और बाग़बानी मे जिन्हे पूरी मेहनत नहीं करनी पडती या जिनको इन कामो मे छुट्टी मिल चुकी है उनके लिए इस तरह के व्यायाम बहुत जरूरी हैं। यह नियम होजाना चाहिए कि उन समयो मे जब कि किसान को फुरसत रहती है, गाव का हर नौजवान गाव के अखाडे मे शरीक हो और दड-बैठक के सिवाय लकडी, बनेठी, गदका, फरी, कुश्ती, मलखम्भ के खेल, दौड आदि सभी तरह के खेलो में शरीक हो। इनमें से दो-एक को छोडकर तो बाकी मे पूरा दिलबहलाव है। निशाना मारनेवाले खेल या जिनमे होड लगती है वे खेल तो बडे लोकप्रिय समझे जाते हैं। व्यायाम केवल मनोरजन की सामग्री नहीं है। इसे तो जरूरी काम समझना चाहिए और बीमारो को छोडकर सबके लिए अनिवार्य होजाना चाहिए।

व्यायाम के बाद खेल-कूद का नम्बर आता है। गांवो मे बहुत तरह के खेल-कूद की चाल है। प्राय सभी खेल हाथ-पाव को मजबूत करनेवाले है। कबड्डी बहुत अच्छा खेल है। इसमे सांस का भी अभ्यास होता है और हाथ-पॉव भी मजबूत होते है। अभी हाल मे मदरसो मे स्काउटो या चरो के खेलो का प्रचार हुआ है। इनमें खेल भी है, मनोरजन भी है, और समाज की सेवा भी है। चाहिए कि हर गाव अपने नौजवानो को सेवा-रूप मे सगठित करे। उन्हे मनोरजन के साथ-साथ समाज-सेवा की यह उत्तम शिक्षा है।

सेवा-समिति के इन चरो को ऐसे सब तरह के काम सिखाये जाने चाहिएँ कि जिनकी आये दिन जरूरत पडा करती है और जिनके लिए समाज ने कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किया है। जैसे (१) आकस्मिक

विश्वविद्यालय में जाने की जरूरत नही है, अगर उनके यहा पुराणो की कथा हुआ करती हो। पुराणो के पढने मे भारत की पुरानी सस्कृति का ज्ञान होता है। कोई-कोई पुराण ऐसा है कि बातचीत के बहाने किसी विशेष विद्या की शिक्षा भी उससे मिलती है। अग्नि-पुराण मे तो सभी विषयो का वर्णन है। एक भी छूटा नही है। एक अग्नि-पुराण पढलेने से मनुष्य सारी हिन्दू सस्कृति को थोडे मे जान जाता है। महाभारत सभी विद्याओ का भण्डार है। कोई विद्या ऐसी नही है जो उसमे न हो। रामायण, महाभारत और पुराणो की कथाये गाव-गाव मे होती रहे तो बिना अक्षर-ज्ञान के भी बडी अच्छी शिक्षा गाव के उन रहनेवालो को मिल सकती है जिनको अक्षरो के सीखने का मौका नही मिला है।

मेले-तमाशो से दिल-बहलाव भी होता है, शिक्षा भी मिलती है, और रोजगार भी चलता है। जो तमाशे नीति के विरुद्ध होते हो वे न होने चाहिएँ। जुए का तमाशा निन्दित है। जिन तमाशो से मनुष्य या पशुओ को कष्ट पहुँचता हो वे अच्छे तमाशे नही समझे जाने चाहिएं। मेलो मे खेल और तमाशे भी होते है और व्यापार भी होता है। बाजार भी दिल-बहलाव की जगह है। यहाँ शिक्षा मिलती है और बहुत-से लोगो से भेंट भी होती है। परन्तु नित्य के घूमने-टहलने के लिए तो साफ एकान्त जगल ही अच्छा है, जहाँ हरियाली का दृश्य हो और जल-वायु साफ हो। दिन-भर की मेहनत से लौटा हुआ किसान शायद टहलना पसन्द न करेगा, वह अपने दरवाजे पर या चौपाल मे और तरह पर जी बहलावेगा। परन्तु जिस दिन उसे खेत मे मेहनत नही करनी पडती उस दिन वह व्यायाम करे या टहलने निकले तो स्वाभाविक है। तमाखू पीना, या गाजा या भग पीना, अथवा शराब या ताडी पीना अत्यन्त बुरा है। इन्हे गाँवो से निर्मूल कर देना होगा। इनसे दिल-बहलाव

पर्वो और त्योहारो मे हमारी प्राचीन राष्ट्रीयता जीती-जागती मौजूद है। पिछले काल मे दरिद्रता के कारण इनका भी लोप होचला है। नित्य के एक तरह के चलते हुए जीवन के बीच-बीच मे पर्व और त्योहार आजाने से मन बदल जाता है, जीवन मे उत्साह आजाता है, अपने पूर्वजो की याद जग जाती है, अपनी खोई बड़ाई एकबार फिर सामने आकर हमे आगे बढने का हौसला दिलाती है और हमारी निगाहो के सामने बडो का उत्तम आदर्श एकबार फिर खडा कर देती है। अपने पर्वों और त्योहारो को फिर से जगाकर चलाने की जरूरत है। ग्राम-संगठन का यह भी एक जरूरी अंग समझा जाना चाहिए।

यहातक हमने यह देखा कि हमको किन-किन बातो मे संगठन की जरूरत पड सकती है। अब आगे चलकर हम यह विचार करेगे कि पूरा गाँव कैसा होना चाहिए।

न हो, तो गाव पगुल है। और किसान न हो तो गाव मुर्दा है। गाव के रहनेवाले उसके अग है। पर किसान तो गाव का प्राण है। आजकल हमारे भारत के गाव बहुत करके अगहीन है। कोई अन्धा है कोई बहिरा, कोई लगडा है कोई लुजा, और कई तो ऐसे है जिनके प्राण-ही-प्राण रह गये और बाकी अग नष्ट होगये है। हमारे गाव आजकल पूरे नही है, अधूरे है। भारत के सात लाख गावो मे अधूरे और रोगी प्राय सभी है। हम क्या करे कि इनका रोग मिट जाय और अधूरे अग पूरे होजायँ ? देह के अग जो नष्ट होजाते है वे फिरसे नहीं बन सकते। परन्तु प्राण बाकी रहता है तो अधा आदमी टटोल के आख की कमी पूरी कर लेता है। बहिरा अन्दाजे से और मुंह के हिलने-डोलने से काम चला लेता है। रोगी अग का रोग जबतक दूर न होजाय तब-तक काम ठीक नही कर सकता। जिस अग मे रोग है और नष्ट नही होगया है वह इलाज से अच्छा होसकता है। सात लाख गांवो मे जिन गांवो के अग एकदम नष्ट नही होगये है, उनके सुधार के उपाय किये जासकते है। जिनके अग नष्ट होचुके है उनका काम चलाने के लिए भी उपाय होसकते है।

गाँवो का सुधार और सगठन करने के लिए हमें समझना होगा कि एक नमूने के गाँव की जरूरते क्या-क्या हैं ? हम किसी गाँव को पूरा कब कह सकते है ?

अनाज और कपास पैदा करना खेतो का असली काम है। गाव के चारो ओर खेतो का होना जरूरी है। गाँव को खाना और कपडा दोनो चीजे मिलनी ही चाहिएँ। आदमी के जीने के लिए हवा, पानी, खाना और कपडा ये चार चीजे बहुत जरूरी है। साफ हवा और साफ पानी रोग से बचने के लिए बहुत जरूरी है। चारो ओर सफाई रखने से हवा

न हो, तो गाव पगुल है । और किसान न हो तो गाव मुर्दा है । गाँव के रहनेवाले उसके अग है । पर किसान तो गाव का प्राण है । आजकल हमारे भारत के गाव बहुत करके अगहीन है । कोई अन्धा है कोई बहिरा, कोई लगडा है कोई लुजा, और कई तो ऐसे है जिनके प्राण-ही-प्राण रह गये और बाकी अग नष्ट होगये है । हमारे गाव आजकल पूरे नही हैं, अधूरे है । भारत के सात लाख गावो मे अधूरे और रोगी प्राय सभी है । हम क्या करे कि इनका रोग मिट जाय और अधूरे अग पूरे होजाय ? देह के अग जो नष्ट होजाते है वे फिरसे नहीं बन सकते । परन्तु प्राण बाकी रहता है तो अधा आदमी टटोल के आँख की कमी पूरी कर लेता है । बहिरा अन्दाजे से और मुह के हिलने-डोलने से काम चला लेता है । रोगी अग का रोग जबतक दूर न होजाय तब-तक काम ठीक नहीं कर सकता । जिस अग मे रोग है और नष्ट नहीं होगया है वह इलाज से अच्छा होसकता है । सात लाख गावो मे जिन गाँवो के अग एकदम नष्ट नहीं होगये है, उनके सुधार के उपाय किये जासकते है । जिनके अग नष्ट होचुके है उनका काम चलाने के लिए भी उपाय होसकते है ।

गाँवो का सुधार और सगठन करने के लिए हमे समझना होगा कि एक नमूने के गाँव की जरूरते क्या-क्या है ? हम किसी गाँव को पूरा कब कह सकते है ?

अनाज और कपास पैदा करना खेतो का असली काम है । गाव के चारो ओर खेतो का होना जरूरी है । गाँव को खाना और कपडा दोनो चीजे मिलनी ही चाहिएँ । आदमी के जीने के लिए हवा, पानी, खाना और कपडा ये चार चीजे बहुत जरूरी है । साफ हवा और साफ पानी रोग से बचने के लिए बहुत जरूरी है । चारो ओर सफाई रखने से हवा

साफ रह सकती है। अच्छे कुएँ, तालाब या नदी से साफ जल भी मिल सकता है। भोजन और कपडा खेत के अनाज और कपास से मिल सकता है। किसान अनाज और कपास उपजाता है और उपजाने के लिए जो-जो और साधन चाहिएँ उनको इकट्ठा करता है। कुएँ खोदने को, सिचाई करने को, हल जोतने को, उसे आदमी और पशु की मदद चाहिए और औजार भी चाहिएँ। कुएँ खोदने को नोनिये, हल जोतने को हलवाहे, हल चरखा आदि बनाने को लोहार या बढई या दोनो ज़रूर चाहिएँ। कपडे बनाने को कोरी, कोष्टी, जुलाहा या बुनकर भी चाहिएँ। हम अगर मानले कि वह नगे पाँव रह सकता है, उसकी बीवी घर में पीस सकती है और ओट, धुन, कात सकती है, साथ ही ज़रूरत पड़ने पर थोडा-बहुत सी भी लेती है, तो किसान के निबाह के लिए मजूर, हलवाहा, बुनकर इन्हीकी ज़रूरत है। पर उसके कपडे मैले भी होगे, वह अगर पा सके तो उसे धोबी भी चाहिए। बाल और नाखून बढेगे, इसलिए मिले तो नाई भी चाहिए। जिस घर मे रहगा उसके छाजन में खपरो की ज़रूरत पडेगी। उसे खाने-पकाने को बर्तन भी चाहिएँ। इसी तरह पानी भरने को घडे आदि भी बार-बार चाहिएँ। मिट्टी के बर्तन उसे अनेक कामो के लिए बार-बार चाहिए, इसलिए कुम्हार का गाँव मे होना ज़रूरी है। धातु के बरतन दस-बीस बरस मे कभी एकबार खरीदने पडेगे, इसलिए कसेरे या ठठेरे की ज़रूरत गाँव मे नही है। खाने-पीने की चीज़ो मे हल्दी धनिया, मिर्च आदि मसाले सभी किसान नही तैयार करते, क्योकि अनाज की तरह इनकी माग बहुत ज्यादा नही है। तेल, घी, दूध और दही अच्छे प्रकार के भोजन मे ज़रूरी चीजे समझी जाती है, इसलिए तेली और ग्वाले का होना अच्छे गाव मे ज़रूरी है। मनुष्य खाने-कपडे पर ही सन्तुष्ट नही

रह सकता, उसके यहा ब्याह भी होता है, सन्तान भी होती है, तीज-त्योहार भी होते है, धर्म के काम भी होते है। आये दिन जब कभी कोई बीमार हुआ तो इलाज कराना भी जरूरी होता है। इसलिए पुरोहित और वैद्य दोनो की जरूरत है। फिर जब अनाज और कपडे इकट्ठे होते है, बर्तन और गहने भी घर मे होते है, तो चोरो का डर होता है। इसलिए किसान को समय-कुसमय पहरा देनेवाला भी चाहिए। एक गाँव मे बहुत-से किसान होते है, खेत भी उसी तरह बहुत-से टुकडो में बँटा रहता है। आये दिन डाड-मेंड के झगडे भी आपस मे हो सकते है। गाँव मे वन भी होते है, जलाशय भी होते है, ऊसर भी होते है और बाग-बगीचे भी होते है। किसी-किसीपर एक आदमी का अधिकार होता है और किसीपर सारे गाँव का। ऐसी दशा मे भी झगडे उठ सकते है। इसी तरह आये दिन भाई-भाई में, पट्टीदार-पट्टीदार मे, झगडे उठ सकते है और उनको सुलझाने की जरूरत हो सकती है। इसके लिए पचायत की भी दरकार है। अगर एक गाववाले दूसरे गाँव मे झगडा करने पर उतारू हो और चढ आवे तो गाँववालो को अपने हरबे-हथियार से भी तैयार रहना चाहिए। इसके लिए अकेले पचायत से काम न चलेगा, बल्कि मुकाबला करने के लिए जवान किसानो को तैयार रखना पडेगा। और अगर हर गाँव में अपना ऐसा अलग-अलग बन्दोबस्त न करे तो कम-से-कम ऐसे राजा या पचायत के अधीन रहना होगा जो इकट्ठे बहुत-से गाँवो की रक्षा का बन्दोबस्त कर सके। सिचाई के काम मे चमडे के मोट की भी जरूरत पड सकती है, और मरे हुए गाय, बैल और भैसो के चमडे को सिझाने, कमाने आदि की भी जरूरत पड सकती है, इसलिए गाँव मे चमार का होना भी जरूरी है।

इस तरह गाँव मे सबसे ज्यादा किसान होने चाहिएं। हम किसानो

मे पशु-पालन करनेवालो को भी गिनते है। विशेप रूप से हम उन्हे गिनते है, जो गाय-बैलो का पालन करते है। साथ ही तेल, घी, मसाले, नमक और औपधियो व कपडो का व्यापार भी किसानो का ही काम है। खेती, गोपालन और वनियाई ये तीनो काम साथ-साथ चलते है और गाँवो के मुख्य काम है। वाकी और जितने काम है वे सव-के-सव इन्ही किसानो के सहारे चलते रहते है। इसीलिए गाँवो की प्रधान आवादी किसानो की होनी चाहिए। इन किसानो की मदद के लिए चमार, धोवी, नाई, पासी काछी, तेली, कुम्हार, जुलाहा, कायस्थ, ब्राह्मण और क्षत्री सभी जातियाँ है। इन सवमे से किसीको अपने पेशे के काम मे सारा समय कभी नही लगाना पडता। इसीलिए गाँव मे रहते हुए अकेले अपने पेशे पर इनका गुज़ारा नही होसकता। ये सव-के-सव अगर खेती का काम न करे तो खाने को न मिले। इसीलिए इनका मुख्य काम खेती है, जिससे ये अपनेको और अपने परिवार को पालते-पोसते है। गाँव म चमार चमडे का काम करता है, साथ ही खेती भी करता है। लुहार और वढई लकडी और लोहे का काम भी करते है और खेती भी। कुम्हार खपरे और वरतन भी वनाता है और खेती भी करता है। ब्राह्मण पुरोहिताई भी करता है और खेती भी करता है। ग्वाला गऊ भी पालता है और खेती भी करता है। चौकीदार, हलवाहे और मजूर आजकल वहुत करके खेती नही करते, क्योकि वहुत भारी आवादी रोज़गारो के छिन जाने से खेती के आसरे रह गई है पर खेत नही पा सकती। परन्तु पूरे गाँव मे हलवाहे और मजूर को भी जैसे-तैसे खेतिहर होना, किसान होना, वहुत ज़रूरी है। वात यह है कि गाव मे रहकर सभी वर्णो और सभी जातियो के लोग खाते और पहनते है, खाना और कपडा खेतो से ही मिलता है। इसीलिए

खेती तो सभीको करनी ही चाहिए। और अपने वर्ण या जाति का काम तो खेती के बाद आता है।

पूरा गाव वही है जिसमे आदमी की जरूरते पूरी हो, जिसमे सबको सब तरह से बढने की शिक्षा मिल सके, जिसमे सबको अपने काम के करने और सुख से रहने में रक्षा हो सके, जिसमे खाना-कपडा और सब सामान शान्ति से उपजाये और बाटे जा सके, और जिसमे सब तरह के लोगो के—चाहे वे शिक्षा का काम करते हों चाहे रक्षा का, चाहे सम्पत्ति उपजाने का काम करते हो और चाहे मेहनत-मजूरी करते हो—खेल-कूद और मनबहलाव के लिए उचित बन्दोबस्त हो। जो गांव अपना खाना-कपडा दूसरे गांव से मगवाने के लिए लाचार न हो, जिस गांव मे बाहर से मजूर न मँगवाने पडे, जिस गाव की नित्य की सारी जरूरते पूरी होजाया करे और किसी और गाव से मदद न लेनी पडे, वही गाँव पूरा है। यह कहा जासकता है कि बरतनो के लिए गाववालो को शहर आना पडेगा और गाय, भैंस और बैल की खरीद के लिए मेलो और बाजारो मे जाना पडेगा। यह बात बिलकुल सच है। परन्तु ये नित्य की जरूरते नही है। इन्हीके लिए बडे-बडे बाजार और मेले है। इन्हीके लिए राजधानी के शहर है। राजा जहा रहता था वहाँ प्रजा के आराम के लिए सब तरह का ऐसा सामान शहर के बाजारो मे इकट्ठा होने का प्रबन्ध करता था जो गाँव के रहनेवालो की जरूरत को पूरा करे, अथवा उनके ज्यादा ऐश-आराम या शौकीनी के लिए जरूरी समझा जाय।

इन्ही पूरे गाँवो की आबादी मिलकर अपने यहा के झगडो के निपटारे के लिए, गाँव की सफाई के लिए, बस्ती के लोगो को सुखी करने के लिए, बस्ती की रक्षा के लिए, बस्ती की शिक्षा के लिए, और बस्ती के

खेल-कूद और मन-बहलाव के लिए अपने लोगो मे से ईमानदार, बुद्धिमान, भगवान को माननेवाले और पापो से डरनेवाले बूढे भलेमानसो को अपना पच चुन लेती थी और गाँव का सारा बन्दोबस्त उन्हे सौंप देती थी। इन्ही पचो मे से गाँव-गाँव से एक-एक मुखिया चुनकर बडी पचायत बनती थी जिसे "जनपद की पचायत" कहते थे। गाँवो के सम्बन्ध का आपस का निपटारा और गाँवो के परस्पर के झगडो का फसला, गाँवो की सीमा और सडको आदि के झगडे निपटाना, इसी बडी पचायत का काम था। प्राचीन हिन्दूकाल मे इन्ही बडी पचायतो के प्रतिनिधि मिल-कर जिलो या प्रान्त की या राज्य की "जानपद" पचायत बनाते थे। "पौर" पचायत शहरवालो की थी। इस तरह जानपद और पौर दोनो मे अधिकार पाकर राजा शासन करता था।

भारत के पुराने सगठन मे हरेक गाँव पूरा था। अपनी-अपनी जरू-रते आप पूरी कर लेता था। बाहरी चढाई से और चोर, डाकू, आततायी आदि अपराधियो से रक्षा करने के लिए एक राजा या हाकिम या सर-पच की जरूरत होती थी। और इसी सेवा के नाते गाँववाले जनपद की पचायत को या राजा के प्रतिनिधि को अपनी पैदावार का एक भाग कर की तरह देदेते थे और राजा इस कर के बदले किसान की जमीन की रक्षा करता था। वह जमीन का रक्षक था। पति रक्षक को कहते है। खेती के रक्षक के नाते वह भूपति या भूमिपति कहलाता था और मनुष्यो की रक्षा के नाते वह नृपति या नरपति कहलाता था। उसकी जीविका के लिए अलग धरती होती थी और वह आप खेती करता था। प्रजा से जो कर मिलता वह प्रजा की रक्षा के काम मे लाया जाता था। राजा अपने खर्च के लिए प्रजा की धरोहर से नही लेता था। भूमि प्रजा की थी। उसकी न थी। राजा के प्रतिनिधि को जो भूकर के नाम

से दिया जाता था वह असल मे भूमि की रक्षा के लिए कर था। यह कर खेती की पैदावार का छठा, आठवाँ या दसवा अंश होता था। प्रजा की सब तरह की रक्षा राजा करता था, इसीलिए उसे सबसे कर पाने का अधिकार था।

ये तो पुरानी कहानिया है। आज हमारी जैसी दशा है वह किसीसे छिपी नही है। हमारे गाँव के अग-भग होचुके है। किसान दरिद्र हो-गये है। लाखो मजूर गिरमिट की गुलामीक रने बाहर चले गये है। पैसे की माया मे पडकर काफी अन्न उपजाकर भी हम भूखो मरते है, आये दिन कडे लगान और मालगुजारी के बोझ मे दबकर ऋण की चक्की मे पिसते रहते है, और नही जानते कि इन विपत्तियो से कैसे छुटकारा होगा ?

हमने पिछले अध्यायो मे सगठन की जो योजना दी है उन योजना मे गाँव को पूरा करने के उपाय करने होगे। पचायते गाँवो की कमी जिन विधियो से और जिस रूप मे पूरी करेगी उनका वर्णन सक्षेप मे हम आगे के अध्यायो मे करेगे।

: १४ :

गाँव का समाज

जब बच्चा पैदा होता है तभीसे उसको समाज से या माता-पिता से चार चीज़ों के पाने की ज़रूरत होती है। शिक्षा, रक्षा, भोजन और खिलौना। सबसे पहली और ज़रूरी चीज़ शिक्षा है। दूध पीने की शिक्षा से लेकर हाथ-पैर हिलाने, चलने-फिरने, खेलने-कूदने, हाथ-पाँव और आँख-कान आदि के काम, खेल-कूद, मनबहलाव और दुनिया की चीज़ों को आमतौर पर बनाने-बिगाड़ने तथा सोचने-बोलने और हिलने-डोलने आदि भाँति-भाँति की शिक्षा हर बच्चे को मिलनी चाहिए। हर बालक और हर आदमी को—चाहे वह बच्चा हो चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ा हो—जबतक वह जीता रहता है तबतक इस तरह की थोड़ी-बहुत शिक्षा मिलती ही रहती है। कुछ काम शिक्षा का माँ-बाप करते हैं और कुछ माँ-बाप के सिवाय बाहरी लोग भी किया करते हैं। खेत की जुताई, बुवाई, निराई, बीज की पहचान, सिंचाई, रखवाली का काम, अनाज के पकने आदि के सम्बन्ध का ज्ञान, उसकी कटाई, दँवाई और अन्न की सफाई, कपास की लोढ़ाई, ओटाई, धुनाई, कताई, और मकान का बनाना, बाग-बगीचों का लगाना, फलों का उपजाना, ढोरों का पालन-पोषण और रक्षा, ऊन के काम, दूध-दही आदि के काम, जानवरों का पालना आदि गाँवों के अनेक काम हैं जो हर लड़के के लिए सीखना-सिखाना बहुत ज़रूरी है। सन-पटसन आदि की तैयारी और उनका बटना, टोकरियाँ या झाबे बनाना, बाँस के सामान बनाना,

रस्से-रस्सी आदि तैयार करना, खाट-मोढ़े आदि बुनना, जूते-कपड़े आदि सीकर तैयार करना, टोपी तैयार करना, कपड़े की रंगाई-छपाई करना, बेल-बूटे आदि कसीदे काढना, बढ़ई का काम, लोहार का काम, तिलहन की पहचान और तेल पेलना, गन्नो और ईख की पहचान और उसकी खेती तथा उससे गुड, खाड, चीनी आदि तैयार करना, साथ ही अनाज, खाड, कपडे, तेलहन या और देहात की तैयार की हुई चीज़ो का व्यापार करना—ये सभी काम देहात के सम्बन्ध के है और गाववालो को करने पडते है। इन्हे गाव के लोगो को उचित समय पर सिखाना ज़रूरी है। इनमे से एक काम भी ऐसा नहीं है जिसमे पढने-लिखने की शिक्षा ज़रूरी हो। परन्तु हर बालक को अपनी पूरी ऊँचाई तक उभरने और बढने का मौका मिले, इसलिए उसे कुछ थोडा-सा पढना-लिखना और काम के लायक कुछ हिसाब-किताब जानना बहुत ज़रूरी है। सिखाने का काम वही लोग कर सकते है जो काम को जानते है। हर मा-बाप और बडे-बूढे का यह ज़रूरी कर्तव्य है कि बच्चो को काम सिखावे। पर थोडा-थोडा पढना-लिखना और हिसाब सिखाने का काम किसी अलग सिखानेवाले को मिलना चाहिए। गाँव मे ऐसे दो-एक पढानेवालो से काम चल सकता है। यदि दो-चार और हो तो सुभीता होसकता है। यह हुई शिक्षा की बात।

जैसे शिक्षा की पहली ज़रूरत है वैसे ही रक्षा भी बहुत ज़रूरी है और शिक्षा के बाद उसका नम्बर आता है। चोर और डाकू से रक्षा करने के लिए चौकी-पहरे की और रखवाली की ज़रूरत होती है। खडी फसल की रक्षा बाड बाँधकर पशुओ से की जाती है। मचान पर बैठकर किसान रात-रात जगकर खेत की रखवाली करता है। पानी की बाढ से और सूखे से भी खेती की रक्षा करने की ज़रूरत होती है। नाज की बालो मे और पौधो मे रोग पैदा होजाते है और कीडे लग जाते है।

आये दिन टिड्डी आदि से भारी हानि होजाती है। चूहे, घूंस आदि जानवर धरती के नीचे से और तोते आदि पक्षी ऊपर से खेती पर चढाई करते है। इन सबसे भी रक्षा होनी चाहिए। खलियान मे आग का सदा डर लगा रहता है, और नदी आदि मे बाढ आजाने से गाव-के-गॉव बह जा सकते हैं। गावो मे सफाई न रहने से और घरो के ठीक तरह पर न बनने के कारण भांति-भांति की बीमारियां फैलती है, जिनमे बस्ती-की-बस्ती तबाह होजाती है। इनसे भी रक्षा होनी चाहिए। फिर अगर दो आदमियो मे झगडा होजाय और बीच-बिचाव का कोई सामान न हो तो लट्ठ लेकर दो दलो मे गहरी मारपीट होसकती है। इसतरह की दुर्घटना से भी बचने के लिए उपाय होना चाहिए। निदान सब तरह से गॉव के धन और जन दोनो की पूरी रक्षा और दोनो के बढने मे किसी तरह की रुकावट को न पडने देना बस्ती के लोगो मे से हर ऐसे आदमियो का काम है जो बचाने मे मदद देसकते है। परन्तु झगडो के निपटारे के लिए पचो का सगठन किये बिना रक्षा का काम नही हो-सकता। एकाएकी अगर कोई आफत आये तो गाव के सभी हाथ-पाव-वाले दौड पडेगे। यही चाहिए भी। परन्तु रक्षा का काम जिन लोगो ने सीखा है, वे दौडकर सहज मे विपत्ति का टाल सकते है। और जिन्होने नही सीखा है वे केवल भीड-सरीखे बनकर काम मे रुकावट डाल और अपनेको जोखिम पहुँचा सकते है। इसलिए रक्षा के काम के लिए चुने हुए आदमियो का सगठन जरूरी है, चाहे वे पच हो या पहरेदार, या स्वयसेवक हो अथवा चर या दूत हो या सैनिक के नाम से पुकारे जाते हो।

गाव के लोगो का मुख्य काम भोजन और कपडा पैदा करना है। आदमी के आयु-पर्यन्त जीने के लिए ये दो चीजे तो बहुत जरूरी है।

भोजन और कपडा नित-नित उपजाया नहीं जासकता। पर खाने और पहरने को ये दोनो चीजें नित-नित चाहिएँ। इसीलिए हर किसान को फसल के ऊपर अपने खाने-पहरने का सामान इकट्ठा कर लेना पडता है। जब मिलो की चाल न थी, तब अनाज और कपास दोनो जुटाकर रक्खे जाते थे। इनके सिवाय तेल्हन और मसाले भी भोजन की सामग्री मे समझे जाते हैं। इनको भी इकट्ठा करना जरूरी समझा जाता है। गुड, शकर आदि की भी बहुत बडी माग है। साथ ही खेती के लिए बैलो की बडी जरूरत है और गऊ पालने मे गाय-बैल की सम्पत्ति बढती है। गाय से दूध, दही, घी आदि मिलता है, जो आदमी के लिए बहुत जरूरी भोजन है। गोबर और मूत्र को तो धरती मे गाडे जानेवाले धन समझना चाहिए। इन्हीमें लक्ष्मी का वास है। सोना-चादी गाडने मे मिट्टी के मोल के हो जाते है, परन्तु गोबर व गोमूत्र खेत मे गाडने मे सोने के होजाते है। चतुर किसान इस गोधन को भी इकट्ठा करता है। गाय-बैल के साथ-साथ भैंस, बकरी, भेड, सुअर आदि पशु भी पाले जाते है। इनसे भी किसान सम्पत्ति इकट्ठी करता है। मरे हुए पशुओ का चमडा सीचने के लिए मोट और पहनने के लिए जूता बनाने के काम में आता है और मल-मूत्र खाद के काम मे आता है। मरे हुओ की हड्डी भी धरती को उपजाऊ बनाती है। किसान के लिए जीते-मरे सब तरह के पशु के रोएँ-रोएँ मे धन है। सच पूछिए तो गांवो मे रुपये-पैसे के चलन की कोई जरूरत नही है। ये जितनी तरह के धन हमने गिनाये है, वे आपस की अदलाबदली से किसान की सारी जरूरते पूरी कर सकते है। मजूरो को और हलवाहो को, शिक्षको को और पण्डितो को, और इनके सिवाय जितने और काम करने वाले है, उन सबको अपने-अपने कामो की मजूरी अनाज, कपडा या और जिसो के रूप मे दी जासकती

है। किसी युग मे जमीदार या राजा की मालगुजारी या लगान इन्ही जिसो के अशो मे दी जाती थी। रुपया-पैसा देने का रिवाज न था। आजकल लोग भूल मे रुपये-पैसे को ही धन समझने लगे है। यह भारी माया है—भ्रम है। रुपया-पैसा धन नही है, सभ्यता का मायाजाल है। अन्न या जीविका का पैदा करना हर आदमी के लिए जरूरी है। प्रजा इसीसे जीती है। इसीलिए जीविका का यह तीसरा काम शिक्षा और रक्षा से कम बडा नही है।

गाँव मे मेहनत का मोटा काम करनेवालो की बडी जरूरत होती है। हल जोतना, खेत सीचना, दौरी चलाना, कुएँ खोदना, मेड बाँधना, भीत उठाना इत्यादि मोटे-मोटे काम है जिनके लिए बहुत होशियारी तो नही चाहिए पर हाथ-पाँव अच्छे पोढे होने चाहिएँ। गाय-भैस चराना भी मोटा काम है, जो लडके-लडकियो से लिया जा सकता है। नन्दजी बडे धनी थे, परन्तु कृष्ण-बलराम भी गाय चराने जाया करते थे। ये सब मोटे काम हर किसान को बिना झिझक के बिना सकोच के करने ही चाहिएँ। बिना इन मेहनत के कामो के किये हाथ-पाँव मजबूत नही रह सकते और आदमी की देह सुडौल नही बन सकती। परन्तु रात-दिन कडी मेहनत का काम कोई नही कर सकता। और जो यह कहा जाय कि थोडी देर कडी मेहनत का काम करके आदमी एकदम सुस्त पड जाय तो भी ठीक नही है। क्योकि जिन अगो से मेहनत का काम लिया गया है उनको आराम करने के लिए समय मिलना चाहिए, उनकी थकान मिटनी चाहिए। पर जो अग काम करते नही रहे है उन अगो को उसी समय काम देने की जरूरत है जब कडी मेहनत करनेवाले अग आराम करते हो। यह परमेश्वर का नियम है कि कोई अग भी कोई बिना कुछ काम किये नही रह सकता। सोता हुआ आदमी भी अपनी

इ के भीतर अन्न पचाने का, रसो के वनाने का, मलो के निकालने का
ौर सास को वाहर से भीतर और भीतर से वाहर लेजाने का और
ारे शरीर मे लोहू की धारा वहाने का काम करता ही रहता है। इसी-
लए दिनभर की कडी मेहनत के वाद आदमी को ऐसा काम मिलना
ाहिए जिससे उसका जी वहले और जो वह विना मेहनत के कर सके।
स तरह का काम मनवहलाव का काम कहलावेगा। इसमे खेलकूद,
ाना-वजाना, कथा-पुराण, पढना-लिखना, भाँति-भाति की सुन्दर चीजे
नाना, खिलौने आदि वनाना, वच्चो को खिलाना इत्यादि वहुत-से
ाम मनवहलाव के है। हमारे देश के किसानो के लिए तमाखू, गाँजा,
ाग, ताडी, शराव आदि मे अपने मन, तन और धन तीनो को विगाडने
ाला काम मनवहलाव नहीं होसकता। मोटी तरह की मेहनत और
नवहलाव ये दोनो तरह के काम वहुत जरूरी है। इनके विना सम्पत्ति
कट्ठी नही होसकती, अपने जीवन की रक्षा नही होसकती, वच्चो
ी शिक्षा नही होसकती। सारी देह जैसे पावो के वलपर खडी होती
; उसी तरह शिक्षा, रक्षा और जीविका ये तीनो काम इस चौथे काम
 वलपर खडे होते हैं।

हमारे देश के वहुत पुराने लोगो ने इन चारो कामो को वहुत अच्छी
ारह समझा-वूझा था। गाँव की या वस्ती की क्या-क्या जरूरते हो
ाकती है, इन वातो को लाखो वरस पहले सोच-विचारकर उन्होंने
ाजा का सगठन किया था। यह वात सच है कि हर आदमी को चारो
ाम करने ही पडते है। परन्तु मनुष्य-समाज के भीतर इन चारो कामो
की वँटाई इस तरह पर होजाय कि कुछ लोग एक काम मे होशियार
हो और कुछ लोग दूसरे काम मे चतुर होजायँ तो काम वडे सुभीते से
होसकता है। हर आदमी अपने-अपने काम मे पक्का पौढा और होशि-

यार होजाय तो सारा समाज बडा चतुर और बहुत ऊँचा उठा हुआ होजाता है। इसीलिए पुराने युगो के लोगो ने कामो को चार प्रकारो में बाँटा। शिक्षा, रक्षा, सम्पत्ति और सेवा। शिक्षा का काम विशेष रूप से जिन लोगो को सौंपा गया वे थोडे-से लोग थे जो बडे ही चतुर, बडे ही बुद्धिमान, बहुत अच्छी चालचलनवाले, बहुत सहनेवाले, बडी समझ-बूझवाले और भगवान को माननेवाले, किसीको दुःख न पहुँचानेवाले, सबपर दया करनेवाले और धर्म-अधर्म को समझनेवाले सच्चे लोग थे। इन लोगो का नाम ऋषि और ब्राह्मण पडा। इन्हींको शिक्षा का भार सौंपा गया।

समाज मे कुछ लोग पुराने युग मे ऐसे भी थे जो हाथ-पाँव के ही बली न थे बल्कि उनके जी मे बडी हिम्मत थी, बडा हियाव था, साहस था, ताकत थी। वे भी दयावान थे, अच्छी चालचलनवाले थे। धर्म और अधर्म को खूब समझते थे। किसीको दुःख नही पहुँचाते थे, पर दूसरे को दुःखी देखकर उसका दुःख दूर करते थे। कोई किसीको सताता हो तो उसे अपनी बुद्धि से, बल से और अच्छी चालो से बचा लेते थे। जो दुर्बल थे, रोगी थे, उनकी और बच्चो व स्त्रियो की रक्षा करने में हर घडी कमर कसे रहते थे। समय आजाने पर वे बडे-बडे करतब कर दिखाते थे। हथियार के काम मे ऐसे कुशल थे कि आये दिन जब दो दलो मे लडाई होती थी तब वे हथियार चलाकर रक्षा करते थे। ऐसे लोगो को समाज ने रक्षा के काम के लिए चुना। ये लोग भी गिने-चुने बहुत थोडे थे, और जरूरत भी थोडो की ही थी। यही लोग क्षत्रिय कहलाये।

अन्न-धन, गोधन, आदि सम्पत्ति हर आदमी को चाहिए थी। बिना भोजन और कपडे के न तो शिक्षा देनेवाला रह सकता था और न

रक्षा करनेवाले का गुजर होसकता था। इसीलिए सम्पत्ति उपजाने और जुटाने का काम थोड़ा-बहुत ब्राह्मण और क्षत्रिय को भी करना जरूरी हुआ। पर सारे समाज के लिए खाना-कपड़ा जरूरी था और जो लोग शिक्षा और रक्षा के काम से खाली थे उनकी गिनती बहुत भारी थी। यह गिनती इतनी बड़ी थी कि इसके सामने शिक्षा और रक्षा के कामवालों की कोई गिनती ही न थी। इन सबका काम खाना-कपड़ा और जीवन की आवश्यकता की सब चीजे उपजाने का था। ये सब लोग खेती करते थे, गऊ पालते थे और जो सम्पत्ति उपजाते थे उसकी आपस मे अदलाबदली भी करते थे। इन सबका नाम उन पुराने लोगो ने विश या वैश्य रक्खा।

गऊ पालने का और खेती का और माल के इधर-उधर पहुचाने का काम बिना मजूरो के चल नही सकता था और समाज मे हाथ-पैर के मजबूत ऐसे हट्टे-कट्टे लोग भी थे जिनके पास बुद्धि की पूंजी कम थी और बल होते हुए भी इतना हियाव—इतना कलेजा—न रखते थे कि दूसरो को बचाने के लिए अपनी जान जोखिम मे डाल सके। और न उनके हाथ की अगुलियाँ महीन काम करने मे सधी हुई थी कि वे अच्छे-अच्छे प्रकार की वस्तुये तैयार कर सके। ऐसे बलवान लोग न तो ब्राह्मण का शिक्षा देने का काम कर सकते थे, न क्षत्रिय का रक्षा करने का काम कर सकते थे, और न वैश्य का खेती, गोपालन और बनियाई या दस्तकारी का महीन काम कर सकते थे। ये मोटे काम के सिवाय और कुछ न कर सकते थे। इसीलिए इनको मेहनत-मजूरी का मोटा काम सौंपा गया। शिक्षा के काम मे जो कोई मेहनत की बात आती, उसमे ये ब्राह्मण की सहायता करते थे, रक्षा के काम मे जहाँ बोझ ढोने आदि मेहनत का काम आता या चौकी-पहरा देने

का काम होता वहाँ क्षत्रिय की मदद करते थे, खेती या गोपालन के काम मे या व्यापार मे जहाँ हलवाहे, मजूर, गाडीवान, ग्वाले आदि का काम पडता वहाँ ये वैश्यो या किसानो की सहायता करते थे। इस तरह ये लोग शिक्षा, रक्षा और जीविका तीनो कामो मे ऐसे सहायक थे कि इनके विना कोई काम पूरा नही पड सकता था। ये समाज के पाव थे। सिर मे लाख वुद्धि हो, आँख, कान, मुख आदि चाहे कितनी ही होशियारी से काम करे, पर पाँवो के विना जरूरत की जगह पर सिर कभी पहुँच नही सकता। दूसरे कोई चीज धुँधली देख पडती, साफ समझ मे नही आती, ठीक-ठीक जानने के लिए विना पास गये काम नही चल सकता और जाना काम पाँवो का है। जगल मे आग लग गई है, लपटे वढी चली आती है, आँखे देख रही है कि जान जोखिम मे है, परन्तु विना पाँवो से भागे जान वच नही सकती। भोजन की सामग्री तैयार है, थाली परसी हुई है, परन्तु टाँगे भोजन तक पहुँचावेगी तव हाथ भोजन को पेट तक पहुँचाने मे सहारा दे सकेगा। टागो का काम उस सेवा का है जिसके विना किसी अग का काम नही चल सकता। सेवा के इस पवित्र काम को जिन थोडे-से वलवानो को सौपा गया वे सेवक या शूद्र कहलाये। समाज के शरीर मे शिक्षा देनेवाला सिर हुआ, रक्षा करनेवाला हाथ हुआ, सम्पत्ति उपजानेवाला धड हुआ, और सेवक टाँगे हुई। समाज के इन्ही चारो अगो को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ठहराया गया।

किसी पचायत मे यह वात ठहराई गई हो, ऐसा तो कही पता नही लगता। प्रजाओ को पैदा करनेवाले और उनकी रक्षा के उपाय रचनेवाले भगवान प्रजापति ने प्रजा या समाज को जव वनाया तव उसी रीति पर वनाया जिस रीति पर कि मनुष्य के शरीर को वनाया था।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों का विभाग या बंटवारा प्रजापति ने ही किया[1] और समाज में हर आदमी का कर्तव्य ठहरा दिया गया। इसीलिए समाज की हर बस्ती में चारों तरह के आदमी रहते हैं और एक-दूसरे की सहायता करते हैं।

हमारे गावों में इस समय समाज में ऐसा गड़बड़ होगया है कि जिस तरह पुराने युगों में संगठन हुआ था वह बात अब बाकी नहीं रही। ब्राह्मण और क्षत्रिय अब अपना-अपना काम कर नहीं पाते। वे नाम-नाम के ब्राह्मण और क्षत्रिय रह गये हैं। असल में सभी किसान हैं। कपड़े की कारीगरी उठजाने से खेती के ऊपर बेरोजगार आदमियों का भी बोझ पड़ गया है। जोतों के छोटे-छोटे टुकड़े होगये हैं। बढ़ा हुआ लगान सिक्कों में देना पड़ता है। इसलिए पैसे की जबरदस्त माया में किसान फँस गया है। देश में दरिद्रता बढ़ जाने के कारण लाखों मजूर और किसान अपना घर-बार छोड़कर गिरमिट की गुलामी करने बाहर के देशों में चले गये हैं। समाज अस्त-व्यस्त होगया है। इसे फिर से ठीक करना है। इसी बात पर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

१ चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम् गुण कर्म विभागश।
तस्य कर्तार मपियाम् विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ (भ० गी०)

: १५ :

गाँव का धर्म

गाँव के समाज मे आज भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारो वर्ण पाये जाते है। हमारे सात लाख गाँवो मे सभी गाँव एक तरह के नही है। जो गाँव बडे-बडे है उनमे से बहुतो मे चारो वर्ण के लोग रहते है। परन्तु बहुत-से ऐसे गाँव भी है कि किसीमे ब्राह्मणो की ही बस्ती है और किसीमे केवल क्षत्रिय ही रहते है। किसी गाँव मे चमार-ही-चमार बसते है, किसीमे कूर्मी-ही-कूर्मी रहते है। इस तरह पर किसी-किसी गाँव मे एक ही तरह के आदमी रहते है। शहर के पास के गाँवो में बहुत करके कारीगर लोग रहते है। कही-कही किसी गाँव मे जुलाहो के सिवाय और कोई आबादी नही है। कोई-कोई गाँव केवल कुम्हारो का है। इसका क्या मतलब है? किसी गाँव मे अगर केवल ब्राह्मण रहते है तो वे सब-के-सब पुरोहिताई का ही काम नही करते। जिस गाँव मे केवल जुलाहे ही रहते है उस गाँव मे अकेले कपडे बुनने का रोजगार नही होता। जिस गाव मे केवल कुम्हार रहते है, उसमे मिट्टी के बरतन जरूर बनते है, परन्तु तीसो दिन यही काम नही होता। हर गाव में उस गाव के रहनेवाले सभी कुछ-न-कुछ और काम करते है। जिस गाँव में केवल अहीर रहते है वहाँ वे गोपालन जरूर करते है, पर अकेले गोपालन से उनका काम नही चलता। जिस गाव मे बनिये-ही-बनिये रहते है वहाके लोग केवल दुकानदारी ही नही करते। ये लोग अपना रोजगार करते जरूर है, पर एक रोजगार ऐसा है जिसमे हर गाँववाले

का सम्बन्ध है । वह रोजगार है खेती । गाव मे रहनेवाला बनिया या जुलाहा या कुम्हार या ब्राह्मण कोई ऐसा नहीं जो खेती मे अपना नाता न जोडे । खेती ऐसा रोजगार है जिसके सहारे सबका पालन-पोषण होता है । इसीलिए गाव मे रहकर हर आदमी का यह कर्त्तव्य है कि भरसक खेती का उपकार करने का जतन करे । जो मजूरी कर सकता है या हलवाहे का काम कर सकता है, या जो रक्षा कर सकता है या ब्राह्मण या क्षत्रिय का काम कर सकता है, उसे चाहिए कि खेती की रक्षा, खेती की शिक्षा और खेती की सेवा मे भरसक अपना कौशल लगादे । जो ग्वाला दूध-दही-घी तैयार करता है और किसान को अच्छी जोडी भेंट कर सकता है वह गाय-बैल के लिए चारा खेतो मे ही लेता है । किसान के घर भी अन्न कट जाने पर भुस और पुआल और किस काम आसकता है ? इस तरह गाय का पालना खेती ही का बढा हुआ काम है । सूत-कपास के बिना कोरियो का गाव बेकार रहेगा । इसलिए गांवो मे जो कोरी और जुलाहे बसे हुए है, वे खेती के ही बढे हुए कामो को करते है । खँडसाले जहा कि खाँड, चीनी और मिसरी तैयार होती है—यहाँ-तक कि शहरो मे हलवाइयो की दुकाने भी—खेती के ही बढे हुए काम है । आजकल तो मैंचेस्टर की दानवाकार मिले भी खेती के ही बढे हुए काम समझे जाते, अगर मैंचेस्टरवाले अपने आस-पास कपास उप-जाते । सच पूछो तो भारत की सारी सभ्यता लगभग खेती का ही बढा हुआ काम है । इसीलिए गाँव का मुख्य धर्म और मुख्य कर्म खेती ही है। ब्राह्मण माँ-बाप से जन्मा हुआ मनुष्य अपनेको ब्राह्मण कहता है सही, परन्तु जहाँतक उसका काम शिक्षा और पुरोहिती का है वहाँतक उसका धर्म ब्राह्मण का है, लेकिन ब्राह्मण के काम से उसका निर्वाह नहीं हो सकता । अपने गुजारे के लिए खेती करना उसके लिए बहुत जरूरी है।

क्षत्रिय गाँव का जमींदार भले ही हो, या राजा ही सही, मगर अपने नौकरों से भी काम लेकर खेती करता है तो भी उसका काम किसान का भी है। बेचारा मजूर, जिसके पास एक धूर भी धरती नहीं है, अपने मालिक के लिए खेत को जोतता, बोता, निराता और सींचता है। वह भी उसी खेती से अन्न के रूप में मजूरी पाता है। खेती के सहारे चारों वर्ण जीते हैं। इसीलिए सभी रोजगारियों का समान-धर्म खेती है, और इसीलिए गाँवभर का मुख्य धर्म खेती है।

हमारे देश का आदमी चाहे जन्म से ब्राह्मण ही क्यों न हो, अपने ब्राह्मण-धर्म के सिवाय उसे क्षत्रिय का धर्म रक्षा, वैश्य का धर्म धन-संग्रह और शूद्र का धर्म सेवा, सब कुछ अपने परिवार के लिए करना पडता है। जैसे मनुष्य के शरीर में सिर भी है, हाथ भी है, धड भी है और पाँव भी है, बिना इन सब अंगों के कोई मनुष्य पूरा नहीं हो सकता, इसी तरह हर आदमी को, चाहे वह किसी जाति में क्यों न जन्मा हो, अपने दिमाग़, हाथों, धड और टाँगों आदि सब अंगों से नित्य काम लेना पडता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों का काम हर आदमी को करना पडता है। सिर बडा जरूरी हिस्सा है, यह अंग कट जाय तो मनुष्य जीता नहीं रह सकता। मनुष्य के जीते रहने के लिए सिर और धड का नाता निरन्तर बना रहना चाहिए। हाथ, पाँव, बाहें और टाँगें कट जायँ तो महासंकट में जीवन की घडियाँ काटते हुए भी कुछ समय तक आदमी जी सकता है, परन्तु सिर और धड अलग होने पर दो में से एक भी क्षणभर भी जीते नहीं रह सकते। सभी अंग मिल-कर जब जतन करते हैं तब मुख के द्वारा धड के अंदर भोजन पहुँचता है। धड के अंदर ही भोजन पचता है, रस और लोहू बनता है और सारे शरीर में बटता है। इसीलिए सिर, बाहें, टाँगें धड की रक्षा के लिए

सारे जतन करती है, सबका काम धड़ के लिए ही होता है। समाज का धड़ किसान है। किसान के लिए ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र सभी है। किसान-धर्म या वैश्य-धर्म गावों का मुख्य धर्म है। इसलिए गांवो मे रहनेवाले सभी गृहस्थों का समान-धर्म किसानी या खेती है, चाहे वे ब्राह्मण हों, चाहे क्षत्रिय हों, या शूद्र हों। हमने जान-बूझकर गृहस्थ शब्द कहा है। देहातों में किसानों को गिरस्ती भी कहते है और गृहस्थो के सहारे ससार के ब्रह्मचारी, तपस्वी और सन्यासी सभी जीते है। वर्णो मे वैश्य और आश्रमो में गृहस्थ मनुष्य-मात्र के लिए पालन-पोषण के जिम्मेदार है। गाँव के रहनेवाले भी गृहस्थ ही है। साधु-सन्यासी रमते है, तपस्वी वन मे तपस्या करते है, ब्रह्मचारी विद्या पढने के लिए जहाँ सुभीता होता है वहाँ रहते है। गांव के रहनेवाले गृहस्थ ही है और गृहस्थो का मुख्य काम खेती है। हिन्दू-समाज के धड यही गृहस्थ, यही किसान, यही खेतिहर हैं। ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी जाति के हैं, परन्तु सबका मुख्य धर्म है वैश्य-धर्म।

इसलिए हर ब्राह्मण को उचित है कि अपने ब्राह्मण-धर्म का भी पालन करे, मगर खेती के काम मे हर तरह मदद दे। आप स्वय सब कुछ करे और दूसरो को करने के लिए प्रेरणा करे। जब वह हर काम में अगुआ होगा तो उसके गांव के सभी लोग उसकी देखादेखी अगुआ हो-जायँगे। खेती का कोई काम अपवित्र नही है। अपने लिए अन्न उपजाने मे हल जोतने से लेकर चक्की पीसना तक अपने भोजन के लिए, और लोढाई-ओटाई से लेकर कपडे बुनने और रगने-छापने तक आच्छादन के लिए, सारे पवित्र काम है। आजकल के मूर्ख लोग ऊँची जाति का गर्व करके कह बैठते है कि हल की मुठिया थामना हमारे लिए पाप है, पर वही अपने सिर पर खाद या मैला उठाकर अपने खेतो मे फेकते है और

इसमें कोई हर्ज नहीं समझते। हल जोतने में कोई पाप नहीं है। इससे किसीकी जाति बिगड नहीं जाती। परन्तु हल की मुठिया अपने हाथ से थामकर न जोतने से खेती खराब होजाती है, समय पर खेत मे अन्न नहीं उपजता। हलवाहे की खुशामदे करनी पडती है और जहाँ देर करके हलवाहा जोतता है वहाँ फसल को नुकसान पहुँचता है। खेत जोतकर अन्न पैदा करना वैश्य का धर्म है और अत्यन्त पवित्र काम है। राजा पृथु और राजा जनक ने, जो बडे भारी राजर्षि थे और जिनके पास बडे-बडे विद्वान ऋषि सीखने के लिए जाते थे, अपने हाथ से हल जोतकर इस काम पर पवित्रता की मुहर लगा दी है। हम अगले अध्यायो मे वैश्य-धर्म या किसान-धर्म के सम्बन्ध मे ज़रूरी बाते कहेगे। हम यह बतावेंगे कि किसान की हैसियत से गाँव मे रहनेवाले हर गृहस्थ का क्या कर्तव्य है? यहाँ तो हम इतना ही कहना चाहते है कि किसान का एक भी काम अपवित्र या नीचा नही है, जिसे किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति वाले को करने मे ज़रा भी हर्ज हो।

: १६ :

इष्ट और अनिष्ट खेती

धरती से सभी तरह की चीज़ें उपजती है। अन्न, वस्त्र और ओषधियां ये तीन तरह की चीज़े आदमी के काम मे आती हैं। अन्न आदमी और दूसरे प्राणी खाते है, कपडे आदमी पहनता है, और ओषधियां जब कोई प्राणी बीमार होता है तब उसे अच्छा करने के लिए बुद्धिमान लोग काम मे लाते हैं। अन्न मे वे सब चीज़े है जो प्राणी के पालन-पोषण के लिए ज़रूरी है। दाने आदमी खाता है, डंठल और भूसा पशु खाते है। इसीलिए अनाज की खेती आदमी और पशु सबके लिए ज़रूरी है। अन्न के पकने से पहले बहुत-से छोटे प्राणी उसे खाना शुरू कर देते है। आदमी उनके लिए खेती नहीं करता, इसलिए खेतो की रक्षा इन छोटे प्राणियो से भी करनी पडती है। इनसे बडे पशु-पक्षी आदि भी अन्न की तैयारी के पहले ही खेत पर चढाई कर देते है। इनसे भी खेती की रक्षा इसलिए की जाती है कि अन्न से मनुष्य की रक्षा होती है। ऐसी खेती आदमी के लिए ज़रूरी है जिससे उसका पालन-पोषण और रक्षण हो। धतूरा, कुचला, सींगिया आदि ज़हरो की खेती इसीलिए नहीं की जाती कि उनसे मनुष्य को लाभ के बदले हानि होती है। ये सब चीज़ें जगलो मे होती है, वहीसे सग्रह की जाती है और दवाई बनानेवाले लोग इन्हे मोल लेते है। ये सब चीज़े लोगो के काम की नही है। खेती करने-वाले उन्ही चीजो की खेती करते है जिनकी मनुष्य को ज्यादा ज़रूरत पडा करती है। जिनके नाम हमने लिये है वे बडे तेज़ विष है।

मनुष्य के दुर्भाग्य मे वहुत-से विप मनुष्य-समाज मे ऐसे फैल गये है कि उन विपो की वडे ज़ोरो से खेती होने लगी है, और विपो के खाने की आदमियो मे ऐसी कुटेव पड गई है कि भारतवर्प इन ज़हरो की खेती के लिए ससार मे प्रसिद्ध होगया है। अफीम की खेती का तो ससार के लिए यह ठेकेदार-सा है। यहाँ किसान सरकार मे दादनी लेकर खुले मैदान अफीम उपजाते है और रुपये के लोभ से कपास और अनाज की खेती छोड देते है। इस अफीम ने चीन देश को वरवाद कर डाला और भारतवर्ष की एक वहुत वडी आवादी इसी अफीम के ज़हरो का शिकार है। अफीम पॉच-छ प्रकार के उग्र विपो मे मिला-जुला एक पदार्थ है, जो पोस्त की डोढो के छिल्को से रस के रूप मे निकलता है। इसकी डोढी के भीतर सफेद-सफेद वारीक दाने निकलते है, जिन्हे पोस्त का दाना और खमखम भी कहते है। ये दाने खाने मे मधुर और ताकत बढानेवाली चीज़ है। इनमे नशे या विप का कोई दोप नही है। परन्तु ये वहुत वडे परिमाण में नही होते और भोजन के पदार्थो की तरह काम मे नही आते। ममालो की तरह वरते जाते है। अफीम का चलन जवमे भारत में हुआ तवसे भारतवर्प की दशा अच्छी नही रही है। यहा लोग वच्चो को आमतौर पर अफीम खिलाते है। थकावट और जाडे को भगाने के लिए और किसी वीमारी को रोकने या भगाने के लिए भी लोग अफीम खाते है। और साधारणतया नशे के लिए भी अफीम का इस्तेमाल वहुत ज़ोरो मे होता है। लोग इसके फल को वहुत कम सोचते है। अफीम का सेवन करनेवाले के शरीर मे जो रोग होते है वे नशा के लिए अपनी जगह वना लेते है, उनको दूर करने के लिए जो दवाये दी जाती है उनका अफीम के होते हुए कोई असर नही होता। वे अफीम छोडना चाहे तो छूट नही सकती। अफीम के नशे के उतर जाने पर उसकी चाट की

तकलीफ इतनी ज्यादा होती है कि अफीमची को अगर अफीम न मिले तो वह मर जाय। परन्तु यह भ्रम-ही-भ्रम है। जेल मे सब कैदियो को सब चीजे आसानी से नही मिल सकती। अफीमची जेल जाते है और मुद्दत तक अफीम नही पाते, तब भी वे जेल मे बच जाते है। परन्तु अफीम का चसका उन्हे फिर भी नही छोडता। यह वह विष है जो शरीर पर धीरे-धीरे असर करता है और अन्त मे मरने के दिनो से बरसो पहले मार डालता है।

पोस्त की तरह तम्बाकू की खेती भी हमारे देश मे बहुत होती है। तम्बाकू के पीनेवाले तो अफीमचियो से गिनती मे अत्यत अधिक बढे हुए है। जिन लोगो मे जाति के नियम के कारण तमाखू नही पी जाती, उन लोगो मे भी चोरी-छिपे लोग तमाखू पीते है। फिर उनके क्या कहने हैं जिनके यहां तमाखू की कोई मनाही नही है! उनके यहां तो बालक जवान और बूढे सभी तमाखू पीते है। बहुत जगह तो औरते भी तमाखू पीती है। सिगरेट और बीडी ने तो मानो देश पर विजय पा रक्खी है। बडो की देखादेखी नन्हे-नन्हे बच्चे तक सिगरेट और बीडी पीते है। हमारा अनुमान है कि बत्तीस करोड आदमियो मे से कम-से-कम दस करोड आदमी जरूर तमाखू पीते है। अगर हम मानले कि आठ करोड आदमी धेले की तमाखू रोज पीते है तो भारतवर्ष मे सवा छ लाख रुपये नित्य फूंक दिये जाते है और ये सवा छ लाख रुपये पीने-वालो को भाँति-भाँति के रोगो मे फंसाते है और उनकी उमर कम कर देते है। "आध सेर तमाखू मे इतना विष होता है कि जो तीन सौ आदमियो के प्राण ले सकता है।" "एक मामूली सिगरेट मे की तम्बाकू से दो आदमियो की जान ली जा सकती है। तीस ग्रेन की तम्बाकू की चाय एक आदमी के दर्द को कम करने के लिए दी गई और वह फौरन

मर गया ।"[१] सूंघनी सूंघने से, तमाखू खाने से और तमाखू पीने से, सब तरह से, आदमी के शरीर में जहर का प्रवेश होता है । तमाखू किसी तरह पर सेवन करो, उससे दिमाग सूख जाता है, खून पतला होजाता है, फेफड़े कमजोर हो जाते हैं और हृदय की क्रिया सुस्त पड़ जाती है । खांसी और कब्ज शरीर के भीतर अपना घर कर लेते हैं और अन्त मे दमा, क्षयरोग, हृद्रोग, नेत्ररोग, नपुंसकता और पागलपन तक तम्बाकू के सेवन से होजाता है । परन्तु आज यही सर्वनाश करनेवाली चीज गाँव की चौपाल मे स्वागत-सत्कार की चीज बन गई है । संसार में तमाखू ने बहुत भारी विजय कर रक्खी है । कोई देश छूटा नहीं है । परन्तु हमे तो अपने देश मे मतलब है । हमे अपने गाँवो की चिन्ता है जहाँ अफीम और तमाखू की खेती होती है । भाँग-गाँजे की खेती भी होती है, पर वह इतनी ज्यादा नहीं होती जितनी कि तमाखू और अफीम की होती है । इनकी खेती ने हमारे देश मे जहर का प्रचार कर रक्खा है और अन्न और कपास की खेती को रोक रक्खा है । लाखों रुपये नित्य ऐसे काम में फुंक जाते है जिनसे भले-चंगे आदमी रोगी हो जाते है और हट्टे-कट्टे जवान मौत के अधिक पास चले जाते है । इनकी खेती करना महापातक है । किसानो को चाहिए कि अपनेको इन नशो से दूर रक्खे और देश को इन नशो से बचावे । सब किसान मिलकर एका करले कि हम शैतान के भुलावे मे न आवेंगे । हम पैसो के लाभ के लिए अपनी और अपने भाइयो की गाढ़ी कमाई के रुपयो का खून न करेंगे । अपनी और अपने भाइयो की जान इतनी सस्ती न बेचेंगे और नशा पिलाकर जो लोग भारत को लूट रहे हैं उनकी लूट मे हम कभी मदद न देंगे ।

१ 'शैतान की लकड़ी' से । सस्ता-साहित्य-मण्डल द्वारा प्रकाशित ।

अनाज की खेती इष्ट खेती है और इन विषों की खेती अनिष्ट खेती है। किसान का धर्म रक्षा है, नाश नहीं। सच्चा किसान ऐसा रोजगार करेगा जिससे उसको और उसके भाइयों को लाभ हो। वह रोजगार जान-बूझकर न करेगा जिससे उसका और उसके देश का सर्वनाश होजाय। अतः इस अनिष्ट खेती को छोड़कर हमें इष्ट खेती में लगना चाहिए। हमने कपास की खेती बिलकुल छोड़दी है। उसका फिर से उद्धार करना चाहिए। हमें अच्छे प्रकार की कपास के बीज लेकर मन लगाकर उसकी खेती करनी चाहिए। कपास की खेती इष्ट खेती है। इससे रोग फैलने का डर नहीं। किसीकी आयु इससे घटनेवाली नहीं है। हम इससे पैसे भी पा सकते हैं और अपने देश को कपड़े भी पहना सकते हैं। कपास की उत्तम प्रकार की खेती तो करने ही से आवेगी, परन्तु उसके लिए थोड़ा-बहुत उपाय तो हम यहां बतावेंगे।

: १७ :

किसान का कल्पवृक्ष कपास

१. कपड़े से अन्न की रक्षा

संसार में जितने प्राणी हैं उन सबके जीते रहने के लिए भोजन और पानी ज़रूर चाहिए। घास से लेकर बड़े-बड़े पेड़ तक, बहुत नन्हे-नन्हे कीड़े-मकोड़ों से लेकर हाथी तक, और उड़नेवाले पतंगों से लेकर बड़े-से-बड़े पक्षी तक, और मनुष्य को भी—चाहे वह जंगली, गँवार और भिखमंगा हो और चाहे शहर का पण्डित या राजा हो—अन्न और पानी ज़रूर चाहिए। जितने प्राणियों के नाम हमने लिये हैं उन सबमें आदमी ही ऐसा प्राणी है जिसको जाड़े में शीत से बचने और अपनी लाज ढकने तथा इज्ज़त-आबरू से रहने के लिए कपड़ा भी चाहिए। पशु-पक्षी में और आदमी में यह बड़ा भारी भेद है कि आदमी को कपड़े भी चाहिएँ, पशु-पक्षी को नहीं।

आदमी धरती से अन्न उपजाता है और किसी-न-किसी तरह पेट भरने की फ़िक्र कर लेता है। परन्तु उसको कपड़ा भी चाहिए, यह चीज़ उसे बनी-बनाई धरती से नहीं मिल सकती। जंगल में रहनेवाले आदमी मारे या मरे पशु की खाल ओढ़कर काम चला सकते हैं। गाँव के आदमी भेड़-बकरी का ऊन कतरकर कम्बल आदि बना सकते हैं। पर यह इतने सुभीते की चीज़ नहीं है। सबसे ज्यादा सुभीता इसीमें है कि हम जैसे धरती से अन्न पैदा करते हैं वैसे ही कपड़ा भी उपजावें।

हमारे देश में लगभग तीन पीढ़ी पहले अन्न की तरह कपड़ा भी

उपजाया जाता था। और किसान लोग रूई, सूत और कपडा तैयार करके आप पहनते और जग को पहनाते थे और सुखी रहते थे। खाने और कपडे मे वे बेफिक्र रहते थे। अन्न उपजाने के काम मे जितने दिन लगते थे उससे बचे दिनो मे वे कपडे की तैयारी का काम करते थे। सूत कातते थे और खद्दर तैयार करते थे। किसी घडी बेकार नही रहना पडता था। बच्चे, जवान, बूढे, नर-नारी सभी सूत के काम मे लग सकते थे, सभी काम-काजी थे, सभी मेहनती थे, इसीसे बहुत कम रोगी होते थे, बहुत कम भूखो मरते थे, लोग दुखी-दरिद्री नही थे। सूत का यह पवित्र काम हर किसान करता था। जबसे लक्ष्मी-माई का यह काम हमारे हाथो से निकल गया और विदेशियो के हाथ लग गया, हमारे देश मे दरिद्रता ने घर कर लिया और लोग आलसी हो-गये, क्योकि उनके पास काम न था। बेकार बैठे रहा नही जाता तब आपस मे झगडे होते है, मुकदमेबाजी होती है। हुक्का, तमाखू, अफीम, शराब, भगादि की बुरी लत लग जाती है। बेकार आदमी भूखो तो मरता ही है, लेकिन उसकी मेहनत-मजूरी की बान भी छूट जाती है। भूख से सताये हुए आदमी की ताक़त घट जाती है। दुबले शरीर के ऊपर रोग सहज में चढाई कर लेता है और आदमी का शिकार कर लेजाता है।

यह सब हमारे देश में हमारी आँखो के सामने नित्य होरहा है। यह सब क्यो होरहा है? इसीलिए कि हमारे देश मे विदेशी रोजगा-रियो ने आकर हमारा कपडे का रोजगार छीन लिया। हमारे यहाँ के अच्छे बीज लेजाकर विदेशो में खूब फैलाये और कपडे का रोजगार खूब करने लगे। इतने पर ही वे सन्तुष्ट नही रहे। वे पहले हमसे कपडा खरीदकर लेजाते थे, अब वे अपना कपडा खुद बनाने लगे थे। इससे हमारा उतना बिगाड न था। पर उन्होंने एक दूसरी बात की। कल-

बल, कर-बल और छल-बल से उन्होंने हमको ग्राहक बना लिया। अपना तन ढकने के लिए, अपनी लाज छिपाने के लिए, शीत से बचाने के लिए, और इज्जत-आबरू रखने के लिए हम उन्हींके मोहताज रहने लगे और उन्हें अपने अनाज देकर उनका दिया कपड़ा पहनने लगे। यह किस तरह? समझ लीजिए कि आप अनाज बेचकर पैसे लेते हैं। उन्हीं पैसों से विदेशी कपड़े लेते हैं। वही अनाज विदेश जाता है। कपड़े उसी नाज के बदले आते हैं। इस तरह आप विदेश को अनाज और कपास भेजकर कपड़े मँगवाते हैं और देश अन्न बिना भूखा मरता है। इस तरह हमारा अन्न भी गया और कपड़ा भी गया, और हम दरिद्र भी होगये। आलस, रोग, भूख के शिकार होगये। हमारी अक्ल मारी गई।

गई लक्ष्मी बटोरने का क्या कोई उपाय भी है? गया रोजगार फिर लौट आवे, इसके लिए हम क्या करें? यह हर किसान को पूछना चाहिए। और सोच-समझकर कुछ-न-कुछ करना चाहिए नहीं तो उजड़ते-उजड़ते हम भारत से उजड़ जावेंगे और हमारी सन्तान दूर के टापुओं में और विदेशों में गिरमिट की गुलामी करते-करते अपनी मनुष्यता भी खो बैठेगी और विदेशों को गुलामों की बस्ती बना देगी।

किसान भाइयों को ऊपर के सवालों का जवाब हम बताते हैं। ध्यान से सुनिए, मन लगाकर विचार कीजिए और हाथ-पाँव से काम करके इस उपाय को व्यवहार में लाइए।

२ सम्हलने के उपाय

व्रत लेलें कि हम विदेशी कपड़ा हाथ से छुवेंगे नहीं, तन में लगायेंगे नहीं, क्योंकि इसी महापाप ने हमारा रोजगार छीना और हमको दुखी और दरिद्र बनाया, हमारी इज्जत-आबरू मिट्टी में मिलादी और हमारे भाइयों को गुलामी करने के लिए फुसलाकर विदेशों में लेगया। भगवान के सामने उनको गवाह करके सच्ची प्रतिज्ञा लेलो, वचन देदो कि हम विदेशी कपड़ा नहीं खरीदेंगे। इस तरह हम विदेशी रोज-गारियों के गाहक बनने से इनकार कर देंगे। हम नहीं लेंगे तो कोई हमारे गले नहीं लगा सकता। यह तो हमारे पसन्द की बात है।

यह पहली और बहुत बड़ी बात हुई। चालें चलके हमको गाहक बना लिया था, अब हम गाहक नहीं रहेंगे। विदेशी कपड़ा मोल न लेंगे। इस जरूरी काम के बाद दूसरा काम यह रह जाता है कि अपना गया रोजगार हम फिर से करने लगें।

और हमें तो करना ही पड़ेगा क्योंकि हमने विदेशी कपड़ा मोल लेने से इनकार कर दिया है। हम अपने लिए कपड़ा बनावें या बनवावें तभी तो हम पहन सकेंगे। जो हमने व्रत कर लिया है उसको पूरा-पूरा पालन करने के लिए हमें अपना पुराना रोजगार करना ही पड़ेगा। हमको अपना दारिद्र्य दूर करना ही पड़ेगा। अपने देश का बनाया कपड़ा पहनने से दो बड़े-बड़े लाभ होंगे। एक तो यह कि हमारा अन्न बचेगा और हम भरपेट खासकेंगे, दूसरा यह कि हम जो छ-छ महीने बेकारी में, आलस में, लड़ाई-झगड़े में, नशेपानी में, रोग-दोष में और तरह-तरह के कष्टों में बिताते हैं, वे सब संकट दूर होजावेंगे और बेकारी की घड़ियों को कपास के ओटने में और सूत कातने में और खद्दर बुनने या बुनवाने में लगाकर हम अपनी इज्जत-आबरू अपने हाथ रक्खेंगे और अपनेको अधिक सुखी, बलवान और चिरजीवी बनावेंगे।

यह रोजगार हमारे लिए भगवान का वह मंगल-आशीर्वाद होगा जिसमे कि हमारे गये दिन लौट आवेंगे और हमारी लक्ष्मी हमारे देश मे रहेगी और हम अन्न से और धन से सुखी रहेंगे। महात्मा गाँधी ने किसानो के उद्धार के लिए यह एक ऐसा उपाय निकाला है कि इसमे किसीका जोर-जुल्म नही है और कोई इस उपाय के बरतने मे रुकावट नही डाल सकता। किसान को कमर बाँधकर काम मे लगजानेभर की देर है।

इस काम मे लग जाने के लिए हमको पहलेपहल क्या करना चाहिए, इसके लिए हम इस छोटी पोथी मे किसान भाइयो को उचित सलाह देगे।

३ कपास

धरती-माता जैसे हमको अन्न देती है वैसे ही कपड़ा भी पहनाती है। आप जैसे खेती मे अनाज उपजाते है वैसे ही कपास भी उपजाइए। कपास की खेती हमारे देश मे किसी समय मे बड़ी अच्छी होती थी। हर किसान जैसे अपने लिए खाने को अन्न उपजाता था वैसे ही अपने पहनने के लिए कपड़ा भी उपजाया करता था। हिसाब लगाया गया है कि हमारे देश मे हर आदमी को तेरह-चौदह गज कपड़ा हर साल कम-से-कम चाहिए। अगर घर मे पाँच प्राणी है तो पैंसठ से सत्तर गज तक कपड़ा चाहिए। इसमे बच्चो और बूढ़ो का बराबर हिसाब रखना होगा, क्योकि किसीको कम कपड़ा लगता है और किसी-को ज्यादा। अगर हम मानले कि सेरभर मे सात गज कपड़ा बनेगा तो हमको सालभर के खर्च के लिए इस छोटे-से कुटुम्ब-भर के लिए दस सेर अच्छी रुई चाहिए और दस सेर रुई के लिए कम-से-कम तीन सेर कपास की जरूरत है। हमारे देश मे आजकल कपास की खेती की दशा बिगड़ी हुई है। अच्छी दशा मे एकड़ पीछे दाई मन रुई होती

चाहिए, यानी साढे सात मन कपास उपजनी चाहिए। लेकिन देखा गया है कि एकड पीछे पैतालीस सेर रुई निकलती है, अर्थात् साढे तीन मन से ज्यादा कपास नही होती। इस हिसाब मे चालीस सेर का मन रक्खा गया है और ८० रुपयो भर तोल का सेर रक्खा गया है।

किसान अगर मेहनत करे तो शुरू-शुरू मे उसे एकड पीछे पैतालीस सेर रुई तो जरूर मिल जाय। पाच प्राणी के परिवार मे जितना कपडा सालभर मे लगता है उसकी ड्योढी रुई एक एकड म उपजती है। हमने यह हिसाब मोटे सूत का लगाया है। परन्तु एक-दो साल के बाद जब अभ्यास होजायगा और किसान बारीक सूत कातने लगेगा तो इतने ही मे अपने खर्च मे तिगुना और चौगुना कपडा बनवा सकेगा। बारीक कताई किसान के हाथ का खेल है। उसीके बस की बात है। वह अपना मुनाफा मेहनत करके और मन लगाकर बहुत ज्यादा बढा सकता है। यह तो रोजगार की बात है, जितना ही गुड डालोगे उतना ही मीठा होगा। बीज अच्छे चुने जायं, मिट्टी अच्छी मिल जाय, खाद और सिंचाई का उचित बन्दोबस्त होजाय और बोआई ठीक रीति से की जाय, तो दिन-पर-दिन इस रोजगार की बढन्ती होसकती है। कपास अच्छी उपजेगी ओटाई और धुनाई कायदे की होगी, सूत बराबर बारीक और ठीक-ठीक बटा हुआ कतने लगेगा और खद्दर बारीक और मजबूत बनने लगेगा, तो ससार की कोई ताकत नही है जो हमारे इस धन बरसानेवाले रोजगार को हमसे छीन ले। इसमे एक और केवल एक ही शर्त है, कि हम सब प्राणी कसम खाले कि अपना उपजाया हुआ ही कपडा पहनेगे और विदेशी कपडे की छाया भी छूना महापातक समझेगे।

इसलिए हर किसान को, जो विदेशी कपडे के न लेने और न छूने का व्रत लेता है, यह भी जरूरी है कि अगर उसके पास खेत हो तो

एकाध एकड कपास बोना अपना धर्म समझे और इसका भी व्रत लेले।

साथ ही उसे यह भी याद रखना चाहिए कि भरसक खानेभर को अन्न और परिवारभर के पहनने के लिए काफी कपास अपने पास सग्रह करके तब बेचने का नाम ले। और बेचे भी तो बची-खुची कपास और अनाज अपने देश के उन भाइयो के हाथ ही बेचे जो या तो कम उपजा सकते है या खुद नही उपजा सकते। भरसक ऐसो के हाथ अन्न या कपास न बेचे जो उसे विदेशो मे पहुचवादे। आगे चलकर हम खेती के सम्बन्ध की और बाते बताते है।

४ कपास की जातियाँ

कपास अनेक जातियो की होती है। कोई-कोई कपास किसी देश मे धरती और जलवायु के भेद से ज्यादा उपजती है वही दूसरे देश मे कम उपजती है। हमारे देश मे कपास की खेती बिल्कुल उठ नही गई है, बहुत जगह होती है। बानी, जारी, पजाबी नरिया बिलायती बागड, मठिया और देव कपास प्रसिद्ध जातिया है।

इनके सिवाय कपास के और भी भेद है

(१) भोगला।	(७) हिगनघाट।
(२) राम कपास।	(८) सी० आई० लड।
(३) अमेरिकन।	(९) कारोलाइन।
(४) धारवाड।	(१०) जार्जियन।
(५) नरमा।	(११) डानकन।
(६) गारोहिल(आसाम मे)।	(१२) ओलना, इत्यादि।

इनमे से नरमा, अमेरिकन, गारोहिल हिगनघाट और ओलना के पौधे बहुत दिनो तक फला-फूला करते है।

युक्तप्रान्त में देशी और अमेरिकन कपास की खेती होती है। देशी

अमेरिकन की जो जाति यहाके अनुकूल है वह **कानपुर-अमेरिकन** (काग) कहलाती है। इसका रेशा लम्बा और मुलायम होता है। इसकी खेती के लिए अच्छी भूमि, सिचाई और सम्हाल की बहुत जरूरत है। अतएव साधारण किसानो को इसमे कठिनाई पडती है। परन्तु पहले सिचाई ठीक होजाय तो बरसात कम या अधिक होने से इसको इतना नुकसान नही होता जितना देशी कपास को होता है। इसके लिए दुमट या खाद डाली हुई रेतीली दुमट भूमि अच्छी होती है, ऊसर मटियार और पानी-भरी धरती काम की नही होती।

जिन खेतो मे ईख और गेहूँ की फसल हो वे इस कपास के लिए उपयोगी है। इसके बोने मे कूंडो का अन्तर कुछ अधिक रखना चाहिए, अर्थात् कूंडे तीन फुट के अन्तर मे हो और बीज भी उतने ही अन्तर मे बोये जावे। दो-तीन बीजो को हाथ मे गडहा कर बोते और ऊपर से मिट्टी ढकते है। पौदे के हाथभर का होजाने पर छॅटाई की जाती है। एक गडहे मे एक अच्छा पौदा छोड औरो को उखाड उस जगह जमाते है जहाँ पौदे नही उगते और ठिठुरकर मर जाते है। यदि कोई देशी कपास का पौदा हो तो घना करने से बचाने के लिए उनको उखाड देते है।

अमेरिकन का पौदा नरमा की तरह कई वर्षा तक फसल दे सकता है, यदि दूसरी फसल बोने के लिए उखाड न डाला जाय। खेत को सब कपास बीन लेने पर पौदो को खडा रहने देते है। पूस मे वर्षा न हो तो पानी दिया जाता है और निराई गुडाई की जाती है। फागुन-चैत मे फिर एक पानी देते है, इस रीति से जेठ मे फिर फसल होजाती है और वह पहले से ज्यादा अच्छी होती है।

गुजरात और काठियावाड मे अच्छी जाति की कपास होती है

साबरमती के आश्रम में कपास की खेती करके कुछ जातियों की जाँच की गई है। उसका फल हम नीचे देते हैं।

सूरती कपास—यह बढ़िया है। इसका रेशा मुलायम, मजबूत और लम्बा होता है। यह कपास चिकनी, काली और बलुही तथा रेवटी जमीन में अच्छी होती है। बोने के छः महीने बाद उसमें टेंटुए लगने लगते हैं। कोई चार महीने में फूलने लगती है। उस समय पानी बरसता रहे तो नुकसान होता है। उस समय उसे धूप की जरूरत होती है। इसलिए जहाँ बरसात का मौसम चार महीने से ज्यादा हो वहाँ देर से यह कपास बोनी चाहिए। इसके रेशे एक इंच लम्बे होते हैं। पाखाने की खाद देने से रेशे लम्बे और पैदावार ज्यादा अच्छी होसकती है।

माठिया—काठियावाड़ में एक जाति माठिया कपास की होती है जो चार मास में टेंटुए देने लगती है। यह उसका खास फायदा है। थोड़े पानी पर यह होसकती है और कम गहरी जमीन में भी उग सकती है। लेकिन गहरी जमीन में तथा ज्यादा पानी में यह अच्छा फल देती है। यह कपास हलकी मानी जाती है, परन्तु तो भी उसकी मामूली दरजे की रुई से चरखे पर १५अंक के लगभग मजबूत सूत निकल सकता है। जुताई जैसी अच्छी होगी वैसा रेशा भी लम्बा होगा। उसका रेशा आधे इंच तक का होसकता है। उसके बिनौलों को ढाई-ढाई बिलस्त की दूरी पर बोना चाहिए। यह कपास ऊँचे बेन की तरह बड़ी होती है। इस-लिए इसे ज्यादा दूर-दूर बोने की जरूरत नहीं है।

हमारे देश में कुछ कपास के पेड़ों की जातियाँ हैं, अर्थात् जिन कपासों का पौदा पेड़ की तरह बड़ा और ऊँचा होता है और बराबर कपास दिया करता है। जिन जगहों में कपास की खेती करने में एका-

वट होती है वहाँ चरखा चलाने के लिए कपास के पेड़ घर के पास या हवा में या आँगन में लगाने में बहुत काम निकल सकता है। संयुक्तप्रांत में इस कपास को नरमा कहते हैं। देव कपास जिसे जटा कपास भी कहते हैं, महाराष्ट्र, कर्नाटक और बंगाल में भी बहुतायत में होती है। यह बहुत मुलायम और लम्बे रेशेवाली है। इसमें ८० या १२० अंक तक का महीन सूत चरखे पर काता जा सकता है। पहले इसी कपास के जनेऊ बनते थे। यह कपास अरण्ड के पेड़ की तरह बड़ी होती है। इसलिए इसे पाँच-पाँच हाथ की दूरी पर लगाना चाहिए। यह पेड़ एक बरस का हो जाने पर बारहों मास फला-फूला करता है। हमारे देश में बहुत जगह यह पेड़ घरों के आँगन में खड़ा दिखाई देता है। कहते हैं कि खेतों की हद बाँधने के लिए भी यह कहीं-कहीं चारों ओर लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ गहरी और चमकीले रंग की होती हैं। इसके टेंटुए तीन-तीन पत्ते वाले लम्बे और नुकीले होते हैं। इसकी रुई बीज पर उगी हुई नहीं बल्कि उसके आसपास लिपटी हुई होती है।

जाता है उसी प्रकार इसके कोश पर से भी तार निकलता जाता है और रुई खतम होजाने पर हाथ में बिनौले रह जाते हैं। पर उसे इस तरह कातने में उसका दुरुपयोग होता है। रुई अलग निकालकर कातने में एक तो सूत अधिक महीन निकलता है और वह जल्दी भी काता जाता है, दूसरे तार भी बराबर काता जासकता है। रुई को बीज पर न निकालने में कुछ देर भी नहीं लगती, इसलिए उसे कोश पर से कातना अच्छा होता है।

तीनी कपास या सिरंज कपास—तीनी कपास विदेशी है। उसकी पैदाइश तिनेवल्ली जिले में की जाती है। उसके बीज की आकृति देशी कपास के बीज जैसी ही होती है, किन्तु वह कद में उससे आधा होता है। कपास को फैलाने से बीज पर ज़रा भी रुई नहीं रहती। इस कपास की पत्तियों के दोनों तरफ एक-एक या दो-दो छोटी-छोटी नोंकें होती हैं। अगर इसके पौदे की अच्छी तरह हिफाज़त की जाय तो इसका एक अच्छा छोटा-सा पेड होजाता है। तीसरे साल में कपास देने लगता है। इसकी रुई मुलायम और लम्बे तन्तुवाली होती है। इस कपास की लगभग २८ फी सैकडा रुई निकलती है। इसके तन्तु की लम्बाई ¾ से १ इञ्च तक होती है। इसको लोडने पर ओटने की जरूरत नहीं होती। हाथ से ही उसके बीज अलग कर दिये जासकते हैं। इसकी रुई की ताकत देशी रुई से कम पाई गई है। पर इसका कारण यह होगा कि इसका तन्तु देशी रुई के तन्तु से ज्यादा महीन है और इसीसे उससे महीन सूत भी काता जासकता है।

हीरमणी—यह भी एक पेड-कपास है, जिसका पोधा पाच-छ फुट ऊँचा होता है। इसका बीज मामूली बीज के बराबर ही रग में हरा-सा होता है। इसकी रुई चमकीली, उजली और लम्बे मजबूत रेशोवाली

होती है। इसका रेशा बीज से झट अलग नहीं होता। रेशे की लम्बाई भी अच्छी होती है और सूत मजबूत निकलता है। यह चार-पाँच बरस तक बराबर फलता रहता है। इसको पानी देने की जरूरत नहीं पडती, पर दिया जाय तो उपज भी अच्छी हो। इसके फूल रेशमी लाल रंग के होते है, इससे आँगन की शोभा भी बढती है।

थारिया कपास या रोजीकपास—यह कपास गुजरात मे होती है। यह भी पेड-कपास का नमूना है। इसके पौधे को काटा न जाय तो वह पेड या बेल के रूप मे बढता है।

गारो कपास—यह कपास मौसमी जाति की है। इसके रेशे आध इंच से भी छोटे और ऊन जैसे खुरदरे होते है। इसके एक-एक टेंटुए की कपास मे करीब १४ बीज मिलते है। गुजरात की खेत की कपासो में आम तौर पर ७ बीज होते है। गारो कपास गारो नाम के पहाड पर उगाई जाती है, इसलिए यह नाम पडा है। इस कपास की रुई ऊन की तरह होती है। ऊन की मिलो मे उसमे मिलाने के लिए विलायती सौदागर इसकी सैकडो गाँठे खरीदकर बाहर भेजते है।

कम्बोडिया—यह कपास भी देशी कपास की तरह सिर्फ एक ही साल फसल देती है। यदि इसकी अच्छी हिफाजत की जाय तो दो-दो साल तक भी इससे फसल मिल सकती है। पर इसका एक पौधा सत्याग्रह-आश्रम पर कई खास अनुकूलताओ के कारण दूसरे साल करीब ६ फीट जगह मे फैल गया और उसपर से करीब ५ सेर कपास उतरा। यदि बन्दरो से वह सुरक्षित रहता तो इतनी ही कपास और भी वह देता। कपास के कोमल टेंटुए बन्दरो को स्वादिष्ट लगते है। इतना ही नहीं, बल्कि मनुष्य भी कभी-कभी उनका शाक कर लेते है।

बारिश शुरू होते ही वह पौधा खूब फैला और बाद जब बारिश

बहुत दिन तक टिकी तो उसकी पत्तियों में एक प्रकार का कीड़ा लग गया, वे झुक गईं और मुरझाकर झड़ने भी लगीं। अब उसको हमने काट दिया। वह फिर से लहलहाने लगा और उसपर से ऊपर लिखे अनुसार कपास निकला। उसकी रुई बहुत सफेद और टेंटुए भरे हुए थे। उसकी रुई फी सैकड़ा ३३ आई है। तन्तुओं की—बिलकुल आखिर के टेंटुओं के तन्तुओं की—लम्बाई भी लगभग एक इञ्च थी, यद्यपि लगभग आधे तन्तु थोड़ी लम्बाई के अर्थात् ¾ इञ्च के होते हैं। बीज के सिर पर के तन्तु बड़े-बड़े, मजबूत और बढ़िया होते हैं, पर इनकी मोटाई ऊपर लिखे दोनों कपासों से अधिक है। अच्छी नरमी कपास की रुई की अपेक्षा भी उसकी मोटाई अधिक मालूम होती है। उसकी रुई मज-बूत और बहुत सफेद होती है। उसका पत्ता जल्दी नहीं सूखता, अतः कपास चुनते समय उसमें सूखी पत्तियों आदि का मेल नहीं होता और रुई बहुत स्वच्छ रहती है। आगे बताये हरेक पेड़-कपास की रुई भी इसी प्रकार स्वच्छ होती है।

साधारण कम्बोडिया—कम्बोडिया कपास का एक पौधा कुछ दूसरी ही बातें बताता है। वह भी दो साल का था। वह ऐसी जमीन में पैदा हुआ था, जहाँ ईंटों के टुकड़े और चूना पड़ा हुआ था और जो बिना जोती हुई थी। बारिश के शुरू होने पर वह भी खूब फैला और दो-ढाई मास में उसमें टेंटुए लगने लगे थे। उसकी पतली और कमजोर टहनियाँ तथा सिरे काट दिये गये और करीब पचास अच्छे भरे हुए टेंटुए रहने दिये गये। इससे चार मास पूरे होते ही उनमें से रुई उतरने लगी और एक मास में फसल पूरी आगई। इसकी रुई बड़ी महीन और बढ़िया थी और उसके तन्तु भी एक इञ्च से कुछ लम्बे थे। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि तमाम पैदावार थोड़े ही समय में

पूरी मिल गई। उस पौधे का विस्तार कोई तीन वर्गफुट था और उसमें से सब मिलकर कोई १० तोले कपास निकली।

५ भूमि

सब धरतियों में दुमट जाति की धरती सभी तरह की खेती के लिए बहुत अच्छी भूमि कही जाती है और कपास की खेती के लिए तो और भी लाभकारी है। दुमट भूमि का रंग कुछ पीलापन लिये रहता है इसी कारण कहीं-कहीं इसे पीली मिट्टी भी कहते हैं।

काली मिट्टी की भूमि भी कपास की खेती के लिए सबसे अच्छी समझी जाती है और कपास के साथ तो इसका ऐसा गहरा सम्बन्ध है कि काली मिट्टी की भूमि को कपास की भूमि के नाम से पुकारते हैं। यह भूमि हर तरह की जिन्स के लिए उत्तम मानी गई है। इसी मिट्टी को मार या करैल भी कहते हैं। दक्षिण भारत में मध्यभारत, बुन्देलखण्ड, बरार और संयुक्तप्रान्त की भूमि कपास के लिए बहुत उपजाऊ है। यद्यपि काली मिट्टी इन स्थानों में बहुतायत से पाई जाती है, बहुत दूसरी जगहों में भी है। ऐसी मिट्टी में कपास [illegible] थोड़ी कम जरूरत पड़ती है। इस भूमि में थोड़ा पानी ही [illegible] होता है। इसे गीला जानने से बड़े-बड़े ढेर हो जाते [illegible] पर बड़ी कठिनाई से टूटते हैं। इसलिए वर्षा [illegible] देखभाल करनी होती है। गरमी में यह भूमि [illegible] में तनी भर जाती है कि चलना कठिन हो जाता है।

ऊपर तीन-चार इंच [illegible] और फिर [illegible] है। जब नये जंगल को तोड़कर कपास बोते हैं तो तीन-चार [illegible] ज्यादा परिश्रम न भी किया जाय तो भी उपज अच्छी होती है [illegible] भाग के लिए भूमि की ताकत बढ़ानी पड़ती है।

जिस भूमि मे चूना अधिक हो, जो खुली हुई हो, हलकी हो, जिसमे तीन भाग रेत और एक भाग चिकनाहट हो, उस भूमि को कपास अधिक चाहती है। जिस भूमि मे गन्ना, गेहूँ, ज्वार, चना होते है कपास भी उसमे भलीभाति होसकती है। कपास के लिए नरम धरती (जिसमे मिट्टी कम और रेत अधिक हो) लाभदायक है, क्योंकि नरम धरती मे उसकी जड़ें गहराई तक जाती है जिससे पौदा पुष्ट होकर अधिक फलता-फूलता है।

जमीन ऊपर अच्छी हो पर नीचे एक हाथ रेत हो तो उसमे केवल दो ही तीन बरसो तक कपास होसकती है। पजाब, आगरा, अवध और सयुक्तप्रान्त की भूमि जमीन मे और मद्रास की दक्षिणी और पूर्वी भाग की कडी मिट्टी मे भी गहरी जोताई होने से और अच्छी तरह खाद देने से कपास उपज सकती है। जिस धरती मे पानी सोखने की ताकत ज्यादा होती है वह कपास के लिए अच्छी होती है।

गोबर, कूडा, कचरा, सडी मिट्टी, सडा गोबर और हरे पौदो की खाद डालने से रेतीली भूमि भी दुमट होजाती है। हरे पौदो की खाद से मटियार भूमि भी दुमट होजाती है। पौदो के आहार मे किसी खास चीज की कमी हो और इस कारण भूमि ऊसर-सी हो तो गोबर, खली, मैले की खाद या भेड की मीगनी पीसकर खाद देनी चाहिए।

९ जोताई

खेत की भूमि ऊँची-नीची होने से पानी बराबर नही फैलता। कही पानी भरा रहता है, कही भूमि सूखी रह जाती है। कोई पौदे पानी की अधिकता से सड जाते है। इसी असमानता से उपज कम और आगे-पीछे होती है, जिससे हानि और बहुत-सी दिक्कते बढ जाती है। अत जोतने के पहले खेत को अच्छी तरह बराबर कर लेना चाहिए।

लगातार एक ही गहराई मे खेत जोनकर फसल उपजाने से ऊपरी हिस्सा उपजाऊ नही रहता। इसलिए समय-समय पर खेत की गहरी जोताई करने की जरूरत होती है, जिससे नीचे की उपजाऊ मिट्टी ऊपर और ऊपर की नीचे चली जाय और खेत मे फिर अच्छी तरह से उपज होने लगे। कपास के खेत की गहरी जोताई इसलिए भी की जाती है कि जिससे पौधा की जड खूब मजबूत हो, मूसला दूर तक नीचे जाकर खूब खाद चूस सके और पेड खूब मोटा हो और खूब फैले। खेत को एक से डेढ बिलस्त तक गहरा जोतना चाहिए। हर तीसरे बरस गहरी जोताई करना चाहिए।

रब्बी के कट जाने पर खेत मे कुछ नमी रहती है। इसलिए रब्बी कट जाने के बाद तुरन्त ही गहरी जोताई करके हेगा देना चाहिए। ऐसा करने से खेत की तरी भीतर बनी रहती है और फसल को पानी के बिना कोई हानि नही होती। अगर खेत परती हो तो उसकी गहरी जोताई करके घास वगैरा निकालकर उसे सार उस वर्षा का पानी सोखने के लिए बिना बोये ही छोड देना चाहिए और अगले बरस फसल बोनी चाहिए। गहरी जोताई के बाद वर्षा न हो तो बहुत जरूरत होती है। गीली जमीन कभी नही जोतनी चाहिए और गीली जमीन मे बीज नही बोना चाहिए। इसलिए इतना पानी देना चाहिए कि पानी सूखने के बाद ही जोता जाय। ख्याल रखना चाहिए कि खेत मे पपरी न लगे। जितनी वर्षा हो उतनी ही अधिक खेती को जोत कोड करना चाहिए। शाम को जोतने और सुबह को हेगा देने से बहुत फायदा होता है। रात मे जो नमी खेत मे इकट्ठी होती है वह खेत मे बन्द हो जाती है और ढेले भी खूब बारीक पिस जाते हैं। खेत मे अधिक पानी नही

लगना चाहिए। पानी ज्यादा हो तो नाली के सहारे पानी को खेत के बाहर निकाल देना चाहिए। खेत में किसी तरह की छाया न होनी चाहिए। कपास में खूब धूप और हवा लगने से पौधे खूब झाड़ीदार होते हैं और खूब फूलते-फलते हैं। कपास जितना धूप और हवा चाहती है उतना पानी नहीं चाहती। खेत में अगर ऊंची मेड न हो तो पौधों को मवेशियों से बचाने के लिए टट्टी बांधनी चाहिए।

खेत जोतने से मिट्टी के नीचेवाली तह के साथ पौदे के नाशकारक वस्तुयें ऊपर आजाती है। मिट्टी के भीतर हवा और गर्मी सहज में पहुंच सकती है। पौदों के खराब कीड़ों को पालनेवाले पदार्थ बहुत करके नष्ट होजाते हैं और लाभदायक कीड़े सहज में बढ़ सकते हैं। ओस और बरसाती पानी पीकर गर्मी की सहायता से मिट्टी के थर रस को चूस लेते हैं। जोती हुई भूमि में गरमी ठहरी रहती है। धरती दिन की गरमी से थोड़ी गरम होजाती है और रात में फिर ठंडी होजाती है। पौदों के जीवन के लिए इस तरह की गरमी-सरदी की जरूरत है। अच्छी जोती हुई भूमि में पौदे का भोजन अच्छी तरह गल जाता है। इससे जडें भली प्रकार रस चूसकर पौदों को पुष्ट करती है और उस भूमि में स्वभाव से ही पौदों का खाद अपनेआप पैदा होजाता है। भूमि को जितना अधिक गहरा जोता जाता है उतना ही अधिक उसका फैलाव बढ़ता है। जोताई अच्छी होने से बीज अच्छा जमता है, फसल अच्छी पैदा होती है।

७ गहरी जोताई

गहरे जोतने से जडें दूर तक जाकर पौदे को पुष्ट करती है, अधिक भोजन खींचती है, परन्तु जहाँ गहरा जोतने से कंकड ऊपर होजावे वहाँ गहरा न जोतना चाहिए। जहां काली भूमि हो वहाँ भी हर समय गहरा जोतना ठीक नहीं है।

गहरी जोताई के बाद वर्षा न हो तो खाद अधिक डालना चाहिए। कभी-कभी घास की जड़े नीचे जाकर बढने लगती है, उन्हे भी निकाल देना चाहिए। वर्षा के थोडे पहले या पीछे भी गहरी जोताई न करनी चाहिए। इससे भूमि हलकी पड जाती है यदि उसमे पानी पडा तो वह जम जाती है और मिट्टी बारीक न होने से उपज के काम की नही रहती। बीज बोने के एक-दो दिन पहले भी भूमि को गहरा जोतना उचित नही। रेतीली भूमि मे गहरी जोताई नहीं चाहिए। जिसमे रस कम हो ऐसी भूमि अधिक जोताई चाहती है

८ सबसे उत्तम खाद

गाँवो के बाहर घूरो मे आस-पास खेतो मे ऊसरो मे नालो और गड्ढो के चारो ओर लोग आमतौर पर पाखाना फिरते है। इससे दो नुकसान होते है। एक तो बहुत उत्तम प्रकार की खाद नष्ट होती है, दूसरे गावो के चारो तरफ की हवा भी गन्दी हो जाती है। बरसात मे मक्खियो का उपद्रव होता है और भाँति भाँति के रोग फैलते है। जिन खेतो मे कपास बोई जानेवाली है उनमे एक-दो हाथ की गहरी नली-सी इस तरह खोद देनी चाहिए कि उसमे से निकली हुई मिट्टी उसके किनारो पर लगा दी जाय और गाववालो से कहा दिया जाय कि उन्हीमे पाखाना फिरा करे और जब फरागत पा जाय तब किनारे की मिट्टी उसपर इतनी गिरादे कि मैला ढक जाय। गाव के पास मे इस तरह नाली खोद-खोदकर मैले का खाद सहज मे मिल जाता है और किसी तरह की खराबी भी नहीं आ सकती। जहाँ-जहाँ आड की या परदे की जरूरत समझी जाय वहा-वहा टट्टियाँ लगाई रखी जासकती है। इनका बनाना बहुत आसान है। दो हाथ चौडी तीन हाथ लम्बी और दो हाथ ऊंची टट्टी काफी होगी। बास या कच्ची

के तीन-तीन हाथ के ग्यारह टुकडे एक टट्टी के बनाने मे लगेगे। यह ऊपर-नीचे दोनो ओर खाली रहेगी और तीन ओर इसमे चटाई या टाट या बोरे से मढकर दो-दो हाथ ऊचा परदा कर दिया जायगा। जरूरत हो तो चौथी ओर भी परदे का बन्दोबस्त होसकता है। इसी टट्टी को खेत के चाहे जिस हिस्से मे रख दिया जासकता है। जरूरत के माफिक जहा चाहे हटा दे। इसके जोड मूंज, सुतली या बान से बाधे जासकते है। हर किसान उस खेत मे, जिसमे कपास की बोआई होनेवाली है, ऐसी नालियाँ बनाकर ऐसी एक या कई टट्टिया रख सकता है जिससे टट्टी जाने-वालो को आराम भी रहे, खेत को खाद भी मिले और गाँव मे गन्दगी भी न फैले। यह बात आजमाई हुई है कि ऐसे खेत म उत्तम कपास होती है।

मैले की खाद कपास के लिए बहुत फायदे की चीज है। गोबर की खाद अनाज के लिए बहुत फायदे की चीज है।

६ अन्य खाद

कपास के लिए गोबर और कपास के पौदो की राख का खाद भी बडी लाभदायक है। इसमे प्राय वे सब अग है जो कपास के पौदे के लिए पुष्टई है। रासायनिक खादो के झझट मे न पडकर हमे सुलभ और सस्ती खाद का ही प्रयोग करना उचित समझ पडता है। जानवरो व मनुष्यो की हड्डियाँ खेत मे गाड देना भी गुणकारी है, इससे कई वर्ष तक धीरे-धीरे पोषण होता है।

हर साल राख का प्रयोग करने मे पौदे की बढती म सहायता पहुँ-चती है और कीडे भी मर जाते है। कुम्हार की मिट्टी की राख, पौदे, वृक्ष और लकडी की राख, कडो और लीद की राख, कूडे-करकट की राख, ये सभी बेदाम की खाद है। बिनौले की खाद भी कपास के लिए बहुत अच्छी खाद है, जो पीसकर दीजाती है।

नमक की खाद भी कपास के लिए बडे काम की खाद है, दूसरी खाद के साथ इसे पीसकर मिला देना चाहिए। नमक पौदों के लिए आहार इकट्ठा करता है, उसे पचाता है, पानी सोखता है, भूमि को साफ़ करता और अपनेआप पैदा होनेवाली जडी-बूटियों और कीडों को नष्ट करता है।

नमक की खाद कपास को पाले से बचाती है और इससे रुई की उपज अच्छी होती है। रेशे मज़बूत और बारीक होते हैं। फी बीघा २ या २॥ मन नमक देने से उपज दुगनी होजाती है। अगर उतना न हो सके तो फी बीघा १ मन बारीक नमक किसी दूसरी खाद में मिलाकर खेत में देना चाहिए।

मैले की खाद देने से कई वर्ष तक उसका प्रभाव रहता है। पानी अधिक देना पडता है। राख के साथ मिलाकर देने से बदबू दूर होजाती है। पशुओं का मूत्र, भेड-बकरी की मींगनी, और मनुष्य का मूत्र भी ज़ोरदार खाद है।

गरमी के दिनों में या चैत-बैसाख में खेत जोत देने से सूरज की तेज गरमी और गरम हवा बडी अच्छी खाद का प्रभाव पैदा करती है। कीडे-मकोडे और उनके अंडे नष्ट होजाते हैं। घास की जड उखडकर सूख जाती है, मिट्टी भुरभुरी और भूमि पोली होजाती है और थोडी कम वर्षा होने पर भी फसल अच्छी होसकती है।

खेत के चारों ओर मेड और बीच में क्यारियों का होना जरूरी है। इससे खाद और पानी देने में सुविधा रहती है और उपज अच्छी और अधिक होती है। खेतों को हवा और धूप पूरी मिले, इसलिए खेत के पास पेडों या घरों का होना ठीक नहीं है।

सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, में पता लगा था कि सूखी खाद [illegible]

की खाद के प्रभाव से बढ़िया-से-बढ़िया कपास से भी ज्यादा मुलायम, मजबूत और लम्बे रेशेवाली होसकती है।

१० खाद देना

शीघ्र घुलनेवाली खाद—जैसे गोबर, मैला, खली इत्यादि—अखीर जोताई के पहले देनी चाहिए।

खाद देकर मिट्टी में भरसक जल्दी ही मिला देना चाहिए। कपास के पौधे जब लगभग एक बित्ता के होजायं तब पौदे की जड़ के चारों ओर थोड़ा ताजा गोबर रखदेने से बड़ा लाभ होता है। भड़ नामक कीड़ा वहांकी मिट्टी को पोला कर देता है और पानी देने से गोबर घुलकर खाद के काम में आजाता है। इससे कपास की उपज भी बढ़ती है। बरसात में इस बात की सम्हाल रखनी चाहिए कि खेत का पानी बाहर न जाय, नहीं तो खाद का मुख्य अंश पानी में घुलकर बह जायगा। यदि वर्षा अधिक हो तो उसके बीत जाने पर खाद डालना अच्छा होगा।

११ बीज

बीज भरा-पूरा, निरोगी और पुष्ट होना चाहिए। बीज-संग्रह का सबसे अच्छा ढंग यह है कि कपास चुनने के समय जो टेंटुए भरे-पूरे खूब खिले दिखाई दें और जिनमें सफेद और लम्बे और मुलायम रेशे दीख पड़ें वे चुनकर बीज के लिए रख दिये जावें। बोने का समय आने पर उस बढ़िया चुनी हुई कपास को हाथ की चर्खी से ओटकर बिनौलों को निकालना चाहिए।

बीज बोने के पहले बिनौलों को गोबर और राख में लपेटकर सुखा रखते हैं, जिससे एक-एक बीज अलग-अलग होजाय। यदि गोबर के साथ तूतिया घोलकर और मिला दिया जाय तो पौदे और फल कीड़ों से नष्ट न होंगे।

बढिया बीज सग्रह करने के लिए कपास के खेत म पहले निरोग मोटे-ताजे और पूरी लम्बाई क पौदे चुनले, फिर उन पौदो मे लम्बे और अधिक रेशेवाले पौदे चुनले, साथ ही यह भी ध्यान रक्खे कि उनके रेशे लम्बे, सफेद और मुलायम हो और कपास मे रुई अधिक निकले।

इन पादो के बिनौलो म फिर चुनाई करले तो बीज बहुत अच्छी पैदावार के लायक होगा। इस बीज की फसल एकसाथ होगी और माल प्राय एकसा तैयार होगा। बीज के लिए दूसरी और तीसरी चुनाई के समय कपास चुनना चाहिए, क्योंकि इस समय बीज अच्छा और पुष्ट होता है।

मशीन मे ओटी हुई कपास क बिनौले बोने के काम के नहीं होते। हाथ की चर्खी से निकले बिनौले खूब उगते है। इसीमे लाभ है। यह भलीभाति याद रखना चाहिए।

१२ बीज बोना

बीज सीधी रेखा मे समान अन्तर मे बोने म सब पादो को खाद हवा और धूप सब कुछ बराबर मिलता है। सब फसल एकसी होती है। निराई, गुडाई, सिचाई इत्यादि सहज म हो सकती है।

खेत जोतकर उसे सुहागे से बराबर करके [illegible] अन्तर पर दो-दो या तीन-तीन बिनौले एक इच [illegible]। जब वे निकल आवे तब अच्छे पादे को रखकर दूसरा [illegible]। यदि किसी स्थान पर पादा न उगे तो दूसरा पादा [illegible] ([illegible]) वहा लगादे और तुरत थोडा-सा उस पानी दे, [illegible] जाय। बोने के बाद पटेला फेरना चाहिए, जिसस बीज मिट्टी [illegible] और तरसुरी जमीन मे जडे तब फैल और [illegible] जाय। हाथ स अखेरकर बोने म सरासर हानि है।

मौसम के लगते ही बोने मे बीज थोडा लगेगा और दर मे बोने मे अधिक लगेगा। उजियाले पाख मे बीज बोना अच्छा है।

चैत से जेठ तक बीज बोने का समय है। जो वर्षा के जल मे कपास बोना हो तो अधिक-से-अधिक आर्द्रा नक्षत्र तक बो देना चाहिए। देहात मे कहावत है कि—

आर्द्रा टरै पुनर्वसु पाती।
फेर बवै सो ठोके छाती॥

कपास के पहले बोने मे प्राय लाभ होता है। जो वर्षा के पहले खेत सीचकर कपास बो दी जावे तो पौदे बढ जाय और वर्षा मे उन्हे हानि न हो। ऐसी दशा मे रोग भी नही लगते।

कोई-कोई कपास हथिया मे लेकर स्वाती नक्षत्र तक मे भी बोई जाती है। जहाँ अधिक सर्दी पडे वहा पहले और जहा अधिक गरमी पडे पीछे बोना चाहिए। जहाँ नहर इत्यादि का सुभीता हो, जिनमे आसानी से सिचाई कर सके, वहाँ फसल पहले बोना चाहिए। बरसात के पहले कपास बोने से पौधो मे कीडे लगने का कम डर रहता है। खेत मे घास कम लगती है और पाला पडने से पहले फसल तैयार होजाती है। जब धूप हो और बदली न रहे तब बोना चाहिए। बीज छीटकर कभी न बोना चाहिए। कूँड बनाकर बीज गिराना चाहिए। जमीन की अच्छी जोताई करने और घास निकालने के बाद हेगा फेरकर कूँड बना बीज गिराना चाहिए और फिर हेगा फेर देना चाहिए जिसमे बीज मिट्टी म ढक जाय।

वृक्षवाले कपास को अलग उगाकर रोपने का रिवाज है। गोबर और तूतिये को पानी मे घोलकर बीज मिलाकर बेहन डाल देना चाहिए। जब पौधे पौन हाथ के करीब होजायँ तब उखाडकर रोपना चाहिए।

पौधा बैठाने के समय हरेक गड्ढे में ३ या ४ मुट्ठी सूखे गोबर
की खाद देनी चाहिए। अगर ज़मीन में काफी नमी न हो तो बीज को
रात को ओस में फुलाकर बोने में करीब-करीब सभी उग आते हैं।
बोने के दो-चार रोज़ बाद पानी सींचने के लिए खेत में क्यारी बना
देते हैं। इस बीच में बीज भी लगभग उग गया रहता है। सी आई
लैंड, कारोलाइन, जार्जियन और डानकन नाम की कपास दो-दो हाथ दूर
कूंडों में कुंवार और कातिक में अकेली या रब्बी के साथ बोना चाहिये।
इसमें अधिक पानी की ज़रूरत नहीं होती। मिश्र देश की कपास को जल
जमाकर नदी के तीर या दुमट बलुई ज़मीन में बोने से खूब उपज होती है।
पौधों के उगने पर उनके पहले दो पत्तों को खूब बचाना चाहिए।
उन दो में से अगर एक भी बरबाद होजाय तो पौधा मर जायगा।
इसलिए और समय की अपेक्षा इसी समय पर पूरी चौकसी करनी
चाहिए। कपास के साथ कोई और वस्तु न बोनी चाहिए, क्योंकि
किसी और जिन्स के साथ बोने से इसकी उपज बहुत कम होजाती है।
अगर साथ बोना ही हो तो कपास के साथ मक्का बोई जाय तो बहुत
अच्छा हो, क्योंकि कपास बहुत फैलती है और मक्का के कट जाने पर
उसे काफी जगह फैलने को मिल जाती है।

पानी देने के बाद भूमि के कुछ कड़ी होजाने पर खेत को गोड़ देना चाहिए। इससे भूमि की नमी बनी रहती है। गोड़ाई करने से जड़ों के पास की मिट्टी कोमल होजायगी और जड़ें उसमे बड़ी आसानी से फैल सकेंगी।

कपास बोने से १५ या २० दिन पहले खेत को पानी से सींच देना चाहिए। पानी पाकर घास-फूस के बीज उग आवेंगे, तब हल से खूब गहरी जोताई करने पर घास-फूस उखड़ जावेंगे और सड़-गलकर खाद बन जावेंगे। फिर घास-फूस पैदा न होगा। इस प्रकार निराई की जरूरत न पड़ेगी।

१४ सिंचाई

कपास के पौदे बिना पानी भी बहुत समय रह सकते हैं, लेकिन तब जब उनकी जड़ें दूरतक चली गई हों। यदि समय-समय पर वर्षा होती रहे तो कपास को सींचने की जरूरत नहीं रहती। जबतक केवल फूल हों और फल का आकार न बना हो तबतक बहुत कम जल देने की जरूरत है, अधिक पानी देने से फूल फल बनने से पहले ही गिर जावेंगे। जब तनिक भी पत्ती मुरझानी आरम्भ हो तब तुरन्त पानी देना उचित है। सावन में वर्षा न हो तो एक पानी उस समय जरूर देना चाहिए। पानी इतना देना चाहिए जो सूज जाय, भरा न रहे। पानी देने का समय सवेरे और संझा है। दोपहर को जब धूप तेज हो तब पानी कभी न देना चाहिए। बोने के कुछ समय बाद जो वर्षा न हो तो जरूर सींच दे। दूसरा पानी डेढ महीने के बाद देना चाहिए। फिर जरूरत पड़े और वर्षा न हो तो दो या तीन पानी और देना चाहिए।

कपास को चार पानी से अधिक नहीं सींचना चाहिए। बोने के बाद अगर वर्षा न हो तो पानी जरूर देदेना चाहिए। दूसरा डेढ महीने बाद

पौधे बिना कारण ही मुरझाये और पीले देख पडते हैं। ऐसे पौधों के सूख जाने पर १५ दिन के अन्दर उन्हे उखाडकर फेक देना चाहिए।

माऊ—इस कीडे मे पत्तियां काली और लसलसी होकर गिरजाती है। पौधो पर राख छिडकने से ऐसे कीडे मर जाते है।

टिड्डी—इन कीडो को थकाकर मार डालना चाहिए। खेत को जोत देने से इनके अडे मर जाते है। खेत के किनारे एक गड्ढा खोदकर उसी तरफ टिड्डियो को हकाना चाहिए। ऐसा करने से सब टिड्डिया उसीमे गिर जायेगी। तब किरासन तेल और पानी मिलाकर उनपर छिडक देना चाहिए। इसीसे वे मर जायगी। किसान जब इन्हे अपने गाँव की ओर आते हुए देखे तो ढाई फुट चौडी और चार फुट गहरी खाई उनके रास्ते मे बनवा दे और उन्हे इन खाइयो मे लाते जायँ। जब खाई भर जाय, तब उन्हे मिट्टी से ढकदे।

१७ कीड़ों से रक्षा

खेत की सूखी घास, कपास की बेकार बौडी और ऐसी ही अन्य हानिकारक चीजे अलग करके जला देना चाहिए। खेत मे अदल-बदल कर फसल बोना अथवा कई चीजे एक मे मिलाकर बोना कीडो को कम कर देता है। कई तरह के कीडे कपास की फसल को हानि पहुचाते है। पौधे या उसके जिस अग को कीडो ने बिगाड दिया हो उन्हे तोड कर जला दे। ऐसा करने से कीडो की उपज मारी जावेगी। नीचे लिखे साधन काम मे लाने से प्राय सब प्रकार के कीडो से रक्षा होसकेगी —

(१) चूना पानी मे घोलकर रोगी पौदो पर छिडको।

(२) तम्बाकू के पानी को रोगी पौदो पर छिडको।

(३) राख, बुझा हुआ चूना, गधक और नमक घोलकर रोगी पौदो पर छिडको।

(४) खेत मे गंधक या तम्बाकू जलाकर धुआ दो ।

(५) एक भाग मिट्टी का तेल आठ भाग दूध मे मिलाकर मथो और झाग आने पर छिडको ।

(६) लगभग छ बोतल पानी म पावभर साबुन टुकडे-टुकडे करके उबालो । मिल जाने पर आग से हटाकर बारह बोतल के लगभग मिट्टी का तेल डालकर खूब चलाओ । मिल जाने पर छ भाग मे नौ भाग तक पानी मिलाकर झाडू से छिडको ।

१८ चुनाई

इसलिए बताते हैं कि इसमें रुई में कूड़ा नहीं मिलने पाता। कपास चुनने में मजदूरी जरा ज्यादा पड़ती है, पर भाव ज्यादा मिलने से उसका बदला मिल जाता है। गुजरात में कितनी ही जगह कपास इसी तरह चुनी जाती है। उसको टूटी हुई कपास कहते हैं। टूटी हुई कपास में पत्ते या डाली के टुकड़े मिलने नहीं पाते। इसलिए कपास साफ रहती है और कूड़ा न होने से उसको ओटाने व धुनकने में बहुत मेहनत नहीं पड़ती। वक्त की बचत भी बहुत होती है।

१६. रुई परखने की खास-खास बातें

(१) बीज के ऊपर की रुई को कूची या कंघी से झाड़ने से जो रेशे खिंच आते हैं उनसे मालूम पड़ता है कि उस कपास में कमजोर रेशों का पड़ता कितना है।

(२) बीज के चारों तरफ सीधे फैले हुए रेशों से जाना जाता है कि रुई में छोटे-बड़े रेशों का पड़ता कितना है।

(३) बीज पर से रुई को अलग करने से रेशे की मजबूती मालूम होती है। झट अलग होजानेवाली रुई जरा कमजोर होती है और जिसको खींचने में कुछ तान पड़े उसका रेशा चिकना और मजबूत होता है।

(४) बीज को झाड़ने पर उसके रेशे के दल को देखने से मालूम होजाता है कि किस कपास में रुई कम या ज्यादा निकलेगी।

(५) रेशों के मोटे-पतलेपन का मिलान कर लिया जासकता है।

२०. हमारे देश में खेत की कपास की दशा

खेत में कपास बहुत करके ढाई-ढाई बिलस्त की दूरी पर लगाई जाती है। अधिक-से-अधिक दो हाथ से अधिक दूरी पर नहीं लगाई जाती। जो इस हिसाब से बुआई हो तो एकड़ पीछे ६८६० पौधे लग

सकता है और जो पौधा पीछे पाव-पाव तोले कपास पके तो एक एकड़ में ८८३०X५ यानी अस्सी भरी सेर के हिसाब से ३००॥ मन कपास पक सकती है। और जो उसमें से तिहाई रुई निकले तो एकड़ पीछे १०१ मन रुई पैदा हो। परन्तु हमारे देश में रुई की उपज एकड़ पीछे ४५ सेर ही गिनी जाती है। हमारी कपास की खेती की दशा कितनी खराब है और उसमें सुधार की कितनी जरूरत है। जो बीजों का चुनाव हर फसल पर ऊपर बताई विधियों से किया जाय और हर फसल पर चुने हुए अच्छे ही बीज बोये जाय और बोआई के जो कायदे बताये गये हैं उन्हें होशियारी से बरता जाय और निराई-गुड़ाई अच्छी की जाय साथ ही रोग से और कीड़ों से बराबर रक्षा की जाय तो हर साल बराबर ऐसा करते रहने से दस ही पन्द्रह साल में हम इतना बढ़ सकते हैं कि निकम्मी कपास निर्बीज होजाय और हमारे देश में अच्छी-से-अच्छी कपास पैदा होती थी वैसे ही फिर होने लगे। फिर तो कपास की उपज भी बढ़ जायगी, एकड़ पीछे दूनी-तिगुनी होने लगेगी और रुई की जाति भी सुधर जायगी और समझल जायगी।

जगह चरखा-सघ की शाखाये भी है। जहाँ कही चरखा-सघ की शाखा हो वहाँ अच्छे बीजो का बन्दोबस्त भी होना चाहिए। पूछताछ और लिखा-पढी से मालूम होसकता है। किसान लोग बीज कही से भी मगावे, लेकिन यह बात याद रक्खे कि बहुत करके अच्छे, बुरे और मिले-जुले बीज आवेगे। पहली बार की बुआई मे तो फसल का सुधार अपनेआप करना पडेगा। तब भी उतनी अच्छी फसल नही मिल सकती जितनी अच्छी फसल कपास की चुनाई मे अच्छी-अच्छी ढोडियो को चुनकर, आगे की फसलो के लिए सग्रह करके, किसान फिर बोआई करेगा। किसान का काम बडी मेहनत का है और बडी सेवा का है। धीरज से काम लेगा और पूरी तपस्या करेगा तो कपास का पौधा उसके लिए कल्पवृक्ष होजायगा। इसीसे वह देश का अन्न बाहर जाने से रोक सकेगा, आप और परिवार भरपेट दोनो जून रोटी खायगा और अपने देश का पालन करेगा और अपने देश की इज्जत-आबरू की रक्षा करेगा। देश के लिए स्वराज्य चाहे आज होजाय और चाहे प्रलय तक भी न हो, परन्तु किसान के लिए और मजूर के लिए इसी मेहनत मे स्वराज्य है। वह चाहेगा तो अपनी मेहनत की बदौलत देश को स्वराज्य दिला देगा। व्याख्यानो से यह काम नही होने का।

२१ कपास जमा करना बहुत जरूरी काम

कपास उपजा लेने से किसान का आधा काम होजाता है। खद्दर का जितना कुछ काम है वह बाकी आधा काम है। इस बाकी आधे काम में (१) कपास का सग्रह करना, (२) ओटाई, (३) धुनाई और पूनियाँ बनाना, (४) कताई, (५) अट्टिया बनाना, और (६) बुनाई का काम है। यह अचरज न कीजिए कि हमने इन छ बडे-बडे कामो को एक तरफ रक्खा और कपास की खेती को दूसरी तरफ। यह

कोई अचरज की बात नहीं है। कपास की खेती की बड़ी महिमा है। अच्छी कपास न मिल सकेगी तो अच्छा खद्दर न बन सकेगा। अच्छा खद्दर न बना तो हमारा काम ही चौपट होगया। इसीलिए कपास की खेती खद्दर की बुनियाद है, जड़ है। यही कच्चा माल है जिससे कि उत्तम-से-उत्तम पक्का माल बन सकता है।

किसान ने कपास इसीलिए उपजाई है कि उसका खद्दर बने। वह आप पहनेगा और दूसरों को पहनावेगा। यह कपास विदेशों में भेजने के लिए नहीं है। जैसे किसान परिवार के खाने के लिए अन्न इकट्ठा रख छोड़ता है और सालभर काम चलाता है उसी तरह किसान को चाहिए कि कपास भी इतना काफी जमा कर रक्खे कि वह अपने घरभर को खद्दर पहना सके। कुछ कमाई करने के लिए अधिक सूत भी कात सके और अच्छी-से-अच्छी अगली फसल में बोने के लिए जमा भी कर रक्खे।

जगह चरखा-संघ की शाखायें भी हैं। जहाँ कहीं चरखा-संघ की शाखा हो वहाँ अच्छे बीजो का बन्दोबस्त भी होना चाहिए। पूछताछ और लिखा-पढ़ी से मालूम होसकता है। किसान लोग बीज कहीं से भी मँगावें, लेकिन यह बात याद रक्खें कि बहुत करके अच्छे, बुरे और मिले-जुले बीज आवेंगे। पहली बार की बुआई में तो फसल का सुधार अपनेआप करना पड़ेगा। तब भी उतनी अच्छी फसल नहीं मिल सकती जितनी अच्छी फसल कपास की चुनाई में अच्छी-अच्छी ढोंढियों को चुनकर, आगे की फसलों के लिए संग्रह करके, किसान फिर बोआई करेगा। किसान का काम बड़ी मेहनत का है और बड़ी सेवा का है। धीरज से काम लेगा और पूरी तपस्या करेगा तो कपास का पौधा उसके लिए कल्पवृक्ष होजायगा। इसीसे वह देश का अन्न बाहर जाने से रोक सकेगा, आप और परिवार भरपेट दोनो जून रोटी खायगा और अपने देश का पालन करेगा और अपने देश की इज्जत-आबरू की रक्षा करेगा। देश के लिए स्वराज्य चाहे आज होजाय और चाहे प्रलय तक भी न हो, परन्तु किसान के लिए और मजूर के लिए इसी मेहनत में स्वराज्य है। वह चाहेगा तो अपनी मेहनत की बदौलत देश को स्वराज्य दिला देगा। व्याख्यानो में यह काम नहीं होने का।

२१. कपास जमा करना बहुत जरूरी काम

कपास उपजा लेने से किसान का आधा काम होजाता है। खद्दर का जितना कुछ काम है वह बाकी आधा काम है। इस बाकी आधे काम में (१) कपास का संग्रह करना, (२) ओटाई, (३) धुनाई और पूनियाँ बनाना, (४) कताई, (५) अट्टियाँ बनाना, और (६) बुनाई का काम है। यह अचरज न कीजिए कि हमने इन छ बड़े-बड़े कामो को एक तरफ रक्खा और कपास की खेती को दूसरी तरफ। यह

कोई अचरज की बात नहीं है। कपास की खेती की बड़ी महिमा है। अच्छी कपास न मिल सकेगी तो अच्छा खद्दर न बन सकेगा। अच्छा खद्दर न बना तो हमारा काम ही चौपट होगया। इसीलिए कपास की खेती खद्दर की बुनियाद है, जड़ है। यही कच्चा माल है जिससे कि उत्तम-से-उत्तम पक्का माल बन सकता है।

किसान ने कपास इसीलिए उपजाई है कि उसका खद्दर बने। वह आप पहनेगा और दूसरों को पहनावेगा। यह कपास विदेशों में भेजने के लिए नहीं है। जैसे किसान परिवार के खाने के लिए अन्न इकट्ठा रख छोड़ता है और सालभर काम चलाता है उसी तरह किसान को चाहिए कि कपास भी इतना काफी जमा कर रक्खे कि वह अपने घरभर को खद्दर पहना सके। कुछ कमाई करने के लिए अधिक सूत भी कात सके और अच्छी-से-अच्छी अगली फसल में बोने के लिए जमा भी कर रक्खे।

लिए आती है। इसतरह धुनियों का रोजगार भी मारा जाता है। जाड़ों के सिवाय और समयों में इन्हें काम नहीं मिलता। जब रुई की कताई जोरों से हर जगह होने लगेगी तब कपास के व्यापारी कपास का संग्रह करने लगेंगे और सूत और खद्दर के कारबार में रस लेने लगेंगे। अभी तो किसानों और मजूरों के हित के लिए बड़े-बड़े किसानों और ज़मींदारों को चाहिए कि तमाखू, अफीम आदि की खेती रोककर गाँवों में जहाँ-जहाँ मौका हो वहाँ ज्यादा-से-ज्यादा कपास की खेती जोरों से करावें और बढ़ावें। परती जमीनों को काम में लावें। बागों में, दरवाजों पर, आँगनों में देव कपास लगादें। जहाँ-तहाँ कपास की उपज बढ़ाकर आदमी पीछे गाँवभर के लिए कम-से-कम दस-दस सेर कपास का संग्रह फसल के ऊपर कराया करें। गरीबों के लिए कपास-पंचायतें बनालें और आपस में बेहरी चन्दा करके कपास इकट्ठी करें।

हम ज़मींदारों को भी किसान ही समझते हैं और आजकल जैसी हवा बह रही है उसे देखकर हम ज़मींदारों और ताल्लुकेदारों की भलाई इसीमें समझते हैं कि वे तुरन्त ही गरीब किसानों और मजूरों की रक्षा के लिए अपना तन, मन, धन लगादें और खद्दर आदि के कामों में सहायता देकर उनके सच्चे हित् बन जायँ। इस काम में लग जाने में जमींदारों और काश्तकारों दोनों का लाभ है। खींचा-खींची रखने में ज़मींदारों की हानि ज्यादा है। गरीब तो हर तरह मर ही रहे हैं।

कांग्रेस कमेटियों को, चरखा-संघों को, स्वयंसेवकों को और गाँव के नौजवानों को यह उचित है कि इस तरह कपास संग्रह करने में मदद दें, जिससे कोई घर कपास से खाली न रहे। ऐसा बन्दोबस्त रहे कि फुरसत की घड़ियों में और बेकारी के दिनों में घर के बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष समय न खोवें और सूत कातते रहें और चरखा चलाते रहें, जिसमें

गाँव-का-गाँव भोजन और वस्त्र से रजा-पुजा रहे। हमने रुई की तैयारी इस पोथी में बताई है। रुई की तैयारी पहला जरूरी काम है। चरखा और चरखे की कताई इसका दूसरा हिस्सा है।

२२ रुई और बिनौले का हिसाब

एक एकड़ में ४५ सेर रुई हो तो सवा दो मन से ऊपर बिनौला निकलेगा। इस बिनौले का दाम चार रुपये मन के हिसाब से नौ रुपये हुए। किसान रुई आप ही ओटेगा। बाजार में रुई का भाव बहुत चढ़ता-उतरता रहता है। रुई जितनी सस्ती होगी उतनी ही उसकी बिक्री से कम आमदनी होगी और उसका सूत बनाकर बेचने में किसान को उतना ही अधिक लाभ होगा। इस पुस्तक का लिखना आरम्भ करने के समय रुई रुपये की सवा सेर मिलती थी। सत्याग्रह-संग्राम छिड़ने पर रुपये की दो सेर से भी अधिक होगई। स्वराज्य होजाने पर इससे ज्यादा सस्ती होजासकती है। परन्तु यहाँ हम वही महँगा हिसाब ही लेते हैं। अगर सवा सेर का भाव भी हम औसत मान लें तो छत्तीस रुपये की रुई हुई। इस तरह कुल पैंतालीस रुपये मिले। इतनी उठान पर जब दूनी होजायगी तो जितनी सेर रुई साल में बढ़ेगी उतने ही रुपये आमदनी के भी बढ़ेंगे।

भी एक सहारा होजाता है। परन्तु वह सारा सूत न बेचे और परिवार
के लिए दस सेर सूत बुनवाले और सत्तर गज़ की बुनाई ~)॥ गज़ की
दर से ६॥~) दे या बदले मे तीन सेर सूत देदे तो उसके पास फिर भी
सत्ताईस सेर सूत बचा, जिसमे से १० सेर सूत अगर उसने लगान और
खेती के खर्च मे देडाला तो १७ सेर सूत बचा, जिसके ४२॥) मिलेगे।
यह सब देकर बचत है, नफा है। सत्तर गज के कपडे का दाम ।≡)॥
गज़ लगाया जाय तो उसके पास ३३) का कपडा है और ९) का बिनौला—
कुल मिलाकर ८४॥) हुए। वह बारीक सूत काते तो सूत की बिक्री ५) सेर
तक सहज ही लेजा सकेगा। सेर मे दस गज़ तक बुनवा सकेगा। इस
तरह ८४॥) के बदले सौ-सवासौ रुपये तक का उसे एकड पीछे मुनाफा
होसकेगा। ज्यो-ज्यो वह अपने काम को अच्छा-से-अच्छा बनाता जायगा
त्यो-त्यो उसकी आमदनी बढती जायगी।

: १८ :

खेती का सुधार

हमने पिछले अध्याय में किसानों के कल्पवृक्ष कपास की खेती का वर्णन किया है। बात यह है कि हमारे देश में अनेक भागों में जहाँ कपास की खेती हो सकती है वहाँ से इसकी खेती पाश्चात्य नीति के बल से उठ गई। फल यह हुआ कि किसान का कल्पवृक्ष खोगया। किसान फिर से कपास की खेती करने लग जाय तो वह अपने लिए कपड़े भी खेत में उपजा सकेगा। परन्तु अन्न के उपजाने में भी अनेक कारणों से वह पिछड़ रहा है। वह दरिद्रता के कारण अपनी विद्या भूल रहा है और विद्या हो भी तो साधन नहीं है। कई प्रान्तों में भूमि पर उसका सदा के लिए अधिकार नहीं है

किसी प्रकार का कर दिया जाय उससे पूरा काम लेने का प्रवन्ध किया जाय । यदि वह कर लेकर भी प्रवन्ध न करे तो उसे इस वात की सूचना देकर कर वन्द कर दिया जाय और तवतक वन्द रहे जवतक कि इष्ट सुधार न होजाय । गाँव की पचायत अपने वन्दोवस्त से थोडी-वहुत सिचाई, ठीक प्रकार के वीज की वोआई, उत्तम रीति की जोताई और गाँव के भीतर होनेवाले व्यवसायो की तरक्की करा सकती है । अपने गाँव की हदभर सडको की दुरस्ती भी कर सकती है और नहर मे मिलानेवाली नालियाँ भी बना सकती है । परन्तु वहुत-से गाँवो को मिलानेवाली ज़िले की सडको और नहरो का, जिनसे सिचाई का काम लिया जा सकता है और गाडियाँ और नावे चला-चलाकर तिजारती माल मगवाया या भेजा जासकता है, वनाना गाँव की पचायतो के कर्त्तव्यो मे नही है ।

जैसे किसी राज्य को जब हम कर देते है तो उस राज्य से वदले मे रक्षा और सेवा मिलती है, उसी तरह हम धरती मे अपने पालन-पोपण के लिए लेते है तो हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम उसका वहुत वडा भाग धरती को दे । हम धरती से अन्न, जल और वायु लेते है, हमे धरती को भी अन्न, जल और वायु देना चाहिए । खाद के रूप मे हम अन्न देते है, सिचाई के द्वारा हम उसे जल देते है और ईंधन जलाकर और अपनी साँस को वाहर निकालकर हम उसे वायु देते है । जब हम इन वस्तुओ के देने मे कोताही करते है तो धरती भी हमे देने मे कोताही करती है । सारी प्रकृति का यही हाल है । किसान की खेती यज्ञ है । जिसके वारे मे गीताजी मे कहा है कि "यज्ञ के साथ-साथ प्रजा की सृष्टि करके प्रजापति ने कहा था कि इसी यज्ञ से तुम लोग उपजाओ, यही तुम्हारे मनोरथो को देनेवाला कल्पवृक्ष है । इसी यज्ञ से तुम सारी प्रकृति को राजी करो, प्रकृति भी राजी होकर तुम्हे सुख देगी । इस तरह

भूमि मे गेहूँ पैदा करनेवाले गुण होते है, किसीमे गन्ना, धान इत्यादि। जाँच-पडताल से यह बात किसान को मालूम होती है कि गेहूँ या आलू की अधिक माँग होने के कारण वहाँका किसान यदि चाहे तो अपने जुवार और बाजरे को पैदा करनेवाले खेत मे जुताई और खाद की बदौलत गेहूँ और आलू भी पैदा कर सकता है। किसान अपने खेतो की दशा जानकर उनमें उचित हेरफेर भी कर सकते है। खेतो मे जो उपज ली जाती है वह खेती के पेटो से सचित किये हुए अपने भोजनो को खा-पी कर ही पैदा होती है। इस तरह हर फसल के साथ धरती के गर्भ के जो भोजन खर्च होते रहते है उनको पूरा करते रहने मे ही धरती उपजाऊ और उर्वरा रह सकती है। किसान अपने खेतो को भाति-भाति की खाद देकर उनमें फसलो के भोजनो की मात्रा को काफी बनाये रखने का निरन्तर जतन करते रहे तो फसल सुधरकर बहुत अच्छी होती जा सकती है।

२ खेतो की उचित जुताई

खेतो से बढिया और अधिक उपज पाने के लिए जिस तरह उनके गर्भ में पौधो के जरूरी भोजनो का काफी बनाये रखना बहुत ज़रूरी है, ठीक उसी तरह खेतो की उचित और काफी जोताई करना भी बहुत ज़रूरी है। गेहूँ, अलसी, तिल, कपास, बाजरा आदि को बोने के पहले खेतो को कितने गहरे जोतना चाहिए, इस बात को भी जानना किसानो के लिए बहुत ज़रूरी है।

अच्छी जुताई के लिए किसानो को बढिया और बलवान बैल चाहिए। इसके लिए गौओ का उचित रूप से पालन किया जाना चाहिए। आज दिन पच्छाही देशो के किसान की गौ नित्य तीस-पैंतीस सेर दूध और दो-ढाई सेर मक्खन देती है। ऐसी गौवे उन देशो मे करोडो की तैयार

की गई हैं और की जा रही हैं। यह सब उनके गोपालन की अच्छी विधि का फल है। इसलिए हमारे गाँवों में गोपालन में पूरा सुधार करने की ज़रूरत है। गोवंश का वध रोकने की भी ज़रूरत है।

३ अच्छे बीजों की बोआई

बढ़िया और अधिक उपज पैदा करने के लिए उत्तम बीज भी ज़रूरी है। हमारे किसान बीज की उत्तमता पर टुक ध्यान नहीं देते। उन्हें जैसा बीज मिलता है वैसा ही वे बो देते हैं। वह सड़ा होने के कारण जब उगता नहीं तब माथे पर हाथ रखकर रोते हैं। किसानों को बीज देने का जो जमींदार साहूकार व्यवसाय करते हैं उनका ध्यान बीज की उत्तमता पर तनिक भी नहीं रहता। उनका ध्यान इसी बात पर रहता है कि किसान को बीज किस तरह कम नापा जाय और वसूली के समय उससे किस तरह अधिक नाप लिया जाय। इसलिए उत्तम-से-उत्तम बीज पैदा करने का जतन करना चाहिए।

४ खड़ी फसल की देखभाल

खाद चाहिए, इत्यादि-इत्यादि । इसके अनुसार अपने खेतो में खाद देकर उनके गर्भ मे पौवो के भोजनो का काफी मात्रा में पैदा कर देने का काम करते रहे । खेतो के पेटो मे उचित रूप मे जाकर वहाँ पौवो के भोजन तैयार करनेवाली सामग्री—गोवश का गोवर, मूत, हड्डी और खरपात—हमारे देश मे अभी वहुत है और उसकी वढती भी की जासक्ती है । मूर्ख किसान गोवर के तो कडे वनाकर जला डाल्ते है, और खरपात को जलाकर ताप डालते है ।

किसानो को अपनी फसलो को वोकर नगरो मे मेहनत-मजूरी करने को चले जाना चाहिए । खेतो मे चल-फिरकर देखभाल करते रहना चाहिए कि उन्हे फसलो के वढने-पकने का हाल मालूम हो ।

५. उपज को वढ़िया करने और वढ़ाते रहने की भारी लालसा

खेती पर किसान का सव तरह से अधिकार हो । जव यह निश्चय हो कि खेत के सुधर जाने पर खेत छिन न जायगा तव किसान हर तरह पर खेती की वढती का जतन करता रहेगा । दरिद्रता भी इस लालसा मे वाधक होती है । भूखो को हौसला नही होता । इसलिए पहले उनकी दशा भी कुछ सुधर ले तभी यह लालसा वढ सकती है ।

व्यवसाय-पचायत का यह कर्तव्य है कि देखे कि गाँव के किसान इन पाँचो वातो का पूरा पालन करते है या नही और अगर न करते हो तो उनके लिए ऐसे साधन पैदा करे कि हर तरह पर खेती सुधर जाय । इसके लिए पचायत को खेती सम्वन्धी सव तरह के साहित्य से काम लेना चाहिए । इस ग्रन्थ में यदि हम उन विपयो का विस्तार करे तो इसका कलेवर वहुत वढ़ जायगा । हम तो यहाँ वही वाते देते है जिन्हे हम मुख्य समझते हैं और जिनके द्वारा हम समझते है कि किसान तरक्की की राह पर चल पडेगा ।

खेतों का छोटा-छोटा होना, या ऐसे छोटे टुकड़ों में बंट जाना कि उनका अलग खेती करना ज्यादा खर्च और मेहनत की बात होजाय, खेती के सुधार में बाधक होता है। गांव की किसान सभा इस बारे में आप बन्दोबस्त करेगी कि जिन लोगों के खेत दूर-दूर पड़ गये हैं वे आपस में उचित समझौता और अदला-बदली करके ऐसा करें कि हर किसान के खेत पास-पास होजायं जिससे कि खेत की रखवाली में पैदावार की देखभाल में और खाद की ढुलाई आदि में किफायत पड़े और सिंचाई भी सुभीते से हो सके। जब सारे खेत इकट्ठे होते हैं तब बाड़ बांधने में भी सुभीता होजाता है।

: १९ :

खाद का संग्रह और उपयोग

हमारे देश मे गाडियो मे भरकर के हड्डी और कराचियो मे भर-भर कर तेलहन विदेशो मे चला जाता है। पेलकर तेल भाँति-भाँति के कामो में आता है, खली और हड्डी वहाँकी धरती को उपजाऊ बनाती है, इस तरह हमारे देश से उत्तम-से-उत्तम खाद विदेशो को चली जाती है। अपने घर भी हम खाद की रक्षा नहीं करते, मैदान में पखाना फिरकर चारो ओर गन्दगी फैलाते हैं, और उत्तम खाद को अपने लिए विप बनाकर धरती को उससे वचित रखते है। गोवर पाय-कर चूल्हे मे जला देते है। हम सब तरह से खाद का दुरुपयोग करते है।

अपने देश की हड्डियाँ धरती के भीतर अगर हम बिना पीसे भी गाड दे तो धरती को लाभ पहुँचावेगी। कपास से जो बिनौला निकले उसका तेल हम खाने के काम मे लावे और खल मवेशियो को खिलादें जिनसे कि हमे गोवर मिलता है और हम खेत मे, गाडी मे और सिचाई मे काम लेते है। गॉव मे घरो को झाड-बुहारकर जो कूडा हम घूरो पर डालते है और उसके आसपास गन्दगी फैलाते है, उसे गड्ढो मे भरे और खाद बनाकर खेतो में डाल दिया करे। घास और तरह-तरह का फूस उगाकर रेतीली धरती को हम खेती लायक बना सकते है।

हम लोग अपने नित्य के शौच के लिए मैदान की हवा को बिगाड देते है। इसके बदले चाहिए यह कि जिस खेत मे खाद देना है उसमे डेढ हाथ गहरी और बिलस्त भर चौडी और खेत की लम्बाई भर लम्बी नाली

खाद द और चार-पाच चलती-फिरती टट्टियाँ लगाद, जिनम लाग परते
के साथ वैठें और फरागत होलेने पर मैले पर मिट्टी डाल दिया करे।
जब नाली का टट्टी के भीतरवाला हिस्सा भर जाय तो टट्टी खसकाकर
नाली के खाली हिस्से पर कर दी जाय। जब सारी नाली भर जाय
तो उससे दो हाथ के समानान्तर दूसरी नाली खाद दी जाय। इस तरह
एक खेत-का-खेत उत्तम रीति से खाद से भर जायगा और उस खेत मे
जोताई-बोआई होने के समय तक खाद पक जायगी और अनेक वर्षों के
लिए उस खेती की धरती मजबूत होजायगी। स्वास्थ्य-रक्षा और व्यवहार-
पचायतो का यह कर्तव्य है कि मिलजुलकर इस तरह गाँव की सारी
खेती को और तन्दुरुस्ती को सधरवा दे।

जिसमे खेत की पोली मिट्टी भरी हो जो पेशाव को सोख ले। यह बहुत कीमती खाद होगी, जिसका थोडा-थोडा अश खेत में देकर जोत देने मे खेत की ताकत बढ जायगी। जो गोवर इस नाली के पास मे वटोर लिया जाय वह गोवरवाले गड्ढे मे जल्दी-से-जल्दी डाल दिया जाया करे जिससे कि ढोरो के पास गन्दगी न रहे, नमी न रहे और मक्खियां न भिनके। मवेशी की हालत अच्छी रखने के लिए उनके नीचे पूरी सफाई रखना जरूरी है।

गऊ-बैल के गोवर और मूत की खाद कई प्रकार से बनाई और खेतो मे डाली जाती है। दो-एक प्रकार की चर्चा यहां की जाती है —

(१) तीन फुट गहरे और आवश्यकता के अनुसार लम्बे-चौडे तीन छाँहदार गड्ढे वनाने चाहिएँ। एक गड्ढे में जवान और दुरुस्त गऊ-बैलो के गोवर और मूत से भरा भोजन प्रतिदिन डालते रहना चाहिए। दूसरे गड्ढे मे बूढे और वीमार पशुओ के गोवर और मूत से भरा भोजन डालते रहना चाहिए। तीसरे गड्ढे में बच्चो का गोवर डालते जाना चाहिए। ये गड्ढे जब भर जाये तव उनको मिट्टी से तोप देना चाहिए। दस महीने मे वह खाद पक जायगी। तव उसे निकाल और वारीक करके खेत में डाल देना चाहिए। खाद को खेत मे ढेर के रूप मे न पडे रहने देना चाहिए। उसे खेत मे डालकर हल चला देना चाहिए, जिससे वह खेत के नीचे उसके पेट मे पहुँच जाय। कुछ लोग खाद के ढेर को खेत मे कई दिनो तक डाल रक्खा करते है। ऐसा करने से धूप के मारे खाद की उपजाऊ शक्ति के तत्त्व उड जाते है। ध्यान रहे कि गोवश के गोवर के साथ घोडे-घोडी की लीद न मिलने पावे। लीद की तासीर गरम होती है। उसकी खाद अलग गड्ढे मे रक्खी जाय। वह पन्द्रह

है, वह सव जानते है। उसकी हड्डी तक खेत की उपज वढाने के काम में आती है। हड्डियो को चमारो से पिसवाकर खेतो मे डालने से वे खेत की उपज को वढाती है। आज ये हड्डियाँ सात समुद्र और तेरह नदियो के पार जाकर यूरोप और अमेरिका के किसानो के खेतो की खाद वनती है। वे इतना खर्च उठाकर भी उन्हे खरीदते है। इसे विलकुल वन्द कर देना चाहिए।

खेत को खासी वढिया खाद देकर उसकी उत्तम जुताई कर लेने के वाद उसमे जव चुना हुआ एक जाति का सुन्दर और रोग-रहित वीज वोया जाता है, तव वह भलीभाँति उगता है। खेतो के नीचे तैयार किये हुए अपने भोजनो को जडो द्वारा चूसकर पौवे वढते है और तव वे खूब उपज देते है। फसल को काटने के वाद खेत म हल चला दो। जहाँ फसल विलकुल उगी नही थी, वहाँ हर तरह के पेडो की पत्तियाँ सडाकर उनकी वनी हुई खाद डालो, जहाँ फसल कम उगी हो, वहाँ गोवश के गोवर की पकी हुई खाद डालो, जहाँपर फसल खूब वढी हो, पर उसमे दाने कम लगे हो, वहाँ पर हड्डियो को पीसकर उसकी वनाई हुई खाद डलवा दो। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानो पर उसकी आवश्यकता के अनुसार खाद देने से किसानो को दूसरे वर्ष खासी उपज मिलेगी।

खेतो में जो दरारें फटती हैं वे भी खडी फसल को वहुत नुकसान पहुँचाती हैं। वन सके तो इन दरारो को भरने का जतन करना चाहिए।

फसल को काटने, मीजने और उडाने मे जो असाववानी, उपेक्षा या लापरवाही किसान करते है उससे माल वहुत घटिया वनता है। उसमे मिट्टी और कचरा वहुत रहता है। ऐसा माल जव वाजार मे जाता है तव उसकी पूरी-पूरी कीमत नही मिलती। उनसे सस्ते दामो मे खरीद-कर रोजगारी लोग उसे साफ करते है। फिर उसे मँहगे दामो पर वेचकर

अलसी इस प्रकार अदल-बदलकर फसल बोते रहना चाहिए। किसानी महकमा इस विषय मे हर साल नई-नई बाते खोजता रहता है। किसान अगर किसानी महकमे के अफसरो से इस बात की सलाह करते या किसानी के अखबार और पुस्तके पढते-सुनते रहेगे तो उनको इस विषय की बहुत-सी लाभदायक बाते मालूम होती रहेगी।

चिलम पीने मे अथवा यो ही गप्प मारने या झूठे मुकदमे चलाने का रोजगार करनेवालो के फदे मे फँसकर जो अपना समय नष्ट करते हैं उसे अब बन्द करदे। पापियो के साथ थोडे-से दस-पाँच रुपये के लोभ मे पडकर झूठी गवाही देने का पाप ही मिलेगा। जब झूठी गवाही देने जायँगे तब किसानो के खेत की फसल खराब होगी। इसलिए उन दुष्टो का साथ वे छोड दे और रात-दिन किसानी की उपज बढानेवाली नई-नई युक्तियो की खोज में लगे रहा करे।

प्रकार की बहुत-सी बाते है, जिससे यह बतलाया नहीं जासकता कि वर्षा का कितना पानी बह जाता है, कितना भूमि सोख लेती है और कितना उड जाता है। इतना तो स्पष्ट है कि वर्षाजल का बहुत बडा भाग बेकार चला जाता है। गर्मी द्वारा पानी का भाफ बनना अनिवार्य है, पर वह जानेवाला पानी रोका जासकता है, इसलिए यदि वर्षाजल वह न जाने पावे, जो बरसता है वह सब हमारे खेत सोख ले, तो खेतो मे बहुत कुछ ओद बनी रह सकती है और इससे अकाल का भी बचाव होसकता है।

भारत मे पानी बरसने के चार महीने हैं—आषाढ, सावन, भादो और क्वार। अंग्रेजी महीनो के हिसाब मे १५ जून से १५ अक्तूबर तक विशेष रूप से जल बरसता है, इन्हीं चार महीनो मे एकत्र-समय का नाम वर्षा या बरसात है। इसी मौसिम मे वार्षिक वर्षा का सौ मे से लगभग ९० भाग पानी बरस जाता है। खेती के लिए आषाढ और क्वार में पानी बरसना अत्यन्त आवश्यक है। वर्षा के आरम्भ-समय और वर्षा के अन्त-समय मे यथोचित पानी बरसना बहुत जरूरी है। आखीर में (क्वार मे) यदि अधिक वर्षा न भी हो, केवल दो-तीन इच पानी होजाय तो काफी है। पर आरम्भ मे (आषाढ मे) अच्छी वर्षा का होना ज़रूरी है। यदि ऐसा न हो तो अकाल का पडजाना बहुत सम्भव होजाता है। वर्षा-काल मे यदि २३ इच तक पानी बरस जाता है तो कहत (अकाल) नहीं पडता। परन्तु वर्षा का आधा पानी निरर्थक चला जाता है। २३ इच वर्षा मे केवल १२ इच पानी यथार्थ मे खेती के काम आता है और ११ इच वह जाता है। यह १२ इच पानी खेती को काफी होजाता है, इसलिए कोई ऐसा यत्न किया जाय कि वर्षा-जल का एक बूंद भी खेती से बाहर न जाने पावे तो २३ इच की जगह

१२ इंच वर्षा में भी काम चल सकता है। अकाल से बचने का कि
और इस देश के अनुकूल मूल उपाय यह है कि वर्षा के पानी
बूंद भी बेकाम न बहने पावे—सब-का-सब भूमि में समा जावे।

खेतों की मेंड़ बांधकर उनका पानी रोकने में जो लाभ होता
उससे हमारे किसान भाई अच्छी तरह वाकिफ हैं। देहातों में बहुत
ऐसी कहावतें प्रचलित हैं, जिनमें खेत की मेंड़ बांधकर पानी रोकने
गुण और लाभ बतलाये गये हैं। जैसे—

(१) खेत बांध दस जोतन देय।
दस मन बीघा हमसे लेय॥

अर्थात् खेत की मेंड़ बांध देवे, जिससे उसका पानी बाहर न जाने
पावे, फिर दस बार खूब जोत डाले, तो दस मन अन्न प्रति बीघा अवश्य
पैदा होगा।

(२) थोड़ै जोतै बहुत गहवे, ऊंचे बांधे नाड़।
ऊंचे पर खेती करे, पैदा होवे भाड़॥

अर्थात् मेंडोकी सदा रक्षा करते रहना चाहिए जिससे वरसात का पानी वहने न पावे। वास्तव मे वही वुद्धिमान किसान है जिसके हाथ मे कुदारी इसी हेतु वनी रहती है कि उसमे वह टूटी हुई मेंडो को सुधारता है।

(५) खेती वेपनियां जोते कव ?
ऊपर कुवां खोदावे तव ॥

अर्थात् ऐसा खेत जिसमे पानी का सुभीता न हो उस समय तक न जोतना चाहिए जवतक कि उसके ऊँचे स्थान पर कुवां न खुदवा ले।

(६) खेत बेपानी वुड्ढा वैल।
सो किसान सांझही से गैल ॥

अर्थात् जिस किसान के पास वुड्ढे वैल है (जिनमे जोताई अच्छी तरह नही होसकती) और खेत मे पानी का प्रवन्ध नहीं, वह किसान खेती क्या कर सकता है ? उसे जरूर खेती मे हानि होगी और वह गाँव छोडकर जल्द ही भाग जायगा।

(७) गेहूँ आवे वाल। जव खेत वनावे ताल।

अर्थात् गेहूँ की पैदावार तव उम्दा होती है जव खेत मे इतना पानी भरदे कि वह तालाव के समान होजाय।

(८) तोड दीन क्यारी। खेत का उजारी ॥

अर्थात् जव खेत की मेड टूट जाती है, तो खेत की पैदावार कम होजाती है, मानो खेत उजड गया।

(९) पानी भरिये खेत में, घर में भरिये दाम।
दोनो हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥

अर्थात् चतुराई इसीमे है कि खेत की मेड वांधकर उसमे पानी भरे, जिससे खूव पैदावार हो और घर मे रुपये भर जायँ। तव खर्च करना वुरा नहीं।

बन्धी बाँध

खेतों में मेड़ बाँधने से बहुत लाभ होता है। पर मेड़ समतल खेतों
में सुगमता से डाली जा सकती है। बहुत ऊँची-नीची भूमि में मेड़
की जगह बंधी बाँधना सुभीते का काम होता है। जिन किसानों के खेत
ढालू भूमि में हों, उनको अवश्य ही पानी रोकने की बड़ी कोशिश करनी
चाहिए, क्योंकि अधिक ढालू होने के कारण खेत पानी कम सोख पाते
हैं और उनमें आर्द्र कम रहता है। हर बरसात में पानी का बहाव भूमि
के उपजाऊ पदार्थों को बहा ले जाता है और भूमि से खाद इत्यादि
पौष्टिक वस्तुएँ निकल जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि
ढलवाँ खेत की हैसियत प्रतिदिन गिरती जाती है और अन्त में नालि कट-
गीली होकर खेती के काम की नहीं रहती। किसी नाले या नाली के
उस स्थान को मिट्टी के बन्ध से रोक देते हैं जहाँ से पानी बहकर निकल
जाता है। इस विधि से एक विस्तृत क्षेत्र का पानी बहना बन्द हो जाता
है, रुक जाता है और तालाब बन जाता है।

की सूखी पत्तियां, गोवर और अन्य प्रकार की सडी-गली चीजे पानी अपने साथ वहा लाता है, ये सव चीजे वन्धी मे जमा होकर एक प्रकार की खाद होजाती है। इस प्रकार वन्धी के भीतर विना खाद डाले स्वय खाद पडती जाती है।

(३) तीन-चार मास वरावर पानी भरा रहने से वन्धी के भीतर नाना प्रकार के जीव—घोघा, मछली, मेढक, केंचुवे इत्यादि—उत्पन्न होजाते है, जो पानी निकल जाने पर उसी भूमि मे सड जाते हैं। इससे भी उस भूमि की उर्वरा-शक्ति वढती है।

(४) चार महीने तक वरावर पानी भरा रहने से भूमि खूव पानी सोख लेती है, इसलिए ओद खूव रहता है।

(५) वर्षा का जो पानी वेकाम वह जाता था उसका वहुत कुछ उपयोग खेती में होजाता है।

(६) घटिया किस्म की भूमि रेव पडते-पडते वढिया किस्म की होजाती है।

(७) वन्धी की जमीन में केवल एक वार जोतकर वो देने से वैसी ही पैदावार होती है जैसी साधारण खुली हुई भूमि में दस वार जोतने से होती है, इसलिए परिश्रम और समय दोनो की वचत होती है।

(८) सबसे वडा लाभ यह है कि वन्धी मे एक विस्तृत भूमि का पानी वहकर जमा होजाता है, इसलिए वन्धी मे पानी की आमद काफी हो तो थोडी वर्षा में भी वन्धी भर जाया करती है और उसमें अच्छी फसलें पैदा होती है। यदि पानी की आमद काफी न भी हो तो भी खुले हुए खेतो की अपेक्षा उसमे अधिक ओद रहता है और सूखे के साल मे कुछ-न-कुछ पैदा हो ही जाता है।

तालाव वनाकर आवपाशी करने से नीचे लिखे लाभ होते है —

(१) वर्षा का पानी जो बेकाम बह जाता है वह सब उपयोग में लाया जासकता है और इस पानी का एक बड़ा भाग खेती के काम आ-जाता है।

(२) स्वतन्त्रतापूर्वक जब चाहे सिंचाई कर सकते हैं और समय-समय पानी ले सकते हैं।

(३) सब प्रकार की फसलें उत्पन्न कर सकते हैं।

(४) इन तालाबों से सींचने के सिवाय मनुष्यों और पशुओं का भी निस्तार होता है।

(५) सिंघाड़ा आदि की पैदावार होती है।

अधिक पानी के निकलने का रास्ता अथवा निकाम स्थान) का पहले से ही ठीक प्रबन्ध करले तो उनको न इतनी अड़चन पडेगी और न बन्ध टूटने की हानि ही उठानी पडेगी।

तालाब के भीतर भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न गहराई का पानी भरा होता है। जहाँ जितना गहरा पानी होता है वहाँकी भूमि पानी के किनारे की भूमि से उतनी ही नीची होती है। जैसे पानी के किनारे से दस फुट के अन्तर पर गहरा पानी है और बीस फुट पर पाच फुट गहरा पानी है, तो पानी के भीतर की भूमि पानी के किनारे की भूमि से दस फुट के अन्तर पर दो फुट नीची होगी और बीस फुट के अन्तर पर पाँच फुट नीची होगी। बिना पानी भरी भूमि की इस प्रकार की ऊँचाई-निचाई जानने की रीति को "पसार करना" अथवा "समीकरण-विधि" कहते है।

पाताड तोड़ कुएँ

बहुधा कुएँ के ऊपरी जलसोत कम पानी देनेवाले होते है और सूखे के सालो मे ये सोते जलहीन होजाते है। इस कारण ऐसा कुआँ सीचने के लिए सर्वथा अनुपयोगी होजाता है। इस दोष को मिटाने के लिए बहुत अच्छी एक युक्ति निकाली गई है। तीन या चार इच के फास (व्यास) का नल कुएँ मे डालना आरम्भ करते है और उसे बराबर भूमि मे नीचे धँसाते जाते है, यहाँतक कि नल भूमि के उन सोतो तक पहुँच जाता है जिनको 'पाताल-सोत' कहते है। बस तोडकर (नल से उबल-उबलकर) पानी कुएँ मे आने लगता है। ऐसे कुएँ बडे पनियार होते है और सूखे मे भी लहर-दरयाव बने रहते है। तीन-चार चरसो के चलते रहने पर भी वे खाली नही होते।

अबतक कोई ऐसा सहज उपाय नही निकला कि जिसके द्वारा कम खर्च करने पर भी सन्तोषजनक पानी की मात्रा कुओ से प्राप्त की जा

तक। एक चरसा और एक जोड़ी बैल से एक दिन में अधिक-से-अधिक एक पक्के बीघे की सिंचाई की जा सकती है, इसलिए इस रीति के अनुसार दो-तीन एकड़ से अधिक खेती हो नहीं सकती। रहट में चरसा की अपेक्षा कुछ अधिक पानी निकलता है, पर रहट में चरसा से अधिक झंझट भी है। इसके सिवाय रहट विशेषतः उन स्थानों में विशेष सुभीते का है जहाँ पानी निकट आता है।

कुएँ से आबपाशी करके खेती करने में बहुत-सी सुविधाएँ और लाभ भी हैं। कुएँ का पानी दूसरे पानी से अधिक बलकारक और कृषि का पौष्टिक होता है। एक किसानी कहावत है कि "माँ के दूध से अच्छा क्या?" अर्थात् जिस प्रकार बालक के लिए माता का दूध ही सब दूधों से अधिक पौष्टिक और गुणकारी है उसी प्रकार खेती के लिए कुएँ का पानी बहुत लाभदायक होता है। कुछ ऐसे फल और जिन्स भी हैं जो कि कुएँ की सिंचाई से ही अधिक अच्छी होती हैं। यद्यपि कुएँ की सिंचाई में बहुत-से सुभीते और फायदे हैं तथापि इस प्रकार की सिंचाई इस देश की दशा के अनुकूल नहीं। कुआँ खोदने में खर्च भी अधिक पड़ता है और उससे अधिक खेती भी नहीं होती।

चाहे जैसे अवस्था हो, यदि उसपर बराबर पानी भरा करेगा तो एक-न-एक दिन वह भूमि खेत के योग्य होजायगी। तथापि उचित भूमि और अनुकूल स्थान पर बन्धी बनाने से खर्च कम होता है। लाभ अधिक और बहुत जल्द होने लगता है। इसके विपरीत अगर बुरी भूमि मे अनुपयुक्त स्थान मे बन्धी डाली जाती है तो खर्च अधिक पड जाता है और लाभ कम तथा अधिक देर मे होता है। इसलिए सलाह की बात यह है कि बन्धी बनाने के पहले बन्धी की जगह और उसकी स्थानीय दशा पर विचार कर लेना चाहिए। बन्धी ऐसी होनी चाहिए कि जिससे अधिक फायदा हो, और कम खर्च मे तैयार होजाय। बन्धी की जगह चुनने मे निम्नलिखित बातो का खयाल रखने मे बडा लाभ होगा —

(१) जिस भूमि का बन्ध बनाया जाय वह "मार" अथवा "काबर" न हो।

(२) पडुवा भूमि पर बन्ध अच्छा होता है।

(३) बन्ध मे पानी की आमद अधिक हो।

(४) जिस क्षेत्रफल का पानी बहकर बन्धो मे जमा होता है वह 'मार' का हो, अथवा अधिक भाग 'मार' या 'काबर' का हो।

(५) गाँव का पानी, खोदे हुए खेतो का पानी, रहुनियो का पानी, घूरो और मैली जगहो का पानी यदि बन्धी मे बहकर आये, तो अति उत्तम जानो।

(६) रेतीली, ऊसर और नोनियारी भूमि का पानी आने से बन्धी की भूमि खराब होजाती है। इसलिए ऐसे स्थान पर बन्धी न बनवानी चाहिए जहाँपर ऐसी जगहो से पानी आता हो।

(७) जिस स्थान मे मिट्टी डाली जाती है, अर्थात् बन्ध पडता है,

वह सकरा (कम चौड़ा) और जहाँ पानी भरना है वह विस्तृ
(फैला हुआ) हो।

(८) बन्ध इस प्रकार का हो कि मिट्टी कम पड़े और बन्ध बड़ा
बन, साथ ही पानी बड़े क्षेत्रफल में भरे।

(९) बन्ध के भीतर की भूमि (जहाँ पानी भरना है) बहुत
कम ढाल की हो।

(१०) बन्ध में जगह विस्तृत और उचित स्थान पानी के निकास
के लिए हो।

(११) बन्धों के पीछे (यानी बहाव की ऊपरी ओर) ऐसी
जगह हो कि यदि अवकाश मिले और पानी की आमद काफी हो तो एक
दूसरा बन्ध उसके पीछे बनवा सके।

चाहे जैसे अवस्था हो, यदि उसपर बराबर पानी भरा करेगा तो एक-न-एक दिन वह भूमि खेत के योग्य होजायगी। तथापि उचित भूमि और अनुकूल स्थान पर बन्धी बनाने से खर्च कम होता है। लाभ अधिक और बहुत जल्द होने लगता है। इसके विपरीत अगर बुरी भूमि मे अनुपयुक्त स्थान मे बन्धी डाली जाती है तो खर्च अधिक पड जाता है और लाभ कम तथा अधिक देर मे होता है। इसलिए सलाह की बात यह है कि बन्धी बनाने के पहले बन्धी की जगह और उसकी स्थानीय दशा पर विचार कर लेना चाहिए। बन्धी ऐसी होनी चाहिए कि जिससे अधिक फायदा हो, और कम खर्च मे तैयार होजाय। बन्धी की जगह चुनने मे निम्नलिखित बातो का खयाल रखने मे बडा लाभ होगा —

(१) जिस भूमि का बन्ध बनाया जाय वह "मार" अथवा "कावर" न हो।

(२) पडुवा भूमि पर बन्ध अच्छा होता है।

(३) बन्ध में पानी की आमद अधिक हो।

(४) जिस क्षेत्रफल का पानी बहकर बन्धो मे जमा होता है वह 'मार' का हो, अथवा अधिक भाग 'मार' या 'कावर' का हो।

(५) गाँव का पानी, खोदे हुए खेतो का पानी, रहुनियो का पानी, घूरो और मैली जगहो का पानी यदि बन्धी मे बहकर आये, तो अति उत्तम जानो।

(६) रेतीली, ऊसर और नोनियारी भूमि का पानी आने से बन्धी की भूमि खराब होजाती है। इसलिए ऐसे स्थान पर बन्धी न बनवानी चाहिए जहाँपर ऐसी जगहो से पानी आता हो।

(७) जिस स्थान मे मिट्टी डाली जाती है, अर्थात् बन्ध पडता है,

वह सकरा (कम चौडा) और जहाँ पानी भरना है वह विस्तृत (फैला हुआ) हो।

(८) बन्ध इस प्रकार का हो कि मिट्टी कम पडे और बन्ध बडा बने, साथ ही पानी बडे क्षेत्रफल मे भरे।

(९) बन्ध के भीतर की भूमि (जहाँ पानी भरना है) बहुत कम ढाल की हो।

(१०) बन्ध से अलग विस्तृत और उचित स्थान पानी के निकास के लिए हो।

(११) बन्धी के पीछे (यानी भराव की दूसरी ओर) ऐसी जगह हो कि यदि अवकाश मिले और पानी की आमद काफी हो तो एक दूसरा बन्ध उसके पीछे बनवा सके।

(१२) वर्षा के बाद जो पानी बेकाम निकाला जाय उससे कुछ भूमि सींची जा सके।

(१३) बन्धी मे पानी की ऊँचाई कम और फैलाव अधिक हो।

(१४) बन्धी की तजवीज के साथ उसकी लागत का भी अन्दाजा कर लिया जाय।

(१५) वह बन्धी जिसमे एक पक्के बीघा पानी भरने मे १०) रु० खर्च का औसत पडे, अच्छी है, पर २०) से अधिक न पडना चाहिए।

(१६) रुपया और सामान इत्यादि का पहले बन्दोबस्त कर लेना चाहिए, पीछे काम आरम्भ करना चाहिए।

बन्ध बनाने मे नीचे लिखी बाते याद रखना चाहिएँ —

(१) मिट्टी डालने के पहले जिस स्थान पर बन्ध डालना हो, उसे पसार कर लेना चाहिए।

(२) बन्ध इतना ऊँचा रखना चाहिए कि पूरा भर चुकने पर

जव औना चलने लगे तव वन्ध पानी मे कम-से-कम चार फुट ऊचा निकला रहे ।

(३) सौ-सौ फुट पर या कुछ न्यूनाधिक इतने ऊँचे वांस गाड देने चाहिएँ कि जितनी ऊँचाई उस स्थान मे रक्खी जाती है ।

(४) आठवे भाग स लेकर १२ वे भाग तक वन्ध की ऊचाई पसार से अधिक कर देना चाहिए, जिसमे वैठक लेने (वमने) पर भी वन्ध नीचा न होने पावे ।

(५) प्रत्येक वाँस के दोनो ओर ढाल के फैलाव की खूटियाँ गाड देना चाहिए ।

(६) वन्ध का ढाल पानी के भराव और ऊँचाई मे दुगना और पानी के भराव की दूसरी ओर का डेवढा होना चाहिए ।

(७) यदि वन्ध के भीतर कोई नाला आजाय तो उसपर मिट्टी डालने के पहले उसकी रेत निकाल डालना चाहिए ।

(८) दो वांसो के वीच का अन्तर एक भाग कहलाता है । वन्ध मे इस प्रकार के कई भाग हो तो पहले एक भाग पर काम जारी करे, जव वह पूरा होजाय तव दूसरे पर काम लगावे ।

(९) मगरमुंहा अथवा सिल्यूस (वह स्थान जहाँ से पानी निकाला जाता है) को मिट्टी डालने के पहले ही पूरा करलेना चाहिए ।

(१०) मगरमुंहा या सिल्यूस की नीव पक्की (मजवूत) भूमि निकल आने पर भरी जानी चाहिए ।

(११) निकास-स्थान या औना वन्ध से कम-से-कम चार फुट नीचा होना चाहिए ।

(१२) यदि औना तग या सकरा हो तो खुदवाकर विस्तृत कर देना चाहिए, जिससे भराव से अधिक पानी उससे निकल जाया करे ।

(१३) बन्ध की मिट्टी जहांतक हो सके भीतर की भूमि से ली जाय।

(१४) बंध के ढाल में कम-से-कम-३० फुट के अन्तर पर खन्नियां लगाई जावें।

(१५) बडी देखभाल इस बात की रखनी चाहिए कि बन्ध में ढेले न आने पावें, बल्कि जो मिट्टी डाली जाय वह चूरा हो।

(१६) मिट्टी इस तरह पडनी चाहिए कि जब इकहरी डलियों की एक पुर्त (तह) बन्ध की कुल चौडाई और उस भाग की पूरी लम्बाई में पड चुके तब उसके ऊपर दूसरी डलियां पडें।

(१७) पहले बन्ध के सिरों पर मिट्टी डलवाना चाहिए, फिर आखिर में बीच के भाग में।

(१८) बन्ध के ऊपर की चौडाई समतल न रहे बल्कि महिपुश्त (मीनपृष्ठ वा मछली की पीठ के समान) हो और ढाल इस प्रकार रहे कि आधा पानी बन्ध में एक ढाल की ओर और आधा पानी बन्ध के दूसरे ढाल की ओर रहे।

(१९) बन्ध पर पानी एकत्र होकर न बहने पावे और न बन्ध पानी सोखने पावे। अर्थात् बन्ध में पानी न समाना चाहिए।

(२०) बन्ध पर दूब या कोई घास होने से मिट्टी नहीं कटती और बन्ध में पानी नहीं समाता। पहले वर्ष बन्ध की मिट्टी पर कोदों, सावां, कुटकी इत्यादि छिडक देने से बन्ध की हिफाजत और फायदा दोनों होते हैं।

बन्ध बन चुकने पर इन बातों पर ध्यान रखना चाहिए —

(१) वर्षा में सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बन्ध पानी की लहरों तथा पानी की धार से कहीं कटने न पावे।

(२) जिस जगह वन्ध पानी के ज़ोर मे कट रहा हो उस स्थान मे वृक्षो की पत्तीदार शाखें लगा देने से कटना वन्द होजाता है ।

(३) वन्ध की तैयारी के वाद दो-चार वर्ष तक हर साल वर्षा समाप्त होने पर वन्ध के ऊपर की पसार लेना चाहिए । जहा वैठक लेकर वन्ध अधिक धँस गया हो वहाँ और मिट्टी डलवाकर ठीक करा देना चाहिए ।

(४) हर साल बरसात के पहले वन्ध की उन स्थानो की मरम्मत कर देना चाहिए जो पानी से कट गये हो ।

(५) वर्षा मे वन्ध के किसी स्थान में मिट्टी धँस जाने के कारण वहुधा गड्ढा होजाता है और फिर उस गड्ढे मे पानी समाना आरम्भ होजाता है, इसीसे वन्ध को वडी हानि पहुँचती है । इसकी मरम्मत फौरन करा देना चाहिए ।

(६) वन्ध का पानी एकदम कभी न निकालना चाहिए ।

(७) यदि अधिक वर्षा होने के कारण वन्धी एकदम भर जावे और औना (निकास-स्थान) से जितना चाहिए उतना पानी न निकल पावे तो मगरमुँहा भी खोल देना चाहिए ।

(८) पानी निकल चुकने पर जव वन्ध विलकुल सूख जाय तो इस वात की अच्छी तरह परताल करनी चहिए कि वन्ध कही से दरका अथवा फटा तो नही है । यदि दरका हो तो दरार के दोनो ओर एक-एक फुट चौडी और लगभग तीन फुट गहरी नाली खोदे और सूखी चिकनी वारीक मिट्टी उस नाली में भरकर अच्छी तरह धँसवा दे । मिट्टी की कुटाई का तरीका यह है कि पहले एक वालिश्त की एक पुर्त्त मिट्टी डालकर मोगरियो की दुरमुटो से कुटवा दे । जव वह पुर्त्त खूव दव जाय तव दूसरी तह डाले और उसी प्रकार फिर क्रिया करे ।

(९) चिकनी मिट्टी मे यदि पीसन (भूसा, पयाल आदि के टुकडे) मिला दिये जायँ तो इससे पानी की रोक वहुत होजाती है। इसलिए मरम्मत कराने मे सदा चिकनी मिट्टी के साथ भूसा, पयाल आदि के छोटे-छोटे टुकडे मिला देने चाहिएँ।

(१०) यदि वन्ध झरता हो, तो जिस स्थान से पानी झिरे उनमे भीतर की ओर मे पर्डलिग करा देना चाहिए। (गोद की दीवार की तरह वन्ध मे कच्ची दीवार वनाकर मिट्टी मे पूर दी जाती है, उसको 'पर्डलिग' कहते हैं।)

(११) गीली मिट्टी पर पशुओ को चलाकर उनके पैरो मे मिट्टी कुचलवाने मे भूमि कडी होजाती है और पानी को रोकती है, इसीलिए वन्ध के ढालो के किनारे पर (विशेपकर भीतर की ओर) पहले मात्र यह क्रिया करा देनी चाहिए।

वन्ध टूटने के वहुधा निम्नलिखित कारण होते हैं —

(१) पसार का ठीक न होना।

(२) निकास-स्थान का पर्याप्त विस्तृत न होना।

(३) वन्ध मे फीवोई का कम होना।

(४) नीचे की जगह गलकने से वन्ध का एकदम बैठ जाना।

(५) वन्ध की मिट्टी का अधिक ढेलेदार होना।

(६) ढाल का अनुचित होना।

(७) वन्ध में अधिक पानी का समाना।

(८) वर्पा के पानी का इकट्ठा जमा होकर वन्ध के ऊपर मे एकजगह होकर वहना।

(९) वन्ध के एकदम भरने से पानी का न समाना और उवल पडना।

(१०) मगरमुंहाँ या सिल्युस की नींव कच्ची भूमि में होने के कारण उनका धँसना और बन्ध का फटना ।

(११) बन्ध की दरार की मरम्मत न होने के कारण उसमें पानी का प्रवेश करना ।

: २१ :

गाँव के और रोज़गार

खेती के काम से किसानों को बहुत फुरसत मिलती है और इस बड़ी फुरसत के समय वे अगर कोई सहायक रोजगार न करें तो अकेली खेती से उनका गुजारा नहीं होसकता। कपास का काम ऐसे फैलाव का है कि किसान को एक मिनट भी बेकार रहने की जरूरत नहीं है। ओटाई, धुनाई और कताई का काम हर किसान सहज में सीख सकता है और कर सकता है। इतने काम के लिए वह हरेक रुपये के खद्दर में पौने सात आने का अधिकारी होजाता है। तो भी हम यह नहीं कहते कि इससे ज्यादा मजदूरी जिस काम में मिलती हो वह छोड़कर कपास का काम करे। कपास का काम ऐसा है कि किसान जब चाहे करले परन्तु और काम उसे विशेष-विशेष समय और ऋतु पर ही करने पड़ते हैं। खड़साल की ही मिसाल लीजिए। खड़साल का काम जाड़ों में शुरू होता है और गर्मियों के आते-आते खतम होजाता है। ३ महीने से अधिक नहीं रहता। इस काम में मजदूरी ज्यादा मिल जाती है। किसान चाहे तो खड़साल का काम भी करे और कपास का भी। दूध-दही का काम ऐसा नहीं है कि किसान को उसमें हर वक्त फँसा रहना पड़े। वह चाहे तो यह काम करते हुए भी कपास का काम कर सकता है। बुनाई का रोज़-गार ऐसा है कि अगर तीसों दिन काम मिले तो जुलाहा या कोरी खेती नहीं कर सकता, परन्तु बात ऐसी नहीं है। न तो खेती के काम में और न बुनाई के काम में कोई तीसों दिन लगा रह सकता है। इसलिए बुनकर

१

भी थोडा-बहुत खेती का काम कर सकता है। निदान किसान ऐसे रोज़गार भी, खेती और कताई आदि के सिवाय, कर सकता है, जिससे उसे ज्यादा मजदूरी मिले।

गांव के रोज़गारो मे दूध का काम बडे महत्त्व का है। खेती के साथ-साथ किसान गऊ भी पाले तो दूध-दही-घी का रोजगार कर सकता है। शहर के पास होने से यह कारबार बडे ऊँचे पैमाने पर चल सकता है। दूर होने पर दूध और मक्खन पहुंचाने का विशेष बन्दोबस्त करना पडेगा। यह तभी होसकता है जब रोज़गार मे नफा अच्छा हो। दूध-शाला का काम मक्खन और घी तैयार करना है। गाय का दूध सबसे उत्तम होता है, इसलिए पीने के काम मे यही दूध आना चाहिए। भैंस-बकरी आदि के दूध से मक्खन और घी निकालना चाहिए। मक्खन मथ लेने पर मथे हुए दूध को जमाकर उसका दही और मट्ठा बना लिया जाय तो बीमारो के लिए और बहुत कडी मेहनत करनेवालो के लिए भी पौष्टिक भोजन होता है। यह दूध और दही सस्ता मिलना चाहिए और यह कहकर बिकना चाहिए कि यह मक्खन निकाला हुआ दूध या दही है। ग्वालो की या दूधशाला रखनेवालो की एक पचायत ऐसी होनी चाहिए जो दूध के रोजगार को सचाई और ईमानदारी के साथ चलाने का पूरा प्रबन्ध करे और जो रोजगारी ईमानदारी न बरते उसे दड दे। वर्तमान काल मे घी-दूध के रोजगार की बडी दुर्दशा है। पर स्व-राज्य की दशा मे यह दुर्दशा न रहनी चाहिए। अच्छे सांडो के द्वारा गो-वश को बढाना होगा और सहयोग के द्वारा अनेक दूधशालाओ को मिल-जुल कर अपना माल दूर-दूर बिकने के लिए भेजने का प्रबन्ध कराना होगा। दूधशाला रखनेवाले कई होगे, सबका माल पचायत के बन्दो-बस्त से एक तरह का रखना होगा। शहर मे या दूर-दूर बिकने को

भेजने के लिए एजेंसियाँ होंगी जो दूधशालाओं में माल लेकर भेजने का आप बन्दोबस्त करेंगी। इस तरह दूध, घी मक्खन, दही आदि का खासा रोजगार हर गाँव में होसकता है। इसके लिए गऊओं की रक्षा करनी होगी, उनको सस्ता परन्तु पौष्टिक चारा खिलाने का बन्दोबस्त करना होगा और उनकी सन्तान और दूध में तरक्की कराने के उपाय कराने होंगे। डेनमार्क एक छोटा-सा देश है जहाँ मक्खन और दूध का रोजगार बड़े ऊँचे पैमाने पर होता है। इंगलिस्तान को दूध और मक्खन डेनमार्क का ग्वाला देता है। भारतवर्ष में तो अभी इसकी इतनी कमी है कि यहाँके बच्चे ही जरूरतभर दूध नहीं पाते। हमे बहुत दिनों तक दूध और मक्खन विदेशों में भेजने की जरूरत न पड़ेगी और इस रोज़गार से काफी लाभ होगा।

दूध, घी, मक्खन प्रायः सभी पशुओं में मिलता है परन्तु गायों के सामान के सिवाय भैंस और बकरी का ही सामान मनुष्य के सेवन के लिए अनुकूल पड़ता है। जो लोग दूधशाला रखते हैं और इस तरह का माल तैयार करते हैं उन्हें तो गायों के सिवाय भैंस और बकरियाँ भी रखनी चाहिएँ। इस तरह दूधशाला रखनेवाला किसान सब तरह के पशुओं का पालन करेगा। परन्तु किसान के लिए गाय कामधेनु है। गोवंश में सबसे अधिक काम का पशु बैल है।

गऊ पाले। भैंसा और बकरा गऊ की तरह उपयोगी नही होते, इसलिए इनके रखने मे गोपालन का-सा लाभ नही है। हॉ, दूधशाला रक्खे और इसी तरह का रोजगार करे तो जरूर लाभ होसकता है।

गडेरिये भेड-बकरी पालते है। भेडो से ऊन उतारकर वे कम्बल बुनते है। यह रोजगार बहुत अच्छे पैमाने पर चलाया जासकता है। ऊन की उपज भिन्न-भिन्न भेडो मे विभिन्न प्रकार की होती है। भेडो की जाति मे भी उसी तरह तरक्की की जासकती है, जैसे गऊ की जाति मे। इस तरह अच्छे नर से जोडा मिलाने से अच्छी जाति की भेडे पैदा होगी, जिनका ऊन बारीक लोचदार और मुलायम होगा, जिससे कि ऊन के अच्छे-से-अच्छे कपडे बन सकगे। गडेरिये का रोजगार किसान के लिए बहुत लाभदायक है और इसमे बडी तरक्की की गुजाइश है। किसान का सारा समय इसमे नही लगेगा।

किसान के काम मे फल और तरकारियो का रोज़गार भी बडे लाभ की चीज़ है। इसके साथ यह आवश्यक है कि जिन बाजारो मे इनकी खपत होसके वहॉतक ये पहुचाये जायं। इसका बन्दोबस्त भी एजेन्सियो के द्वारा सुभीते से होसकता है। शहर के पास के गांवो मे किसान आप लेजाकर बेच सकता है। ऐसे कारखाने भी खोले जा-सकते है जिनमे फलो को इस प्रकार सुरक्षित रक्खा जाय, कि वे बहुत कालतक ताजा बने रहे। यह क्रिया उस समय की जानी चाहिए जब देश मे फल इतने ज्यादा पैदा हो कि ताजे-ताजे बिक न सके।

जिन किसानो के पास फल और तरकारियो के बाग और बगीचे हो उनको यह बडा सुभीता है कि मधुमक्खियां पाले। जिन देशो मे यह रोज़गार होता है वहॉ बागो मे इस तरह के बक्स लगा दिये जाते है, जिनमे एक ओर से तो मक्खियो के लिए रास्ता हो और दूसरी ओर

से एक ऐसा ढकना हो जिसे खोलकर सुभीते से और मक्खियों को बिना उद्वेग पहुँचाये शहद ले लिया जासकता है। इन बक्सों को ऊँचाई पर लगा देते हैं और रानी मक्खी को लाकर उसमें बसा देते हैं। इन बक्सों में मक्खियां हमेशा शहद बनाती रहती हैं और किसान को लाभ पहुँचाती रहती हैं। किसान यह रोजगार विशेष समय लगाये बिना ही कर सकता है।

घर बैठे हर किसान कुछ और मजदूरी का भी काम कर सकता है। कपास की ओटाई के सिवाय धान की कुटाई मूंगफली की छिलाई, दालों की दलाई, और तेलों की पेलाई, हर किसान घर बैठे कर सकता है और मजदूरी से लाभ उठा सकता है। खड़साल कुछ रुपया लगाकर ही खोल सकता है। खड़सालों से उसे काफी आमदनी होसकती है। जो किसान समुद्र या जंगल के पास रहते हैं वे मछली और पशुओं का शिकार भी कर सकते हैं। जंगल के पास के गांवों में लाह की उपज बढ़ाने की कोशिश भी की जासकती है।

तेली, कुम्हार, चमार, कोरी या जुलाहा, लोहार, बढ़ई, रंगरेज बसफोर, सोनार और दूसरे कारीगर भी गांवों में पाये जाते हैं। इन सब कामों की जरूरत पड़ती है। थोड़े-बहुत इस तरह के लोग हर गांव में मौजूद हैं। ये तो वे रोजगार हैं जिनका खेती से सम्बन्ध नहीं है पर खेती करनेवालों को इनकी जरूरत पड़ती है। इसके सिवाय हर किसान को पुरोहित, वैद्य, ज्योतिषी, शिक्षक, पहरेदार, बनिया, ग्वाला, धोबी, दरजी, नाई, कहार और लेखक की भी जरूरत पड़ती है। इन सब रोजगारियों का गांव के अन्दर होना जरूरी है। पूरे गांव में इन सबकी बस्ती होनी चाहिए। इन कामों के सिवाय किसान को जो कुछ जरूरत पड़ती है वह स्वयं कर लेता है। जिन-जिन गांवों में इन रोजगा-

रियो मे से कोई नही होता, वहांके लोग दूसरे गांवो मे काम निकालते है। कुछ काम इस तरह के है, कि गाँववाले सुभीते के साथ कर सकते है। इनका सम्बन्ध न तो गांव की जरूरतो से है और न खेती से। जैसे रगरेज, छीपी, चित्रकार, सोनार, गाने-बजानेवाले, नक्काशी का काम करनेवाले, कागज बनानेवाले इत्यादि। गांववाले किसान इन सब कलाओ मे से किसी कला का अभ्यास कर सकते है, परन्तु अपने फालतू समय मे। इन कलाओ का स्थान मनुष्य के जीवन मे जरूर है। पर इनको आश्रय तब देना चाहिए जब किसान लोग ऋण के भार से मुक्त होजायँ और सुखी और समृद्ध होजायं। जिन किसानो को इनमें से किसी कला का शौक हो वे इन कलाओ को जरूर सीखे, परन्तु इनसे किसानो के बीच आपस मे कमाई करने का हौसला न करे। इनमें से छीपा और रगरेज का काम जो खद्दर को सुन्दर बनाने का है उसे हम अपवाद समझते है। अमीर और शौकीन औरते और मर्द भी रंगीन और छपे हुए खद्दर चाहते है। अगर किसान अपने घर पर बैठा छीपी और रगरेज का रोजगार करे तो कोई हर्ज की बात नही है। इससे भी वह उचित कमाई कर सकता है।

: २२ :

वास्तु-सुधार

गाँव में रहने के घर तरह-तरह के होते हैं, फूस के झोपड़े से लेकर पक्के महल तक गाँवों में पाये जाते हैं, परन्तु देश ऐसा दरिद्र हो गया है कि हम यह कह सकते हैं कि हमारा देश झोपड़ों का देश है। अधिक लोगों के पास इतना भी नहीं है कि अपने झोपड़ा को बन्द करने के लिए और कुत्तों का आना-जाना रोकने के लिए एक ठिकाने का दरवाजा या टट्टी भी लगा सके। बहुत मजबूत दरवाजे की जरूरत भी नहीं है। उनके पास है ही क्या, जो चोर लेजायगा? इन्हीं झोपड़ियों में कठिन-से-कठिन जाड़, गर्मियों में लुओं के जलानेवाले झोंके और बरसात में पानी की बौछार, सभी कुछ उपद्रव बेचारा किसान झेलता है। परन्तु एक बात जरूर है, कि बुरी तरह से बने हुए पक्के मकानों के मुकाबले में झोपड़ियाँ ज्यादा हवादार होती हैं। जहाँ दीवारें मिट्टी की होती हैं वहाँ प्राय एक ही दरवाजा रक्खा जाता है। यद्यपि छत ऐसी विरल छाई हुई होती है कि गन्दी गरम हवा को ऊपर से बाहर निकाल देने के लिए काफी है, तो भी मिट्टी की दीवार में एक ही दरवाजा रोशनी के लिए काफी नहीं है, इसलिए हर कमरे में खिड़कियाँ और गोखे होने चाहिएँ, जिनकी राह से रोशनी आ सके। खिड़कियों में चौखटा या पल्ले लगवाने में खर्च ज्यादा पड़ता है। किसान कहाँ से लावे? इसलिए कोई गोखे इस तरह से बनाये जायँ कि बाहर से छेद का व्यास एक बालिश्त से अधिक न हो पर भीतर से नीचे की ओर

भीत इस तरह पर छील दी जावे कि रोशनी के आने मे भीत से रुकावट न हो। इस तरह के कई गोखे अगर धरती मे तीन-चार हाथ ऊँचाई पर रक्खे जायँ तो उनमे मे कुत्ते, बिल्ली आदि पशु नही जासकेंगे और रोशनी का कोठरी को पूरा लाभ मिलेगा।

आमतौर बस्तियो मे मकान सटा-सटाकर इस ढग पर बनाते है कि मकान प्राय तीन तरफ मे और मकानो से घिरा होता है और एक ही तरफ खुला रहता है। इसमे सुभीता यह समझा जाता है कि तीन तरफ से सेंध नही लग सकती और चोरी नही होसकती। आगे की ओर ज्यादा हिफाजत रक्खी जाती है। कभी किसी समय होनेवाली चोरी के डर से लोग अपने घर की सुन्दरता और लाभकारिता को बिगाड देते है और साफ हवा और रोशनी को रोक देते है। ऐसा भी नहीं है कि इन उपायो से चोरियाँ रुक जाती हो। चोर के काम मे इन रुकावटो मे बहुत बाधा नही पडती। जहाँ धन होता है और चोरी की प्रवृत्तिवाले होते है वहाँ कोई-न-कोई जोड-तोड लगाकर वे अपना काम साध ही लेते है। इसलिए सदा के लिए बस्ती की हवा और रोशनी बन्द नहीं होनी चाहिए। भरसक इस तरह पर घर बने की दरवाजो के सिवाय हर कमरे में काफी गोखे बने हो, जिनसे कि रोशनी और हवा दोनो कमरे के भीतर अच्छी तरह आवे। हर दो मकानो के बीच में कुछ खाली जगह छोडनी चाहिए। वह जगह इतनी हो कि दोनो तरफ की ओलती टपक सके और दोनो तरफ की नालियाँ बह सके और इन नालियो की पूरी सफाई की जा सके। ये नालियाँ बहकर ऐसे एक कुण्ड मे जानी चाहिएँ जिसमें जज्ब करने के लिए पोली मिट्टी भरी हो। समय-समय पर इस मिट्टी को निकालकर खाद की तरह काम मे लासकते है। दरवाजे के सामने किसी नाली के बहने की जरूरत नही रह जाती और भरसक

इन सडको और गलियो मे जिधर मे आदमी गुजरते ह इधर किमी तरह की गदगो न रहेगी। भरमक घर के भीतर सडास या पाखाने होने ही नहीं चाहिएँ। अगर बच्चा के लिए या बीमारा के लिए किसी सडास या पाखाने की जरूरत हो तो इम तरह घर के दूरवाले भाग मे बनाना चाहिए कि खाने-पीने और रहने की जगह एक मिनट के लिए भी खराब न होसके। ज्योही यह पाखाना या सडाम काम मे आचुके त्योही उसपर काफी मिट्टी-डाल दी जाय और सुभीते की जल्दी के साथ उसे खेतवाली नालियो मे पहुचवा दिया जाय। हमने खेत मे नालीवाले और चलती-फिरती टट्टी-वाले पाखाने की पहले चर्चा की है। बीमारा और बच्चा की जरूरत के लिए निकट-से-निकट के खेत म उस तरह की नालियाँ और टट्टियाँ बनाई जासकती है। गाँव की गलियाँ और सडके भरमक चौडी होनी चाहिएँ। इतनी चौडी सडके तो होनी ही चाहिएँ कि दो बैलगाडियाँ सुभीते म निकल जाये और राह चलते आदमी भी उस समय अगल-बगल म आ-जा सके। बरसात के दिनो मे गाडी की लीक म गड्ढे होजायगे और पानी भरकर कीचड होजायगा।

देने चाहिएँ। इन छोटे-छोटे पौधों से और फूल के पेडो से जितनी जगह हो वे भर देनी चाहिएँ। इससे सुन्दरता भी बढेगी और हवा भी साफ होगी। पुराने घडो को गमलो के रूप म खूबसूरती से फोडकर और मिट्टी भरकर गमले वनाये जासकते है और इनमे भांति-भाति के छोटे-छोटे पौधे लगाये जा सकते हैं। ऐसे गमले उचित स्थानो पर रख-कर घरो की, दरवाज़ो की ओर खिडकियो की शोभा बढाई जासकती है।

कुएँ की जगत कुएँ से बाहर की ओर अच्छी तरह ढलवा बनानी चाहिए। जगत के ऊपर बैठकर नहाना या बरतन मांजना, दतुअन-कुल्ला करना मना होना चाहिए। जगत के नीचे नहाने-धोने आदि काम के लिए ऐसा बन्दोबस्त होना चाहिए कि गिरा हुआ पानी बहकर बहुत दूर चला जाय और कुएँ के पास की ज़मीन में जज्ब न होने पावे। गाँव का मन्दिर और मसजिद बहुत साफ जगह पर हो। उसके चारो तरफ फुलवारी, बाग़-बगीचा होना चाहिए। पानी की निकासी अच्छी होनी चाहिए। उसके चारो ओर किसी तरह की गन्दगी न हो। मन्दिर और मसजिद सफाई का नमूना होने चाहिएँ। अगर जगह काफी हो तो गाँव की पाठशाला और मकतब इन्ही जगहो मे रहे, परन्तु ऐसे ढग पर कि गाँव के किसी प्राणी को पाठशाला और मकतब मे आने मे कोई रुकावट न हो। चौपाल की जगह भी फुलवारी से सुन्दर बनी होनी चाहिए। अगर मदरसे या पाठशाला की इमारत अलग हो तो वह बहुत ज्यादा हवादार होनी चाहिए। रोशनी की भी उसमें बहुतायत चाहिए। और बाग तो बच्चो की पढाई के लिए उसके किसी ओर उचित ढग पर लगा हुआ होना ही चाहिए।

जिस गांव में मन्दिर या मसजिद मे पढाई के लिए जगह न हो और गांववाले इतने समर्थ न हो कि पढ़ाई के लिए अलग मकान

बना सके तो भी पढाई के काम मे कोई कठिनाई न पडनी चाहिए। घास के ऊपर मैदान मे और पेडो की घनी छाया के नीचे दस-बीस लड़के सहज मे शिक्षा पा सकते है और अगर कई दर्जे पढते है तो किसी बाग के भीतर गाँव की पाठशाला या मदरसे का काम सहज मे हो सकता है। पढाई की जगहो मे आमतौर पर लडको को और पढाने-वालो को अपनी बनाई चटाइयो पर बैठना चाहिए। जब वर्षा होती हो, अंधड हो, धरती गीली हो, बहुत तेज गरमी पडती हो और बरफ या पाला पड रहा हो, तब अझा या अनध्याय यानी छुट्टी होनी चाहिए।

गाँव जिस जगह हो वह जगह आसपास की जमीन से ऊँची होनी चाहिए, नही तो आये दिन की बाढ मे गाँव बह जायगा। सील अपना घर कर लेगी। गाँव के लोग फसली बुखार के शिकार होगे। उनका स्वास्थ्य बिगड जायगा और आयु घट जायगी।

गाव के आसपास खेतो के शुरू होने के पहले फलदार पेडो के बाग होने चाहिएँ। इससे गाँव सुन्दर लगते है बहुत-सी सील खिच जाती है और हवा शुद्ध रहती है।

दो मकानो के बीच म जो जगह छोडी जाय वह जितनी ही चौडी हो उतना ही अच्छा है। मकान भरसक दूर-दूर बनने चाहिए। जिन गाव मे बस्ती इस तरह अलग-अलग बनी हो, उनमे मरी आदि रोग-वाले रोगो से बहुत बचाव रहता है। जो गाव बहुत घने बसे होते है उनमें जब मरी आदि रोग फैलते है तो रहनेवाले लोगो को भागकर बागो म ठहरना पडता है या गाव के बाहर चला जाना पडता है।

गाँव मे तालावो, पोखरो, पोखरियो की कमी नही है, परन्तु वे अत्यन्त गन्दे रक्खे जाते है। रक्षा-पचायत का यह कर्तव्य होगा कि वह इन सब जलाशयो की पूरी सफाई कराये और सफाई की रक्षा करे। इन

जलाशयो मे कोई आकर आवदस्त न ले, इनके चारो तरफ कही मनुष्य पाखाना-पेशाव न करे। गन्दी नालियाँ सब जगह मे वहकर जलाशयो मे गिरे। खेतो का पानी किसी तरह इन जलाशयो मे न आने पावे। इनमे कोई न तो थूके और न कुल्ला करे।

जिस जलाशय मे इतनी सफाई वरती जाय उसीका जल पीने के योग्य होसकता है। ऐसे साफ तालावो मे नहाया भी जासकता है, परन्तु जिस जल मे नहाया जाय वह पीने के लायक नही रह जाता और जिस गाँव के पास वहती हुई नदी नही है उसमे नहाने का सुभीता तालावो मे ही होसकता है। इसलिए तालाव तो नहाने के लिए इसी तरह साफ रक्खे जाने चाहिएँ।

वरसात में खेतो के सिवाय भी और ज़मीन पर पानी वरसता है और नालियाँ वह निकलती है। यो तो हर गाँव मे वरसाती पानी के वहा लेजाने के लिए नाले होते है जो वहकर किसी ताल मे या नदी मे जा गिरते है। परन्तु ये नाले कभी-कभी काफी गहरे और चौडे नही होते, इसलिए उवल पडते है और गाँव मे वाढ आजाती है। गाँव-वालो का यह काम है कि जव ऐसी वाढ आजाया करती हो तो इन नालो को खोदकर उनकी चौडाई वढादे और गहराई भी जहाँ कही सम्भव हो ढाल को वगैर विगाडे हुए वढा दी जाय।

जहाँ कही गाँव काफी ऊँचाई पर न वसे हो और किसी तरफ से वरसात का वढा हुआ पानी गाँव मे आकर भर जाता हो, वहाँ रक्षा-पचायत को चाहिए कि उस तरफ मिट्टी का वाँध वँधवा दे और ऐसा बन्दोवस्त करे कि उचित वाँधो के द्वारा पानी जमा भी किया जासके और वाढ से गाँव की रक्षा भी होसके।

: २३ :

बाज़ार और उत्सव

उपज की खपत जब उपजानेवालों के बीच गाँव के अंदर पूरे तौर पर नहीं होपाती, तो उबरे हुए माल को वहाँ पहुँचाना पड़ता है जहाँ उसकी माँग होती है। परन्तु यह जानना बहुत मुश्किल है कि किसकी माँग किस चीज के लिए है और वह चीज किसके पास जरूरत से ज्यादा है। इसी कठिनाई का इलाज है हाट-बाज़ार। हफ्ता या अठवारे में दो या तीन बार किसी ऐसी जगह बाज़ार लगता है जहाँ आसपास के गाँववालों को इकट्ठा होने में सुभीता होता है। लोग अपनी उबरी हुए उपज को बाजार में लाते हैं और जिन चीजों की जरूरत होती है उनसे बदल लेते हैं। बाज़ार में जब दस-बीस गाँव के आदमी मिलते हैं तो एक-दूसरे का समाचार भी उन्हें मालूम होता है और वे उधर का हाल भी जान जाते हैं। विविध वस्तुओं के भाव का भी पता लगता है। रोज़गारियों और कारीगरों को यह भी मालूम होता है कि [illegible] लोगों को किस-किस तरह की क्या-क्या चीजें चाहिए। [illegible] के बाज़ार के लिए कारीगरों को आर्डर भी मिल जाते हैं। [illegible] गाँव में कातनेवाले बहुत हैं, सूत बहुत तैयार होता है परन्तु [illegible] भी नहीं है और जो सूत गाँव की ज़रूरत से ज्यादा बचता है वह [illegible] में बिक जाता है परन्तु गाँववालों को कपड़े की भी ज़रूरत है। [illegible] गाँव के जुलाहों के पास काम नहीं है, तो उन्हें आसानी से काम मिल जाता है और कातनेवालों को कपड़ा। इस तरह हाट-बाज़ार से [illegible]

और व्यापार भी चलता है, खबरे भी मिलती है, एक-दूसरे की सहायता भी होती है और जो लोग बाज़ार मे जी बहलाने को जाते है उनका जी भी बहलता है, और वे चाहे तो तजुर्बा भी हासिल कर सकते हैं। बाज़ारो मे हर तरह की कला मे कुशल आदमी आते है और अपनी बनाई हुई चीज़े लाते है। एक-दूसरे का मुकाबला होता है और होड मे एक-दूसरे से बढ जाने का हौसला पैदा होता है। इस तरह बाज़ार ऐसी जगह है जहाँ ज्ञान और कला दोनो मे बढन्ती होती है और देश मे उपज और सम्पत्ति का बराबर-बराबर बँटवारा होजाता है। इसीलिए चाहिए कि अनेक गाँवो की पचायते मिलकर अनुभव की इस पाठशाला को अर्थात् बाज़ार को हर तरह पर बढावे और अधिक-से-अधिक उपयोगी बनावे।

हर बाज़ार एक तरह का मेला है, जहा हर तरह के आदमी इकट्ठे होते है और मिलते है और हर मेले मे बाज़ार लगता है और तरह-तरह का कारबार होता है। मनोरजन और कारबार दोनो मेले मे भी होता है और बाज़ार मे भी। दोनो की व्यवस्था एक ही है, भेद यह है कि मेले मे मनोरजन को प्रधानता होती है और बाज़ार मे कारबार को। बाजार जल्दी-जल्दी और बँधे समय पर लगा करता है और मेला देर-देर में और विविध समयो और स्थानो पर हुआ करता है। बाज-बाज़ मेले ऐसे ज़बरदस्त होते है कि महीनो लगते हैं और उनमें का बाज़ार और भी ज़बरदस्त होता है। उदाहरण के लिए बिहार का हरिहरक्षेत्र का मेला और सयुक्तप्रान्त का बटेश्वर का मेला लेलीजिए। इन मेलो मे हाथी, घोडे, गाय, बैल, भैस आदि पशुओ से लेकर छोटी-से-छोटी कोई ऐसी चीज़ नही है जो न मिलती हो, परन्तु ये मेले इसीलिए है कि तीर्थ के सम्बन्ध मे यहाँ बहुत-से लोग इकट्ठे होते है, उनके दिल-

बहलाव के लिए यहा जो सामग्री इकट्ठी होती है वह शायद व्यापारी सामग्री से कही ज्यादा है। इसीलिए ऐसे भारी बाजारो के होते हुए भी ये मेले ही है। इसके विपरीत कलकत्ते और बम्बई के बाज़ारो मे मनुष्य के काम की शायद ही कोई ऐसी चीज हो जो न मिल सकती हो। दिलबहलाव की सामग्री भी थोडी मात्रा मे नही है। शायद वटेश्वर और हरिहरक्षेत्र मे उतनी दिलबहलाव की चीजे न हो जितनी कि इन बडे-बडे बाज़ारो मे मिलती है। परन्तु ये मेले इसीलिए नही कहलाते कि ये बाज़ार नित्य कारबार के लिए लगते है मनबहलाव यहाँ पर गौण और कारबार मुख्य है। इसलिए चाहे मेला हो या बाज़ार हो, दोनो मे लाभ वही है परन्तु जानेवालो के मन की दशा मे थोडा-सा अन्तर है। मेले मे अधिक जानेवाले कारबार के लिए नही जाते और बाज़ार मे अधिक जानेवाले केवल सैर-तमाशे के लिए नही जाते। बाजार और मेलो-तमाशो मे सब तरह का लाभ है और उनसे सब तरह का लेन-देन है, इसलिए पचायतो को उचित है कि मेलो-तमाशो और बाजारो को सहायता देकर बढावे।

जिस गाव मे बाज़ार लगते है या मेले-तमाशे होते है उस गाव के सभी प्राणी उनसे लाभ उठाते है। दूसरे गावो के सभी लोग भी उनमे शरीक नही होसकते। इसलिए जिन गावो मे बाजार न हो, उनमे मौके-मौके से लोगो के दिलबहलाव के लिए और [illegible] लाभ के लिए भी हाट, मेला, तमाशा, उत्सव करने का [illegible] चाहिए। तीज-त्योहार पर आनन्दोत्सव, खेल-तमाशा और दिलबहलाव के उपाय तो किये ही जाते है। ऐसे अवसर पर सैर-तमाशे के [illegible] गाव मे नया सिलसिला पैदा करना और पुराने रीति-रिवाज को बढाना गाववालो का कर्तव्य है। इन बातो मे नित्य के निर्वाह वाले जीवन से

जो एक तरह की उदासीनता रहती है वह मिट जाती है और गांव का कारबार नये हौसले से चल पडता है।

तीज-त्योहार पर कला और सौन्दर्य बढानेवाले अनेक काम होते है। बाज-बाज त्योहारो पर स्त्रियां भांति-भांति के चित्र भीतो पर, कपडो पर और धरती पर खीचती है। उत्सवो मे, चौक पूरने मे, भांति-भांति के सुन्दर चित्र बनाती है। आधे भारत मे अर्थात् दक्षिण मे यह दस्तूर है कि हर हिंदू के द्वार पर नित्य तडके उठकर घर की स्वामिनी लीपती और चौक पूरती है। किसी हिन्दू का दरवाजा इस चित्रकारी से खाली नही होता। केवल उसी दिन चौक नही पूरा जाता जिस दिन कोई अमगल होगया रहता है। मकर की सक्रान्ति पर बच्चो के लिए नावे बनती है, मूर्तियां बनाई जाती है। इसमें मूर्ति बनाने की कला का अभ्यास होता था और बच्चो को भी थोडी-बहुत कुछ शिक्षा पाने का अवसर मिलता था। चित्रकारी, मूर्तिकारी, नक्काशी आदि कलाओ को उत्सवो में उत्तेजना मिलती थी। इन राष्ट्रीय कलाओ को वही उत्तेजना फिर भी मिलनी चाहिए जो पहले मिलती थी। पजाब के देहात-सुधार अफसर ब्रेन महोदय शिक्षा-विधि की निन्दा करते हुए कहते है कि यहा के शिक्षितो मे पढना खत्म करने के बाद किसी कला, प्रकृति-निरीक्षण या किसी तरह के अध्ययन-अनुशीलन का शौक नही होता। कोई तितलियां पकडता हुआ या डाक के टिकट इकट्ठा करता हुआ नही देखा जाता। तितलियां इकट्ठा करना या टिकटो को जमा करना यद्यपि मै कोई विशेष उपयोगी और शिक्षा-विधायक काम नही समझता, तो भी इसमे मुझे सदेह नही है कि प्रचलित शिक्षा-विधि से हमारी पुरानी शिक्षा-प्रद और उपयोगी कलाओ का नाश होगया है। लोग उत्सवो पर जिन कलाओ मे कुशलता दिखाते थे, उन्हे भूलते जाते है और उनका

प्रचार उठता जाता है। पचायतो को उन्हे फिर प्रचलित करने के लिए भारी कोशिश करनी पडेगी। सौन्दर्य का प्रेम हर काम मे पैदा करने की ज़रूरत है और जबतक प्रजा सौन्दर्य और कला का आदर न करेगी तबतक कलावालो का हौसला बढ नही सकता और हमारी खोई हुई कला फिर नही मिल सकती। शिक्षा-पचायत को इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा।

कला का क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है। खेत के जोतने बोने, पटेलने मे भी कला है। इस कला की कच्चाई से किसान हानि उठाता है। सूत की धुनाई मे, कताई मे, और बुनाई मे भी वह कला है जिससे रुई की क़ीमत बढकर अपनी असली कीमत से सैकडो गुनी ज्यादा होजाती है। गाव का कोई रोजगार ऐसा नही है जिसमे कला या सौन्दर्य और बारीकी न हो। हर रोज़गार मे सफलता और उन्नति कला के ही बढाने मे है। इसलिए शिक्षा और व्यवसाय दोनो पचायतो का यह प्रधान कर्तव्य होगा कि कला की अच्छी शिक्षा दे और बडी ममता से उसकी रक्षा करे।

: २४ :

आधे भारत का सुधार

बिहार प्रान्त को छोडकर हमारे देश मे कहीं भी गावो मे परदे का बहुत ज्यादा रिवाज नही है। परन्तु फिर भी सयुक्तप्रान्त और बगाल मे जितना कुछ रिवाज है वह भी बहुत-से कामो मे बाधक है। बहुत-से किसानो की स्त्रियाँ खेत के कामो में पुरुषो को बडी सहायता देती है। परन्तु कुछ जातियाँ, जो अपनेको बहुत ऊची समझती है, स्त्रियो को परदे में रखती है, इसलिए खेती के कामो मे उनसे उतनी मदद नहीं मिल सकती। परदे का रिवाज और ऊँची जाति होने का खयाल दोनो बाते ऐसी है कि बहुत-से कामो के लिए लाचार होकर ऊँची जाति कह-लानेवालो को मजदूरो से काम लेना पडता है और इसीलिए खेती मे उन्हे बहुत कम बचता है। अगर खेत के काम मे स्त्रियाँ पूरी मदद न दे सकें तो सूत का काम ऐसा जबरदस्त है कि किसी स्त्री को निठल्ली बैठे रहने का कोई मौका नही है। जबतक परदे का रिवाज उठ न जाय तबतक अनेक विधवाओ को लाचार होकर बिलकुल दूसरो के भरोसे खेती का बन्दोबस्त करना पडेगा। ऐसी दशा मे भी किसी विधवा को चरखे के रहते बेरोजगारी की शिकायत नहीं होसकती।

स्त्रियो मे सुधार करने का सबसे उत्तम उपाय यह है कि उन्हे उचित प्रकार की शिक्षा दीजाय। लडकियो को नगरो में और बडे कस्बो मे शिक्षा दीजाती है सही, पर वह शिक्षा कुछ ऐसी होती है कि लडकिया गृहस्थी के काम से घृणा करने लगती है और शौकीन बन जाती हैं।

शिक्षा-पंचायत के प्रकरण में हमने जैसे दोष लड़कों की आजकल की शिक्षा में दिखाये हैं, प्रायः वैसे ही दोष लड़कियों की शिक्षा में भी पाये जाते हैं। इसीलिए शिक्षा-पंचायत को स्त्रियों की उचित शिक्षा के लिए खास बन्दोबस्त करके खास ढंग पर पढ़ाना होगा।

गांवों की लड़कियों की शिक्षा विशेषकर नीचे लिखे विषयों में होनी चाहिए —

(१) घर की सफाई, झाड़ना-बुहारना, बरतन मांजना, [illegible], सफेदी, छोटी-मोटी मरम्मत।

(२) नाजों की सफाई, धान कूटना, दाल दलना, आटा पीसना, छानना, फटकना, मैदा और रवे बनाना।

(३) दही जमाना, दूध और दही से मक्खन निकालना, पनीर बनाना, दूध दुहना, गोपालन।

(४) भाँति-भाँति की खाने की चीज़ बनाना, [illegible] तरह पर तैयार कर सकना।

(५) प्राकृतिक उपचारों का ज्ञान। तात्कालिक चिकित्सा।

(६) कपड़े पछाटना और उजला करना। [illegible]

(७) कपड़े रंगना और छापना।

(८) कपड़े काटना और सीना।

(९) बेल-बूटे काढ़ना और सुई से और [illegible] आदि बुनना।

(१० [illegible]

(१२) कपडे बुनना। (पाई करने का काम सीखने की आवश्यकता स्त्रियो को नही है।)

(१३) स्वास्थ्य-रक्षा और रोगी-सेवा।

(१४) सौड की दाई के काम।

(१५) बच्चो की रक्षा।

(१६) गाना-वजाना। राष्ट्रीय गाने। भजन-विनय।

(१७) मिट्टी की मूर्तियां और खिलौने तथा कपडे की गुडिया आदि बनाना।

(१८) पढना-लिखना और गृहस्थी सम्हालने लायक हिसाब-किताब।

हमने ये अठारह विपय स्त्रियो की शिक्षा के लिए रक्खे है जिनमे पढने-लिखने का स्थान सबसे अन्त में रक्खा गया है। मतलब यह है कि पढना-लिखना स्त्रियो के लिए इतना ज़रूरी नही है जितना कि घर-गृहस्थी का नित्य का काम। यह ज़रूरी बात नही है कि पाठशाला तभी खुले जब इन अठारहो बातो की शिक्षा का पूरा बन्दोबस्त होजाय। इन अठारहो विषयो मे अनेक तो ऐसे है जिनकी शिक्षा हर लडकी को अपने माता-पिता के घर मिलनी चाहिए और मिलती भी है। लडकिया अपने बाप के ही घर घर की सफाई, झाडना-बुहारना, लीपना-पोतना, नाजो की सफाई करना, कूटना, दलना, पीसना, छानना, फटकना, मैदा और रवे बनाना, दही बनाना, मक्खन निकालना, मामूली रसोई का काम, कपडे पछाटना, कपडे रगना, और मामूली गाना-बजाना थोडा-बहुत सीख लेती है। मदरसो या पाठशालाओ मे उन्ही विषयो की शिक्षा देनी पडेगी जिनकी शिक्षा घर नही होसकती या घर की शिक्षा अपूर्ण होती है। ऊपर दी हुई सूची पर विचार करने से पता लगेगा कि आधे

से अधिक कामों को सिखलाने का बन्दोबस्त करना ज़रूरी होगा। आजकल जो शिक्षा दी जारही है उसमें पढ़ना-लिखना, हिसाब आदि मुख्य काम समझा जाता है। यह बिलकुल उल्टी बात है। लड़कियों को रसोई बनाना न आता हो, झाड़ना-बुहारना, बरतन माँजना, सीना-पीतना न आता हो, पढ़ना-लिखना और हिसाब आता हो, तो समझना चाहिए कि उनकी शिक्षा नहीं हुई। आजकल इसी तरह की उल्टी शिक्षा स्त्री-शिक्षा के नाम से मशहूर होरही है।

इन सब विषयों के सिखाने के लिए एक ही शिक्षालय काफी नहीं होसकता। कुछ विषय तो ऐसे हैं कि गाँव की ही स्त्रियाँ उन्हें सिखाने के लिए काफी होंगी, और कुछ विषय ऐसे हैं कि उनकी पढ़ाई के लिए विशेष बन्दोबस्त करना पड़ेगा। बहुत सम्भव है कि किसी बड़े गाँव या कस्बे में इसका बन्दोबस्त करना पड़े। दाई का काम, चित्रकारी, प्राकृतोपचार, तात्कालिक उपचार, रोगी-सेवा आदि विशेषज्ञता के काम हैं। इनके लिए विशेष जानकारी रखनेवाले शिक्षक चाहिएँ। [illegible] सिखानेवाले ही मुश्किल से मिलते हैं। इसलिए ऐसा प्रबन्ध होने में बहुत देर लगेगी। लड़कियों को विधि से शिक्षा देने के लिए गाँव की ही बड़ी-बूढ़ियों से बन्दोबस्त करना होगा। [illegible] और किसीको कुछ। कोशिश की जाय तो गाँव [illegible] काम-चलाऊ शिक्षा नियम से दिलाने का बन्दोबस्त [illegible] है। शिक्षा-पंचायत इसका प्रबन्ध थोड़ा-बहुत [illegible]।

स्त्रियाँ आधी दुनिया हैं। भारतवर्ष की आधी जनता [illegible] हम परवा न करें, उनके सुधार पर ध्यान न दें तो हमारी [illegible] मूर्खता होगी ?

सफाई और बच्चों की रक्षा, ये दोनों विषय इतने [illegible]

है। हमारे देश की माताये इन दोनो वातो मे आज इतनी कच्ची है कि हमारे देश मे सालभर के अन्दर के वच्चो की मौत की गिनती ससार-भर मे सबसे ज्यादा है। न तो सफाई रक्खी जाती है और न वच्चो को ठीक तरह का भोजन मिलता है। इन्ही दोनो भूलो से निरपराध वच्चे माता की गोद से छीन लिये जाते है। लडकियो की शिक्षा तो इस विषय की दी ही जायगी, पर माताओ की शिक्षा भी जरूरी है। जो लोग वच्चो का पालन-पोषण करते है उनके ऊपर यह भारी जिम्मेदारी है। गोपालन वाले प्रकरण मे हम दिखा आये है कि सतान-रक्षा के लिए शुद्ध और पोषक दूध की कितनी भारी जरूरत है। माताये सफाई मे रहे, वालक को सफाई से रक्खे, उसे समय-समय पर उपयुक्त भोजन दे, तो बहुतसी शिकायते जल्दी ही दूर होजायँ। इसलिए माताओ की शिक्षा का भी वन्दोवस्त करना पडेगा। गाँव मे शिक्षा-पचायत कोशिश करके 'महिला-मण्डली' वनावे और महिला-मडली उचित साहित्य का सग्रह करके आपस मे सफाई, स्वास्थ्य-रक्षा वच्चो की रक्षा आदि माताओ के लिए जरूरी विषयो का प्रचार करे। इससे वच्चो की अकाल मृत्यु मे जरूर कमी होजायगी।

अच्छा दूध मिलने का सबसे उत्तम उपाय तो यही है कि हर गृहस्थ के घर पर गाये हो। गोपालन के सब लाभो मे से वच्चो के लिए दूध का मिलना तो एक प्रधान लाभ है। परन्तु हमारे देश की दरिद्रता ऐसी है कि अपनी गाय रखना हर वाल-वच्चेदार किसान के लिए सभव नही है। इसके लिए व्यवसाय-पचायत को चाहिए कि ऐसा नियम करदे कि गाँव की गायो का दूध, चाहे वे किसीके यहाँ की क्यो न हो, गाँव के वच्चो मे वँट जाया करे। जब वच्चो से वचे तब वीमारो को मिले। इन दोनो से वच जाय तब और कोई पावे। जो परिवार दूध के दाम न

दे सके, उसे बिना दाम के ही दूध मिले, अथवा पंचायत दामों के बदले
कोई सेवा दिलाना चाहे तो वैसा बन्दोबस्त करदे। जो हो, बच्चों को
दूध तो हर हालत में मिलना ही चाहिए, फिर चाहे बिना दाम हो, चाहे
कम दाम पर हो और चाहे पंचायत की ओर से किसी सेवा के बदले हो।
जो स्त्रियाँ खेतों में पुरुषों के साथ काम करती हैं उनके लिए तो
कुछ कहना नहीं है। वे तो घर के भीतर स्त्री का और बाहर पुरुष
का काम करके अपनेको सवाया, ड्योढ़ा या दूना मर्द प्रमाणित
करती हैं। परन्तु परदे में रहनेवालियों के पास भी अठारह तरह के
काम मौजूद हैं। उन्हें खेत में काम करनेवाले मर्दों से कम काम नहीं
है। उनके घर के भीतर के काम तो मजूरी के काम हैं। उनसे तो पंचायत
को कोई मतलब नहीं है। परन्तु रोजगारी काम तो पंचायत का आश्रय
लिये बिना चल ही नहीं सकते। चरखे के काम के लिए स्त्रियों का
अपना संगठन होना चाहिए जो स्वतन्त्ररूप से (१) अपना कपास स्वयं
करे, (२) ओटे, (३) धुने, (४) पूनियाँ बनावे (५) कात लें (६)
ठीक नियम से अटेरकर पैक करने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
और एक नाप की बनावे। मंडल का अपना [illegible] [illegible] [illegible]
छाँट-छाँटकर वर्गों में या नम्बरों में बाँटना पड़ेगा [illegible]
उपाय करना होगा। इस प्रकार स्त्रियों [illegible]
बिनवाने का बन्दोबस्त स्त्रियाँ ही करें तो सबसे उत्तम [illegible]।

लिए चरखे की कताई की मजूरी काफी है। पचास वर्ष पहले जब अन्न का यही भाव था, अनेक दरिद्राओ और विधवाओ ने चरखा कातकर अपना और बच्चो का पालन-पोषण किया है और उन्हे शिक्षा दिलाई है। इसलिए दीनबन्धु चरखे का प्रवेश हर घर मे होना चाहिए और हर दरिद्र, हर ऋणी, हर विधवा, हर ब्रह्मचारी, हर गृहस्थ, हर वानप्रस्थ और हर सन्यासी को और हर नर-नारी बच्चे, जवान, बूढे को चरखा कातना चाहिए, जिससे सबके खाने और पहनने के बन्दोबस्त मे सहायता मिले।

जिन स्त्रियो के घर मे पुरुष नही हैं उनकी हर तरह की रक्षा करना गाँव की रक्षा-पचायत का धर्म है। स्त्रिया अबला कही जाती है और जब रक्षक कोई नही है तो गाँव का कर्त्तव्य है कि उनकी रक्षा करे।

स्त्रियाँ सेवा करने मे पुरुषो से बहुत बढी-चढी है। उनमे माता का भाव है। जैसे वे बच्चो का पालन करती है वैसे ही रोगी की शुश्रूषा भी बडी उत्तमता से कर सकती है। इसीलिए जिस रोगी की सेवा के लिए अपने घर की कोई स्त्री न हो उसके लिए रक्षा-पचायत किसी और स्त्री को इस काम के लिए खोजले तो उत्तम बात होगी। इसीलिए स्त्री-शिक्षा मे रोगी-सेवा वाले अग को हम गाँवो के लिए अत्यत उपयोगी समझते है।

शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय और सेवा चारो बातो का ऊपर बताई बातो के सिवा स्त्रियो से प्राय वैसा ही सम्बन्ध है जैसा पुरुषो से। इसलिए यहाँ विशेष विस्तार की आवश्यकता नही प्रतीत होती।

लेना पडे तो इसमे अपने और पराये धर्म का कोई प्रश्न नही आता। आपत्काल मे समाज का सगठन अगर फिर से हो जाय तो इसमे व्यक्ति का धर्म नही बिगडता, क्योकि व्यक्ति समाज के आधीन है।

थोडी देर के लिए मान लीजिए कि किसी जैन मन्दिर मे, जो घनी बस्ती के भीतर है और जिसके अडोस-पडोस मे जैन, हिन्दू, मुसलमान सभी बसे हुए है, बडी भयानक आग लग गई। यह आग फैले तो सारी बस्ती जलके राख होजाय। जैन मन्दिर के भीतर हिन्दू नही जाते। मुसलमानो का जाना भी मना है। मुसलमान के हाथ का पानी जैन-मन्दिर पर पडना कोई जैनी गवारा न करेगा। परन्तु आग लगने पर इन बातो का विवेक नही होसकता। मुसलमान, हिन्दू, जैनी, ईसाई सभी आग बुझाने को दौड पडेगे और बिना किसी तरह का विचार किये आग बुझाने मे लग जायगे। कोई जैन हिन्दू और मुसलमानो की इस सहकारिता पर किसी तरह का उज्र न करेगा। इसी तरह कही बाढ आजाय और बस्ती के लोग डूबने लगे तो मुसलमान-हिन्दू का कोई भेद न किया जायगा और एक-दूसरे को बिना विवेक किये बचाने मे लग जायँगे।

वर्तमान काल आपत्काल है। इस समय भारत को फिर से अपने पाँवो पर खडा करने के लिए और देश की दशा सुधारने के लिए भेद-भाव को भूलकर सब जातियो के लोगो को कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करना चाहिए। इसी भाव को लेकर गाँवो के अन्दर सभी जातियो को और सभी धर्म और मतवालो को भेदभाव छोडकर गाँव के काम मे लग जाना उचित है। अबतक गाँव मे घर-घर कलह है, पडोसी पडोसी से खार खाये बैठा है, कोई किसीका भला नही चाहता, बुराई ने इतनी जड पकड ली है कि अपने भाई को नीचा दिखाने के लिए एक गृहस्थ

अपना कुछ नुकसान उठा लेने में हर्ज नहीं समझता। चाहिए तो यह था कि भाई का उपकार करने के लिए अपने स्वार्थ को नष्ट कर देता, और किसीको कानोंकान खबर भी नहीं होती, परन्तु इसके विपरीत लड़नेवाले एक-दूसरे को बढ़-बढ़कर हानि पहुँचाते हैं। इस दशा को एकदम बदल देना गाँव की पंचायतों का परम-कर्तव्य होगा। जबतक यह दुर्दशा बनी रहेगी तबतक स्वराज्य नहीं होसकता। विदेशियों की भारत के ऊपर राज करनेवाली माया हमारे यहां की आपस की फूट की ही नींव पर टिकी हुई है। जिनको विश्वास न हो वे मुकदमेबाजी के तर्क और उससे होनेवाली गांवों की दुर्दशा पर ठंढे दिल से विचार करें।

जायगा। गांवो मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी खेती करते है, परन्तु हमे यह दुःख के साथ लिखना पडता है कि इस आपत्काल में भी गांवो के वे ब्राह्मण जो ब्राह्मणोचित कोई कर्म नहीं करते और खेती के सिवाय जिनकी और कोई जीविका नही है, जो असल मे वैश्य-धर्म का पालन कर रहे है, मोह और मद मे फंसकर कह बैठते है कि हम ब्राह्मण है और हमको हल की मुठिया छूने मे पाप लगेगा, यद्यपि इन्ही भाइयो को अपने खेतो मे खाद फेकते हुए देखा जाता है। इन भोले भाइयो को यह समझ मे नही आता कि ईमानदारी का कोई काम ऐसा नही है जो ब्राह्मण न कर सकता हो और बेईमानी का कोई भी काम ऐसा नही है जो किसी मनुष्य के करनेलायक हो, चाहे वह शूद्र ही क्यो न हो। हल की मुठिया थामने मे न तो कोई हिंसा है और न सत्य का विरोध है। इससे किसीका ईमान-धर्म नही जाता। लाभ यह होता है कि हट्टे-कट्टे हाथ-पैर वाले परिश्रम मे अपना काम खुद करते है, जिससे खेती अच्छी होती है। कठिनाई से मिलनेवाले मजूरो की बाट जोहने की ज़रूरत नही पडती। यह बात सब लोगो को मालूम है कि मजूरो के भरोसे की जानेवाली खेती मे बरकत नही होती। यह भी सबको मालूम है कि कुर्मी लोग, जो क्षत्रिय है, खेती का सारा काम बेझिझक अपनेआप करते हैं। किसानी के काम मे हमारी समझ मे और सभी जातियो को कुर्मियो से शिक्षा लेनी चाहिए।

अनेक काम और पेशे इस तरह के है जिन्हे फिर नये सिरे से जारी करना है। देश के जिन भागो मे नमक बनानेवाले नोनिये अब नहीं रहे उन भागो में साधारण किसानो को चाहिए कि इस रोज़गार को अपनाले और कुछ किसान जरूर नोनिये बन जायं। नमक बनाना एक पवित्र काम है। इसमे इतनी भारी पवित्रता है कि चन्द्रगुप्त के राज्य मे

वेद पढनेवाले ब्राह्मण और वानप्रस्थ राजा को बिना किसी तरह का कर दिये हुए नमक बनाने और बेचने के अधिकारी थे। यदि यह नीच काम होता तो वानप्रस्थ तपस्वी ब्राह्मणों को इस प्रकार जीविकोपार्जन का हिन्दू-काल मे अधिकार न मिलता।[1]

१ कौटिलीय अर्थशास्त्र में नमक-कर के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसे हम ज्यों-का-त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं। आज-कल जो कर लग रहा है वह लागत का चौबीस सौ गुना है। चाणक्य के समय में अधिक-से-अधिक मूल्य का छठा भाग लगता था। तपस्वी लोग नमक का रोजगार भी कर सकते थे, नमक मुफ्त ले भी सकते थे और राज-कर भी उन्हें नहीं देना पडता था।

"खन्यध्यक्ष शखवज्रमणि मुक्ता प्रवाल क्षार कर्मान्तान कारयेत पणन व्यवहारच।

लवणाध्यक्ष पाकमुक्त लवणभाग प्रक्रय च यथाकाल सगृह्णीयात विक्रयाच्च मूल्य रूप व्याजीम।

आगन्तु लवण षड्भाग दद्यात—दत्त भाग विभागस्य विक्रय पञ्चक शत व्याजीं रूप रूपिक च। क्रेता शुल्क राजपण्यान्छेदानुरूप च वैधरण दद्यात्। अन्यत्र क्रेता षट्छतमत्यय च।

विलवणमुत्तम दण्ड दद्यात, अनिसृष्टोपजीवी च अन्यत्र वानप्रस्थेभ्य। श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयेश्च भक्तलवण हरेयु। अतो अन्यो लवण क्षारवर्ग शुल्क दद्यात

एव मूल्य विभाग च व्याजी परिघमत्ययम।
शुल्क वधरण दण्ड रूप रूपिकमेव च।।
खनिभ्यो द्वादशविध धातु पण्य च सहरेत।
एव सर्वेषु पण्येषु स्थापयेन्मुखसग्रहम्।।
आकरप्रभव कोश कोशाद्दण्ड प्रजायते।
पृथिवी कोश दण्डाभ्या प्राप्यते कोशभूषणा।।

गोपालन और दूध का रोजगार ग्वाले करते आये है। परन्तु इस रोजगार को बहुत बढाने की जरूरत है। यह शुद्ध पवित्र और ऊँचा काम है। इसमे गोरक्षा का धर्म भी शामिल है। कोई किसान दूध बेचने से नीच नही समझा जासकता। हर किसान को चाहिए कि इस रोजगार को अपनाले और अच्छी गऊ पालना, अच्छे वश के सॉड से मिलाना और अच्छे बैल तैयार करना हर किसान का धर्म होजाना चाहिए। किसी समय मे वे यदुवशी क्षत्रिय जो राज्य के अधिकारी नही रह गये थे, इसी पवित्र व्यवसाय मे लग गये। वे भारी-भारी गोपालक होगये है, जिनके पास गोपालन की बदौलत अपार धन हो-गया था। श्रीकृष्णजी के पोषक पिता नन्दजी के धन का वर्णन श्रीमद्-भागवत मे इसी प्रकार का है। उस समय इन ग्वालो के गॉव-के-गॉव थे, जो मथुरा नगरी के पास बने हुए थे और जिनके गोरस की बिक्री मथुरा मे ही होती थी।

धुनने का काम प्राचीन काल मे हर कातनेवाला अपनेआप कर लिया करता था। हमारा ऐसा अनुमान इस बात से पुष्ट होता है कि प्राचीन हिन्दू-साहित्य मे धुनिया जाति या पेशे के किसी मनुष्य की चर्चा नही मिलती। केवल मुसलमानो के राज्यकाल मे धुनिया या बेहना सुनने मे आता है। इससे जान पडता है कि मुसलमान लोग जब हमारे देश में आये तब ये लोग खेती तो नहीं करते थे, पर इनमे दस्तकारी का ज़बरदस्त हौसला था। भारत में कपडे की बुनाई का काम ससार मे ऐसा प्रसिद्ध था कि स्वभाव से ही दस्तकारी की ओर प्रवृत्त मुसलमान लोग इसकी ओर ध्यान दिये बिना नहीं रह सकते थे। इसीलिए शुरू से ही और भारत में बसते ही मुसलमानो ने खद्दर बनाने का काम सीख लिया और करने लगे। ये लोग ज्यादातर शहरो और कस्बो मे रहते

ये इसलिए गाँव से कपास लेकर उसे शहर के आखिरी रूप तक पहुँचाना इन्होंने अपना पेशा कर लिया। यह तो स्पष्ट है कि कातने की कला किसी विशेष जाति या पेशे की चीज़ नहीं हुई। परन्तु जिस तरह से बुनाई का काम तांतियों और कोष्टियों के हाथ में था उसी तरह मुसलमान जुलाहों के हाथ में भी आया, और पूनियाँ बनाकर शहर के कातनेवालों के हाथ बेचने का काम करनेवाला एक नया रोजगार पैदा होगया, जिसे धुनिया कहते हैं। धुनिया कपास को ओटता था, रुई सुखाता था, धुनता था और पूनियाँ बनाता था। बिनौले, रुई और पूनियाँ बेचना उसका रोजगार होगया। वह कातनेवालियों को उधार पूनियाँ देकर सूत कतवाता था और कतवा-कतवाकर इकट्ठा सूत बेचना भी उसका रोजगार होगया था। मुसलमानों के समय में इस रोजगार की तरक्की हुई और अंग्रेजों के राज्य में वह रोजगार न[illegible] गया। म० गांधी की बदौलत इस रोजगार का और तांतियों के रोजगार का फिर से जन्म हुआ है। अगर ये दोनों पेशे जग जायँ तो बड़ी खुशी की बात है। परन्तु इस बात की जरूरत नहीं है कि यह काम इन जातियों की ही बदौलत चले। आज भारतवर्ष में हर किसान का कर्तव्य है कि इन कामों को अपनावे और इनके करने में आलसी [illegible]। धुनियों की पैदाइश के पहले जैसे हर किसान [illegible] धुनता था और सूत कातता था, उसी तरह आज भी [illegible] काम करे।

विस्तार से नही बता सकते कि विदेशी चमडे के व्यवसाय मे हमारे देश के गोवश के नाश का क्या सबध है। परन्तु इस स्थल पर हम इतना कहना तो जरूरी समझते है कि अगर हम गो-रक्षा के सचमुच सहायक है तो हमें चाहिए कि कम-से-कम हम खुद ऐसे चमडे का व्यवहार न करे जो मारे हुए गोवश का हो।

इस बात का निश्चय तभी होसकता है जब अपना चर्मालय हम खुद बनाले, जिसमें अपने मरे हुए मवेशी की खाल को हम स्वय सिझा-कर अपने कामलायक बना लेते हो। यह काम सबसे अच्छा उन गांवो मे होसकता है जहाँ यह पेशा करनेवाले चमार अधिक रहते हो और आसपास के सैकडो गाँवो से मरे हुए पशुओ की लाशो के मिलने का पूरा प्रबन्ध होसके। जिस गाँव मे यह प्रबन्ध होसके उसकी व्यवसाय-पचायत का यह कर्त्तव्य है कि इस व्यवसाय का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले और बडे पैमाने पर हिंसा से मुक्त शुद्ध तैयार चमडे का व्यापार करे। इस व्यापार मे किसी तरह का दोष या पाप नही है, बल्कि पुण्य की बात यह है कि इससे गोरक्षा होगी और गोहत्या घटेगी। इस तरह के चमडे का व्यवसाय किसीको नीच और पतित नही बनाता। किसी प्राणी को मारना या कष्ट पहुँचाना या कष्ट पहुँचाने में सहायक होना अवश्य पाप है, जिसमें कि मारे हुए पशुओ के चमडे का व्यवहार करने-वाले और चर्बी की मांडी के कपडे पहननेवाले फँसते है।

जिन कामो या पेशो मे हत्या या हिंसा न हो, किसी तरह की बेईमानी न हो, झूठ और ठगाई की चालो के बिना ही काम पूरा हो सके, और उस काम से मनुष्यो को लाभ पहुँचे, तो उसको करने म किसी तरह की बेइज्जती या नीचता नही होसकती। ऐसे अच्छे और सच्चे काम भी हमारे हाथो से इसलिए छिन गये है कि हम पराये बस

में होगये। कपड़े की बुनाई का काम इसी तरह का एक पवित्र और सच्चा काम है, जिसमें कोई हत्या नहीं और किसीको कष्ट पहुंचाने की कोई ज़रूरत नहीं। यह काम भी हमारे देश में बहुत घट गया और न जाने क्यों सर्वसाधारण में यह भ्रम फैल गया कि यह काम नीचा है। इस भ्रम का फल यह हुआ कि हिन्दुस्तान में कोरी और गुजरात में ढेड़ लोग अछूत जाति के समझे जाने लगे। मुसल्मानों में भी जुलाहों को लोग आदर की दृष्टि से नहीं देखते। इसका कारण चाहे जो कुछ हो यह कौन कह सकता है कि जिन कपड़ों की बदौलत हम अपने तन ढकते हैं और सर्दी-गर्मी लू आदि से अपनेको बचाते हैं और अपने रूप को सुन्दर बनाते हैं उन्हीं कपड़ों का तैयार करनेवाला इसी काम के कारण नीच और न छूने के योग्य होजाता है? यह हमारा भारी भ्रम है। कम-से-कम इस आपत्काल में ऐसे भ्रम को छोड़कर कपड़ा बुननेवालों का हमें आदर करना चाहिए क्योंकि वे स्वराज्य की रक्षा करनेवाले हमारे सिपाही हैं।

नही होसकता, इस वात पर भी विचार करना चाहिए। यह तो हम लोग जानते ही है कि मिल के कपडे पर चर्बी की मांडी हुई रहती है। इसी मांडी लगे कपडे को हम मुद्दत से पहनते आरहे है, इसी गन्दगी को अपने शरीर पर लपेटे हुए हम भोजन करते रहे है और पूजा तक करते रहे है। इतना ही नही, वल्कि इन्ही गन्दे कपडो से हमने देवताओ की मूर्तियो के भाँति-भाँति के श्रृगार किये है, उन्हे पवित्र मानकर ब्राह्मणो को दान दिया है, और मृत्यु के वाद कफन भी इन्ही गन्दे कपडो का लपेटा गया है। जिन लोगो ने विलायती टोप और टोपी पहने है उन्होने चमडे को सिर-माथे पर चढाया है, और विदेशी शकर खानेवालो ने और चर्बी मिला घी खानेवालो ने तो इन गन्दी चीजो को अपने पेट मे भी पहुचाया है। अव शास्त्रो के नियमो का पालन कहा रह गया ? इन वातो मे तो गन्दगी प्रत्यक्ष है, और इन गन्दगियो को जानकर भी और त्यागने की पूरी इच्छा रखते हुए भी हमको ग्रहण करना पडता है। परिस्थिति ऐसी है कि हम वच नही सकते। यह तो हुई वे गन्दगियाँ जिन्हे शास्त्र वतावे या न वतावे पर हर हिन्दू विना वताये ही जानता है। हिन्दू की वुद्धि इन्हे गन्दा कहने मे कोई मतभेद नही रखती। जिन आदमियो ने गन्दा काम करने के वाद भी सफाई करली है, उन्हे छूने से घृणा करना यद्यपि कोई वुद्धिमानी का काम नही है, तो भी हम अगर मानले कि शास्त्र की आज्ञा पालने के लिए इस मूर्खता को स्वीकार कर लेने मे कोई हर्ज नही है तो हमे अपने आचरण मे सगति तो अवश्य होनी चाहिए। मुसलमान और ईसाई छूत-अछूत का कोई विचार नही रखते और उन मुसलमानो और ईसाइयो से भी हम कोई छूत-अछूत का विचार नही रखते, इसलिए हमारा आचरण सुसगत नही है। मेले-तमाशो मे, वरातो मे और सार्वजनिक सवारियो

म हम लोग छूत और अछूत का कोई विचार नहीं रखते, फिर भी
हमारा धर्म भ्रष्ट नहीं होता। हम अपने आचरण म न सगति पर ध्यान
देते है और न शास्त्र के अनुकूल आचरण रखते है। हम ऐसे सकटकाल
है कि हम शास्त्रो का पालन करना चाहे तो भी नहीं कर सकते और
नहीं करते। इसलिए हम इस आपत्काल म बुद्धि और विवेक से काम
लेना चाहिए और छूत-अछूत का कोई भेद, जिससे हमारे यहाँ झगड़े
और कलह बढ़ते है, न रखना चाहिए।

गाँवो मे आये दिन एक-न-एक विपदा की चढ़ाई होती ही रहती है।
बाढ़ आजाती है और गाँव-के-गाँव बह जाते है उस समय छूत-अछूत
तो क्या, पशु और मनुष्य का भी विवेक नहीं रह जाता। ऐसे समय म
बाँध बाँधने के लिए छूत-अछूत, हिन्दू-मुसलमान, बच्चे-बूढ़े-जवान नर-
नारी, सबको भेद-भाव, लाज-परदा और परहेज छोड़कर बाढ़ रोकने म
जुट जाना चाहिए और बुद्धिमानी स जितनी जल्दी सहायता पहुँच
सके पहुँचानी चाहिए। आती हुई बाढ़ को रोकने के लिए बाँध के जोर
तो पहले से ही हुए रहने चाहिएँ। परन्तु [illegible]
ज़रूरत होती है। ऐसी दशा मे सारे गाँव को [illegible]
और कोई आगा-पीछा न करे।

सफाई के नियम तो यह बताते है कि ब्राह्मण का भी बर्तन हो मगर गन्दा है तो कुए मे डालने न देना चाहिए और चाण्डाल का भी बर्तन हो मगर साफ हो तो कुएँ मे पानी निकालने देना चाहिए। ये बुद्धि के नियम है। इन नियमो से काम लिया जाय तो सफाई की रक्षा हो सकती है, और किसी मनुष्य का अपमान नही होसकता। गाँव मे ऐसा भेदभाव रखने से जल के दूषित होजाने पर ऐसा भी होसकता है कि बेचारे अछूत को कही भी जल न मिल सके और ऐसा भी अवसर आसकता है कि अछूतो वाले कुएँ के सिवाय और कोई कुआ साफ न रह गया हो। हम इस बात को मानते है कि अछूत कहे जानेवाले लोग सफाई से नही रहते। इसमे भी दोष उन लोगो का है जो उन्हे सदा से घृणा की दृष्टि से देखते आये और उनमे सुधारने का हौसला पैदा न होने दिया। गाँववालो को चाहिए और सेवा-पचायत का यह विशेष कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे इन अछूत कहलानेवालो के जीवन को मन लगाकर सुधारे और उन्हे ऐसा करदे कि गाँव की पचायतो मे उनका बराबर आदर और सम्मान रहे।

अकाल के दिनो मे गाँव के समीप रहनेवालो पर भूखो मरने का सकट आपडता है। ऐसे समय मे रक्षा-पचायत सहायता देने का जो काम जारी करे उसमें भी छूत-अछूत का कोई भेद नही होना चाहिए। भूख का कष्ट सब मनुष्यो को बराबर होता है। मजूरी करने मे अक्सर अछूत जाति वाले ज्यादा मेहनत करते है, इसलिए कोई कारण नही है कि सहायता का काम उन्हे कम दिया जाय और दूसरो को ज्यादा।

टिड्डी-दल की चढाई करने पर या आग लगने पर जो दौड-धूप या उपाय किये जाते है उनमे भी छूत और अछूत का विवेक नही किया जा सकता। ये सकट के दिन है, और हमे सकट के दिनो मे भाइयो से

मिटकर विपदा को टालने के उपाय करने चाहिए। भेद-भाव और फूट के होते हमारी कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। [illegible] को दूर करने से हम अपनी कठिनाइयाँ घटानी चाहिएँ। हमको बाहर के दुश्मनों से जब लड़ना है तब उसीके साथ अगर भीतरी दुश्मनों से भी लड़ना हो तो हमारे लिए कुशल नहीं है। विदेशी शत्रु, बाढ़ आग मरी दुर्भिक्ष टिड्डी अवर्षण आदि बाहरी दुश्मन हैं। हम अगर हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव, तथा छूत-अछूत का भेद, आपस की मुकदमेबाजी बेकारी आदि भीतरी दुश्मन पाले रहेंगे तो भीतरी और बाहरी दुश्मनों के दोनों पाटों के बीच में पड़कर पिस जायँगे। हमें भीतरी दुश्मनों को पहले अपने काबू में कर लेना चाहिए फिर बाहरी की ताकत आधी ही रह जायगी।

: २६ :

धर्म

कहा जाता है कि "हमारे देश मे अनेक धर्मों और मम्प्रदायो के लोग रहते है, जिनके आचार-विचार अलग-अलग है। इसीलिए भारत मे फूट है।" यह कहना सर्वथा ठीक नही है। भारत में जितने भारतीय मत-मतान्तर फैले हुए है, उनके दार्शनिक विचारो मे भेद है। उनके आचार में सिद्धान्तरूप से कोई अन्तर नही है। जो अन्तर बहुत बडा देख पडता है वह रूप मे है और विस्तार मे है। सम्प्रदायो ने अपना-अपना रूप और विशेष क्रियाओ का विस्तार अलग-अलग रक्खा है, परन्तु आचरण का सिद्धान्त एक ही है। चाहे कोई तिलक लगावे या न लगावे, चाहे एक रूप का तिलक लगावे चाहे दूसरे रूप का, पर अहिंसा, सत्य, सफाई, तपस्या, दान, क्षमा, यज्ञ, ध्यान, व्रत आदि मे किसीका मतभेद नही है, क्रियाओ की विधि मे और विस्तार में चाहे कितना ही अन्तर हो। इस तरह हिन्दू सम्प्रदायो में आपस का मत-भेद सिद्धान्त मे नही है। यो तो ससार मे कोई दो मनुष्य भी ऐसे मुश्किल से मिलेगे जो विषयो के विस्तार मे और उनके आचरण और व्यवहार मे सर्वथा समान हो। इस तरह के भेद से राष्ट्रीय समानता और एकरूपता मे अन्तर नही पडता। हिन्दू चाहे किसी सम्प्रदाय के क्यो न हो, कोई ऐसा नहीं है जो श्रीमद्भगवतगीता को न मानता हो या कम-से-कम गीता मे बताये हुए ज्ञान-विज्ञान का कायल न हो। भारतवर्ष के सभी सम्प्रदाय एक भारत की ही सस्कृति को माननेवाले है। चाहे वे कितना ही मतभेद रखने

हाँ फिर भी उनकी संस्कृति की बुनियाद वेद, शास्त्र, पुराण, रामायण और महाभारत ही है, इंजील आदि कोई बाहरी ग्रन्थ नहीं।

भारत के बाहर की संस्कृतिवालों में हमारे देश में रहनेवाले पारसी मुसलमान और ईसाई हैं। यद्यपि ईसाइयों और मुसलमानों की संस्कृति की बुनियाद प्रायः एक ही तरह के पुराण हैं परन्तु यूरोपीय और एशियाई होने के कारण दोनों सम्प्रदायों के विश्वास विस्तार, आचार-विचार और नीति में बड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है। पारसी सम्प्रदाय की संस्कृति एकदम इन सबसे भिन्न है।

हिन्दू

हमारा विश्वास है कि हिन्दू लोग साधारणतया इस जिम्मेदारी को निबाहते है।

जहाँ-जहाँ मुसलमानो की आबादी देखी जाती है वहाँ वे प्राय इकट्ठे ही रहते हैं। इस तरह अक्सर गाव मे जहाँ मुसलमान रहते है वहाँ हिन्दू बहुत कम रहते है। हिन्दुओ के गाँवो मे कहाँ-कहाँ दो-चार घर मुसलमानो के भी पाये जाते है। ऐसे गांवो मे भी हिन्दू और मुसलमानो का झगडा बहुत कम सुनने मे आता है। गाँवो के भीतर न तो कभी कुर्बानी का सवाल उठता है और न कभी बाजो मे नमाज कज़ा होती है। ये झगडे तो तभी उठते है जब हिन्दुओ मे या मुसल्मानो मे बाहर से कोई फसादी आकर मिल जाता है और आपस में द्वेष की आग सुलगा देता है। हिन्दू-मुसलमानो के झगडे एक तीसरे दल के द्वारा फैलाये जाते है। क्योकि उस दलवालो को दोनो जातियो मे मेल देखकर सिर मे पीडा होने लगती है। इस दल मे हमारे देश के द्रोही लोग भी हैं, और विदेशी सरकार के राज्य की तो बुनियाद ही हिन्दू-मुसलमानो का झगडा है। गाँवो की पचायतो को हमेशा इस बारे मे सजग रहना चाहिए कि इस तरह की कोई लडाई न होने पावे और लडाई करानेवाले गाँव मे ठहरने न पाये। रक्षा-पचायत को इस मामले मे बहुत सतर्क रहना चाहिए। अगर गाँव के अन्दर ही रहनेवाले कोई सज्जन इस न सहनेवाले स्वभाव के हो तो कोशिश यह करनी चाहिए कि उनके समान स्वभाववाले बढने न पाये। झगडालू सम्प्रदाय जब एक दफा खडा होजायगा तो गाँववालो की खैर नही है। हमेशा खसचख मची रहेगी।

रक्षा-पचायत के अन्तर्गत दो-चार समझदार आदमियो की एक शान्ति-मण्डली होनी चाहिए, जो बराबर गाँववालो को सहनशील और

होगई थी कि वह स्वय रामचन्द्रजी की स्त्री सीताजी को हर लेगया और इस तरह उसने अपनी मौत को न्यौता दिया। सीखने और समझने की बाते इस तरह चुनकर हमे गाठ बांधनी चाहिए और झगडे और मतभेद की बाते पण्डितो के लिए छोड देना चाहिए। किसानो का इसी राह मे कल्याण है।

ससार मे ऐसे खुदाई फौजदार बहुत है जिनको इस बात की बडी चिन्ता रहा करती है कि और लोग अज्ञान मे क्यो पडे है? वे आप अपने अज्ञान को दूर करने के लिए कोई चेष्टा नही करते, क्योकि उन्हे यह मिथ्या विश्वास मजबूती मे जम गया है कि हम पूरे ज्ञानवान है, हम कुछ सीखना नही है। ऐसे लोग इस बात की चिन्ता मे मारे-मारे फिरते है और दूसरो को ज्ञान देने की चेष्टा मे बहुत-कुछ त्याग करते है। ऐसे खुदाई फौजदारो से समझदार लोगो को बचे रहना चाहिए।

जो जानते हैं, वे यह भी अच्छी तरह जानते है कि परमात्मा और प्रकृति का रहस्य समझना अत्यत कठिन है, इसलिए ऐसे लोग बुद्धि-भेद नही पैदा करते, दूसरो को ज्ञान देने के लिए उतावले नही होते, परन्तु जो ज्ञान प्राप्त करना चाहता है और वह उनके बस की बात होती है तो उसे बताने मे भी आना-कानी नही करते।

किसी धर्म-मत या सम्प्रदाय की शिक्षा यह नही है कि लोग आपस में लडे। सभी अहिसा, सत्य, प्रेम, एकता, ईमानदारी, और भलाई की शिक्षा देते हैं। इन बातो मे सभी एकमत है। जो बाते सबको प्रेम के एक सूत्र मे बांधनेवाली है उन्ही बातो को लेकर सारे गांव को एक होना और मिलना चाहिए। जिन बातो से आपस के झगडे पैदा हो या होने की सम्भावना हो, उनकी चर्चा नही करनी चाहिए। ये अपने दृढविश्वास की बाते है तो अपने हृदय मे उनकी रक्षा जरूर की जाय। परन्तु उनके

होगई थी कि वह स्वय रामचन्द्रजी की स्त्री सीताजी को हर लेगया और इस तरह उसने अपनी मौत को न्योता दिया। सीखने और समझने की बाते इस तरह चुनकर हमे गांठ बांधनी चाहिए और झगडे और मतभेद की बाते पण्डितो के लिए छोड देना चाहिए। किसानो का इसी राह में कल्याण है।

ससार मे ऐसे खुदाई फौजदार बहुत है जिनको इस बात की बडी चिन्ता रहा करती है कि और लोग अज्ञान मे क्यो पडे है? वे आप अपने अज्ञान को दूर करने के लिए कोई चेष्टा नही करते, क्योकि उन्हे यह मिथ्या विश्वास मजबूती मे जम गया है कि हम पूरे ज्ञानवान है, हम कुछ सीखना नही है। ऐसे लोग इस बात की चिन्ता मे मारे-मारे फिरते है और दूसरो को ज्ञान देने की चेष्टा मे बहुत-कुछ त्याग करते है। ऐसे खुदाई फौजदारो से समझदार लोगो को बचे रहना चाहिए।

जो जानते हैं, वे यह भी अच्छी तरह जानते है कि परमात्मा और प्रकृति का रहस्य समझना अत्यत कठिन है, इसलिए ऐसे लोग बुद्धि-भेद नही पैदा करते, दूसरो को ज्ञान देने के लिए उतावले नही होते, परन्तु जो ज्ञान प्राप्त करना चाहता है और वह उनके बस की बात होती है तो उसे बताने मे भी आना-कानी नही करते।

किसी धर्म-मत या सम्प्रदाय की शिक्षा यह नही है कि लोग आपस मे लडें। सभी अहिसा, सत्य, प्रेम, एकता, ईमानदारी, और भलाई की शिक्षा देते हैं। इन बातो मे सभी एकमत है। जो बाते सबको प्रेम के एक सूत्र में बांधनेवाली हैं उन्ही बातो को लेकर सारे गांव को एक होना और मिलना चाहिए। जिन बातो से आपस के झगडे पैदा हो या होने की सम्भावना हो, उनकी चर्चा नही करनी चाहिए। ये अपने दृढविश्वास की बाते है तो अपने हृदय में उनकी रक्षा जरूर की जाय। परन्तु उनके

प्रचार की तो जरूरत नही है, इसलिए उनकी चर्चा करना और उनपर बात बढाना मूर्खता है। अगर किसी बात मे सन्देह हो और वह झगडे की बात हो तो सन्देह-निवारण की कोशिश मे उतावली न करनी चाहिए। धैर्य के साथ प्रतीक्षा करने पर कभी-न-कभी कोई-न-कोई विद्वान ऐसा जरूर मिल जायगा जिसके सामने नम्रतापूर्वक उस सन्देह के सम्बन्ध मे जिज्ञासा की जा सकती है और सन्देह-निवारण होसकता है। उतावली करने से सन्देह भी दूर न होगा और आपस के वाद-विवाद मे कुरुचि पैदा होजायगी।

गाँव का मन्दिर गाँव के सभी हिन्दू रहनेवालो की चीज समझी जानी चाहिए। माता-पिता के सामने सभी बालक बराबर है। परमात्मा के सामने सभी मनुष्य एकसे है। इसलिए मन्दिरो मे नहा-धोकर और बिलकुल शुद्ध-पवित्र होकर एक चमार भी आवे तो उसे दर्शन-पूजा का अधिकार है। गन्दगी के साथ मन्दिर मे प्रवेश करने का अधिकार किसी ब्राह्मण को भी न होना चाहिए। परमात्मा के सामने छूत और अछूत का विवेक भारी पाप है, बडी ढिठाई है और बडे अभिमान की बात है। जहा कही कथा-पुराण, भगवान का भजन या प्रार्थना होती हो, वहाँ तो हिन्दू-मुसलमान, छूत और अछूत सबको प्रवेश करने का अधिकार है। धर्म के मामले में उदार होना ही बुद्धिमानी है। इससे परमात्मा प्रसन्न होता है, गाँवभर का कल्याण होता है और प्रजा की सुख-समृद्धि बढती है। पचायत को चाहिए कि धर्म के सम्बन्ध मे प्रेम-भाव बढाने की कोशिश करे और ऐसे-ऐसे उपाय करे कि बिना भेदभाव के सारा गांव भजन और प्रार्थना मे एक होकर मिले।

: २७ :

ग्राम-स्वराज्य

हमने यहाँतक गाँव के बन्दोबस्तो के सम्बन्ध में जितनी बाते लिखी है, उन सबका एक ही सिद्धान्त पर विचार हुआ है कि गाववाले सारा बन्दोवस्त अपनेआप करले, बाहर की किसी ताकत को किसी तरह के हस्तक्षेप का अधिकार न हो। मनुष्य के जीवन मे और उसके समाज के रहन-सहन मे जितनी जरूरते पडती है उनपर हमने विचार कर लिया है। शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय और सेवा इन्ही चार विभागो मे उन सबका समावेश होजाता है। हमने केवल एक बात का विचार अभीतक नही किया है, और वह है आय। इस अध्याय मे हम ग्राम-शासन का मोटा-सा रूप खडा करके पाठको को दिखावेगे। इसी प्रसग मे आमदनी की भी चर्चा करेगे।

हरेक शासन की मुख्य आवश्यकता इसीलिए होती है कि प्रजा के जन-धन की रक्षा और उन्नति होती रहे। जो शासन इन दोनो बातो मे असफल हुआ, नैतिक रीति से उसने अपनेको नष्ट कर दिया। प्रजा के जन-धन की रक्षा और उन्नति के लिए गाँव की पचायतो के मुख्यत चार विभाग किये गये है। शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, और सेवा। इन चारो विभागो के अपने-अपने कर्तव्य अलग-अलग है। तो भी गाँव की सेवा मे एक विभाग की सहकारिता दूसरे-विभाग से न हो तो काम नही चल सकता, इसलिए स्वतत्र काम करते हुए भी इन विभागो के काम परस्पर सहायक है। ऐसा होते हुए भी ऐसी किसी सस्था की आवश्यकता पडती

है जो चारो पर निरीक्षण का अधिकार रक्खे, चारो को मिलाकर उनके कामो मे ऐसी सुसगति स्थापित करे कि उनके आपस के काम मे किसी तरह का झगडा न पडे। हमने पचायतो के सगठन की चर्चा करते हुए अर्थ-समिति की स्थापना का भी वर्णन इस खण्ड के आरम्भ के अध्याय मे किया है। वह अर्थ-समिति शासन या स्वराज्य-समिति का काम भी कर सकती है।

स्वराज्य-समिति मे कुल पाच ही सदस्य हो, जिनमे से चार सदस्य चारो पचायतो के मुखिया हो और पाँचवाँ सदस्य किसान-सभा का सभापति हो। यह स्वराज्य-समिति किसान-सभा की कार्य-कारिणी-समिति होगी। पचायतो के कामो को पूरा करने के लिए धन जुटाना इसीका कर्त्तव्य होगा।

राजनीति का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रजा के धन-जन की रक्षा राजा करे और उसके बदले प्रजा की ओर से राजा को कर मिले। यही कर वह धन है जिसको लगाकर राजा रक्षा करने मे समर्थ होता है। यह अनाज की पैदावार का दसवाँ भाग सभ्यता के आरम्भ मे नियत किया गया था। कुछ काल बीतने पर यही कर बढकर छठा भाग हो-गया था। परन्तु यह उपज का भाग था, अर्थात् राजा को पैदा होने-वाला अनाज मिलता था, रुपये नही। जब पैदावार कम होती थी तब यह कर भी कम होता था और उपज बढने पर यह अश बढ जाता था। अपने निजी खर्च के लिए राजा की अपनी जागीर होती थी। जो कुछ कर वसूल होता था वह बिक्री के बाद खजाने में जमा हुआ करता था और उससे राज-शासन का काम चलता था। राजा अपने खर्च के लिए उस कोष मे से कुछ नही लेता था। जहाँ-जहाँ पचायती राज्य होते थे, वहाँ यह कर पचायते लेती थीं और राजा का काम भी पचायते करती थीं।

स्वराज्य होजाने पर जिन प्रान्तो मे रैयतवारी बन्दोबस्त है उनमें तो सहज मे ही पचायती राज गांव-गांव मे होसकता है, परन्तु जहां जमींदारी का दस्तूर चला आरहा है वहां जमींदारो की वही स्थिति हो सकती है जो पहले राजा की हुआ करती थी। अर्थात् जमींदार अपने निजी खर्च के लिए तो अपना सीर रख लेगा, परन्तु उसकी जमींदारी की सारी आमदनी प्रजा की समझी जायगी। वह गांव का मुखिया या राजा नियुक्त किया जा सकता है। यह सब उस उस दशा मे, जबकि जमींदार और किसान मे आपस के समझौते मे इस तरह की शर्ते तय होजायें। शायद प्रजा स्वय राजी होकर जमींदार की आमदनी सीर के सिवा कुछ ज्यादा बढाना भी मजूर करले। ऐसा भी होसकता है कि प्रजा और जमींदार के बीच मे कोई समझौता न होसके और जमींदारी तोड दी जाय। बगाल और बिहार मे बहुत बडे-बडे जमींदार है, वे केवल सीर पर राजी होजायें, यह कैसे सम्भव है ? इसलिए ऐसा अनुमान किया जासकता है कि जब ग्राम-स्वराज्य की स्थापना होगी तब प्रजा की रजामन्दी से ऐसे जमींदार मर्यादित अधिकारवाले उसी तरह के राजा हो सकेगे जैसे कि इग्लिस्तान के राजा है। अन्तर इतना होगा कि ये जमींदार राजा भारत की स्वराज्य-सरकार को कर देनेवाले राजा होगे। ग्राम-स्वराज्य मे जमींदारी-प्रथा के रह जाने की सम्भावना बहुत कम दिखाई पडती है। अगर केन्द्रीय स्वराज्य-सरकार ने थोडे समय के लिए भी इस प्रथा को अछूती छोड दिया तो उसका फल यह होगा कि जमींदार किसानो को पीसते रहेगे और किसानो के घर हाय-तोबा मचती ही रहेगी। स्वराज्य की सच्ची लडाई तब भी खतम न हुई रहेगी और एक बार फिर भीतरी सग्राम हुए बिना न रहेगा।

स्थिति जैसी कुछ हो, यह तो भविष्य जाने। हम तो यहा यह बता

देना चाहते है कि चाहे गाँव की रक्षा और उन्नति का वन्दोवस्त कोई एक आदमी करे और चाहे पचायत करे, परन्तु किसानो को अपने खेत की उपज से स्वराज्य-शासन को दशमाश से अधिक देने की आवश्यकता न पडेगी। इमी दशमाश मे से गाँवभर की रक्षा और उन्नति का खर्च निकालकर एक अश ज़िले की सरकार को, एक प्रान्तीय सरकार को और एक अखिल-भारतीय स्वराज्य-सरकार को देना पडेगा। गाँव की सरकार के लिए यदि किसी समय यह आमदनी कम ठहरेगी तो पचायत को अधिकार होगा कि वह चदा करके इस कमी को पूरा करे। कभी-कभी किसी सकट के आ पडने पर भी इसी प्रकार पचायते चन्दा करके काम निकाल सकेगी, परन्तु मेरा अनुमान है कि उपज का दशमाँश अपने देशी कार्यकर्त्ताओ के होते इतना काफी होगा कि पचायतो का खर्च चला चुकने के वाद गाँव के कोष मे ज़रूरी कामो के लिए कुछ धन वरावर जमा भी होता रहे। इस तरह सचित धन को दुर्भिक्ष, महामारी, वाढ और सूखे के समय मे किसानो की सहायता के लिए काम मे ला सकते है और गाँव के लिए जरूरत होने पर मदरसा, चौपाल, अस्पताल, धर्मशाला, तालाव आदि वनवा सकते है और सडके और नहरे निकालने के काम मे ज़िले को और प्रान्त को मदद दे सकते है।

आमदनी की और भी सूरते होसकती हैं। जिस गाँव की हद के भीतर पेठ, हाट या वाज़ार लगता हो उस गाँव की व्यवसाय-पचायत को अधिकार होगा कि वाज़ार के भीतर आनेवाले माल पर उचित चुंगी लगावे और जो लोग वाज़ार में दुकाने लगाते है उनसे तह वाज़ारी वसूल करे। स्वास्थ्य-पचायत, शिक्षा-पचायत, व्यवसाय-पचायत और सेवा-पचायत को भी दण्ड की आमदनियाँ होसकती है। जो माता-पिता नियमानुसार अपने वालको को पाठशाला न भेज सके उनपर दण्ड लग

सकता है। वह व्यवसायी या शिल्पी जो पचायत के नियमो को न माने, ज़रूर ही दण्डित होगा। जो गांववाले सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा के नियमो का पालन न करेगे, उनपर ज़रूर दण्ड लगाया जायगा। इस तरह वसूल की हुई जुर्माने की रकम उन-उन पचायतो की आमदनी हुई जिन पचायतो ने वे जुर्माने किये है। दण्ड की रकम तो अर्थ-समिति लेलेगी, परन्तु नियम यह होना चाहिए कि जिस विभाग की रकम हो उसी विभाग मे खर्च की जाय। नाज की उपज, चुंगी, तह बाज़ारी और दण्ड के सिवाय अर्थ-समिति का यह भी अधिकार होगा कि व्यवसाय-पचायत की सलाह से खेती के सिवाय और ऐसे व्यवसायो पर भी कर लगावे जिनमे व्यवसायी को अच्छी आमदनी हो।

कर के लगाने मे इस सिद्धात के ऊपर ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होगा कि उन लोगो पर ही कर लगाया जाय जिनको अपने व्यवसाय से अपने खाने, कपडे और रहन-सहन के ऊपर कुछ फालतू आमदनी होती हो और वे उस फालतू आमदनी मे से एक अश ही कर के रूप मे देते हो। यह सिद्धान्त भी व्यवहार मे लाया जाय कि ज्यो-ज्यो फालतू आमदनी मे बढती हो त्यो-त्यो कर की दर मे भी बढती होती जाय। नतीजा यह होगा कि जिसकी जितनी ही ज्यादा आमदनी हो उसे उतना ही अधिक कर देना पडेगा और यह उचित भी है, क्योकि जिसके पास जितना अधिक धन है उतनी ही अधिक रक्षा की जरूरत है और उतना ही अधिक उसे रक्षा का मूल्य देना चाहिए। कर नियत करने का यही सिद्धान्त सबसे समीचीन समझा जाता है।

: २८ :

ग्राम-संगठन आरम्भ करनेवालो की तैयारी

गाँवो को ऐसे रूप मे सगठित करने के लिए कि वे अपनी पहली स्थिति को पहुँच जायँ, भरसक उचित उपाय हमने इन पृष्ठो मे बताने की चेष्टा की है। इन उपायो को गाँव के रहनेवाले हमारे भाई बरतेंगे तो उनका कल्याण अवश्य होगा। आरम्भ मे कॉंग्रेस को अपनी ओर मे ऐसा बन्दोबस्त करना होगा कि गाँवो मे सगठन का काम शुरू होजाय। जो स्वयमेवक इस महत्त्व के कार्य के लिए भेजे जायँ उनकी पात्रता पर पूरा विचार कर लेना होगा। यह बात जाँच लेनी होगी कि क्या स्वय-सेवक गाँव के लोगो के साथ मन, वचन और कर्म से पूरी सहानुभूति रखता है? क्या वह गाँववाले की तरह आधे पेट मोटा अन्न खाकर गुजर करने को तैयार है? क्या वह अपना तैयार किया हुआ खद्दर ही पहनने को या कम-से-कम अपने काते सूत के ही और वह भी बहुत थोडे खद्दर मे गुजर करने को तैयार है? क्या वह बिलकुल सादा जीवन और निर्दोप सत्य-अहिंसा-युक्त ब्रह्मचर्य कम-से-कम उतने काल के लिए पालन करने को तैयार है जितने दिन कि उसे ग्राम-सगठनवाली तपस्या मे लग जायेंगे? जिन गाँवो मे वह भेजा जाता है वहाँकी देहाती बोली क्या वह अच्छी तरह जानता है? क्या उसने खद्दर के काम मे अपनेको काफी होशियार बना रक्खा है? क्या वह कष्ट का जीवन बिताने का आदी है? क्या वह इस बात के लिए तैयार है कि गाँव की गन्दगी अपने हाथ मे बिना झिझक के साफ करे? क्या वह राष्ट्रीय शिक्षा के

तत्त्वो को जानता है ? क्या वह किमानो की जरूरतो मे वाकिफ है ? क्या वह अपने रूप, शील, रहन-महन मे गाँववालो को अपनी ओर खीच सकेगा ? क्या वह तुलसीकृत रामचरितमानस पढने, समझने और समझाने का अभ्यास रखता है ? क्या वह तात्कालिक उपचारो का व्यावहारिक ज्ञान रखता है ? क्या वह रोगी-सेवा मे चतुर और शिक्षित है ? क्या वह चर-विद्या मे निष्णात है ? क्या वह पचायतो के सगठन का तत्त्व समझता है ? क्या वह देहाती खेलो और व्यायामो का शौकीन है ? क्या उसने कृषि-विद्या के साहित्य का परिशीलन किया है ? क्या वह वर्तमान अर्थनीति, राजनीति और समाजनीति समझे हुए है ? क्या वह सत्याग्रह-सग्राम के तत्त्वो को समझता है ? क्या वह काग्रेस के ध्येय का पालन करने और कराने का सिद्धात समझे हुए है ? क्या वह इतना धैर्यवान है कि कई दिन भूख का कष्ट सहकर, बारम्बार लाठो की मार खाकर और तरह-तरह की यातनाये सहकर भी सेवा-कर्म मे अविचलित रूप से डटा रहेगा ? इस तरह के बडे महत्त्व के प्रश्न है जिनकी कसौटी पर कसकर स्वयसेवक की जाँच करनी होगी और जब वह सब तरह से योग्य पाया जाय तभी उसे इस भारी काम के ऊपर भेजना उचित होगा।

वह योग्यता कैसे आवेगी ? इन प्रश्नो के उत्तर ऐसे नही है कि शिक्षा विना पाये हुए कोई स्वयसेवक काँग्रेस को सतुष्ट कर सके। हमारे पास इतना समय भी नही है कि हम ग्राम-सगठन करनेवाले स्वयसेवको को बरस छ महीना बैठाकर शिक्षा दे। इस ग्राम-सगठन के काम के लिए आजकल सबसे उपयुक्त पात्र कॉलिजो के लडके है। कॉलिजो के लडको के सिवाय दूसरे योग्य स्वयसेवक हमको यथेष्ट सख्या मे नही मिल सकते। अगर दस-दस गाँवो के सगठन के लिए हमे एक-एक स्वय-

सेवक रखना हो तो सत्तर हज़ार स्वयसेवक चाहिएं। सारे भारत मे भी कॉलेजो के लडके इतनी वडी मख्या मे हमे नहीं मिल सकते। इसलिए अगर सारे भारत के कॉलेजो से चुन-चुनकर एक-एक विद्यार्थी केवल ग्राम-मगठन के काम के लिए मिल जाय तो वहुत किफायत से हम एक-एक विद्यार्थी को बीम-वीस तीस-तीस गाँवो के सगठन के लिए रख सकेंगे। यदि हमे सभी कॉलेज के विद्यार्थी मिल जायँ तो हर प्रात के विद्यार्थियो को उन-उन प्रातो मे वॅट जाना चाहिए जिनपर उनका अधिकार है, और हर प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी को चाहिए कि अपने प्रात के लडको को ग्राम-मगठन की शिक्षा देने के लिए आतुर-शिक्षालय खोलदे, जिसमे कुल पद्रह दिनो की शिक्षा देकर स्वयसेवक तैयार किये जायँ। इन पन्द्रह दिनो की शिक्षा मे ग्राम-सगठन के पडित नही तैयार होगे। इस विधि से केवल आतुर-मेवक वन मकेंगे, जो ग्राम-सगठन के काम को एक अच्छी विधि से आरम्भ करदे। फिर जो रास्ता वे दिखा देंगे उसी रास्ते से गाँववाले आप अपना सगठन कर लेगे। कॉंग्रेस को इस सम्बन्ध मे आगे चलकर विशेप प्रयास की आवश्यकता न पडेगी।

इस आतुर-शिक्षालय में नीचे लिखे विपयो की शिक्षा देने का प्रवध करना पडेगा —

१—स्वयसेवक की पात्रता।

२—ओटाई, धुनाई, कताई आदि मे दक्षता।

३—पशु-पालन।

४—कृपि-विद्या।

५—चर-विद्या।

६—तात्कालिक उपचार।

७—रोगी-सेवा।

८—स्वास्थ्य-रक्षा ।

९—वर्तमान राजनीति, सामाजनीति और अर्थनीति ।

१०—ग्राम वास्तु-विज्ञान ।

११—पचायतो का सगठन ।

१२—गाँवो की और किसानो की वर्तमान दुर्दशा ।

१३—आपत्काल मे प्रजा की रक्षा ।

इन तेरह विषयो मे से पात्रता, खद्दर का काम, तात्कालिक उपचार, चर-विद्या और रोगी-सेवा ये पाँच विषय ऐसे है जो अध्ययन और अध्यापन से सीखे और समझे जासकेगे । इनके लिए इन्ही पन्द्रह दिनो मे आठ-आठ घण्टे रोज शिक्षा का प्रबन्ध करना पडेगा, जिनमे से चार घण्टे नित्य की व्यावहारिक शिक्षा रखना आवश्यक होगा ।

इन आतुर-सेवको की जीविका का उन दिनो के लिए, जबतक कि वे ग्राम-सगठन का काम करेगे, ग्रामवाले ही बडी खुशी से बन्दोबस्त करेगे। परन्तु स्वयसेवको को उचित नही है कि अपनी जीविका के लिए विशेष रूप से अलग सेवा किये बिना ग्राम-सगठन के काम से ही कुछ धन प्राप्त करे । वे गाँव के बच्चो के पढाने के लिए अपने आश्रम मे पाठशाला खोलले और रात में भी बडो को पढाने के लिए रात्रि-पाठशाला खोले। इस तरह दिन मे और रात में पढाकर वे काफी जीविका के अधिकारी होजायँगे । वे सुभीते के साथ और तरह की मजूरी और मोटा काम करके अगर अपनी जीविका करले तो मुदर्रिसी से ज्यादा अच्छा होगा, क्योकि गाँववाले अधिकतर मोटे काम से ही रूखी-सूखी रोटी कमाते है । केवल विशेष अवस्था मे ही उन्हे अपने लिए कांग्रेस से या किसीसे सहायता लेने का अधिकार होगा । इन खद्दर के सिपाहियो को देश के ऊपर भार प्रतीत न कराना चाहिए ।

स्वयमेवको को देश मे फैले हुए अनेक भ्रमो से बचे रहना चाहिए। हम उन भ्रमो मे से कुछ का दिग्दर्शन इस स्थल पर करते है।

१. साक्षरता का भ्रम

हमारे देश मे पहले सच्ची शिक्षा का बहुत अच्छा प्रचार था। जबसे यहाँ विदेशियो का राज्य हुआ तबसे लोकशिक्षा प्राय उठ गई। पच्छाही पढानेवालो ने अक्षर-ज्ञान पर बहुत जोर देकर मर्दुमशुमरियो मे गिनती कराई। लगभग पचास वर्ष से मर्दुमशुमारी हुआ करती है। गिनती से पता चलता है कि अग्रेजो के समय मे भारत मे अक्षर पहचान सकनेवाले सैकडा पीछे सात आदमी से अधिक नही है। सरकार बडी चालाक है। एक तरफ से तो वह अक्षर-ज्ञान के प्रचार मे पैसे खर्च नही करना चाहती, दूसरी तरफ से यह कहती है कि तुम लोगो मे पढे-लिखो की गिनती इतनी थोडी है कि तुम्हारे यहाँ मतदाता लोग काफी पढे-लिखे नही मिल सकते इसलिए तुम अपने राज्य का प्रबन्ध नही कर सकते। इसमे दो तरह के धोखे है। एक तो यह कि स्वय इग्लिस्तान में मतदाता होने की कोई ऐसी शर्त नही है कि उनका अक्षर-ज्ञान रखना या नाम लिख सकना जरूरी हो। स्वराज्य के लिए साक्षर होना भी कोई जरूरी बात नही है। जब अग्रेजो के पुरखे पढे-लिखे नही थे और भारतवर्ष के लोग भारी-भारी विद्वान थे, तब भारतीयो ने कभी यह नही कहा था कि अग्रेज लोग पढे-लिखे नही है और स्वराज्य नही कर सकते, अथवा उस समय पढे-लिखे न होने से किसी राष्ट्र ने अपनी स्वतन्त्रता नही खोई। इसलिए यह दलील धोखेबाजी की दलील है। दूसरा धोखा यह है कि बीते पचास बरसो के भीतर विदेशी सरकार ने खुद शिक्षा का बन्दोबस्त ऐसा नही किया कि सैकडा पीछे सात से अधिक पढे-लिखे लोग होसके। जान पडता है कि उन्होने इस कार्रवाई

मे दो मतलब साधे। एक तो शिक्षा मे खर्च होनेवाले पैसे बचाये और दूसरे उन्होने भारतवर्ष को बन्धन मे रखने के लिए एक कारण बनाये रक्खा। हमको इन दोनो धोखो मे बचना चाहिए। स्वराज्य के लिए साक्षरता कोई जरूरी शर्त नही है और पूरा स्वराज्य भोगनेवाले किसान के लिए पढना-लिखना जानना जरूरी नही है, इसीलिए किसानो की शिक्षा मे उनके काम की बातो का बताया जाना मुख्य है और पढना-लिखना सिखाया जाना गौण है।

२. गहनो से समृद्धि का भ्रम

हमारे देश मे गहनो का बहुत जबरदस्त रिवाज है। प्राचीनकाल मे स्त्रियो को गहने पहनाने का दस्तूर चला आया है, परन्तु इधर जबसे राज्यविप्लव होने लगे और आये दिन गाँवो पर और किसानो पर भी कुचक्र के कारण विपत्तियाँ पडने लगी तबसे स्त्रियो के ये गहने बैंक का काम करने लगे। जब कभी किसान सकट मे पडता है और बिना रुपयो के उसका काम नही चलता, साहूकार ऋण नही देता, जमीदार जरा भी रिआयत नही करता और सिपाही उसकी बेइज्जती करने पर तुल जाता है, तब किसान की स्त्री से देखा नही जाता। वह अपने गहने उतारकर पति के मान की रक्षा करती है। यो किसानो के बैंक होते तो भी काट-कपटकर किसान उतना जमा न कर सकता जितना कि ब्याह के समय या और वक्तो मे लाचार होकर औरतो के गहने बनवाने मे खर्च करता है। जब भूख से बच्चे तडफने लगते है और पेट की आग किसी-न-किसी तरह से बुझाना जरूरी होजाता है और चाँदी के गहने भी शरीर पर बचे नही रहते, तब फूल या काँसे की चूडियाँ फोड-फोडकर बेची जाती है और किसी तरह एक बार की रोटियो का बन्दोबस्त होजाता है। जबतक किसान की कगाली दूर नही की जाती

तबतक किसानो के इस बैंक को उठा देने की कोशिश करना किसानो के साथ बडी भारी बुराई करना है। हम यह मानते हैं कि गहनो मे किसान का बडा नुकसान होता है। सोनार अगर ईमानदार हो तब भी मुश्किल से रुपये मे बारह आना माल रह जाता है, पर वर्तमान काल मे किसान के पास ऐसा कोई बैंक नही है जिसमे जमा करके वह अपनी जरूरत के वक्त पर इससे ज्यादा सुभीता पा सके। जब गाँव का सहकारी बैंक बन जायगा और हर किसान उससे लाभ उठाने लग जायगा और वह देखेगा कि इसमे हमको ज्यादा सुभीता है, तो वह गहने बनवाना कम कर देगा। परन्तु जबतक यह प्रबन्ध सुरक्षित नही होजाता तबतक सोने-चाँदी का इस्तैमाल हमारी समझ मे बेजा नही है। जब ये लडाइयाँ छिड जाती है तब इस सुभीते का पता लगता है। सरकारी रुपया तो रुपये में बारह आना भी कीमत नही रखता। अगर सोनार ने बेईमानी करके गहनो को रुपये मे आठ आने का ही माल कर दिया है तो भी गहने से उतना नुकसान नहीं है जितना रुपये से है, क्योकि रुपये मे छ आना भर भी माल नही है और पाँच रुपये, दस रुपये, सौ रुपये या हजार रुपये का एक नोट तो धेले का भी माल नही है। इसलिए गहने में प्रजा का उतना नुकसान नही है जितना कि रुपये और नोटो से है। विदेशी चालाक कूटनीतिज्ञ हमको मुफ्त बदनाम करते है कि भारतवर्ष मे लोग गहना बनवा-बनवाकर सोने-चाँदी को सिक्के के रूप मे नही चलने देते, दिन-दहाडे उससे तिगुने दाम के सिक्के कानून और लाठी के बल से चलाये जाते है और इतने पर भी विदेशियो को अगर कोई ठग या बेईमान कहता है तो वे अत्यन्त बुरा मानते है। अत जो वे गहनो की निन्दा करते है उसके भ्रम मे हमें नही पडना चाहिए। इस भ्रम मे भी न पडना चाहिए कि गहना हमको धनाढ्य बनाता है। वास्तविक धन

वर्गमील पीछे आवादी प्रत्येक गणना वर्ष मे				सन् १८७१ को वुनियादी वर्ष मान-कर उसके अक को १०० माना गया		
वर्ष	भारत	फ्रास	इग्लिस्तान और वेल्स	भारत	फ्रास	इग्लिस्तान और वेल्स
१८७१	२१५	१७४	३८७	१००	१००	१००
१८८१	२२७	१८२	४४५	१०५ ५	१०४ ६	११४ ४
१८९१	२२९	१८५	४९७	१०६ ५	१०६ ३	१२८
१९०१	२१०	१८८	५५८	९७ ६	१०८	१४३ ४
१९११	२२३	१८९	६१८	१०३ ६	१०८ ६	१५८ ८
१९२१	२२६	१८४	६४९	१०५ १	१०५ ७	१६६ ८

६६ ८ वढी । अर्थात् भारत की आवादी की वढन्ती फ्रास के वरावर भी न हुई, उससे भी कम रही । अगर दशक का औसत ले तो फ्रास की आवादी सैकडा पीछे जहाँ १ १५ वढी वहाँ भारत की केवल १ वढी है । इसके मुकावले इग्लिस्तान की १३ ३ वढी है । इग्लिस्तान की वढती मामूली से ज्यादा है । मामूली तौर से हर दशक मे सैकडा पीछे दस वढना चाहिए । अगर इस हिसाब से भारत की वढती होती तो आज आवादी ३७ करोड से अधिक होती । परन्तु आवादी तो उस हिसाव से नही वढी जिस हिसाव से फ्रास मे वढ रही है । फिर आवादी की वढती से दरिद्रता क्यो होनी चाहिए ? जो लोग दरिद्रता का कारण आवादी की वढती समझते है उनकी भारी भूल है ।

४ पच्छाहीं कलोंका भ्रम

हमे अपने देशी हलो को जरूर सुधारना चाहिए । परन्तु विदेशी हलो के फेर मे न पडना चाहिए । हमारे यहाँ के भुक्खड अधमरे वैल

उन्हे खीच न सकेगे। पैसे बरबाद होगे। विदेशी लोग उनकी बिक्री के लिए ज़मीन-आसमान एक कर रहे है, परन्तु इन धोखेबाज़ियो मे जो पड चुके है वे बेतरह पछताते है। पच्छाही चीजे भूलकर एक भी न खरीदी जायं। यह एक भयकर भ्रम है।

५ अनाज की महँगी से लाभ का भ्रम

किसान इस भूल मे पडा हुआ है कि अनाज का महँगा होना अच्छा है, क्योकि रुपये ज्यादा मिलते है। परन्तु यह भी धोखा है। भारी लगान, कपडे-लत्ते और दूसरे सामान के लिए किसान रुपये सग्रह करता है। ये रुपये लगान, मुकदमेबाज़ी, रिश्वत, नशा, सूद, विदेशी कपडा आदि कामो मे खर्च होजाते है। उसके हाथ कुछ नही लगता। अनाज सस्ता हो तो बेचो मत। मुकदमा न करो, पचायत से काम लो। रिश्वत, नशा और विदेशी कपडो के पास न फटको। लगान घटवा लो। सूद भी घटाओ। अपने खर्च भर का अनाज पास रखकर बाकी से सूद और लगान दे डालो। अनाज महँगा होता है तो देखने को पैसे ज्यादा मिलते है, पर सब पैसे खिच जाते है। सस्ता होने पर किसान बेचता नही। फिर अन्न देश मे ही रहेगा। लोग भूखो न मरेगे। इस भ्रम को भी दूर करना ज़रूरी है।

६ जाति-भेद से अनैक्य का भ्रम

बहुत-से लोगो की तरह हाथ धोकर जाति-भेद के पीछे पडने की ज़रूरत नही है। समाज की सारी सेवाये एक ही आदमी नही कर सकता, इसीलिए सब देशो और कालो मे सेवाये बँटी रहती है। यह अर्थशास्त्र के अनुकूल श्रम-विभाग है। श्रम-विभाग को तोडने के व्यर्थ प्रयास मे न लगना चाहिए। हाँ, समाज के अस्तव्यस्त होजाने से जो पेशे कोई न करते हो उनके लिए फिर से बन्दोबस्त करना चाहिए और जिनके पास

आज काम न हो वे नये पेशे चुनले । परन्तु जाति-भेद के तोड-फोड या नई जाति के निर्माण के झगडे मे स्वयसेवक पडेगा तो ग्राम-सगठन का लक्ष्य विलकुल भूल जायगा । रोटी-बेटी के भेद को लोग जो फूट का कारण ममझते है वह भी भारी भूल है । जर्मन और अग्रेज़ के बीच रोटी-बेटी का भेद कभी नही हुआ, न होसकता है, परन्तु विगत महायुद्ध मे वे एक-दूसरे के खून के प्यासे थे। इस रोटी-बेटी के भेद को मिटाना मै ज़रूरी नही ममझता । इस भेद से अनैक्य पर फूट का जितना बढना बताया जाता है, उतना सत्य नही जँचता ।

७ भारत की समृद्धि का भ्रम

भारत का किसान अपनी प्यारी धरती को छोडने के वदले स्वय उजड जाता है, पर भूमि नही छोडता। जिस कडाई के साथ लगान वसूल होता है, वह सब जानते है । सरकार की आमदनी कभी नही घटती, और किसान की स्त्रियो के गहने भी रक्खे ही रहते है । इन बातो को देखकर विदेशी कहते है कि भारत समृद्ध है । कहने की ज़रूरत नही कि इससे वढकर भूल हो नही सक्ती । दरिद्रता की यह दशा है कि ससार-भर में भारत में ही सिर पीछे छ पैसे के लगभग नित्य की अत्यन्त थोडी रकम है । नीचे उसका नकशा दिया जाता है —

आदमी पीछे रोज़ाना आमदनी

सयुक्तराज्य (अमेरिका)	३) रोज़
आस्ट्रेलिया	२।) ,,
इग्लैण्ड	२=) ,,
कनाडा	१॥=) ९ ,,
हिन्दुस्तान	=) ७ ,,

इन भ्रमो के सिवा काम करते हुए भांति-भांति की बाधायें और कठिनाइयाँ भी उपस्थित हो सकती है। उनको सुलझाने के लिए समय-समय पर ग्राम-सगठन करनेवालो का सम्मेलन होना चाहिए, जहा उन प्रश्नो के ऊपर विचार करके उचित उपाय सोचे और फिर काम मे लाये जायं।

: २६ :

ग्यारह बातें

भारत के गाँवों का संगठन भारत-देश का संगठन है। हमने किसानों का संगठन कर लिया तो एक प्रकार से सारे देश का संगठन होगया।

गाँवों के संगठन के लिए हमारी समझ में नीचे लिखी ग्यारह बातों की खासतौर से जरूरत है —

(१) किसान अपनी धरती का मालिक हो, किसीका किरायेदार न हो।

(२) किसान की सब तरह की रक्षा हो, परन्तु उसको इस बात के लिए कम-से-कम खर्च करना पड़े।

(३) मानव-जीवन के लिए जिन-जिन बातों की ज़रूरत जितनी-जितनी मात्रा में हो, वे उसे मिलें।

(४) सालभर के लिए पूरा काम मिले, जिसमें वह बेरोज़गार कभी बैठा न रहे, और उसे मन-बहलाव आदि के लिए काफी फुरसत भी मिले।

(५) सारे परिवार के लिए मन-बहलाव की सामग्री उसे नित्य परिश्रम के बाद मिल सके।

(६) उसके काम के लिए और मनोविकास के लिए उपयोगी और काफी शिक्षा पाने के सब सुभीते मिलें।

(७) अच्छे घर, अच्छे पड़ोस और सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा के सभी साधन मिलें।

(८) गांव के बाहर से आवा-जाई, व्यापार और व्यवहार के मव तरह के सुभीते मिले ।

(९) अपने गांव के शिक्षा, रक्षा, व्यवमाय, मेवा मभी विभागो पर, उनके आय-व्यय और प्रबन्ध पर, पूरा अधिकार अथवा ग्राम्य-स्वराज्य प्राप्त हो ।

(१०) ऋण, मुकदमेबाज़ी, नकद देन, गोवध, नशा और प्रच्छन्न कर इन छ विपत्तियो से छुटकारा मिले ।

(११) देश के पूर्ण स्वराज्य की मरकार मे महयोग व महकारिता का सम्बन्ध हो ।

: ३० :

गॉवो मे जाकर क्या करना चाहिए ?

१ कौन जाय ?

ग्राम-नगठन का काम वडी समझदारी और जिम्मेदारी का है। इसके लिए पात्र वही होसकता है जो चरित्रवान हो, अपने काम को अच्छी तरह जानता हो, और जिसको गॉववालो से पूरी सहानुभूति हो।

देश की जैसी हालत है उसमे इस समय दो तरह का काम होने की जरूरत है एक तो खडनात्मक और दूसरा मडनात्मक। विगडी सुधारने का काम किसानो का और गाँवो का सुधार है, क्योकि इन्ही-की दशा विगडने से देश की दशा विगड गई है। जहाँ एक और कॉंग्रेस को सत्याग्रह के मैदान मे युद्ध करनेवाले सैनिक चाहिएँ, वहॉ दूसरी ओर ग्राम-सगठन करनेवाले शान्त, ठोस, काम करनेवाले वहादुर सिपाहियो की भी जरूरत है। विद्यालयो से निकलनेवाले विद्यार्थी दोनो तरह के सैनिक बन सकते है, परन्तु इस समय ग्राम-सगठन करनेवालो की ज्यादा जरूरत है। इसके लिए कॉग्रेस को चाहिए कि एक आतुर-शिक्षालय खोलदे और जिन-जिन जिलो और प्रान्तो के विद्यार्थी हो भरसक उन्ही जिलो और प्रान्तो मे उन्हे तैनात करे। उनके कामो का वरावर निरीक्षण करे, ऐसे कार्यकर्त्ताओ का समय-समय पर सम्मेलन करे और उन्हे भरसक जरूरी मदद पहुँचाती रहे।

ग्राम-सगठन के सिपाही मे सहानुभूति के सिवाय सत्य और अहिंसा के गुण भी होने चाहिएं। वह इस वात पर पूरा ध्यान रक्खेगा कि

जितनी वाते मै सोचता हूं वे विलकुल सच होनी चाहिएं, जो कुछ मै कहता हूं वह भी ठीक और सच्चा काम हो। वह जितने काम करे उनमे यह ध्यान रक्खे कि हम किसीको कष्ट पहुंचाने के कारण न वने। जितनी वाते कही जायं वे ऐसी हो कि जिनमे किसीका जी न दुखे।

२ उसकी तैयारी

ग्राम-सगठन के लिए उसे क्या-क्या जानना चाहिए ? सक्षेप मे तो हम यो कहेगे कि किसान के सब तरह के जीवन की सभी वाते उसके जानने की है, तो भी पन्द्रह दिन मे तो सारी वाते नही आसकती। उसे कपास का ओटना, रुई का सुखाना, फटकना, धुनना, पूनियां वनाना, कातना और सूत की नियमित अट्टियां वनाना नियमित रूप से सीखना पडेगा। उसे यह भी जानना चाहिए कि ओटनी, धुनकी, तकली, चरखा, अटेरन, पटेला आदि के गुण-दोष क्या है, और उन्हे ठीक और निजल कैसे रखना होता है, विगड जायं तो कैसे वनाना होता है, और इन वस्तुओ के उत्तम प्रकार क्या है ? उसे अच्छा सूत कातना चाहिए और अच्छे सूत की परख होनी चाहिए। उसे स्वास्थ्य और सफाई के सभी सिद्धात मालूम होने चाहिएं। विशेष रूप से गोवर और गोमूत्र की रक्षा और खाद की तरह से उपयोग की पूरी जानकारी होनी चाहिए। उसे चलती-फिरती टट्टियो और खेत की नालियोवाले पाखाने की विधि मालूम होनी चाहिए। और इसी तरह घूरे को काम मे लाने की विधि मालूम होनी चाहिए, आतुर, आकस्मिक और तात्कालिक उपचार भी मालूम होने चाहिएं जिनमे आस-पास मिलनेवाली जडी-बूटियां, पत्तियां, छाल आदि काम दे सके। उसे रोगी-सेवा भी जाननी चाहिए और चर-विद्या भी उसे आनी चाहिए। इतनी वातो का व्यावहारिक ज्ञान ग्राम-सगठन के सिपाही मे अत्यत आवश्यक है।

इनके सिवा उसे कुछ किताबी ज्ञान भी होना जरूरी है। पुस्तकों से उसे जानना चाहिए कि भारत गुलाम कैसे बना, कंगाल कैसे बना, गाँवो की वर्तमान दशा क्या है, और सुधरने पर कैसी दशा होनी चाहिए ? वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्यायें क्या है और उनको कैसे सुलझाना है ? किसानो में क्या-क्या दोष है और उन्हें कैसे दूर करना होगा ? किन-किन बातो में गाँव पूरा समझा जाता है ? और जिस गाँव का सगठन किया जा रहा है उसमें किन-किन बातो की कमी है, जिन्हे पूरी करने की जरूरत है ? उसे खेती की विद्या, गोपालन, पशु-पालन, खडसाल, दुग्धशाला इत्यादि गाँव में होने और होसकनेवाले सब तरह के व्यवसायो का ज्ञान होना चाहिए। खेती और गोपालन का ज्ञान सबसे अधिक और अच्छा होना चाहिए और इन सब बातो के लिए उसके पास काफी साहित्य का सग्रह होना भी जरूरी है।

ग्राम-सगठन करनेवाले स्वयसेवको को रामायण की या किसी पुराण की कथा कहने का ढग भी मालूम होना चाहिए और इसी कथा के साथ-साथ गाँव के श्रोताओ को उनके जानने के लायक सभी बाते बतानी चाहिएँ। सत्य, अहिंसा, नेकनीयती, ईमानदारी का बर्ताव, उदारता, धैर्य्य आदि अच्छे गुणो की और सच्चरित्रता की भी शिक्षा देने के उपाय करने होगे। इसलिए कथा और व्याख्यान के लिए भी सगठनकर्त्ता को तैयार रहना चाहिए।

इस तरह की व्यावहारिक और मानसिक तैयारी करके सगठन-कर्त्ता यह विचार करले कि किस गाँव में हम सबसे अच्छी सेवा कर सकेंगे। यह निश्चय कर लेने पर अपने साथ इतना जरूरी सामान ले कि जरूरत पडने पर वह अकेला स्वय उसे ढो ले जासके। उसके पास चरखे की जगह तकली होना काफी है। बाकी चीजो की सूची नीचे दी जाती है —

पेंसिल, कागज, कार्ड-लिफाफे, साबुन, एक थाली, एक कटोरा, एक चम्मच, तकली, तकली का ब्रश, अटेरन, एक चालू वर्ष की डायरी, हिन्दी रेलवे टाइमटेबल, एक झोली, एक भगौना (बन्द), एक तवा, एक लोटा, एक गिलास, पूनियां ,१, एक डिबिया दियासलाई, एक अच्छा चाकू, अनासक्तियोग—गीताबोध, चर्खाशास्त्र, रामचरितमानस, आश्रम-भजनावली, एक खुरपी लगा डडा (शौच के लिए खोदने को), तीन लुंगिया, दो अगोछे, दो कुर्ते या बनियान, दो गाँधी-टोपी, दो कम्बल, सुई-डोरा, कुए की डोरी (लोटे लायक) ।

३ काम कैसे शुरू हो ?

किसी जान-पहचानवाले या मित्र का पत्र लेकर या कॉग्रेस के किसी प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता के साथ जाकर गाँव के लोगो से जान-पहचान पैदा करनी चाहिए, और किसी ऐसे सुभीते की जगह जाकर ठहरना चाहिए जहाँ रहने से किसीको कष्ट न हो, कोई बुरा न माने । सगठन करनेवाले को भरसक अपना काम स्वय कर लेना चाहिए । किसी दूसरे से सेवा न लेनी चाहिए । गाँव मे जाकर वह पहले सारे गाँव मे घूमकर सफाई की दशा देख ले और फिर आसपास के पाँच-सात गाँवो की भी दशा देखे । इसी बीच तकली कातने का और रुई धुनने का काम जारी रक्खे । लोगो को पहले तकली बनाना और उसपर कातना सिखावे । साँझ के समय गाँववालो को रामायण सुनावे और अच्छी-अच्छी बाते समझावे । दिन मे किसी समय गाँव की गन्दी-से-गन्दी जगह या नाली की खुद अपने हाथ से सफाई कर डाले । सबसे पहले गाँव की सफाई मे ही हाथ लगावे । इस तरह जब काम की बुनियाद डाले, उसी समय धुनकी और चरखे बनवाने का और धुनने और कातने के प्रचार का आरम्भिक काम करता रहे । शुद्ध तकुआ-युक्त एक अच्छा चरखा और

एक अच्छी धुनकी—बारडोली पींजन बहुत अच्छी होगी—लेकर पूनियाँ बनाने का उत्तम प्रबन्ध अपने आश्रम पर करे। सारे गांव के स्त्री-पुरुषो को इन कामो मे कुशल कर देना होगा।

गाँवो मे घर-घर कलह है। जमीदार-किसान भी आपस मे लडते रहते है। पटवारी, दलाल, चौकीदार, पुलिसवाले, जमीदार के कारिन्दे और सिपाही इन सबकी जीविका झगडो से ही है। सगठनकर्त्ता किसी-मे उलझे नही। उसे किसी दल या किसी पक्ष मे कोई मतलब नही। वह जमीदार और किसान दोनो का हितकारी है। वह लडानेवालो का भी और गाँवभर का हितकारी है, परन्तु लडाई नही चाहता। जो लडाई-झगडो की रोटियाँ खाते है उन्हे उससे विरोध होगा। परन्तु वह आप किसीसे भी विरोध न मानेगा। इस बुरी जीविका को वह अपने शान्त शुद्ध आचरण और उपदेश से और उचित सगठन से नष्ट कर देगा। जिस दिन वह किसी दल का होजायगा उसी दिन वह अपना पवित्र काम बिगाड देगा।

४. नित्य के काम

वह नित्य के कामो के लिए सुभीते से समय-विभाग कर लेगा और उसकी पाबन्दी करेगा। उसके नित्य के काम ये होगे —

१ शिक्षा— (क) ओटने, धुनने, कातने आदि की।
(ख) पढने-लिखने की।
(ग) राष्ट्रीय गीतो के गाने की।

२ सफाई—(क) अपने आसपास की।
(ख) गांव के उस भाग की जिसकी बारी हो।
(ग) इस काम मे उस व्यक्ति की मदद जिसकी बारी हो।

३ सगठन—उस विषय का जो क्रम मे पडता हो।

ये सब काम गॉव के होगे। उसके निजी काम, अपना नित्यकर्म, कातना-धुनना, भोजन पकाना, नहाना, कपडे धोना, खाना, आराम करना आदि सब कामो के लिए निश्चित समय होगा। नित्य शाम को मनवहलाव के किसी काम मे और कथा-वार्त्ता मे समय देना होगा। जल्दी सोना और जल्दी उठना नियम होगा।

इन नित्य के कामो को इस तरह पर करना होगा कि सप्ताह म एक दिन और किसी गॉव मे जाने के लिए रख लिया जाय। यही छुट्टी समझी जायगी। इसके सिवा जो दिन बाजार का होगा उस दिन भी आधी छुट्टी रहेगी। इस प्रकार का नित्य नियम धीरे-धीरे परन्तु दस ही पन्द्रह दिनो बाद स्थापित होजाना चाहिए। शिक्षा-क्रम बढाकर रात्रि-पाठशाला का भी बन्दोबस्त करना होगा, जिसमे बडी अवस्था वाले भी शिक्षा पा सके।

५ किसान की ज़रूरतें

काम करनेवाले को किसान की ज़रूरते समझ रखना पहला कर्त्तव्य है। कही-कही नौ, कही छ, कही चार और कही-कही कम-से-कम तीन महीने तो साल मे किसान बेरोजगार पडे ही रहते है। इस भयानक बेरोज़गारी से उन्हे न पेट-भर भोजन मिलता है न ज़रूरत-भर कपडा। धनाभाव से वे खेती के उचित और इष्ट साधन भी नही रखते। धरती पर स्वामित्व न होने से वे उसे सुधारने मे मन भी नही लगाते। उनपर बहुत भारी ऋणो का भी भार है। इसपर भी आये दिन की मुकदमेबाज़ी उनको कगाल बनाये रहती है। किसान कामकाज, तीज-त्योहार आदि मे अपनी ताकत से बाहर खर्च करता है। उसको ताडी, तमाखू, गाँजे, भाँग आदि नशो की लत भी तबाह कर रही है। इन

सबके ऊपर भारी बोझा उसके कधो पर लगान का है। ये सात बोझे ऐसे है जिनसे उसे हलका करने की ज़रूरत है।

खेती के सुधार के लिए उसे शिक्षा मिलनी चाहिए और सहयोग-समितियाँ बनाकर अपने काम मे उसे सहायता मिलनी चाहिए। शिक्षा का अर्थ है खेती की उचित शिक्षा—केवल लिखना-पढना नही। सहकारिता की कमी से खेती पर का खर्च भी बढा हुआ है। उसे घटाकर साधन-सुलभ कर देना चाहिए। गोबर, गोमूत्र, पाखाने, पेशाब से और घूरे मे गदगी होने के बजाय उसे उत्तम खाद मिलना चाहिए। दूर-दूर और छोटे खेतो का पचायन द्वारा और विनिमय कराकर एकत्रीकरण होना चाहिए। निदान खेती की शिक्षा और सहयोग-समितियो का निर्माण होना चाहिए। यह काम गाँववाले आप करे। इनके लिए स्वयसेवक **शिक्षा-पचायत** बनाकर काम करावे।

लडाई-झगडे मे रक्षा, अदालत जाना व्यर्थ कर देना, ऋण का बोझ हलका करा देना—ये काम भी रक्षा-पचायत मे होगे। गाँव में ही **रक्षा-पचायत** मुकदमे निबटा देगी, साहूकार को सूद छोडने और ऋण-मोचन सहज करने को राजी करेगी और भरसक कलह न होने देगी। इसके सिवा रक्षा के सारे काम वह कर सकेगी।

व्यवसाय-पचायत की स्थापना होजाने से खेती, गोपालन आदि व्यवसायो मे सुभीता होसकेगा। सहयोग-समितियाँ इसी पचायत के अन्त-र्गत अपना काम बढावेगी। यह पचायत गोपालन आदि गाँव के योग्य व्यवसाय जारी करेगी और सभी व्यवसायो मे उन्नति करेगी। उसका यह खास काम होगा कि बेरोज़गारी दूर करे, ऋणभार हलका करने का उपाय करे, आये दिन की फिजूलखर्ची को बन्द करे, नशे का निवारण करे और लगान को घटवावे। बेरोज़गारी दूर करने का सबसे उत्तम

उपाय जोटाई, बुनाई, कताई को जारी करना है। इन कामों के होने किसान बेकार नहीं रह सकता। यही खास काम है जिसे स्वयंसेवक पंचायत की स्थापना के पहले ही सारे गांव में फैला देगा और बेकारी को निर्मूल कर देगा। किसान अपनी कपास उपजाकर सूत बनाने तक सारा काम करलेगा तो उसे पहनने को कपड़ा मज़बूत और सस्ता मिलेगा और जो पैसे बचेंगे वे और कामों में आवेंगे। साहूकारों की ज़रूरत सहयोग-समितियों से पूरी होसकेगी और पंचायत कोशिश करके साहूकार और ऋणी में समझौता करा देगी और जबतक ऋण है कम-से-कम तबतक कामकाज, उत्सवादि पर खर्च पंचायत की बनाई हुई सीमा के भीतर करना होगा।

सेवा-पंचायत स्थापित होकर गाँव के लोगों के आचरण पर नियंत्रण रक्खेगी। नशा-सेवन से बचावेगी। उनके व्यायाम, खेल-कूद, मनबहलाव का काफी बन्दोबस्त करेगी। व्यवसायियों, शिल्पियों और साधारण मजूरों के समाज में सचाई, अहिंसा, ईमान्दारी, कला की उत्तमता आदि के ऊँचे आदर्शों की स्थापना और रक्षा करेगी।

इन चारों पंचायतों की स्थापना इसी दृष्टि से करनी होगी कि किसानों में स्थानीय स्वराज्य की परिपाटी चल जाय। वे स्वावलम्बी होजायँ। विदेशी से तो क्या, किसी और गांववाले से भी अपने भीतरी मामलों में मदद के मुहताज न हों। संगठन का यह मुख्य काम होगा। गाँववालों को इन पंचायतों का सिद्धान्त व्यवहार द्वारा ही सिखाना होगा।

६ किसानों की सहायता

पंचायतों के संगठन के सिवा किसानों की और प्रकार से भी स्वयं-सेवक सहायता कर सकता है। उसे गाँववालों में से कई चतुर निवासि-

यो को चुनकर अनेक बातो मे दक्ष कर देना होगा। उन्हे चरविद्या, आतुरोपचार, साधारण चिकित्सा, रोगी-सेवा, और बन पडे तो बुनाई की कला भी सिखलानी होगी। यदि यही लोग वर्त्तमान राजनीति, समाज-नीति, अर्थनीति के मोटे-मोटे सिद्धात समझ सके तो यह सब भी समझाना होगा। कृपिविद्या, गोपालन, खडसाल का काम, और गॉव के और व्यवसायो का काम भी भरसक सिखला देना होगा। गॉव का भावी नेता भरसक इन्ही विशेप शिक्षितो मे से कोई एक तो जरूर निकल आयगा। कई निकल आवे तो भी आश्चर्य नही। **स्वयसेवक का मुख्य काम यही है कि गॉव के भावी नेता को पैदा करे।** जब यह काम हो-गया तो समझना चाहिए कि स्वयसेवक ने अपना काम पूरा कर लिया। जब वह काम सम्हाल ले तब स्वयसेवक वह कार्य-क्षेत्र उसे सौंपकर दूसरा काम करे। यही नेता और पचायत मिलकर अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्निकाड, महामारी, टिड्डी आदि के उपद्रवो के समय के लिए उचित बन्दोबस्त और रक्षा करेगे। दूसरे गाँवो से भी यही सहकारिता का बर्त्ताव करेगे। सगठन की इस विधि से किसानो की सबसे बडी और सबसे अधिक सहायता होसकती है।

७ गॉव की पूर्णता

भारत के गॉव आजकल पूरे नही है। अधिकाश उजडे हुए है। पूरा गॉव वही है जहॉ गाँवो की सारी जरूरतें गाँव के भीतर पूरी हो-जायें। गाँव में पुरोहित, वैद्य, ज्योतिपी, पहरेदार, पटवारी, बनिया, तेली, लोहार, बढई, कसेरा, कुम्हार, ग्वाला, जोलाहा या कोरी, नाई, धोबी, चमार, बसफोर, नोनिया, बेलदार और कहार का होना जरूरी है। किसी एक गॉव मे अगर ये सभी मौजूद न हो तो आस-पास के पॉच-सात गाँवो को मिलाकर तो ये जरूरतें पूरी हो ही जानी चाहिएँ।

हर सौ आदमी की आबादी पीछे एक कपडा बुननेवाले का गुजर हो-सकता है। परन्तु हमारे गांवो म इस हिसाब मे जुलाहे है कहां ? इसलिए कपडे की मांग पूरी करने को न केवल घर-घर घूम मे कताई होने की जरूरत है, बल्कि कुछ चतुर युवको को बुनाई का काम अपने रोजगार के लिए सीखकर अपने-अपने गांवो मे खद्दर की जरूरत पूरी करनी चाहिए। बच्चो को दूध नही मिलता। इस भारी जरूरत को भी पूरा करना है। हर व्यवसायवाले का, हर कारीगर का काम नित्य बढता हुआ रहना चाहिए। पैसे के प्रचार की घटती-बढती और विदेशी आयात-निर्यात के धोखे की चालो से बचने के लिए आजकल पैसो का तो बहिष्कार कर देना चाहिए और अनाज से ही बदलकर अपना काम निकालना चाहिए। लगान भी उपज के दशमाश से अधिक नही होना चाहिए, और होना भी चाहिए उपज का ही। उसे बेचकर नकद रुपया चुकाने का बखेडा किसान अपने सिर न स्वीकार करे। अपने गाव के सारे खर्चों को पूरा करने के बाद जो उपज यानी कच्चा माल बचे, वह व्यवसाय-पचायत की मार्फत ऐसे जँचे हुए व्यापारियो के हाथ बेचा जाय जो स्वराज्य-सरकार या कॉग्रेस मे यह प्रमाणपत्र रखते हो कि वे देश की जरूरत पूरी करने के बाद ही अन्न को देश से बाहर जाने देगे। पचायतो के द्वारा गॉव के आयात और निर्यात पर पूरा सयम रखने में ही बाहर की लूट से गॉव की रक्षा होसकती है। इस प्रकार गॉव की सामाजिक और आर्थिक पूर्णता हुई।

हर गॉव अपने चारो विभाग शिक्षा, रक्षा, जीविका और सेवा अपने अधिकार मे रखे। अपनी शासक-समिति को या जमीदार को दशमाश लगान दे। शासक-समिति इसमे से केन्द्रीय सरकारो को उचित अश देकर पचायतो को उनके व्यय के लिए दे। दड, तहबाजारी, चुगी

आदि की आमदनी बिलकुल गाँव के भीतर के खर्च के लिए हो। इसी प्रकार गाँव का आय-व्यय गाँव के अधिकार मे रहे और इस स्थानीय स्वराज्य का सम्बन्ध केन्द्रीय सरकारो से केवल सहकारिता का हो। इस स्थानीय स्वराज्य का पूरा अधिकार गाँव के किसान-सघ को होगा, जिसके सदस्य बीस बरस से अधिक अवस्था के सभी नर-नारी, जो गाँव की सीमा के भीतर रहते हो, समझे जायँगे। परन्तु यह किसान-सघ उस समय स्थापित होना चाहिए जब स्वयसेवक गाँव के नेता का निर्माण करले और गाँव का हर सदस्य सगठन को समझ जाय। वस्तुत यही सघ चारो पचायतो का और उनके अवान्तर (?) विभागो का सगठन करने का अधिकारी होगा। यह सघ ही गाँव की महासभा होगी। यहाँ इस विषय को सूत्ररूप से दिया गया है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार स्वयसेवक आप ही सगठन को समुचित रूप देगा। यह राजनैतिक पूर्णता होगी।

हर गाँव मे एक पाठशाला, एक चौपाल जहाँ पचायते बैठे और सभाये हो, एक मदिर या मसजिद, या दोनो, जैसी आवश्यकता हो, एक धर्मशाला, कुएँ, तालाब और रहने के घर स्वास्थ्य के नियमो से बने होने चाहिएँ। गलियाँ साफ चौडी, सडके ऊँची चौडी साफ दो गाडियो के चलने लायक, बरसाती पानी को बहा लेजाने को नाले, पानी जमा करने को ताल, तालाब, नहरो आदि का भी बन्दोबस्त चाहिए। गाँव की बस्ती और स्थिति वास्तु-विज्ञान के अनुसार होनी चाहिए। बने-बनाये गाँवो का धीरे-धीरे ऐसा सुधार सभव है कि अन्त मे वे वास्तु-विद्या के अनुकूल पड जायँ। इसे हम वास्तविक पूर्णता कहेगे।

सगठन करनेवाले का यह ध्येय होगा कि वह गाँव को हर तरह

पर पूर्ण बनाने का जतन करता रहे और नित्य देखभाल रखवे कि उसका काम किस तरह बढ रहा है।

८ गॉव का लेखा

स्वयमेवक रात को सोने के एक घण्टा पहले एक रोजनामचे म दिनभर का सारा काम, जो वह कर सका है, लिख डालेगा। यह उसका नित्य का काम होगा। वह एक और बडी किताब रक्खेगा, जिसमे गाव के रहनेवाले हर "घर" का पूरा व्योरा होगा और हर प्राणी का पूरा इतिहास होगा। किस घर मे कितने प्राणी है, उनके पास कितनी जायदाद है, पिछले वर्ष कितनी आमदनी हुई, नित्य का खर्च कितना है, बेरोजगारी कितनी है और व्यवसाय क्या है, उनमे क्या आमदनी है, कुल बचत धन या ऋण क्या है, किसी कामकाज पर क्या खर्च हुआ, कौन-कौन प्राणी किस उम्र का है, विवाहित है या अविवाहित, शिक्षा कितनी है, परिश्रम का क्या हाल है, स्वास्थ्य कैसा है, दोष क्या है, कौन नशा किस मात्रा मे सेवन करता है, अपने बूते मे किस दाम की मजूरी नित्य करता है, कितनी बेकारी है, क्या-क्या व्यवसाय जानता है, क्या व्यवसाय करता है, उससे आय क्या है, क्या सभावना है, इत्यादि सारी बाते मालूम करके इस पोथी मे नक्शे के रूप मे दर्ज करना चाहिए और जबसे लेकर जबतक मे यह जाँच पूरी हो तबतक का समय नोट करना चाहिए। यह जाँच तीन-तीन या छ-छ मास पर होने से मुकाबला करने पर यह पता चलेगा कि ग्राम-सगठन और सुधार के काम में कितनी मात्रा मे सफलता हुई है। इसके अक काग्रेस को देने से काग्रेस इस काम में जिलेभर मे जो सफलता हुई है उसका पता लगाकर प्रकाशित कर सकेगी। यह काम बडे महत्व का है। **कार्य्यकर्त्ता इसमें जरा भी भूल न करे।**

शुरू मे गांव मे एक से अधिक स्वयसेवक भी जा सकते है। परन्तु हमारे पास इतने काफी आदमी नही है, इसलिए हम दस-बीस गाँवो में काम करने के लिए यदि एक अच्छा स्वयसेवक पासके तो वडी गनीमत है। इसलिए वहुत जल्दी वॉटकर दस-बीस गाँव पीछे एक कार्य्यकर्त्ता रखना ही पडेगा।

मैने वहुत सक्षेप मे सगठन की यह योजना दी है। आतुर-शिक्षालय मे एक पक्षवाले सूत्र मे इसपर विस्तार किया जा सकता है और इन्ही विधियो मे अथवा ऐसी ही अन्य विधियो से काम लिया जा सकता है।

सहायक साहित्य की सूची

१ नवजीवन माला, शुद्ध खादी भडार, १३२/१ हरिसन रोड, कलकत्ता की सभी पुस्तकें।

२ हिन्द-स्वराज्य, ले० महात्मा गांधी।

३ आरोग्य-साधन, ले० महात्मा गांधी।

४ चर्खाशास्त्र, ले० महात्मा गांधी।

५ दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास, ले० महात्मा गांधी।

६ आत्म-कथा, ले० महात्मा गांधी।

७ हाथ की कताई-बुनाई, ले० श्री पुणताम्बेकर।

८ खद्दर का सम्पत्तिशास्त्र, ले० श्री रिचार्ड बी ग्रेग।

९ अनीति की राह पर, ले० महात्मा गांधी।

१० विजयी बारडोली, ले० श्री वैजनाथ महोदय।

११ शैतान की लकडी, ले० श्री वैजनाथ महोदय।

१२ कृषिसार (सरस्वती भडार, मुरादपुर, बांकीपुर)।

१३ खाद का उपयोग (ज्ञानमण्डल, काशी)।

१४ कृषि विज्ञान माला (भास्कर बुक डिपो, मेरठ)।

१५ किसानों की कामधेनु (गगा पुस्तक माला, लखनऊ)।

१६ अकाल से बचने के उपाय (प० गौरीशकर भट्ट, मसवानपुर, कानपुर)।

१७ ग्राम पचायत प्रदीपिका (साहित्यभूषण गुलाबशकर पड्या, मनोरजन प्रेस, सिवनी)

१८ गोरक्षा-साहित्य और किसान-साहित्य (प० गगाप्रसाद अग्निहोत्री, बलदेव बाग, जबलपुर)।

१९ ग्राम-सुधार (बा० गिरिवरधर वकील, समस्तीपुर, बिहार)।
२० बरासना की काली करतूतें (साबरमती आश्रम)।
२१ आश्रम-भजनावली (साबरमती आश्रम)।
22 Brayne's Village Uplift of India, (The Pioneer Press, Allahabad)
२३ गोपालन (इण्डियन प्रेस, प्रयाग)।
२४ कृषि-कौमुदी (श्री दुर्गाप्रसादसिंह, इण्डियन प्रेस, प्रयाग)।
25 Handbook of Indian Agriculture (N G. Mukerji, Thacker Spink & Co)
२६ "विशाल भारत' से कुछ लेख।
27 Rural Education in India (Vol I & II)
28 Fourteen Experiments in Rural Education
29 Rural Economics of India (Radhakamal Mukerji)
30 Some South Indian Villages
31 The Punjab Peasant in Prosperity and Debt
32 Production in India
33 Unhappy India
34 Indian Economics (V G, Kale)
35 The Science of Punjab Finance
36 Sixty years of Indian Finance
37 Economic condition in India
३८ भारत में कृषि-सुधार।
39 Foundation of Indian Economics
40 Socrates in an Indian Village (F L Brayne)
41 Indian Village Communities
42 Death of Charka under British Rule
43 Education of India
44 Prosperous British India
45 Poverty and Un-British Rule in India

46 India for Indians and for England
47 Our Village
४८ समाज-सगठन (बाबू भगवानदास, भारत बुक डिपो, अलीगढ) ।
४९ गौओं का पालन और उनसे लाभ (पं० गगाप्रसाद अग्निहोत्री, गोवध-निवारक सभा, सागर) ।
५० भाग्य-निर्माण (हिन्दी-साहित्य-प्रचार कार्यालय, नरसिंहपुर) ।
५१ खद्दर-शिक्षक (श्री भगवतीसिंह, शिक्षक बुनाई विभाग, काशी विद्यापीठ) ।
५२ खेडा की लडत (श्री शकरलाल द्वारकादास परीख) ।
५३ चम्पारन में महात्मा गाधी (बाबू राजेन्द्रप्रसाद) ।
54, Cow keeping in India (Tweed)
५५ ग्राम-पुनर्घटना (दक्षिणामूर्ति, भावनगर) ।
५६ केम शीखववु (गिजुभाई) ।
५७ चालो वाचीअे (गिजुभाई) ।
५८ आगल वाचो (दो भाग) ।

लोक साहित्य माला

'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना इस उद्देश्य को लेकर हुई थी कि जन साधारण को ऊँचा उठानेवाला साहित्य सस्ते-से-सस्ते मूल्य मे सुलभ कर दिया जाय। हम नही कह सकते कि 'मण्डल' इस उद्देश्य मे कहाँ तक सफल हुआ है, लेकिन इतना निश्चित है कि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर नेक नीयती से बढते रहने की कोशिश की है और हिन्दी मे राष्ट्रनिर्माणकारी और जन-साधारण के लिए उपयोगी साहित्य देने मे उसने अपना खास स्थान बना लिया है। लेकिन हमको अपने इतने से कार्य से सतोष नही है। अभी तक 'मण्डल' से, कुछ अपवादो छोडकर, ऐसा साहित्य नही निकला जो बिलकुल 'जन-साधारण का साहित्य'—लोक साहित्य कहा जासके। अभी तक आमतौर पर मध्यम श्रेणी के लोगो को सामने रखकर 'मण्डल का प्रकाशन कार्य होता रहा है लेकिन अब ऐसा समय आगया है कि हमे अपनी गति और दिशा बदलनी चाहिए और जनता का और जनता के लिए साहित्य प्रकाशित करने का खास तौर से आयोजन करना चाहिए।

उपरोक्त इसी विचार को सामने रखकर 'मण्डल' से हम 'लोक साहित्य माला' नाम की एक पुस्तक माला प्रकाशित करने की तजवीज कर रहे है। इस माला मे डबल क्राउन सोलह पेजी आकार की दो-ढाई सौ पृष्ठो की लगभग दो सौ पुस्तके देने का हमारा विचार है। पुस्तके साधारणत जन-साधारण की समझ मे आने लायक सरल भाषा मे, अपने विषयो के सुयोग्य विद्वानो और नामी-नामी लेखको-द्वारा लिखाई जायँगी। पुस्तको के विषयो मे जनसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विषयो—

जैसे ग्राम उद्योग, ग्राम-सगठन, पशुपालन, सफाई, सामाजिक बुराइया, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनैतिक, सामान्य जानकारी देशभक्ती की कहानियाँ, महाभारत-रामायण की कहानिया, चरित्रबल बढानेवाली कहानियाँ खेती, बागवानी, आदि का समावेश होगा। सक्षेप मे हमारा इरादा यह है कि हम लगभग दो सो पुस्तको की एक ऐसी छोटी-सी ऐसी लाइब्रेरी बना दे, जो साधारण पढे-लिखे लोगो के अन्दर आजकल के सारे विषयो को तथा उनको ऊँचा उठानेवाले युग परिवर्तनकारी विचारो को सरल-से-सरल भाषा मे रख दे और उसके बाद उन्हे फिर किसी विषय की खोज मे—उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए—कही बाहर न जाना पडे।

ऊपर लिखे अनुसार लगभग दो-ढाई सौ पृष्ठो की पुस्तक माला की पुस्तको का दाम हम सस्ते-से-सस्ता रखना चाहते है। आम तौर पर हिन्दी मे उतने पृष्ठो की पुस्तक का मूल्य १) या १।) रु० रखा जाता है लेकिन हम इस माला की पुस्तको का दाम आठ आना रखना चाहते है। कागज छपाई आदि बहुत बढिया होगी।

पहले पहल हम निम्नलिखित पाँच पुस्तके इस माला मे निकालने का आयोजन कर रहे है —

१ **हमारे गाँवो की कहानी [स्वर्गीय रामदास गौड]**

२ **महाभारत के पात्र—१ [आचार्य नृसिंहप्रसाद कालिप्रसाद भट]**

३ **लोक-जीवन [आचार्य काका कालेलकर]**

४ **सतवाणी [वियोगी हरि]**

५ **हमारी नागरिक जिम्मेदारी [कृष्णचन्द्र विद्यालकार]**